

प्रकाशकीय निवेदन

आज हमें हिन्दी पाठकों के सम्मुख संयुक्त-निकाय के हिन्दी अनुवाद को लेकर उपस्थित होने में बड़ी प्रसन्नता हो रही है। अगले वर्ष के लिए 'विसुद्धिमग्ग' का अनुवाद तैयार है। उसके पश्चात् 'अंगुत्तर निकाय' में हाथ लगाया जायेगा। इनके अतिरिक्त हम और भी कितने ही प्रसिद्ध बौद्ध-ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करना चाहते हैं। हमारे काम में जिस प्रकार से कितने ही सज्जनों ने आर्थिक सहायता और उत्साह प्रदान किया है, उससे हम बहुत उत्साहित हुए हैं।

आर्थिक कठिनाइयों एवं अनेक अन्य अड़चनों के कारण इस ग्रन्थ के प्रकाशित होने में जो अनपेक्षित विलम्ब हुआ है, उसके लिए हमें स्वयं दुःख है। भविष्य में इतना विलम्ब न होगा—ऐसा प्रयत्न किया जायेगा। हम अपने सभी दाताओं एवं सहायकों के कृतज्ञ हैं, जिन्होंने कि सहायता देकर हमें इस महत्वपूर्ण कार्य को सम्पादित करने में सफल बनाया है।

२३-४-५४

विनम्र

भिक्षु एम० संघरत्न
मन्त्री, महाबोधि-सभा
सारनाथ, बनारस

प्राक्कथन

संयुक्त निकाय सुत्त-पिटक का तृतीय ग्रन्थ है। यह आकार में दीर्घ निकाय और मज्झिम निकाय से बड़ा है। इसमें पाँच बड़े-बड़े वर्ग हैं—सगाथा वर्ग, निदान वर्ग, खन्ध वर्ग, सत्तायतन वर्ग और महावर्ग। इन वर्गों का विभाजन नियमानुसार हुआ है। संयुक्त निकाय में ५४ संयुक्त हैं, जिनमें देवता, देवपुत्र, कोसल, मार, ब्रह्म, ब्राह्मण, सक्क, अभिसमय, धातु, अनमतग्ग, लाभसक्कार, राहुल, लक्खण, खन्ध, राध, दिट्ठि, सत्तायतन, वेदना, मातुगाम, अस्सल, मग्ग, वोज्झङ्ग, सत्तिपट्टान, इन्द्रिय, सम्मप्पधान, बल, इद्धिपाद, अनुरुद्ध, झान, भानापान, सोतापत्ति और सच्च—यह ३२ संयुक्त वर्गों में विभक्त हैं, जिनकी कुल संख्या १७३ है। शेष संयुक्त वर्गों में विभक्त नहीं हैं। संयुक्त निकाय में सौ भाणवार और ७७६२ सुत्त हैं।

संयुक्त निकाय का हिन्दी अनुवाद पूज्य भदन्त जगदीश काश्यप जी ने आज से उन्नीस वर्ष पूर्व किया था, किन्तु अनेक बाधाओं के कारण यह अभी तक प्रकाशित न हो सका था। इस दीर्घकाल के बीच अनुवाद की पाण्डुलिपि के बहुत से पन्ने—कुछ पूरे संयुक्त तक खो गये थे। इसकी पाण्डुलिपि अनेक प्रेसों को दी गई और वापस ली गई थी।

गत वर्ष पूज्य काश्यप जी ने संयुक्त निकाय का भार मुझे सौंप दिया। मैं प्रारम्भ से अन्त तक इसकी पाण्डुलिपि को दुहरा गया और अपेक्षित सुधार कर डाला। मुझे ध्यान संयुक्त, अनुरुद्ध संयुक्त आदि कई संयुक्तों का स्वतन्त्र अनुवाद करना पड़ा, क्योंकि अनुवाद के वे भाग पाण्डुलिपि में न थे।

मैंने देखा कि पूज्य काश्यप जी ने न तो सुत्तों की संख्या दी थी और न सुत्तों का नाम ही लिखा था। मैंने इन दोनों बातों को आवश्यक समझा और प्रारम्भ से अन्त तक सुत्तों का नाम तथा सुत्त-संख्या को लिख दिया। मैंने प्रत्येक सुत्त के प्रारम्भ में अपनी ओर से विषयानुसार शीर्षक लिख दिये हैं, जिनसे पाठक को इस ग्रन्थ को पढ़ने में विशेष अभिरुचि होगी।

ग्रन्थ में आये हुए स्थानों, नदियों, विहारों आदि का परिचय पादटिप्पणियों में यथासम्भव कम दिया गया है, इसके लिए अलग से 'बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय' लिख दिया गया है। इसके साथ ही एक नकशा भी दे दिया गया है। आशा है, इनसे पाठकों को विशेष लाभ होगा।

पूरे ग्रन्थ के छप जाने के पश्चात् इसके दीर्घकाय को देखकर विचार किया गया कि इसकी जिल्दबन्दी दो भागों में कराई जाय। अतः पहले भाग में सगाथा वर्ग, निदान वर्ग और स्कन्ध वर्ग तथा दूसरे भाग में सत्तायतन वर्ग और महावर्ग विभक्त करके जिल्दबन्दी करा दी गई है। प्रत्येक भाग के साथ विषय-सूची, उपमा-सूची, नाम-अनुक्रमणी और शब्द-अनुक्रमणी दे दी गई है।

सुत्त-पिटक के पाँचों निकायों में से दीर्घ, मज्झिम और संयुक्त के प्रकाशित हो जाने के पश्चात् अंगुत्तर निकाय तथा खुहक निकाय अवशेष रहते हैं। खुहक निकाय के भी खुहक पाठ, धम्मपद, उदान, सुत्त निपात, थेरी गाथा और जातक के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। इत्तिवुत्तक, बुद्धवंस और

वरिष्ठापिठक के भी अनुवाद मैंने कर दिये हैं और ये ग्रन्थ प्रेस में हैं। अंगुत्तर निकाय का मेरा हिन्दी अनुवाद भी प्रायः समाप्त-सा ही है। संयुक्त निकाय के पश्चात् क्रमशः विमुक्तिमया और अंगुत्तर निकाय को प्रकाशित करने का कार्यक्रम बचाया गया है। जाना है कुछ वर्षों के भीतर पूरा सुत्त-पिटक और अमिषम्म-पिटक के कुछ ग्रंथ हिन्दी में अनूदित होकर प्रकाशित हो जाएंगे।

भारतीय महाबोधि समा ने इस ग्रन्थ को प्रकाशित करके बुद्ध-शासन एवं हिन्दी-अंग्रेज का बहुत बड़ा उपकार किया है। इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए समा के प्रधान मन्त्री श्री हेमचन्द्र बक्सिंह तथा भाव्य संघरत्नजी का प्रयास स्तुत्य है। शास्त्रमण्डल पञ्चाक्षर काशी के स्वतन्त्रापक श्री ओम्प्रकाश कपूर की तत्परता से ही यह ग्रन्थ पूर्णरूप से छुद्र और सज्ज सुविध हो सका है।

महाबोधि समा
सारनाथ बनारस
२३-७-५४

मिस्तु धर्मरक्षित

आमुख

संयुक्त निकाय सुत्त-पिटक का तीसरा ग्रन्थ है। दीर्घ निकाय में उन सूत्रों का संग्रह है जो आकार में बड़े हैं। उसी तरह, प्रायः मझोले आकार के सूत्रों का संग्रह मज्झिम निकाय में है। संयुक्त निकाय में छोटे-बड़े सभी प्रकार के सूत्रों का 'संयुक्त' संग्रह है। इस निकाय के सूत्रों की कुल संख्या ७७६२ है। पिटक के इन ग्रन्थों के संग्रह में सूत्रों के छोटे-बड़े आकार की दृष्टि रखी गई है, यह सचमुच जँचने वाली बात नहीं लगती है। प्रायः इन ग्रन्थों में एक अत्यन्त दार्शनिक सूत्र के बाद ही दूसरा सूत्र जाति-वाद के खण्डन का आता है और उसके बाद ही हिंसामय यज्ञ के खण्डन का, और बाद में और कुछ दूसरा। स्पष्टतः विषयों के इस अव्यवस्थित सिलसिले में साधारण विद्यार्थी कब-सा जाता है। ठीक-ठीक यह कहना कठिन मालूम होता है कि सूत्रों का यह क्रम किस प्रकार हुआ। चाहे जो भी हो, यहाँ संयुक्त निकाय को देखते इसके व्यवस्थित विषयों के अनुकूल वर्गीकरण से इसका अपना महत्व स्पष्ट हो जाता है।

संयुक्त निकाय के पहले वर्ग—सगाथा वर्ग को पढ़कर महाभारत में स्थान-स्थान पर आये प्रश्नोत्तर की शैली से सुन्दर गाथाओं में गम्भीर से गम्भीर विषयों के विवेचन को देखकर इस निकाय के दार्शनिक तथा साहित्यिक दोनों पहलुओं का आभास मिलता है। साथ-साथ तत्कालीन राजनीति और समाज के भी स्पष्ट चित्र उपस्थित होते हैं।

दूसरा वर्ग—निदान वर्ग बौद्ध सिद्धान्त 'प्रतीत्य समुत्पाद' पर भगवान् बुद्ध के अत्यन्त महत्वपूर्ण सूत्रों का संग्रह है।

तीसरा और चौथा वर्ग स्कन्धवाद और आयतनवाद का विवेचन कर भगवान् बुद्ध के अनात्म सिद्धान्त की स्थापना करते हैं। पाँचवाँ—महावर्ग 'मार्ग', 'बोध्यंग', 'स्मृति-प्रस्थान', 'इन्द्रिय' आदि महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डालता है।

सन् १९३५ में पेनांग (मलाया) के विख्यात चीनी महाविहार 'घांग ह्वा तास्ज' में रह मैंने, 'मिल्निन्द प्रश्न' के अनुवाद करने के बाद ही संयुक्त निकाय का अनुवाद प्रारम्भ किया था। दूसरे वर्ष लंका जा सलगल अरण्य के योगाश्रम में इस ग्रन्थ का अनुवाद पूर्ण किया। तब से न जाने कितनी बार इसके छपने की व्यवस्था भी हुई, पाण्डुलिपि प्रेस में भी दे दी गई और फिर वापस चली आई। मैंने तो ऐसा समझ लिया था कि कदाचित् इस ग्रन्थ के भाग्य में प्रकाशन लिखा ही नहीं है, और इस ओर से उदासीन-सा हो गया था। अब पूरे उन्नीस वर्षों के बाद यह ग्रन्थ प्रकाशित हो सका है। भाई त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित जी ने सारी पाण्डुलिपि को दुहरा कर शुद्ध कर दिया है। संयुक्त निकाय आज इतना अच्छा प्रकाशित न हो सकता, यदि भिक्षु धर्मरक्षित जी इतनी तत्परता से इसके प्रूफ देखने और इसकी अन्य व्यवस्था करने की कृपा न करते।

मैं महाबोधि समा सारनाथ तथा उसके मन्त्री श्री भिक्षु संवरत्न जी को भी अनेक धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने पुस्तक के प्रकाशन में इतना उत्साह दिखाया।

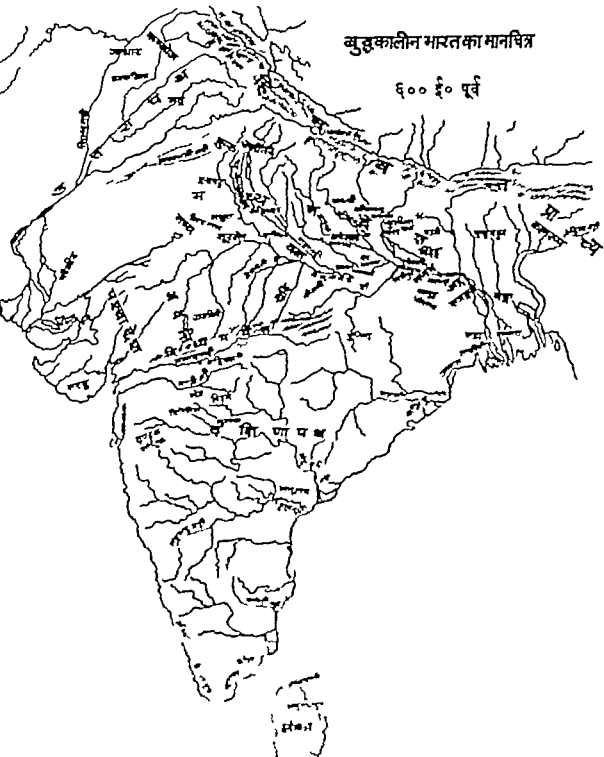
नव नालन्दा महाविहार
नालन्दा

भिक्षु जगदीश काश्यप

३ ३. { २४९७ बु० सं०
१९५४ ई० सं०

बुद्धकालीन भारत का मानचित्र

६०० ई० पूर्व



भूमिका

बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय

बुद्धकाल में भारतवर्ष तीन मण्डलो, पाँच प्रदेशों और सोलह महाजनपदों में विभक्त था। महामण्डल, मध्यमण्डल और अन्तर्मण्डल—ये तीन मण्डल थे। जो क्रमशः ९००, ६००, ३०० योजन विस्तृत थे। सम्पूर्ण भारतवर्ष (= जम्बूद्वीप) का क्षेत्रफल १०,००० योजन था। मध्यम देश, उत्तरापथ, अपरान्तक, दक्षिणापथ और प्राच्य—ये पाँच प्रदेश थे। हम यहाँ इनका संक्षेप में वर्णन करेंगे, जिससे बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय प्राप्त हो सके।

§ १ मध्यम देश

भगवान् बुद्ध ने मध्यम देश में ही विचरण करके बुद्धधर्म का उपदेश किया था। तथागत पद-चारिका करते हुए पश्चिम में मथुरा^१ और कुरु के थुल्लकोट्टित^२ नगर से आगे नहीं बढ़े थे। पूरव में कजगला निगम के मुखेलु वन^३ और पूर्व-दक्षिण की सललवती नदी^४ के तीर को नहीं पार किया था। दक्षिण में सुसुमारगिरि^५ आदि विन्ध्याचल के आसपास वाले निगमों तक ही गये थे। उत्तर में हिमालय की तलहटी के सापुग^६ निगम और उसीरध्वज^७ पर्वत से ऊपर जाते हुए नहीं दिखाई दिये थे। विनय पिटक में मध्यम देश की सीमा इस प्रकार बतलाई गई है—“पूर्व दिशा में कजगला निगम • । पूर्व दक्षिण दिशा में सललवती नदी । दक्षिण दिशा में सेतऋणिक^८ निगम • । पश्चिम दिशा में थूण^९ नामक ब्राह्मणों का ग्राम” । उत्तर दिशा में उसीरध्वज पर्वत ।^{१०}”

मध्यम देश ३०० योजन लम्बा और २५० योजन चौड़ा था। इसका परिमण्डल ९०० योजन था। यह जम्बूद्वीप (= भारतवर्ष) का एक बृहद् भाग था। तत्कालीन सोलह जनपदों में से ये १४ जनपद इसी में थे—काशी, कोशल, अंग, मगध, वज्जी, मल्ल, चेदि, वत्स, कुरु, पञ्चाल, मत्स्य, शूरसेन, अश्वक और अवन्ति। शेष दो जनपद गन्धार और कम्बोज उत्तरापथ में पड़ते थे।

§ काशी

काशी जनपद की राजधानी वाराणसी (बनारस) थी। बुद्धकाल से पूर्व समय-समय पर

१ अगुत्तर निकाय ५ २. १० । इस सूत्र में मथुरा नगर के पाँच दीप दिखाये गये हैं ।

२ मज्झिम निकाय २ ३ ३२ । दिल्ली के आसपास कोई तत्कालीन प्रसिद्ध नगर ।

३ मज्झिम निकाय ३ ५ १७ । ककजोल, सथाल परगना, बिहार ।

४ वर्तमान सिलई नदी, हजारी बाग और बीरभूमि ।

५ चुनार, जिला मिर्जापुर ।

६ अगुत्तर निकाय ४ ४ ५ ४ ।

७ हरिद्वार के पास कोई पर्वत ।

८ हजारीबाग जिले में कोई स्थान ।

९ आधुनिक थानेश्वर ।

१०. विनय पिटक ५. ३ २ ।

मुद्रांगन, मुद्रांगन महाबलान पुत्रवर्ती मातिनी और रम्यनगर इसके नाम थे। इस नगर का विस्तार १२ योजन था। भगवान् बुद्ध से पूर्व काशी राजनीतिक क्षेत्र में प्रक्रियाधीन बन चुका था। काशी और कोशल के राजाओं में प्रायः युद्ध हुआ करते थे जिसमें काशी का राज्य विजयी होता था। उस समय सम्पूर्ण उत्तर भारत में काशी जनपद सब से बलशाली था। किन्तु बुद्धकाल में उसकी राजनीतिक शक्ति क्षीय हो गई थी। इसका कुछ भाग कोशल प्रदेश और कुछ भाग मगध प्रदेश के अधीन था। उनमें भी प्रायः काशी के लिए ही युद्ध हुआ करते थे। अन्त में काशी कोशल प्रदेश प्रसेनजित् के अधिकार से निकटकर मगध प्रदेश अधीनस्थान के अधीन हो गया था।

वाराणसी के पास क्षत्रियतन शृंगराय (सारनाथ) में भगवान् बुद्ध ने धर्मचक्र प्रवर्तन करके इसके महत्त्व का बढ़ा दिया। क्षत्रियतन शृंगराय बौद्ध धर्म का एक महातीर्थ है।

वाराणसी शिक्षा व्यवसाय विद्या आदि का प्रसूत बड़ा केन्द्र था। इसका व्यावसायिक सम्बन्ध आबस्ती उत्तरिका राजगृह आदि नगरों से था। काशी का अन्त और काशी के रंग-बिरंगी वस्त्र बहुत प्रसिद्ध थे।

३ कोशल

काशल की राजधानियाँ आबस्ती और साकेत नगर थे। गङ्गा नदी के किनारे स्थित एक कच्चा था किन्तु बुद्धकाल में इसकी प्रतिष्ठा म थी कहा जाता है कि आबस्ती नामक क्षत्रिय के नाम पर ही आबस्ती नगर का नाम पड़ा था किन्तु पद्मसूत्र की अनुसार 'सब कुछ होने के कारण (= सब + हरि) इसका नाम आबस्ती पड़ा था।

आबस्ती नगर बड़ा समृद्धिवासी एवं सुन्दर था। इस नगर की आबादी साठ करोड़ थी। भगवान् बुद्ध ने यहाँ २५ वर्षोंवास किया था और अधिकांश उपदेश यहीं पर किए थे। अनायमिषिक यहाँ का बहुत बड़ा सड़ था और सुगन्धमाता विद्याका नदी अन्तर्गत उपासिका थी। पद्मवारा कुसा गीतनी नन्द, कपिल रोष और कोशल प्रदेश की महिला सुमना इसी नगर के प्रसिद्ध व्यक्ति थे।

प्राचीन कोशल राज्य दो भागों में विभक्त था। सरयू नदी दोनों भागों के मध्य स्थित थी। उत्तरी भाग को उत्तर-कोशल और दक्षिणी भाग को दक्षिण-कोशल कहा जाता था।

कोशल जनपद में जनक प्रसिद्ध विगम और प्राप्त थे। कोशल का प्रसिद्ध व्यापारिक पोषकसादि उद्योग नगर में रहता था जिस प्रसेनजित् ने उस प्रदान किया था। कोशल जनपद के शासक नगरविन्द और वेंनागपुर ग्रामों में अन्तर भगवान् बुद्ध ने बहुत से लोगों को दीक्षित किया था। बाहरी कोशल का प्रसिद्ध अध्यापक था श्री दक्षिणापथ में आकर गौदावरी नदी के किनारे अवना आश्रम बनाया था।

इस ऊपर कह सकते हैं कि कोशल और मगध में वाराणसी के लिए प्रायः युद्ध हुआ करते थे किन्तु बाद में दोनों में सन्धि हो गई थी। सन्धि के बन्धन कोशल प्रदेश प्रसेनजित् ने अपनी पुत्री ब्रिजा वा विद्या मगध प्रदेश अजित-सन्तु से कर दिया था। कोशल की उत्तरी सीमा पर स्थित कविल-जन्तु के राज्य प्रसेनजित् के अधीन थे और वे कोशल प्रदेश प्रसेनजित् से बड़ा हीर्षा रखते थे।

इन्द्रकपिल जनकान्त सारनाथ और वक्रावर्तन—ये कोशल जनपद के प्रसिद्ध ग्राम थे जहाँ पर भगवान् सत्यनारायण पर गये थे और उपवास दिये थे।

४ मगध

मगध जनपद की राजधानी पाटलीपुत्र थी जो पाटली और गंगा के संगम पर बसी थी। पाटली विविधता से ६ योजन दूर थी। अंत जनपद वर्तमान आगमपुर और मौरा जिलों के साथ उत्तर में गङ्गा नदी तक फैला हुआ था। कभी यह मगध जनपद के अन्तर्गत था और सामन्ततः समुद्र के किनारे तक विस्तृत था। अग की प्राचीन राजधानी के लिये मगध आगमपुर के निकट बना नगर

और चम्पापुर—इन दो गाँवों में विद्यमान है। महापरिनिर्वाण मुक्त के अनुसार चम्पा युद्धकाल में भारत के छः बड़े नगरों में से थी। चम्पा से सुवर्ण-भूमि (लोअर बर्मा) के लिये व्यापारी नदी और समुद्र-मार्ग से जाते थे। अंग जनपद में ८०,००० गाँव थे। आपण अंग का एक प्रसिद्ध व्यापारिक नगर था। महागोविन्द मुक्त से प्रगट है कि अंग भारत के सात बड़े राजनीतिक भागों में से एक था। भगवान् बुद्ध से पूर्व अंग एक शक्तिशाली राज्य था। जातक से ज्ञात होता है कि किसी समय मगध भी अंग नरेश के अधीन था। युद्धकाल में अंग ने अपने राजनीतिक महत्व को खो दिया और एक युद्ध के पश्चात् अंग मगध नरेश सेनिय विन्त्रिसार के अधीन हो गया। चम्पा की रानी गगगरा द्वारा गगगरा-पुष्करिणी खोदवाई गई थी। भगवान् बुद्ध भिक्षुसंघ के साथ वहाँ गये थे और उसके किनारे वास किया था। अंग जनपद का एक दूसरा नगर अश्वपुर था, जहाँ के बहुत से कुलपुत्र भगवान् के पास आकर भिक्षु हो गये थे।

§ मगध

मगध जनपद वर्तमान गया और पटना जिलों के अन्तर्गत फैला हुआ था। इसकी राजधानी गिरिविजय अथवा राजगृह थी, जो पहाड़ियों से घिरी हुई थी। इन पहाड़ियों के नाम थे—ऋषिमिलि, वेपुल्ल, वेभार, पाण्डव और गृद्धकूट। इस नगर से होकर तपोदा नदी बहती थी। मेनानी निगम भी मगध का ही एक रमणीय वन-प्रदेश था। एकनाला, नालकग्राम, खाणुमत, और अन्धकविन्द इस जनपद के प्रसिद्ध नगर थे। वज्जी और मगध जनपदों के बीच गंगा नदी सीमा थी। उस पर दोनों राज्यों का समान अधिकार था। अंग और मगध में समय-समय पर युद्ध हुआ करता था। एक बार वाराणसी के राजा ने मगध और अंग दोनों को अपने अधीन कर लिया था। युद्धकाल में अंग मगध के अधीन था। मगध और कोशल में भी प्रायः युद्ध हुआ करता था। पीछे अजातशत्रु ने लिच्छवियों की सहायता से कोशल पर विजय पाई थी। मगध का जीवक कौमारभृत्य भारत-प्रसिद्ध वैद्य था। उसकी शिक्षा तक्षशिला में हुई थी। राजगृह में वेलुवन कलन्दक निवाप प्रसिद्ध बुद्ध विहार था। राजगृह में ही प्रथम संगीति हुई थी। राजगृह के पास ही नालन्दा एक छोटा ग्राम था। मगध का एक सुप्रसिद्ध किला था, जिसकी मरम्मत वर्षकार ने करायी थी। बाद में मगध की राजधानी पाटलिपुत्र नगर हुआ था। अशोक-काल में इसकी दैनिक आय ४००,००० कार्पाषण थी।

§ वज्जी

वज्जी जनपद की राजधानी वैशाली थी, जो इस समय बिहार प्रान्त के मुजफ्फरपुर जिले के बसाढ़ गाँव में मानी जाती है। वज्जी जनपद में लिच्छवियों का गणतन्त्र शासन था। यहाँ से खोदाई में प्राप्त लेखों से वैशाली नगर प्रमाणित हो चुका है। इस नगर की जनसंख्या की वृद्धि से नगर-प्राकार को तीन बार विस्तार करने के ही कारण इसका वैशाली नाम पड़ा था। वैशाली समृद्धिशाली नगरी थी। उसमें ७७०७ प्रासाद, ७७०७ कूटागार (कोठे), ७७०७ उद्यान-गृह (आराम) और ७७०७ पुष्करिणियाँ थीं। वहाँ ७७०७ राजा, ७७०७ युवराज, ७७०७ सेनापति और इतने ही भण्डागारिक थे। नगर के बीच में एक सस्थागार (संसद-भवन) था। नगर में उद्यन, गौतमक, सप्ताम्रक, बहुपुत्रक, और सारंदद वैद्य थे। भगवान् बुद्ध ने वैशाली के लिच्छवियों की उपमा तावर्तिस लोक के देवों से की थी। वैशाली की प्रसिद्ध गणिका अम्बपाली ने बुद्ध को भोजन दान दिया था। विमला, सिंहा, वासिष्ठी, अम्बपाली और रोहिणी वैशाली की प्रसिद्ध भिक्षुणियाँ थीं। वर्द्धमान स्थविर, अजनवनीय, वज्जीपुत्त, सुयाम, पियञ्जह वसभ, वल्लिय और सव्यकामी यहाँ के प्रसिद्ध भिक्षु थे। सिंह सेनापति, महानाम, दुर्मुख, सुनस्सत्त और ठप्प गृहपति वैशाली के प्रसिद्ध गृहस्थ थे। वैशाली के पास महावन में कूटागारशाला नामक विहार था। वहीं पर सर्वप्रथम महाप्रजापति गौतमी के साथ अनेक शाक्य महिलायें भिक्षुणी हुईं

थी। बैसाही में ही दूसरी संघीति हुई थी। बैसाही गणतन्त्र को पुनः-परिनिर्माण के तीन वर्ष बाद ही, पुनः बाढ़कर मगध-नरेश अजातशत्रु ने हथकिया था।

६ मस्ल

मस्ल गणतन्त्र जनपद था। यह दो भागों में विभक्त था। कुशीनारा और पावा। इसकी दो राजधानियाँ थीं। जम्बुपिया पृथग्राम उद्वेककप्य बहिद्वारम वनसज्ज भोगनगर और आश्रमाम इसके प्रसिद्ध नगर थे। वैशरिया जिके का कुशीनगर ही कुशीनारा थी और कामिकनगर-सहिवीय पावा। कुशीनारा राजधानी के लघ्वरक्षेप कुशीनगर के निकट अनुसूचका ग्राम में विद्यमान है। कुशीनारा का प्राचीन नाम कुशावती था। यह नगर पश्चात् पूर्ण बहिद्वारीक था। बोधिसत्त्व यहाँ छः बार चक्रवर्ती राजा होकर उत्पन्न हुए थे। पूर्ण काष्ठ में यह १९ बोधन कम्पा और ० बोधन चौड़ा था। महापरिनिर्वाण मुक्त से राजपूत से कुशीनारा एक आने का मार्ग निर्दिष्ट होता है। भगवान् बुद्ध ने अन्तिम समय में इसी मार्ग से यात्रा की थी—राजपूत अम्बलुहिका गणतन्त्रा पादिकग्राम कोटिग्राम वादिका बैसाही मन्त्रग्राम हस्तिग्राम (वर्तमान हाथीकाष्ठ), जात्रग्राम (जमपा) जम्बुग्राम भोगनगर और पावा। पावा में बुद्ध के घर बुद्ध ने अन्तिम भोजन ग्रहण किया था। पावा और कुशीनारा के मध्य तीन मदिर्षी थीं जिनमें कज्जुवा (पावा) और हिरण्यवती के नाम ग्रन्थों में मिलते हैं। हिरण्यवती के पश्चिमी तट पर ही कुशीनारा थी और वहीं साक्षरन अपवसत्त में बुद्ध का परिनिर्वाण हुआ था। पावा के बुद्ध कम्मरपुत्त, पञ्चसुमन गोधिक मुखाहु बहिरप और उचिय प्रसिद्ध व्यक्ति थे। कुशीनारा की महा-विभूतिर्षी थी पृथ स्पथिर आयुष्मान् सिंह पञ्चत्त स्पथिर जम्बुकमण्ड कीर्णकारापथ रोचमण्ड वज्रपाणि मण्ड और वीरराजा मण्डिका। बुद्ध-परिनिर्वाण के बाद पावा और कुशीनारा में बाहु-रूप बने थे।

७ चेदि

चेदि जनपद यमुना के पास बुद्ध जनपद के निकट था। यह वर्तमान बुम्बलकण्ड को छिये हुए विस्तृत था। इसकी राजधानी सोरियवती नगर था। इसके दूसरे प्रमुख नगर सहजाति और जिपुरी थे। वैदिक काल से प्राप्त होता है कि काशी और चेदि के बीच बहुत लड़े रहते थे। जटुत्तर नगर से चेदि राजा ३ बोधन दूर था। सहजाति में महाबुद्ध ने उपदेश दिया था। यह बौद्ध-धर्म का एक बड़ा केंद्र था। आयुष्मान् अनुसूत ने चेदि राज के प्राचीनवंश युगादाय में रहते हुए अर्द्धन प्राप्त किया था। सहजातिक भी चेदि जनपद का एक प्रसिद्ध ग्राम था जहाँ भगवान् बुद्ध गये थे।

८ वत्स

वत्स जनपद भारत के छोड़ कर जम्बुद्वीप में से एक था। इसकी राजधानी काश्याम्बी थी। इस समय इसके लघ्वरक्षेप ह्वाहाबाद थे ३ मीक पश्चिम यमुना नदी के किनारे कोसम नामक ग्राम में स्थित हैं। मुंगुमारगिरि का भर्ग राग्य वत्स जनपद में ही पड़ता था। काश्याम्बी बुद्धकाशीन पक्षी नगरी थी। बहिर्यो के नेता काधरी ने काश्याम्बी की यात्रा की थी। काश्याम्बी में पोषिताराम कुम्भकाराम और पावारिकाराम तीन प्रसिद्ध विहार थे जिन्हें अमराः यहाँ थे प्रसिद्ध छठ धीवित कुम्भट और पावारिक ने बसवाये थे। भगवान् बुद्ध ने इन विहारों में निवास किया था और सिद्ध संघ को उपदेश दिया था। यहाँ पर संघ में बुद्ध की वंश हुई थी जो पीछे साम्त हो गई थी। बुद्धका से राजा कद्वन यहाँ राग्य करता था उसकी भाग्यही इषामावती और वासुज्जुता तीन राजर्षी थीं जिनमें इषामावती वरम बुद्ध-भक्त उपासिका थी।

९ कुट

प्राचीन साहित्य में दो बुद्ध जनपदों का वर्णन मिलता है—उत्तर बुद्ध और दक्षिण बुद्ध।

ऋग्वेद में वर्णित कुरु सम्भवतः उत्तर कुरु ही है। पालि साहित्य में वर्णित कुरु जनपद ८००० योजन विस्तृत था। कुरु जनपद के राजाओं को कौरव्य कहा जाता था। कम्मासधम्म कुरु जनपद का एक प्रसिद्ध नगर था, जहाँ बुद्ध ने महासत्तिपट्टान और महानिदान जैसे महत्वपूर्ण एवम् गम्भीर सूत्रों का उपदेश किया था। इस जनपद का दूसरा प्रमुख नगर धुल्लकोट्टित था। राष्ट्रपाल म्थविर इसी नगर से प्रयोजित हुए प्रसिद्ध भिक्षु थे।

कुरु जनपद के उत्तर सरस्वती तथा दक्षिण उद्यवती नदियाँ बहती थीं। वर्तमान मोनपत, अमिन, कर्नाल और पानीपत के जिले कुरु जनपद में ही पड़ते हैं। महासुतसोम जातक के अनुसार कुरु जनपद ३०० योजन विस्तृत था। इसकी राजधानी इन्द्रपट्टन (इन्द्रप्रस्थ) नगर था, जो सात योजन में फैला हुआ था।

§ पञ्चाल

पञ्चाल जनपद भागीरथी नदी से दो भागों में विभक्त था—उत्तर पञ्चाल और दक्षिण पञ्चाल। उत्तर पञ्चाल की राजधानी अहिच्छत्र नगर था, जहाँ दुर्मुख नामक राजा राज्य करता था। वर्तमान समय में बरेली जिले का रामनगर ही अहिच्छत्र माना जाता है। दक्षिण पञ्चाल की राजधानी काम्पिल्य नगर था, जो फरक्काबाद जिले के काम्पिल के स्थान पर स्थित था। समय-समय पर राजाओं की इच्छा के अनुसार काम्पिल्य नगर में भी उत्तर पञ्चाल की राजधानी रहा करती थी। पञ्चाल-नरेश की भगिनी का पुत्र विशाख श्रावन्ती जाकर भगवान् के पास दीक्षित हुआ और छ अभिज्ञाओं को प्राप्त किया था। पञ्चाल जनपद में वर्तमान बदाऊँ, फरक्काबाद, और उत्तर प्रदेश के समीपवर्ती जिले पड़ते हैं।

§ मत्स्य

मत्स्य जनपद वर्तमान जयपुर राज्य में पड़ता था। इसके अन्तर्गत पूरा अलवर राज्य और भरतपुर का कुछ भाग भी पड़ता है। मत्स्य जनपद की राजधानी विराट नगर था। नादिका के गिञ्जिकावसथ में विहार करते हुए भगवान् बुद्ध ने मत्स्य जनपद का वर्णन किया था। यह इन्द्रप्रस्थ के दक्षिण-पश्चिम और सूरमेन के दक्षिण स्थित था।

§ शूरसेन

शूरसेन जनपद की राजधानी मथुरा नगरी (मथुरा) थी, जो कौशाम्बी की भौति यमुना के किनारे बसी थी। यहाँ पर भगवान् बुद्ध गये थे और मथुरा के विहार में वास किया था। मथुरा प्रदेश में महाकात्यायन ने घूम-घूम कर बुद्ध धर्म का प्रचार किया था। उस समय शूरसेन का राजा अवन्तिपुत्र था। वर्तमान मथुरा से ५ मील दक्षिण पश्चिम स्थित महोली नामक स्थान प्राचीन मथुरा नगरी मानी जाती है। दक्षिण भारत में भी प्राचीन काल में मथुरा नामक एक नगर था, जिसे दक्षिण मथुरा कहा जाता था। वह पाण्ड्य राज्य की राजधानी था। उसके नष्टावशेष इस समय मद्रास प्रान्त में वैगी नदी के किनारे विद्यमान है।

§ अश्वक

अश्वक जनपद की राजधानी पोतन नगर था। अश्वक-नरेश महाकात्यायन द्वारा प्रयोजित हो गया था। जातक से ज्ञात होता है कि दन्तपुर नरेश कालिंग और अश्वक नरेश ने पहले संघर्ष हुआ करता था, किन्तु पीछे दोनों का मैत्री सम्बन्ध हो गया था। पोतन कभी काशी राज्य में भी गिना जाता था। यह अश्वक गोदावरी के किनारे तक विस्तृत था। बावरी गोदावरी के किनारे अश्वक जनपद में ही

आधम बना कर रहता था। वर्तमान पैठन जिला ही अश्वक जलपद् माना जाता है। वहाँ से नगरबक बौरा का एक पिकासेख सी प्राप्त हो चुका है। महागोविन्द सुत के अनुसार यह महागोविन्द द्वारा निर्मित हुआ था।

३ अयन्ति

अयन्ति जलपद् की राजधानी उज्जैनी नगरी थी जो अणुसुतगामी द्वारा बसायी गई थी। अयन्ति जलपद् में वर्तमान मालव विमार और मल्लभारत के निकटवर्ती प्रदेश पड़ते थे। अयन्ति जलपद् दो भागों में विभक्त था। उत्तरी भाग की राजधानी उज्जैनी में थी और दक्षिणी भाग की राजधानी माहिष्मती में। महागोविन्द सुत के अनुसार अयन्ति की राजधानी माहिष्मती थी वहाँ का राजा वैशम्पाय। कुरुराज और सुवर्षापुर अयन्ति जलपद् के प्रसिद्ध नगर थे।

अयन्ति जलपद् बीडवर्म का महारक्षक केन्द्र था। अयनकुमार इसिदासी इसिदत्त सोलकुटि कण्व और महाकात्यायन अयन्ति जलपद् की महानिमूर्तियाँ थीं। महाकात्यायन उज्जैनी-नरैस चण्ड प्रद्योत के पुरोहित पुत्र थे। चण्डप्रद्योत की महाकात्यायन ने ही बीड बनाया था। मिथु इसिदत्त अयन्ति के वैजुग्राम के रहने वाले थे।

बीडवर्मा और अयन्ति के राजबाराँ में वैवाहिक सम्बन्ध था। चण्डप्रद्योत तथा उद्बन में कई बार युद्ध हुए। अन्त में चण्डप्रद्योत ने अपनी पुत्री वासवदत्ता का विवाह उद्बन से कर दिया था और दोनों मित्र हो गये थे। उद्बन ने मगध के साथ भी वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर दिया था जिससे बीडवर्मा दोनों ओर से सुरक्षित थी।

अयन्ति की राजधानी उज्जैनी से अशोक का एक पिकासेख निकल चुका है।

४ मगर, ग्राम और कस्ये

अपर गया—मगबाह् उदबेका से घना गये थे और गया से अपर-गया वहाँ उन्हें नागराज सुवर्षन ने विनम्रित किया था।

अम्बसम्ब—राजपूत के पूरव अम्बसम्ब नामक एक ब्राह्मण ग्राम था।

अम्बकविन्द—मगध के अम्बकविन्द ग्राम में मगबाह् रहे थे वहाँ सहस्रपति ब्रह्मा ने उनका दर्शन करके स्तुति की थी।

अयोध्या—वहाँ मगबाह् गये थे और वास किया था। पाकि साहित्य के अनुसार यह रंगानदी के किनारे स्थित था। फिर भी वर्तमान अयोध्या नगर ही माना जाता है। पुष्पाक्ष में यह बहुत बड़ा नगर था।

अम्बपुर—यह एक नगर था जो ठेकबाह नदी के किनारे बसा था।

आसपी—आसपी में अम्पाक नामक प्रसिद्ध चैत्य था वहाँ युद्ध ने वास किया था। वर्तमान समय में उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के नवक (वा बैक) को आसपी माना जाता है।

अनूपिया—यह मल्ल जलपद् का एक प्रमुख विभाग (कस्य) था। वहाँ पर सिद्धार्थ कुमार ने प्रवृत्ति होने के बाद एक सप्ताह विवास किया था और वहाँ अनुराज महिष किम्बिक भृगु वैशम्पाय आनन्द और कपालि प्रवृत्ति हुए थे। पुष्पमल्ल की वहाँ प्रवृत्ति हुए थे। वर्तमान समय में वैशम्पाय जिले में बाका के पास मल्ल नदी के किनारे का नैबडर ही अनूपिया नगर माना जाता है जिसे आनन्दक 'बीडवर्म' कहते हैं।

अस्वपुर—राजा जेति के कर्मों ने हस्तिपुर अस्वपुर सिंहपुर उत्तर पञ्चाक और बहपुर नगरों को बनाया था। हस्तिपुर ही नीके हस्तिनापुर हो गया था और इस समय इसके मठाभोज मंदिर

जिले की मयान तहसील में विद्यमान हैं। मिहपुर हुएनसाग के समय में तक्षशिला से ११७ मील पूर्व स्थित था। अन्य नगरों का कुछ पता नहीं।

अल्लकप्प—वैशाली के लिच्छवियों, मिथिला के विदेहों, कपिलवस्तु के शाक्यों, रामग्राम के कोलियों, सुंसुमारगिरि के भगों और पिप्पलिवन के मौर्यों की भाँति अल्लकप्प के बुलियों का भी अपना स्वतन्त्र राज्य था, किन्तु बहुत शक्तिशाली न था। यह १० योजन विस्तृत था। इसका सम्बन्ध वेठदीप के राजवंश से था। श्री बील का कथन है कि वेठदीप का द्रोण ब्राह्मण शाहाबाद जिले में मसार से वैशाली जानेवाले मार्ग में रहता था। अतः अल्लकप्प वेठदीप से बहुत दूर न रहा होगा। अल्लकप्प के बुलियों को बुद्धधातु का एक अश मिला था, जिसपर उन्होंने स्तूप बनवाया था।

महिय—भङ्ग जनपद के महिय नगर में महोपासिका विशाखा का जन्म हुआ था।

वेलुवग्राम—यह वैशाली में था।

मण्डग्राम—यह वज्जी जनपद में स्थित था।

धर्मपाल ग्राम—यह काशी जनपद का एक ग्राम था।

एकशाला—यह कोशल जनपद में एक ब्राह्मण ग्राम था।

एकनाला—यह मगध के दक्षिणागिरि प्रदेश में एक ब्राह्मण ग्राम था, जहाँ भगवान् ने वास किया था।

एरकच्छ—यह दसण्ण राज्य का एक नगर था।

ऋषिपतन—यह ऋषिपतन मृगदाय वर्तमान सारनाथ है, जहाँ भगवान् ने धर्मचक्र प्रवर्तन किया था।

गया—गया में भगवान् बुद्ध ने सूखिलोम यक्ष के प्रश्नों का उत्तर दिया था। प्राचीन गया वर्तमान साहबगंज माना जाता है। यहाँ से ६ मील दक्षिण बुद्धगया स्थित है। गयातीर्थ बुद्धकाल में स्नानतीर्थ के रूप में प्रसिद्ध था और यहाँ बहुत से जटिल रहा करते थे।

हस्तिग्राम—यह वज्जी जनपद का एक ग्राम था। भगवान् बुद्ध वैशाली से कुशीनगर जाते हुए हस्तिग्राम से होकर गुजरे थे। वर्तमान समय में यह बिहार प्रान्त के हथुवा से ८ मील पश्चिम शिवपुर कोठी के पास अवस्थित है। आजकल उसके नष्टावशेष को हाथीखाल कहा जाता है। हस्तिग्राम का उगगत गृहपति सघसेवकों में सबसे बढकर था, जिसे बुद्ध ने अग्र की उपाधि दी थी।

हलिद्वसन—यह कोलिय जनपद का एक ग्राम था। यहाँ भगवान् बुद्ध गये थे। कोलिय जनपद की राजधानी रामग्राम थी और यह जनपद शाक्य जनपद के पूर्व तथा मल्ल जनपद के पश्चिम दोनों के मध्य स्थित था।

हिमवन्त प्रदेश—कोशल, शाक्य, कोलिय, मल्ल और वज्जी जनपदों के उत्तर में फैली पहाड़ी ही हिमवन्त प्रदेश कहलाती है। इसमें नेपाल के साथ हिमालय प्रदेश के सभी दक्षिणी प्रदेश सम्मिलित हैं।

इच्छानङ्गल—कोशल जनपद में यह एक ब्राह्मण ग्राम था। भगवान् ने इच्छानङ्गल वनसण्ड में वास किया था।

जन्तुग्राम—चालिका प्रदेश के चालिका पर्वत के पास जन्तुग्राम था। भगवान् के चालिका पर्वत पर विहार करते समय मेघिय स्थविर जन्तुग्राम में भिक्षाटन करने गये थे और उसके बाद किमिकाला नदी के तीर जाकर विहार किया था।

कलवालगामक—यह मगध में एक ग्राम था। यहीं पर मौद्गल्यायन स्थविर को अर्हत्व की प्राप्ति हुई थी।

कज्जगख—यह मध्यम देश की पूर्वी सीमा पर स्थित एक ग्राम था। यहाँ के वैष्णव और मुक्तुवन में लडागत व बिहार किया था। मिथिन् प्रान्त के अनुसार यह एक माझग ग्राम था और इसी ग्राम में नागसब का जन्म हुआ था। वर्तमान समय में बिहार प्रान्त के सबाक परगना में कंकड़ोच नामक स्थान को ही कज्जगख माना जाता है।

कोटिग्राम—यह बज्जी जनपद में एक ग्राम था। भगवान् पाटकिग्राम से यहाँ आये थे, यहाँ से नादिका गये थे और नादिका से वैशाखी।

कुबिहय—यह कोटिप जनपद में एक ग्राम था। कुबिहय के कुम्भिघानवन में भगवान् ने बिहार किया था और सुपुत्रासा को स्वरित-पूर्वक पुत्र जन्मे का भाषीबाद दिया था।

कपिलथस्तु—यह शाक्य जनपद की राजधानी थी। सिद्धार्थ पाठम का जन्म कपिलथस्तु के ही शाक्य राजवंश में हुआ था। शाक्य जनपद में जातना सामगाम बहुत सचकर शीकवती और कोमपुस्य प्रसिद्ध ग्राम पूर्व नगर थे। इसे कोशकपरेश बिह्वन ने आक्रमण करके लूट कर दिया था। वर्तमान समय में इसके लडाकसेप नेपाक की तराई में यस्ती जिसे के सुहरतगइ रेशन से १५ मील उत्तर लौकिहवा बाजार के पास तिलीराकोट नाम से विद्यमान है।

कोशपुत्र—यह कोशक जनपद के अन्तर्गत एक छोटा-सा स्वतन्त्र राज्य था। यहाँ के क्राकाम मयक शाक्य सौर्य और किन्जरी राजाओं की भक्ति गन्तव्य प्रजाही से शासन करते थे।

खेमपायती—यह खेमनरेश के राज्य की राजधानी थी।

मिथिला—मिथिला बिह्व की राजधानी थी। बुद्धाक में यह बज्जी जनपद के अन्तर्गत थी। बज्जी जनपद की वैशाखी और बिह्व की मिथिका—यह प्रसिद्ध नगरियाँ थीं। प्राचीनकाल में मिथिका बगरी सात पौवन विस्तृत थी और बिह्व राज्य ३ पौवन। चम्पा और मिथिका में ९ पौवन की बूरी थी। बिह्व राज्य में १५ ग्राम १९ भण्डारपुर और १९ गर्तकिर्वाँ थीं—येसा ज्ञातव्य रूप से ज्ञात होता है। मिथिका एक व्यापारिक केन्द्र था। भावस्ती और बाराबसी से व्यापारी यहाँ जाते थे। वर्तमान छिरहुट (तीर मुष्टि) ही बिह्व माना जाता है। मिथिका के प्राचीन अवशेष बिहार प्रान्त के मुजफ्फरपुर और दरभंगा जिलों के उत्तर में नेपाक की सीमा पर बनकपुर नामक कस्बे में पाये जाते हैं।

मखखग्राम—यह मगध में एक ग्राम था।

मालम्दा—यह मगध में राजगृह से १ पौवन की दूरी पर स्थित था। यहाँ के पावारिक-भण्डवन में भगवान् ने बिहार किया था। वर्तमान समय में यह पटना जिसे के राजगृह से ७ मील उत्तर पश्चिम में अवस्थित है। इसके विस्तार लखनऊ दर्शनीय है। यह छठी और सातवीं पातावरी ईस्वी में पचाव बीड़-विद्या-केन्द्र था।

मासक—यह राजगृह के पास मगध में एक ग्राम था। इसी ग्राम में सारिपुत्र का जन्म हुआ था और वही वनप्र परिनिर्वाण थी। वर्तमान समय में राजगृह के पास का मासक ग्राम ही प्राचीन मासक माना जाता है।

नादिका—यह बज्जी जनपद का एक ग्राम था। पाटकिग्राम से रांगा पार कर कोटिग्राम और नादिका में भगवान् गये थे और यहाँ से वैशाखी।

निपपमियन—यह मीलों की राजधानी थी। यहाँ के मीलों व भगवान् बुद्ध की पिडा से प्राप्त भंगार (कोपका) पर रूप बनाया था। वर्तमान समय में इसके लडाकसेप जिन्हा गीरखपुर के कुमुन्नी रेशन से ११ मील दक्षिण उपधीली नामक स्थान में प्राप्त हुए हैं।

राजग्राम—कपिल जनपद के दो प्रसिद्ध नगर थे राजग्राम और बुबहद। भगवान् के वरि निर्वाण के बाद रामग्राम के कोकिलों ने उमकी अरिष पर रूप बनाया था। श्री पृ. श्री पञ्च

कारलायल ने वर्तमान रामपुर-देवरिया को रामग्राम प्रमाणित किया है जो कि मरघा ताल के किनारे बस्ती जिले में स्थित है, किन्तु महावंश (३१, २५) के वर्णन से ज्ञात है कि रामग्राम अचिरवती (राप्ती) नदी के किनारे था और बाद के समय वहाँ का चैत्य टूट गया था। सम्भवतः गोरखपुर के पास का रामगाँव तथा रामगढ़ ही रामग्राम है।

सामग्राम—यह शाक्य जनपद का एक ग्राम था। यहीं पर भगवान् ने सामग्राम सुत्त का उपदेश दिया था।

सापुग—यह कोलिय जनपद का एक निगम था।

शोभावती—यह शोभ-नरेश की राजधानी थी।

सेतव्य—यह कोशल जनपद में एक नगर था। इसके पास ही उकट्टा थी और वहाँ से सेतव्य तक एक सड़क जाती थी।

संकस्स—भगवान् ने श्रावस्ती में यमक प्रातिहार्य कर, तुपित-भवन में वर्षावास करके महा-प्रवारणा के दिन संकस्स नगर में स्वर्ग से भूमि पर पटार्षण किया था। संकस्स वर्तमान समय में संकिसा-वसन्तपुर के नाम से कालिन्दी नदी के उत्तरी तट पर विद्यमान है। यह पट्टा जिले के फतेहगढ़ से २३ मील पश्चिम और कनौज से ४५ मील उत्तर-पश्चिम स्थित है।

सालिन्ध्य—यह राजगृह के पूरव एक ब्राह्मण ग्राम था।

सुंसुमारगिरि नगर—यह भर्गु राज्य की राजधानी था। बुद्धकाल में उदयन का पुत्र बोधि-राजकुमार यहाँ राज्य करता था। जो बुद्ध का परम श्रद्धालु भक्त था। किन्तु, भर्गु राज्य पूर्णरूपेण प्रजातन्त्र राज्य था, क्योंकि गणतन्त्र राज्यों में इसकी भी गणना की जाती थी। भर्गु आजकल के मिर्जापुर जिले का गंगा से दक्षिणी भाग और कुछ भास-पास का प्रदेश है, इसकी सीमा गंगा-टोंस-कर्मनाशा नदियाँ एवं विन्ध्याचल पर्वत का कुछ भाग रही होगी। सुंसुमारगिरि नगर मिर्जापुर जिले का वर्तमान चुनार कस्बा माना जाता है।

सेनापति ग्राम—यह उरुवेल के पास एक ग्राम था।

थूण—यह एक ब्राह्मण ग्राम था और मध्यम देश की पश्चिमी सीमा पर स्थित था। आधुनिक यानेश्वर ही थूण माना जाता है।

उक्काचेल—यह वज्जी जनपद में गंगा नदी के किनारे स्थित एक ग्राम था। उक्काचेल बिहार प्रान्त के वर्तमान सोनपुर या हाजीपुर के आसपास कहीं रहा होगा।

उपतिस्सग्राम—यह राजगृह के निकट एक ग्राम था।

उग्रनगर—उग्रनगर का सेठ उग्र श्रावस्ती में व्यापार के कार्य से आया था। इस नगर के सम्बन्ध में अन्य कोई जानकारी प्राप्त नहीं है।

उसीरध्वज—यह मध्यमदेश की उत्तरी सीमा पर स्थित एक पर्वत था, जो सम्भवतः कनखल के उत्तर पड़ता था।

वेरञ्जा नगर—भगवान् श्रावस्ती से वेरञ्जा गये थे। यह नगर कन्नौज से संकस्स, सोरेय्य होते हुए मथुरा जाने के मार्ग में पड़ता था। वेरञ्जा सोरेय्य और मथुरा के मध्य कहीं स्थित था।

वेत्रवती—यह नगर वेत्रवती नदी के किनारे बसा था। वर्तमान बेतवा नदी ही वेत्रवती मानी जाती है।

वेणुवग्राम—यह कौशाम्बी के पास एक छोटा ग्राम था। वर्तमान समय में इलाहाबाद से ३० मील पश्चिम कोसम से थोड़ी दूर उत्तर-पूर्व स्थित चैनपुरवा को ही वेणुवग्राम माना जाता है।

६ नदी और जलाशय

पुष्कराक्ष में मध्यम विरा में जो नदी जलाशय और पुष्करिणी थी उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार था—

अधिरघ्नी—इसे वर्तमान समय में राप्ती कहते हैं। यह भारत की पाँच महानदियों में एक थी। इसी के किनारे कोसल की राजधानी आबस्ती बसी थी।

अनोमा—इसी नदी के किनारे सिद्धार्थ कुमार ने प्रमत्त्या प्रवृत्त की थी। श्री कनिष्क ने गौरगढ़ पुर जिसे की आमी नदी को अनोमा माना है और श्री कर्कशापछ ने बस्ती जिसे की कुहवा नदी को। किन्तु इन पंक्तियों के लेखक की दृष्टि में वैवरिया जिसे की मध्यम नदी ही अनोमा नदी है। (देखो कुशीनगर का इतिहास, पञ्चम प्रकरण पृष्ठ ५८)।

वाङ्गुका—पुष्कराक्ष में यह एक पवित्र नदी मानी जाती थी। वर्तमान समय में इसे तुमेष्ठ नाम से पुकारते हैं। यह राप्ती की सहायक नदी है।

वाङ्गुमती—वर्तमान समय में इसे बागमती कहते हैं जो नेपाल से हांटी हुई बिहार प्रान्त में आती है। इसी के किनारे कास्माँह नगर बसा है।

वम्पा—यह मगध और अंग जनपदों की सीमा पर बहती थी।

छद्मस्त—यह हिमाचल में स्थित एक सरोवर था।

गंगा—यह भारत की पवित्र नदी है। इसी के किनारे हरिद्वार प्रयाग और भारणखी स्थित हैं।

गमारा पुष्करिणी—अंग जनपद में वम्पा नगर के पास थी। इसे राप्ती गमारा के कोढ़ था था।

हिरण्यवती—कुशीनारा और मरुकों का शाकबन उपवनत हिरण्यवती नदी के किनारे स्थित थे। वैवरिया जिसे का सोनरा नाका ही हिरण्यवती नदी है, यह कुङ्कुका स्थान के पास जमुना नदी में मिलती है। इसी को हिरवा की नदी और कुसुमी नारा भी कहते हैं जो 'कुशीनारा' का अपभ्रंश है।

फोसिकी—यह गंगा की एक सहायक नदी है। वर्तमान समय में इसे कुन्ती नदी कहते हैं।

कनुरया—यह नदी पावा और कुशीनारा के बीच स्थित थी। वर्तमान पाषी नदी ही कनुरया मानी जाती है। (देखो कुशीनगर का इतिहास पृष्ठ ३)।

काह्मदह—इस नदी के किनारे महाकात्यायन ने कुछ दिनों तक बिहार किया था।

कामिकाष्ठा—यह नदी आधिका में थी। मेघिन स्वविर ने जन्तुप्रान्त में मिश्रादन कर इस नदी के किनारे बिहार किया था।

मगध पुष्करिणी—इसी के किनारे बड़े हुए लबागत को राजकुल के परिवर्धन का समाचार मिला था।

महो—यह भारत की पाँच नदी नदियों में से एक थी। नदी गन्धक को ही महो कहते हैं।

रघुनाद—यह हिमाचल में एक सरोवर था।

राहिकी—यह छापर और कोमिव जनपद का सीमा पर बहती थी। वर्तमान समय में भी इस रीहिकी ही कहत हैं। यह गारखपुर के पास राप्ती में मिलती है।

सत्पिनी—यह नदी राजगृह के पास बहती थी। वर्तमान प्रयाग नदी ही सम्भवतः सत्पिनी नदी है।

सुतनु—इस नदी के किनारे आपुष्पायु जमुनद ने बिहार किया था।

निष्ठमता—यह नदी उदयेश प्रदेश में बहती थी। इसी के किनारे सुहगया स्थित है। इस समय इसे विवाजना नदी कहते हैं। विवाजना और सोहवा नदियों मिलकर ही कस्तु नदी बही जाती है। विवाजना नदी हजारीबाग जिसे के मिमेरिया नामक स्थान के पास में मिलती है।

सुन्दरिका—यह कोशल जनपद की एक नदी थी ।

सुमागधा—यह राजगृह के पास एक पुष्करिणी थी ।

सरयू—इस समय इसे सरयू कहते हैं । यह भारत की पाँच बड़ी नदियों में से एक थी । यह हिमालय से निकल कर बिहार प्रान्त में गंगा से मिलती है । इसी के किनारे अयोध्या नगरी बसी है ।

सरस्वती—गंगा की भौति यह एक पवित्र नदी है, जो शिवालिक पर्वत से निकल कर अम्बाला के आदि-वल्ली में मैदान में उतरती है ।

चेन्नवती—इसी नदी के किनारे चेन्नवती नगर था । इस समय इसे चेतवा नदी कहते हैं और इसी के किनारे भेलसा (प्राचीन विदिशा) नगर बसा हुआ है ।

वैतरणी—इसे यम की नदी कहते हैं । इसमें नारकीय प्राणी दुःख भोगते हैं । (देखो, संयुक्त निकाय, पृष्ठ २२) ।

यमुना—यह भारत की पाँच बड़ी नदियों में से एक थी । वर्तमान समय में भी इसे यमुना ही कहते हैं ।

पर्वत और गुहा

चित्रकूट—इसका वर्णन अपदान में मिलता है । यह हिमालय से काफी दूर था । वर्तमान समय में बुन्देलखण्ड के काम्पतनाथ गिरि को ही चित्रकूट माना जाता है । चित्रकूट स्टेशन से ४ मील दूर स्थित है ।

चोरपपात—यह राजगृह के पास एक पर्वत था ।

गन्धमादन—यह हिमालय पर्वत के कैलाश का एक भाग है ।

गयाशीर्ष—यह पर्वत गया में था । यहीं से सिद्धार्थ गौतम उरुवेला में गये थे और यहीं पर बुद्ध ने जटिलों को उपदेश दिया था ।

गृद्धकूट—यह राजगृह का एक पर्वत था । इसका शिखर गृद्ध की भौति था, इसीलिये इसे गृद्धकूट कहा जाता था । यहाँ पर भगवान् ने बहुत दिनों तक विहार किया और उपदेश दिया था ।

हिमवन्त—हिमालय को ही हिमवन्त कहते हैं ।

इन्द्रशाल गुहा—राजगृह के पास अम्बसण्ड नामक ब्राह्मण ग्राम से थोड़ी दूर पर वैदिक पर्वत में इन्द्रशाल गुहा थी ।

इन्द्रकूट—यह भी राजगृह के पास था ।

क्राप्तिगिलि—राजगृह का एक पर्वत ।

कुररघर—यह अवन्ति जनपद में था । महाकाश्यायन ने कुररघर पर्वत पर विहार किया था ।

कालगिला—यह राजगृह में थी ।

पाचीनवंश—यह राजगृह के वैपुत्य पर्वत का पौराणिक नाम है ।

पिप्पलि गुहा—यह राजगृह में थी ।

सत्तपणी गुहा—प्रथम सगीति राजगृह की सत्तपणी गुहा में ही हुई थी ।

सिनेरु—यह चारों महाद्वीपों के मध्य स्थित सर्वोच्च पर्वत है । मेरु और सुमेरु भी इसे ही कहते हैं ।

श्वेत पर्वत—यह हिमालय में स्थित है । कैलाश को ही श्वेत पर्वत कहते हैं । (देखो, संयुक्त निकाय, पृष्ठ ६६) ।

सुसुमारगिरि—यह भर्ग प्रदेश में था । सुनार के आसपास की पहाड़ियाँ ही सुसुमार गिरि हैं ।

सप्यसोषिक पम्मार—राजपुर में ।

खेपुल्ल—राजपुर में ।

खेमार—राजपुर में ।

३ वाटिका और वन

मासवन—ग्राम के बने वान को मासवन कहते हैं । तीन मासवन प्रसिद्ध हैं । एक राजपुर में बीचक का मासवन था । दूसरा ककुत्था नदी के किनारे पावा और कुसीनारा के बीच, और तीसरा कमण्डा में तोदेष्य नामक का मासवन था ।

अम्बपाडिवन—यह वैशाखी में था ।

अम्पाटक वन—यह बन्नी बगवद् में था । अम्पाटक वन के मण्डिक वनसष्ठ में बहुत से मिष्ठुनों के बिहार करते समय शिव पूरुषति ने उनके पास जाकर धर्म-वर्ण की थी ।

अनूपिय-अम्बवन—यह मण्डराह में बहूपिया में था ।

अज्ञनवन—यह सावत में था । अज्ञनवन मृगदाय में मगवान् ने बिहार किया था ।

अम्पावन—यह आबस्ती के पास था ।

इच्छानल्ल वन-सप्य—यह कोसक बगवद् में इच्छानल्ल नामक ग्राम के पास था ।

जेतवन—यह आबस्ती के पास था । वर्तमान महेन्द्र ही जेतवन है । खोदाई से सिक्काएँ बाकि प्राप्त हो चुके हैं ।

जातिपवन—यह भरिप राज्य में था ।

कप्पासिय वन-सप्य—यही मज्जवीनों ने इसी वन-सप्य में बुद्ध का दर्शन किया था ।

कम्पम्भकमिवाप—यह राजपुर में था । शिकहरियों को ममक दान देने के कारण ही कम्पम्भकमिवाप कहा जाता था ।

कट्टिवन—कट्टिवन में ही विविधर ने बुद्धधर्म को ग्रहण किया था ।

कुम्भिनी वन—यहाँ पर सिद्धार्थ गौतम का जन्म हुआ था । वर्तमान कुम्भिनदेई ही प्राचीन कुम्भिनी है । यह गोरकपुर जिले के मौतनवा स्थेशन से १ मील पश्चिम मेपाक राज्य में स्थित है ।

महावन—यह कपिकवस्तु से केसर हिमाकय के किनारे-किनारे वैशाखी तक और वहाँ से समुद्रतक तक विस्तृत महावन था ।

मण्डकुलि मृगदाय—यह राजपुर में था ।

मोर मियाप—यह राजपुर की घुमागावा गुफरिनी के किनारे स्थित था ।

मारावन—यह बन्नी बगवद् में इस्तिग्राम के पास था ।

पाषाणिकमवन—यह बाकन्दा में था ।

मेसककावन—यहाँ प्रदेश के सुसुमारगिरि में मंसककावन मृगदाय था ।

सिसपावन—यह कोसक बगवद् में सेतव्य नगर के पास उत्तर दिशा में था । श्रीश्याम्ही और बाकन्दी में भी सिसपावन थे । सीसम के वन को ही सिसपावन कहते हैं ।

शीतवन—यह राजपुर में था ।

उपपत्तन शासवन—यह मण्डराह में हिरण्यवती नदी के तट कुसीनारा के पास उत्तर ओर था ।

खेलुवन—यह राजपुर में था ।

३ वीथ और विहार

बुद्धका में जो प्रसिद्ध वीथ और विहार थे, जिनमें से वैशाखी में जापाक वीथ पञ्चाग्रक वीथ,

सारनद चैत्य, उदयन चैत्य, गौतमक चैत्य और बहुपुत्रक चैत्य थे। कूटागार शाला, बालुकाराम और महावन विहार वैशाली में ही थे। राजगृह में काश्यपकाराम, निग्रोधाराम और परित्राजकाराम थे। पाटलिपुत्र में अशोकाराम, गिञ्जकावसथ और कुक्कुटाराम थे। कौशांबी में वदरिकाराम, घोषिताराम और कुक्कुटाराम थे। साकेत में कालकाराम था। उज्जैनी में दक्षिणागिरि विहार था। और श्रावस्ती में पूर्वाराम, सललागार और जेतवन महाविहार थे।

§ २. उत्तरापथ

उत्तरापथ की पूर्वी सीमा पर थूण ब्राह्मण ग्राम था और यह उत्तर में हिमालय तक फैला हुआ था। उत्तरापथ दो महा जनपदों में विभक्त था—गन्धार और कम्बोज। पूरा पंजाब और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त उत्तरापथ में ही पड़ता था।

§ गन्धार

गन्धार जनपद की राजधानी तक्षशिला नगर था। कश्मीर और तक्षशिला के प्रदेश इसके अन्तर्गत थे। वर्तमान पेशावर और रावलपिण्डी के जिले गन्धार जनपद में पड़ते थे। तीसरी सगीति के पश्चात् गन्धार जनपद में बौद्धधर्म के प्रचारार्थ भिक्षु भेजे गये थे। तक्षशिला नगर वाराणसी से २००० योजन दूर था। यह एक प्रधान व्यापारिक केन्द्र था। यहाँ दूर-दूर प्रदेशों से व्यापारी आते थे। बुद्धकाल में पुक्कुसाति तक्षशिला का राजा था। वह मैत्री भाव के लिए मगध नरेश को पत्र और उपहार भेजा करता था।

§ कम्बोज

कम्बोज जनपद का विस्तृत वर्णन उपलब्ध नहीं है। यह पश्चिमोत्तर भारत में पड़ता था। लुदर के लेख से केवल नन्दिपुर नगर का ही कम्बोज जनपद में नाम मिला है। हुएनसांग के वर्णन और अशोक-शिलालेख के आधार पर माना जाता है कि वर्तमान राजौरी पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त का हजार जिला कम्बोज जनपद था। कम्बोज घोड़ों का उत्पत्ति-स्थान माना जाता था। अशोक-काल में कम्बोज में योनक महारक्षित स्थविर ने धर्म-प्रचार किया था।

§ नगर और ग्राम

गन्धार-कम्बोज जनपद में कुछ प्रसिद्ध नगर और ग्राम थे। उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

अरिष्टपुर—यह शिवि जनपद की राजधानी थी। पंजाब का वर्तमान शोरकोट प्रदेश ही शिवि जनपद माना गया है। इस जनपद में चित्तौड़ के पास जेतुनर नामक एक और भी नगर था।

कश्मीर—कश्मीर राज्य गन्धार जनपद के अन्तर्गत था। अशोक-काल में यहाँ बुद्धधर्म का प्रचार हुआ था।

तक्षशिला—यह गन्धार जनपद की राजधानी थी। यह प्राचीन भारत का प्रधान शिक्षा-केन्द्र था। जीवक, वन्धुल मल्ल प्रसेनजित्, महालि आदि की शिक्षा तक्षशिला में ही हुई थी। वर्तमान समय में पंजाब के रावलपिण्डी जिले में तक्षशिला के नष्टावशेष विद्यमान हैं।

सागल—यह मद्र देश की राजधानी था। वर्तमान समय में इसे स्यालकोट कहते हैं और यह पंजाब में पड़ता है। कुशावती के राजकुमार कुश का विवाह मद्रराजकुमारी प्रभावती से हुआ था। प्राचीन काल में मद्र की स्त्रियाँ अत्यधिक सुन्दरी मानी जाती थीं और प्रायः लोग मद्र-कन्याओं से ही विवाह करना चाहते थे।

४३ अपरान्तक

अपरान्तक प्रदेश में वर्तमान सिन्ध पश्चिमी राजपूताना गुजरात और नर्मदा के बेसिन के कुछ भाग पड़ते हैं। सिन्ध गुजरात और पश्चिमी सीमा राज्य अपरान्तक के अन्तर्गत थे। अपरान्तक की राजधानी सुप्पारक नगर में थी। बाजिजगाम, अर्बीक महाराष्ट्र नासिक चूरत और छार राठ अपरान्तक प्रदेश में ही पड़ते थे।

१ नगर और ग्राम

मरुफण्ड—यह समुद्र के किनारे स्थित एक बन्दरगाह था। व्यापारी यहाँ से चीन द्वारा बिदेसी के किये प्रस्थान करते थे। छंदा, पवन देव आदि में जाने के किये यहाँ नौका मिलती थी। सुवर्ण मूमि (कोथर बर्मा) को भी व्यापारी यहाँ से जाया करते थे। काठियावाड़ प्रदेश का वर्तमान मण्डौच ही प्राचीन मरुफण्ड है।

महाराष्ट्र—वर्तमान मराठा प्रदेश ही महाराष्ट्र है। यह अरब गोदावरी और कृष्णा नदियों के बीच फैला हुआ है। यहाँ पर वर्तमान मराठार्य महाभारतस्थित स्थिति राखे थे।

सोवीर—सोवीर राज्य की राजधानी रोहक नगरी थी। वर्तमान समय में गुजरात प्रदेश के पुरैर को ही सोवीर माना जाता है।

सुप्पारक—यह भी एक बन्दरगाह था। वर्तमान सोपारा ही सुप्पारक है। यह अम्बई से २० मील उत्तर और बसीन से ३ मील उत्तर-पश्चिम भाग जिले में स्थित है।

सुरङ्ग—यह एक राह था जिससे होकर सातोविष्य नदी बहती थी। वर्तमान काठियावाड़ और गुजरात का अन्य भाग ही सुरङ्ग (सुराह) माना जाता है।

छाछरङ्ग—इसे ही काठ्याण्ड भी कहते हैं। मध्य और दक्षिण गुजरात काछरङ्ग माना जाता है।

४४ दक्षिणापथ

दक्षिणापथ की उत्तरी सीमा सतकनिज निगम था। आचार्य बुद्धघोष के महाभारत गंगा से दक्षिण और गोदावरी से उत्तर का सारा विस्तृत प्रदेश दक्षिणापथ या दक्षिण अन्तर्गत कहा जाता था। ऐसा जान पड़ता है कि बुद्धका में गोदावरी से दक्षिण के प्रदेशों का उत्तर भारतवासियों को जान न था। यद्यपि छंदा को जानते थे किन्तु यहाँ समुद्र मार्ग से ही जाना-बाना होता था। गोदावरी से दक्षिण प्रदेशों का पूर्व-पश्चिम अन्तर्गत से मिलता है।

अश्वक और अश्वि महाभारत में दक्षिणापथ में गिने जाते थे। महाभारत में दक्षिण के अश्वक अश्वि की राजधानी माहिष्मती थी जो दक्षिणापथ में पड़ती थी। इसीलिए अश्वि को 'अश्वि दक्षिणापथ' कहा जाता था। अश्वक राज्य गोदावरी के किनारे था और यह भी दक्षिणापथ के अन्तर्गत था। महाभारत नामक अन्तर्गत भी दक्षिणापथ में था जिसका वर्तमान पंजाब के अन्तर्गत-स्थान पर है। इसे दक्षिण कोशक भी कहा जाता था। वर्तमान बिकाचपुर रामपुर और सम्भलपुर के जिले तथा राजास के कुछ भाग दक्षिण-कोशक के अन्तर्गत हैं।

१ नगर और ग्राम

अमरावती—इस नगर में पूर्वक में बोधिवृक्ष उत्पन्न हुए थे। यह आधुनिक समय में बरनीकोट नदी के तट अमरावती नाम से विद्यमान है। इसके पश्चिम स्थल बहुत प्रसिद्ध हैं।

मोअ—रीडिहारक भोजपुर कृषि मोअराष्ट्र के रहने वाले थे। अमरावती जिले के पश्चिमपुर के दक्षिण-पूर्व ३ मील की दूरी पर स्थित समक को भोज माना जाता है।

दमिल रट्ट—द्राविड़ राष्ट्र को ही दमिलरट्ट कहते हैं। इस राष्ट्र का कावेरी पट्टन वन्दरगाह बड़ा प्रसिद्ध नगर था, जो मालावार के आसपास समुद्र के किनारे स्थित था।

कलिङ्ग—कलिङ्ग राष्ट्र इतिहास-प्रसिद्ध कलिङ्ग ही है। इसकी राजधानी दन्तपुर नगरी थी।

वनवासी—रक्षित स्थविर वनवासी में धर्म-प्रचारार्थ भेजे गये थे। उत्तरी कनारा ही वनवासी कहा जाता था। यह तुगभद्रा और बड़ौदा के मध्य स्थित था। आधुनिक मैसूर के उत्तरी भाग को वनवासी जानना चाहिए।

§ ५. प्राच्य

मध्यमदेश के पूरव प्राच्य देश था। इसकी पश्चिमी सीमा पर कजगल निगम, अग और मगध जनपद थे। प्राच्य प्रदेश में वग जनपद पड़ता था। वंगहार जनपद भी इसका ही नाम था। प्रसिद्ध ताम्रलिप्ति वन्दरगाह प्राच्य प्रदेश में ही था, जहाँ से सुवर्ण भूमि, जावा, लंका आदि के लिए व्यापारी प्रस्थान करते थे। अशोक ने बोधिष्ठू को इसी वन्दरगाह से लंका भेजा था। वर्तमान समय में सिदनापुर जिले का तामलुक ही प्राचीन ताम्रलिप्ति है। यहाँ एक बहुत बड़ा बौद्ध विज्जविद्यालय भी था। लंका में प्रथम भारतीय उपनिवेश स्थापित करने वाला राजा विजय वग राष्ट्र के राजा सिंहवाहु का पुत्र था। सम्भवतः उपसेन वगन्तपुत्र स्थविर वंगराष्ट्र के ही रहने वाले थे। वग राष्ट्र का वर्धमानपुर भी प्रसिद्ध नगर था। शिलालेखों में वर्धमानभुक्ति के नाम से इसका उल्लेख है। आधुनिक वर्धवान ही वर्धमानपुर माना जाता है।

संक्षेप में बुद्धकालीन भारत का यही भौगोलिक परिचय है।

सुत्त (=सूत्र)-सूची

पहला खण्ड

सगाथा वर्ग

पहला परिच्छेद

१. देवता संयुत्त

पहला भाग : नल वर्ग

नाम	विषय	पृष्ठ
१. ओघतरण सुत्त	तृष्णा की बाढ़ से पार जाना	१
२. निमोक्ख सुत्त	मोक्ष	२
३. उपनेय्य सुत्त	सासारिक भोग का त्याग	२
४. अच्चेन्ति सुत्त	सासारिक भोग का त्याग	२
५. कतिछिन्द सुत्त	पाँच को काटे	३
६. जागर सुत्त	पाँच से शुद्धि	३
७. अपरटिविदित सुत्त	सर्वज्ञ बुद्ध	४
८. सुसम्मूढ सुत्त	सर्वज्ञ बुद्ध	४
९. नमानकाम सुत्त	मृत्यु के राज्य से पार	४
१०. अरब्ज सुत्त	चेहरा खिला रहता है	५

दूसरा भाग : नन्दन वर्ग

१. नन्दन सुत्त	नन्दन वन	६
२. नन्दति सुत्त	चिन्ता रहित	६
३. नत्थि पुत्तसम सुत्त	अपने ऐसा कोई प्यारा नहीं	७
४. खत्तिय सुत्त	बुद्ध श्रेष्ठ हैं	७
५. सन्तिकाय सुत्त	शान्ति से आनन्द	७
६. निहातन्दी सुत्त	निद्रा और तन्द्रा का त्याग	८
७. कुम्म सुत्त	कछुआ के समान रक्षा	८
८. हिरि सुत्त	पाप से लजाना	८
९. कुटि सुत्त	झोपड़ी का भी त्याग	९
१०. समिद्धि सुत्त	कारु अज्ञात है, काम-भोगों का त्याग	९

तीसरा भाग : शक्ति वर्ग

१. सत्ति सुत्त	सत्काय-इष्टि का प्रहाण	१३
----------------	------------------------	----

१. कुसरी सुत	मिर्चों को दोप नहीं छगता	१३
२. बटा सुत	जरा बीन मुखड़ा सफटा है ?	१४
३. समाविहार्य सुत	मन को रोकना	१५
४. अरहन्त सुत	भईरव	१५
५. पञ्जात सुत	प्रद्योत	१६
६. सरा सुत	नाम रूप का विरोध	१६
७. महबूब सुत	तृष्णा का त्याग	१७
८. कपुचक सुत	बाप्रा ऐसे होगी	१७
९. पवित्र सुत	हुआ से मुक्ति	१८

बीया भाग : सतुन्धपकायिक वर्ग

१. सखि सुत	सखियों का साथ	१९
२. मच्छरी सुत	कँजूसी का त्याग	२
३. साधु सुत	नाम देना उत्तम है	२१
४. गतस्थि सुत	कम मित्र नहीं	२३
५. अग्राह्यपञ्जी सुत	उभागत कुराहों से परे है	२४
६. सदा सुत	प्रमाद का त्याग	२५
७. समर सुत	मिथु सम्मेलन	२६
८. ककिक सुत	भराबाहू के घेर में पीड़ा वैचताओं का आगमन	२७
९. पञ्चवर्णीय सुत	बर्तन प्राण से स्वर्ग	२८
१०. सुकृपपरकृष्णीय सु	पुत्र बर्तन का सार	२९

पौचर्वा भाग : अछता वर्ग

१. आदि सुत	कोक में जाय कभी है	३
२. किं वर सुत	क्या देनेवाला क्या पाता है ?	३
३. अज सुत	अज सबको मिय है	३१
४. पञ्चमूक सुत	एक अक्ष बाका	३१
५. अनोमनाम सुत	सर्व-पूर्व	३२
६. अचरा सुत	राह कैसे करेगी ?	३२
७. वनरोप सुत	किनके पुत्र सब करते हैं ?	३३
८. इरं हि सुत	सैतन	३३
९. मच्छरी सुत	कँजूसी के कृष्ण	३३
१०. बटीकर सुत	इन्द्र-बर्तन से ही मुक्ति, जन्म से नहीं	३५

छठें भाग : अरा वर्ग

१. बरा सुत	पुण्य पुराण नहीं का सफटा	३७
२. अजरा सुत	प्रशमन सुखों का रज है	३७
३. मित्र सुत	मित्र	३७
४. बरहु सुत	आचार	३८
५. बनेति सुत	पैदा होना (१)	३८

६. जनेति सुत्त	पेदा होना (२)	३८
७. जनेति सुत्त	पश होना (३)	३८
८. उप्पथ सुत्त	चेराह	३९
९. द्रुतिया सुत्त	माथी	३९
१०. कपि सुत्त	कविता	३९

सातवाँ भाग अद्ध वर्ग

१. नाम सुत्त	नाम	४०
२. चित्त सुत्त	चित्त	४०
३. तण्हा सुत्त	तृणा	४०
४. मयोजन सुत्त	बन्धन	४१
५. बन्धन सुत्त	फाँस	४१
६. अवभाएत सुत्त	सताया जाना	४१
७. उट्ठित सुत्त	लौंघा गया	४१
८. पिहित सुत्त	छिपा डँका	४२
९. इच्छा सुत्त	इच्छा	४२
१०. लोक सुत्त	लोक	४२

आठवाँ भाग झत्वा वर्ग

१. झत्वा सुत्त	नाश	४३
२. रथ सुत्त	रथ	४३
३. वित्त सुत्त	धन	४३
४. वुट्ठि सुत्त	वृष्टि	४४
५. भीत सुत्त	डरना	४४
६. न कीरति सुत्त	पुराना न होना	४४
७. इस्सर सुत्त	पेड़वर्य	४५
८. काम सुत्त	अपने को न दे	४६
९. पाथेय्य सुत्त	राह-खर्च	४६
१०. पज्जोत सुत्त	प्रद्योत	४६
११. भरण सुत्त	कलेश से रहित	४७

दूसरा परिच्छेद

२. देवपुत्त संयुत्त

पहला भाग : प्रथम वर्ग

१. कस्सप सुत्त	मिक्षु-अनुशासन (१)	४८
२. कस्सप सुत्त	मिक्षु-अनुशासन (२)	४८
३. माघ सुत्त	किसके नाश से सुख ?	४८
४. मागध सुत्त	चार प्रद्योत	४९

५. वामकि सुत	माझण हुतकृत्य है	४९
६. कामव सुत	सुपद सन्तोष	५
७. पद्माक्षवन्द सुत	स्वति-काम से धर्म का साक्षात्कार	५
८. वायव सुत	शिक्षिता न करे	५१
९. चम्पि सुत	चम्प-ग्रहण	५२
१. सुरि सुत	सूर्य-ग्रहण	५३

दूसरा भाग : अनाथपिण्डिक वर्ग

१. चम्पि सुत	धामी पार कापों	५४
२. वेणु सुत	धामी मृत्यु के दस नहीं करते	५४
३. वीमकि सुत	मिथु-अनुशासन	५४
४. मन्द सुत	शीकवान् कौन ?	५५
५. चम्प सुत	कौन नहीं बूझता ?	५५
६. वासुदेव सुत	कामुकता का प्रहान	५६
७. सुक सुत	चित्त की बचवाहट कैसे दूर हो ?	५६
८. ककुप सुत	मिथु का व्यवहृ और चिन्ता नहीं	५६
९. वर सुत	सांसारिक भोग को त्यागो	५७
१. अनाथपिण्डिक सुत	जतन	५८

तीसरा भाग : नागालीर्ष वर्ग

१. सिध सुत	सन्तुषों की संगति	५९
२. नेम सुत	पाप कर्म न करे	५९
३. सरि सुत	पाम का महाक्रम	६
४. बटीकर सुत	पुत्रकर्म से ही मुक्ति अन्य से नहीं	६१
५. जण्ड सुत	अप्रमादी को प्रमाद	६२
६. रोहितरस सुत	छोक का अन्त चककर नहीं पाया जा सकता बिना अन्य पाप मुक्ति भी नहीं	६२
७. बन्द सुत	समय बीत रहा है	६३
८. मन्त्रिबिसाक सुत	पात्रा कैसे होगी ?	६३
९. सुमि सुत	आयुष्मान् सारियुक्त के गुण	६३
१. नागालीर्ष सुत	नागालीर्षों के मठ कुछ अगुवा	६४

तीसरा परिच्छेद

३ क्रोशल संयुक्त

पहला भाग : प्रथम वर्ग

१. वर सुत	चार की छोड़ न समझे	६७
२. पुरि सुत	वीर अहितकर बर्ष	६८
३. राजरथ सुत	सम्प-धर्म पुराणा नहीं होता	६९

४. प्रिय सुत्त	अपना प्यारा कोन !	६९
५. अक्षरशिवत सुत्त	अपनी रगवाली	७०
६. अप्पक सुत्त	मिलीर्भा धोने ही है	७०
७. अय्यकरण सुत्त	पचासी में सड़ डोलने का फल दु गद	७१
८. मल्लिका सुत्त	अपने में प्यारा कोई नहीं	७१
९. यज्ज सुत्त	पाँच प्रकार के यज्ञ, पीछा और हिंसा-रहित यज्ञ ही भित्तर	७२
१०. धन्धन सुत्त	६६ धन्धन	७२

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

१. जटिल सुत्त	ऊपरी रूप-रंग में जानना कठिन	७४
२. पञ्चराज सुत्त	जो जिसे प्रिय है, वही उमें अच्छा है	७५
३. दोणपाक सुत्त	माछा में भोजन करें	७६
४. पटम मगाम सुत्त	लड़ाई की दो चीजें, प्रसेनजित की हार	७६
५. दुत्तिय मगाम सुत्त	अज्ञातगुरु की हार, लुटेरा लूटा जाता है	७७
६. धीनु सुत्त	मिर्याँ भी पुरुषों में श्रेष्ठ होती है	७८
७. अप्पमाद सुत्त	अप्रमाद के गुण	७८
८. दुत्तिय अप्पमाद सुत्त	अप्रमाद के गुण	७९
९. अपुत्तक सुत्त	कज्जमी न करें	८०
१०. दुत्तिय अपुत्तक सुत्त	कज्जमी त्याग कर पुण्य करें	८१

तीसरा भाग

तृतीय वर्ग

१. पुग्गल सुत्त	चार प्रकार के व्यक्ति	८३
२. अय्यका सुत्त	मृत्यु नियत है, पुण्य करें	८४
३. लोक सुत्त	तीन अहितकर धर्म	८५
४. इम्मत्थ सुत्त	दान किसे दे ? कितने देने में महाफल ?	८५
५. पव्वत्तूपम सुत्त	मृत्यु घरे आ रही है, धर्माचरण करें	८७

चौथा परिच्छेद

४. मार संयुत्त

पहला भाग

प्रथम वर्ग

१. तपोक्कम्म सुत्त	कठोर तपश्चरण बेकार	८९
२. नाग सुत्त	हाथी के रूप में मार का आना	९०
३. सुभ सुत्त	सयमी मार के वश में नहीं जाते	९०
४. पास सुत्त	बुद्ध मार के जाल से मुक्त	९०
५. पास सुत्त	बहुजन के हित-सुख के लिये विचरण	९१

६ सप्य सुप्त	एकान्तवास स विवर्धित न हो	९२
७ सोप्यसि सुप्त	पितृपुत्र सुद	९३
८ आनन्द सुप्त	अनासक्त चिन्तित नहीं	९३
९ अप्य सुप्त	आयु की अल्पता	९३
१० आयु सुप्त	आयु का क्षय	९४

दूसरा भाग : द्वितीय वर्ग

१ पासाण सुप्त	सुदों में चरकता नहीं	९५
२ सीह सुप्त	सुद समाजों में गरजते हैं	९५
३ सक्किक सुप्त	पत्थर से पौर कर्मता तीव्र बेहता	९५
४ पठिक सुप्त	सुद अयुरोच-विरोध से मुक्त	९६
५ मातस सुप्त	इच्छाओं का नाश	९७
६ पत्त सुप्त	मार का बैक बनकर आता	९७
७ आपतन सुप्त	आपतनों से ही भय	९८
८ पिण्ड सुप्त	सुद को मित्रता न मित्री	९८
९ कस्तक सुप्त	मार का रूपक के रूप में आता	९९
१० रज सुप्त	सांसारिक कामों की विजय	१

तीसरा भाग : तृतीय वर्ग

१ सम्प्रवृत्त सुप्त	मार का पहलना	१ १
२ समिद्धि सुप्त	समृद्धि को उरना	१ २
३ गोविक सुप्त	गोविक की आत्महत्या	१ ३
४ सचकस्थानि सुप्त	मार द्वारा सात साक पीछा किया जाता	१ ४
५ मारुद्धि सुप्त	मार कर्मों की पराजय	१ ५

पाँचवाँ परिच्छेद

५ मिश्रणी संयुक्त

१ आकषिक सुप्त	काम भोग और जैसे हैं	१ ८
२ सोमा सुप्त	रत्नी-भाव क्या करेगा ?	१ ८
३ किंसा गोवनी सुप्त	अज्ञानान्धकार का भास	१ ९
४ मित्रता सुप्त	काम-सुप्ता का भास	१ ९
५ अत्यकस्थान सुप्त	अत्यकस्थानों की अज्ञानता	१ १
६ काका सुप्त	अज्ञान-ग्रहण के दोष	१ १
७ अपवाका सुप्त	कोक सुकाम-अज्ञान रहा है	१ १ १
८ सौम्यवाका सुप्त	सुद आसन में रुचि	१ १ २
९ सेक सुप्त	होष्ट से अत्यधिक और विरोध	१ १ २
१० बहिरा सुप्त	आत्मा का अभाव	१ १ ३

छठाँ परिच्छेद

६. ब्रह्म संयुक्त

पहला भाग : प्रथम वर्ग

१. आयाचन सुत्त	ब्रह्मा द्वारा बुद्ध को धर्मोपदेश के लिये उत्साहित करना	११४
२. गारव सुत्त	बुद्ध द्वारा धर्म का सत्कार किया जाना	११५
३. ब्रह्मदेव सुत्त	आहुति ब्रह्मा को नहीं मिलती	११६
४. वकब्रह्मा सुत्त	वक ब्रह्मा का मान-मर्दन	११८
५. अपरादिट्ठि सुत्त	ब्रह्मा की बुरी दृष्टि का नाश	११९
६. पमाद सुत्त	ब्रह्मा को सविभन करना	१२१
७. कोकालिक सुत्त	कोकालिक के सम्बन्ध में	१२२
८- तिस्सक सुत्त	तिस्सक के सम्बन्ध में	१२२
९. तुट्टमल्ल सुत्त	कोकालिक को समझाना	१२२
१०. कोकालिक सुत्त	कोकालिक द्वारा अग्रश्रावकों की निन्दा	१२३

दूसरा भाग : द्वितीय वर्ग

१. सनकुमार सुत्त	बुद्ध सर्वश्रेष्ठ	१२५
२. देवदत्त सुत्त	सत्कार से छोटे पुरुष का विनाश	१२५
३. अन्धकविन्द सुत्त	सघ-वास का महात्म्य	१२५
४. अरुणवती सुत्त	अभिभू का ऋद्धि-प्रदर्शन	१२६
५. परिनिव्यान सुत्त	महापरिनिर्वाण	१२८

सातवाँ परिच्छेद

७. ब्राह्मण संयुक्त

पहला भाग : अर्हत् वर्ग

१. धनञ्जानि सुत्त	क्रोध का नाश करे	१२९
२. अक्कोस सुत्त	गालियों का दान	१३०
३. असुरिक सुत्त	सह लेना उत्तम है	१३१
४. विलङ्घिक सुत्त	निर्दोषी को दोष नहीं लगता	१३१
५. अहिंसक सुत्त	अहिंसक कौन ?	१३२
६. जटा सुत्त	जटा को सुलझाने वाला	१३२
७. सुद्धिक सुत्त	कौन शुद्ध होता है ?	१३३
८. अगिगक सुत्त	ब्राह्मण कौन ?	१३३
९. सुन्दरिक सुत्त	दक्षिणा के योग्य पुरुष	१३४
१०. यहुघीतु सुत्त	वैलों की खोज में	१३६

दूसरा भाग : उपासक वर्ग

१ कसि सुत	बुद्ध की खेती	१३८
२ उदय सुत	बार-बार मिष्टान्न	१३९
३ देवदित सुत	बुद्ध की दम्पता राज का पात्र	१४
४ महासाल सुत	पुत्रों द्वारा निष्प्रसित पिता	१४१
५ मानव्य सुत	अभिमान न करे	१४२
६ परशबिक सुत	अपराध न करे	१४३
७ नवकम्म सुत	अंगक कर चुका है	१४३
८ कङ्कहार सुत	विर्जन वन में वास	१४४
९ मातुपोसक सुत	माता-पिता के पोषण में पुण्य	१४५
१० मिक्कल सुत	मिथुन मिथु नहीं	१४५
११ संपारव सुत	स्नान से छुड़ि नहीं	१४६
१२ प्रोमहुम्मक सुत	सन्त की पहचान	१४६

आठवाँ परिच्छेद

८ षड्शीस संयुत

१ निस्तुल्ल सुत	बंगीस का रङ संकल्प	१४८
२ अरति सुत	राग छोड़े	१४८
३ अतिमज्जना सुत	अभिमान का त्याग	१४९
४ आनन्द सुत	अमराग से मुक्ति का उपाय	१५
५ सुभासित सुत	सुभासित के अक्षय	१५१
६ सारिपुत्त सुत	सारिपुत्त की स्तुति	१५१
७ पञ्चारत्ना सुत	पञ्चारत्ना-कर्म	१५२
८ वरोमहम्म सुत	बुद्ध-स्तुति	१५३
९ कोण्डन्न सुत	अन्नाकीण्डन्न के गुण	१५४
१० मोमाकम्पन सुत	महामोहकम्पान के गुण	१५५
११ गमारा सुत	बुद्ध-स्तुति	१५५
१२ बङ्गीस सुत	बंगीस के उद्धान	१५५

नयाँ परिच्छेद

९ दन संयुत

१ विवेक सुत	विवेक में अगता	१५७
२ उपह्म सुत	उद्यो सोमा छोड़ो	१५७
३ दम्परगोत सुत	बहकिरा को उपदेश	१५८
४ मज्झिम सुत	मिथुनों का स्वपदम्ब दिहारा	१५८
५ आनन्द सुत	प्रमाद न करना	१५९
६ अनुत्त सुत	संस्कारी की अभिव्यक्ति	१५९

७. नागदत्त सुत्त	देर तक गाँवों में रहना अच्छा नहीं	१६०
८. कुलघरणी सुत्त	सह लेना उत्तम है	१६०
९. वज्जिपुत्त सुत्त	भिक्षु-जीवन के सुख की स्मृति	१६१
१०. सज्झाय सुत्त	स्वाध्याय	१६१
११. अयोनिस सुत्त	उचित विचार करना	१६१
१२. मज्झन्तिक सुत्त	जगल में मंगल	१६२
१३. पाकतिन्दिग्रय सुत्त	दुराचार के दुर्गुण	१६२
१४. पटुमपुप्फ सुत्त	बिना दिये पुष्प सूँघना भी चोरी है	१६२

दसवाँ परिच्छेद

१०. यक्ष संयुत्त

१. इन्दक सुत्त	पैदाइश	१६४
२. सक्क सुत्त	उपदेश देना बन्धन नहीं	१६४
३. सूचिलोम सुत्त	सूचिलोम यक्ष के प्रश्न	१६४
४. मणिमद्द सुत्त	स्मृतिमान् का सदा कल्याण होता है	१६५
५. सानु सुत्त	उपोसथ करने वाले को यक्ष नहीं पीड़ित करते	१६६
६. पियङ्कर सुत्त	पिशाच-योनि से मुक्ति के उपाय	१६७
७. पुनव्वसु सुत्त	धर्म सबसे प्रिय	१६७
८. सुदत्त सुत्त	अनाथपिण्डिक द्वारा बुद्ध का प्रथम दर्शन	१६८
९. सुक्का सुत्त	शुक्रा के उपदेश की प्रशंसा	१६९
१०. सुक्का सुत्त	शुक्रा को भोजन-दान की प्रशंसा	१६९
११. चीरा सुत्त	चीरा को चीवर-दान की प्रशंसा	१७०
१२. आलवक सुत्त	आलवक-दमन	१७०

ग्यारहवाँ परिच्छेद

११. शक्र संयुत्त

पहला भाग : प्रथम वर्ग

१. सुवीर सुत्त	उत्साह और वीर्य की प्रशंसा	१७२
२. सुसीम सुत्त	परिश्रम की प्रशंसा	१७३
३. धज्जग सुत्त	देवासुर-संग्राम, त्रिरत्न का महात्म्य	१७३
४. वेपचित्ति सुत्त	क्षमा और सौजन्य की महिमा	१७४
५. सुभासित्त जय सुत्त	सुभाषित	१७६
६. कुलावक सुत्त	धर्म से शक्र की विजय	१७७
७. न दुव्विम सुत्त	धोखा देना महापाप है	१७७
८. विरोचन असुरिन्द सुत्त	सफल होने तक परिश्रम करना	१७८
९. आरञ्जकइसि सुत्त	शील की सुगन्ध	१७९
१०. समुदकइसि सुत्त	जैसी करनी वैसी भरनी	१७९

दूसरा भाग : द्वितीय घग

१ परम वन गुण	पाक के साथ मठ सखुद्व	१८१
२ दुतिप वन गुण	हृन् के साथ नाम और उसके मठ	१८१
३ ततिप वन गुण	हृन् के नाम और मठ	१८२
४ इडिह गुण	गुड मठ इडिह मठी	१८२
५ रामगण्ड गुण	रमणीय स्थान	१८३
६ वनमान गुण	मांथिक नाम का महात्म्य	१८३
७ वन्दना गुण	गुड उम्मा का वंदन	१८४
८ परम महामममता गुण	घोषिबान् मिथु और गृहस्थों को ममरकर	१८४
९ दुतिप महामममता गुण	मईभेद गुड का ममरकर	१८५
१० ततिप महामममता गुण	मिथु-मई को ममरकर	१८५

तीसरा भाग : तृतीय घग

१ म-का गुण	मोघ का मठ बनन का गुण	१८७
२ दुरवर्जित गुण	मोघ न बनने का गुण	१८७
३ माका गुण	मम्बरी मापा	१८८
४ अरवध गुण	अरवाध और क्षमा	१८८
५ अहोबन गुण	माघ का रोग	१८९

दूसरा खण्ड

निदान वर्ग

पहला परिच्छेद

१२ अभिगमय संवृण

पहला भाग

:

गुड घग

१ देवता गुण	मनीषागुणार्द्र	१९३
२ विषय गुण	मनीषागुणार्द्र का अन्तर्भाव	१९३
३ वरिष्ठा गुण	विष्ठा का नाम और मन्त्र-मार्ग	१९५
४ विलम्बी गुण	विलम्बी गुड का मनीषागुणार्द्र का अन्तर्भाव	१९५
५ पिच्छी गुण	पिच्छी गुड को मनीषागुणार्द्र का अन्तर्भाव	१९६
६ केवल गुण	केवल गुड को मनीषागुणार्द्र का अन्तर्भाव	१९७
७ लक्षण	मन्त्र गुड को मनीषागुणार्द्र का अन्तर्भाव	१९७
८ मन्त्र गुण	मनीषागुणार्द्र अन्तर्भाव	१९७

दूसरा भाग

:

आहार घग

१ अन्तर्भाव	मनीषा के अन्तर्भाव और विलम्बी मनीषा	१९८
-------------	-------------------------------------	-----

० फलगुन सुत्त	चार आहार और उनकी उत्पत्तियाँ	१९
३. पठम समणब्राह्मण सुत्त	यथार्थ नामके अधिकारी श्रमण-ब्राह्मण	२०
४. दुतिय समणब्राह्मण सुत्त	परमार्थ के जानकार श्रमण-ब्राह्मण	२०
५. कच्चानगोत्त सुत्त	सम्यक दृष्टि की व्याख्या	२००
६. धम्मकथिक सुत्त	धर्मोपदेशक के गुण	२०१
७. अचेल सुत्त	प्रतीत्य समुत्पाद, अचेल काश्यप की प्रव्रज्या	२०२
८. तिम्वरुक सुत्त	सुख-दुःख के कारण	२०४
९. बालपण्डित सुत्त	मूर्ख और पण्डित में अन्तर	२०४
१०. पञ्चम सुत्त	प्रतीत्य समुत्पाद की व्याख्या	२०५

तीसरा भाग

दशवल वर्ग

१. पठम दसवल सुत्त	बुद्ध सर्वोत्तम कहलाने के अधिकारी	२०७
२. दुतिय दसवल सुत्त	प्रव्रज्या की सफलता के लिये उद्योग	२०७
३. उपनिसा सुत्त	आश्रव-क्षय, प्रतीत्यसमुत्पाद	२०८
४. अञ्जतिरिथिय सुत्त	दुःख प्रतीत्यसमुत्पन्न है	२०९
५. भूमिज सुत्त	सुख-दुःख सहेतुक है	२११
६. उपवान सुत्त	दुःख समुत्पन्न है	२१२
७. पच्चय सुत्त	कार्य-कारण का सिद्धान्त	२१३
८. भिक्खु सुत्त	कार्य-कारण का सिद्धान्त	२१३
९. पठम समणब्राह्मण सुत्त	परमार्थ ज्ञाता श्रमण-ब्राह्मण	२१४
१०. दुतिय समणब्राह्मण सुत्त	संस्कार-पारगत श्रमण-ब्राह्मण	२१४

चौथा भाग

कलार श्रत्रिय वर्ग

१. भूतमिद सुत्त	यथार्थ ज्ञान	२१५
२. कलार सुत्त	प्रतीत्यसमुत्पाद, सारिपुत्र का सिंहासन	२१६
३. पठम जाणवत्थु सुत्त	ज्ञान के विषय	२१८
४. दुतिय जाणवत्थु सुत्त	ज्ञान के विषय	२१९
५. पठम अविज्जा पच्चया सुत्त	अविद्या ही दुःखों का मूल है	२१९
६. दुतिय अविज्जा पच्चया सुत्त	अविद्या ही दुःखों का मूल है	२२०
७. न तुम्ह सुत्त	शरीर अपना नहीं	२२१
८. पठम चेतना सुत्त	चेतना और संकट के अभाव में मुक्ति	२२१
९. दुतिय चेतना सुत्त	चेतना और संकट के अभाव में मुक्ति	२२२
१०. ततिय चेतना सुत्त	चेतना और संकट के अभाव में मुक्ति	२२२

पाँचवाँ भाग

गृहपति वर्ग

१. पठम पञ्चवेरभय सुत्त	पाँच वैर-भय की शान्ति	२२३
२. दुतिय पञ्चवेरभय सुत्त	पाँच वैर-भय की शान्ति	२२४
३. दुक्ख सुत्त	दुःख और उसका लय	२२४
४. लोक सुत्त	लोक की उत्पत्ति और लय	२२५
५. सात्तिका सुत्त	कार्य-कारण का सिद्धान्त	२२५
६. अञ्जतर सुत्त	मध्यम-मार्ग का उपदेश	२१६

७ आतप्य सुत्त	यथार्थज्ञान के लिये उद्योग करना	२४८
८ विरिय सुत्त	यथार्थज्ञान के लिये वीर्य करना	२४९
९ सातच्च सुत्त	यथार्थज्ञान के लिये परिश्रम करना	२४९
१० सति सुत्त	यथार्थज्ञान के लिये स्मृति करना	२४९
११ सम्पज्झण सुत्त	यथार्थज्ञान के लिये संप्रज्ञ होना	२४९
१२ अप्पमाद सुत्त	यथार्थज्ञान के लिये अप्रमादी होना	२४९

दसवाँ भाग

: अभिसमय वर्ग

१. नखसिख सुत्त	स्रोतापन्न के दुःख अत्यल्प हैं	२५०
२. पोक्खरणी सुत्त	स्रोतापन्न के दुःख अत्यल्प हैं	२५०
३. सम्भेज्जउदक सुत्त	महानदियों के सगम से तुलना	२५०
४. सम्भेज्जउदक सुत्त	महानदियों के सगम से तुलना	२५१
५. पठवी सुत्त	पृथ्वी से तुलना	२५१
६. पठवी सुत्त	पृथ्वी से तुलना	२५१
७. समुद्द सुत्त	समुद्र से तुलना	२५१
८. समुद्द सुत्त	समुद्र से तुलना	२५१
९. पव्वत सुत्त	पर्वत की उपमा	२५१
१०. पव्वत सुत्त	पर्वत की उपमा	२५२
११. पव्वत सुत्त	पर्वत की उपमा	२५२

दूसरा परिच्छेद

१३ धातु संयुत्त

पहला भाग

: नानात्व वर्ग

१ धातु सुत्त	धातु की विभिन्नता	२५३
२ सम्फस्स सुत्त	स्पर्श की विभिन्नता	२५३
३ नो चेत्त सुत्त	धातु विभिन्नता से स्पर्श विभिन्नता	२५३
४ पठम वेदना सुत्त	वेदना की विभिन्नता	२५४
५ दुतिय वेदना सुत्त	वेदना की विभिन्नता	२५४
६ धातु सुत्त	धातु की विभिन्नता	२५५
७ सज्जा सुत्त	संज्ञा की विभिन्नता	२५५
८ नो चेत्तं सुत्त	धातु की विभिन्नता से संज्ञा की विभिन्नता	२५५
९ पठम फस्स सुत्त	विभिन्न प्रकार के लाभ के कारण	२५६
१० दुतिय फस्स सुत्त	धातु की विभिन्नता से ही संज्ञा की विभिन्नता	२५६

दूसरा भाग

:

द्वितीय वर्ग

१ सत्तिम सुत्त	सात धातुयें	२५८
२ सनिदान सुत्त	कारण से ही कार्य	२५८
३ गिअकावसथ सुत्त	धातु के कारण ही रज्जा, दृष्टि तथा चित्त की उत्पत्ति	२५९
४ हीनाधिमुत्ति सुत्त	धातुओं के अनुसार ही मेलजोल का होना	२६०

२. चङ्गमं सुच	चातु के अनुसार ही सखों में मेकबोळ का होना	२६१
३. सगाया सुच	चातु के अनुसार ही मेकबोळ का होना	२६१
४. अस्तद सुच	चातु के अनुसार ही मेकबोळ का होना	२६२
५-१ पञ्च सुचन्ता	चातु के अनुसार ही मेकबोळ का होना	२६२

तीसरा भाग

: कर्मपथ वर्ग

१. असमाहित सुच	असमाहित का असमाहितों से मेक होना	२६३
२. हुत्सीक सुच	हुत्सीक का हुत्सीकों से मेक होना	२६३
३. पञ्चसिक्कापद सुच	चुरे चुरों का साथ करते तथा अपने अर्थों का	२६३
४. सचरम्मपथ सुच	सात कर्मपथ बाकों में मेकबोळ का होना	२६३
५. इसरम्मपथ सुच	दस कर्मपथ बाकों में मेकबोळ का होना	२६४
६. अङ्कद्वि सुच	अष्टांगिकों में मेकबोळ का होना	२६४
७. दसद सुच	दशांगों में मेकबोळ का होना	२६४

चौथा भाग

: समुपार्थ वर्ग

१. चतु सुच	चार चातुर्थे	२६५
२. पुण्य सुच	पूर्वज्ञान चातुर्थों के आस्वाद और पुण्यपरिणाम	२६५
३. अचरि सुच	चातुर्थों के आस्वादन में विचरण करना	२६५
४. बी बेई सुच	चातुर्थों के वपार्थज्ञान से ही मुक्ति	२६६
५. बुच सुच	चातुर्थों के वपार्थज्ञान से मुक्ति	२६६
६. अमितग्ग सुच	चातुर्थों की विरक्ति से ही बुद्धि से मुक्ति	२६७
७. उपपाद सुच	चातुर्विचार से ही बुद्धि-विरोध	२६७
८. पदम समजप्राप्पण सुच	चार चातुर्थे	२६७
९. बुविप समजप्राप्पण सुच	चार चातुर्थे	२६७
१०. तविप समजप्राप्पण सुच	चार चातुर्थे	२६८

तीसरा परिच्छेद

१४ अनमत्तग्ग संयुच

पहला भाग

:

प्रथम धरा

१. तिनचद सुच	संसार के प्रारम्भ का वता नहीं पात-कड़वी की उपमा	२६९
२. पदवी सुच	संसार के प्रारम्भ का वता नहीं पूर्य की उपमा	२६९
३. अरु सुच	संसार के प्रारम्भ का वता नहीं अरु की उपमा	२६९
४. और सुच	संसार के प्रारम्भ का वता नहीं रूप की उपमा	२७०
५. परवण सुच	बन्ध की दीर्घता	२७०
६. सागण सुच	बन्ध की दीर्घता	२७१
७. सावण सुच	धीमे हुए बन्ध आगण्य है	२७१
८. सीगा सुच	धीमे हुए बन्ध आगण्य है	२७१
९. रण सुच	संसार के प्रारम्भ का वता नहीं	२७१

१०. पुग्गल सुत्त	संसार के प्रारम्भ का पता नहीं	२७२
दूसरा भाग	:	द्वितीय वर्ग
१. दुग्गत सुत्त	दुःखी के प्रति सहानुभूति करना	२७३
२. सुखित सुत्त	सुखी के प्रति सहानुभूति करना	२७३
३. तिससि सुत्त	आदि का पता नहीं, समुद्रों के जल में खून ही अधिक	२७३
४. माता सुत्त	माता न हुए सत्व असम्भव	२७४
५-९. पिता सुत्त	पिता न हुए सत्व असम्भव	२७४
१०. वेपुल्लपव्वत सुत्त	वेपुल्लपव्वत की प्राचीनता, सभी संस्कार अनित्य हैं	२७४

चौथा परिच्छेद

१५ काश्यप संयुत्त

१. मन्तुट्ट सुत्त	प्राप्त चीवर आदि से सन्तुष्ट रहना	२७६
२. अनोत्तापी सुत्त	आतापी और ओत्तापी को ही ज्ञान-प्राप्ति	२७६
३. चन्दोपम सुत्त	चौद की तरह कुलों में जाना	२७७
४. कुल्लपग सुत्त	कुलों में जाने योग्य भिक्षु	२७८
५. जिण्ण सुत्त	आरण्यक होने के लाभ	२७८
६. पठम ओवाद्द सुत्त	धर्मोपदेश सुनने के लिये अयोग्य भिक्षु	२७९
७. दुत्तिय ओवाद्द सुत्त	धर्मोपदेश सुनने के लिये अयोग्य भिक्षु	२८०
८. तत्तिय ओवाद्द सुत्त	धर्मोपदेश सुनने के लिये अयोग्य भिक्षु	२८०
९. ज्ञानाभिज्ञा सुत्त	ध्यान-अभिज्ञा में काश्यप बुद्ध-सुल्य	२८१
१०. उपस्सय सुत्त	थुल्लतिस्सा भिक्षुणी का संघ से बहिष्कार	२८२
११. चीवर सुत्त	आनन्द 'कुमार' जैसे, थुल्लनन्दा का संघ से बहिष्कार	२८३
१२. परम्मरण सुत्त	अव्याकृत, चार आर्य-सत्य	२८५
१३. सद्धम्मपतिरूपक सुत्त	नकली धर्म से सद्धर्म का लोप	२८५

पाँचवाँ परिच्छेद

१६. लाभसत्कार संयुत्त

पहला भाग	:	प्रथम वर्ग
१. दारुण सुत्त	लाभसत्कार दारुण है	२८७
२. बालिस सुत्त	लाभसत्कार दारुण है, वशी की उपमा	२८७
३. कुम्म सुत्त	लाभादि भयानक हैं, कछुआ और व्याधा की उपमा	२८८
४. दीघलोमी सुत्त	लम्बे बालवाले मेंढे की उपमा	२८८
५. एलक सुत्त	लाभसत्कार से आनन्दित होना अहितकर है	२८८
६. असनि सुत्त	बिजली की उपमा और लाभसत्कार	२८९
७. दिट्ठ सुत्त	बिपैला तीर	२८९
८. सिगाल सुत्त	रोगी शृगाल की उपमा	२८९

९. बेरम्ब सुप्त	इन्द्रियों में संयम रखना बेरम्ब वायु की उपमा	२८९
१०. सराभा सुप्त	कामसत्कार वाङ्मय है	२९०

दूसरा भाग

।

द्वितीय धर्म

१. पठम पाठी सुप्त	कामसत्कार की भर्त्सकता	२९१
२. द्विपम पाठी सुप्त	कामसत्कार की भर्त्सकता	२९१
३. १०. सिद्धी सुप्त	कामसत्कार की भर्त्सकता	२९१

तीसरा भाग

।

तृतीय धर्म

१. मातृगाम सुप्त	कामसत्कार वाङ्मय है	२९२
२. कन्याधी सुप्त	कामसत्कार वाङ्मय है	२९२
३. पुत्र सुप्त	कामसत्कार में न रईसता सुख के आदर्श आशय	२९२
४. पक्षीया सुप्त	कामसत्कार में न रईसता सुख की आदर्श आशय	२९२
५. पठम सममन्त्राङ्ग सुप्त	कामसत्कार के पदार्थ दोष-ज्ञान से मुक्ति	२९३
६. द्विपम सममन्त्राङ्ग सुप्त	कामसत्कार के पदार्थ दोष-ज्ञान से मुक्ति	२९३
७. तृतिम सममन्त्राङ्ग सुप्त	कामसत्कार के पदार्थ दोष-ज्ञान से मुक्ति	२९३
८. चरि सुप्त	कामसत्कार काक की छेद देता है	२९३
९. रक्त सुप्त	कामसत्कार की रस्ती काक की छेद देती है	२९३
१०. मिश्र सुप्त	कामसत्कार आईए के छेद मी बिम्बकारक	२९४

चौथा भाग

।

चतुर्थ धर्म

१. मिश्र सुप्त	कामसत्कार के कारण संयम में फूट	२९५
२. मूक सुप्त	पुण्य के मूक का करना	२९५
३. बन्धु सुप्त	कुशल धर्म का करना	२९५
४. सुकथम्भ सुप्त	सुख धर्म का करना	२९५
५. पक्ष्म सुप्त	संयम के बंध के छेद कामसत्कार का उत्पन्न होना	२९५
६. रथ सुप्त	संयम का कामसत्कार अमकी हानि के छेद	२९६
७. माता सुप्त	कामसत्कार वाङ्मय है	२९६
८-१३. पिता सुप्त	कामसत्कार वाङ्मय है	२९६

छठों परिच्छेद

१७ राहुल संयुक्त

पहला भाग

।

प्रथम धर्म

१. वस्तु सुप्त	इन्द्रियों में अनित्य सुख अनाराम के भजन से बिमुक्ति	२९७
२. रूप सुप्त	रूप में अनित्य सुख अनाराम के भजन से बिमुक्ति	२९७
३. विज्ञान सुप्त	विज्ञान में अनित्य सुख अनाराम के भजन से मुक्ति	२९८
४. सत्त्व सुप्त	संयम का भजन	२९८
५. वेद सुप्त	वेद का भजन	२९८
६. मन्त्र सुप्त	मन्त्र का भजन	२९८

७. सञ्चेतना सुत्त	सञ्चेतना का मनन	२९८
८. तण्हा सुत्त	तृष्णा का मनन	२९८
९. धातु सुत्त	धातु का मनन	२९८
१०. स्खन्ध सुत्त	स्खन्ध का मनन	२९८

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

१. चक्खु सुत्त	अनित्य-दुःख-अनात्म की भावना	२९९
२-१०. रूप सुत्त	अनित्य-दुःख-अनात्म की भावना	२९९
११. अनुसय सुत्त	सम्यक् मनन से मानानुशय का नाश	२९९
१२. अपगत सुत्त	ममत्व के त्याग से मुक्ति	३००

सातवाँ परिच्छेद

१८. लक्षण संयुत्त

पहला भाग

प्रथम वर्ग

१. अट्टिपेसि सुत्त	अस्थि-कंकाल, गौहत्या का दुष्परिणाम	३०१
२. गोघातक सुत्त	मासपेशी, गौहत्या का दुष्परिणाम	३०२
३. पिण्डसाकुणी सुत्त	पिण्ड और चिदिमार	३०२
४. निच्छवोरविभि सुत्त	'खाल उतारा और भेड़ों का कसाई	३०२
५. असिसूकरिक सुत्त	तलवार और सूअर का कसाई	३०२
६. सत्तिमागवी सुत्त	वर्छी-जैसा लोम और बहेलिया	३०२
७. उसुकारणिक सुत्त	बाण-जैसा लोम और अन्यायी हाकिम	३०२
८. सूचि सारथी सुत्त	सुई-जैसा लोम और सारथी	३०३
९. सूचक सुत्त	सुई-जैसा लोम और सूचक	३०३
१०. गामकूटक सुत्त	दुष्ट गाँव का पञ्च	३०३

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

१. कूपनिसुग्ग सुत्त	परस्त्री-भ्रामन करनेवाला क्यूँ में गिरा	३०४
२. गूथखादी सुत्त	गूह खाने वाला दुष्ट ब्राह्मण	३०४
३. निच्छवित्थी सुत्त	खाल उतारी हुई छिनाल स्त्री	३०४
४. मगलित्थी सुत्त	रमल फेंकने वाली मगुली स्त्री	३०४
५. ओकिलिनी सुत्त	सूखी—सौत पर अगर फेंकनेवाली	३०४
६. सीसछिन्न सुत्त	सिर कटा हुआ ढाकू	३०५
७. भिक्षु सुत्त	भिक्षु	३०५
८. भिक्षुनी सुत्त	भिक्षुणी	३०५
९. सिक्खमाना सुत्त	शिक्ष्यमाणा	३०५
१०. सामणेरे सुत्त	श्रामणेरे	३०५
११. सामणेरी सुत्त	श्रामणेरी	३०५

आठवाँ परिच्छेद

१९ औपम्य संयुक्त

१ कूर सुत	समी अकुसल भविष्यामूक है	१ १
२ नक्षसिद्ध सुत	प्रमाद प करमा	१ १
३ कुल सुत	मैत्री-भावना	१ १
४ बोद्धा सुत	मैत्री-भावना	१ ७
५ सति सुत	मैत्री भावना	१ ७
६ यमुम्माह सुत	अप्रमाद के साथ बिहरना	१ ७
७ भाजी सुत	गम्भीर चर्मों में मल कणामा मविष्य कर्म	१ ८
८ कर्म्मिण सुत	ककरी के बने तब पर सोना	१ ८
९ बाग सुत	काकचरहित भोजन करना	१ ९
१० विकार सुत	संनम के साथ मिश्रात्म करना	१ ९
११ पद्म सिगाळ सुत	अप्रमाद के साथ बिहरना	१ १
१२ वृत्ति सिगाळ सुत	कृत्य होना	१ १

नवाँ परिच्छेद

२० मिश्र संयुक्त

१ कोकिल सुत	आर्म मौन-भाव	१ ११
२ कपतिष्ठ सुत	सारिपुत्र को लोक नहीं	१ ११
३. पद सुत	अप्रमादकों की परस्पर स्तुति आरम्भ-कीर्ति	१ १२
४ नव सुत	शिक्षिता से निर्वाण की प्राप्ति नहीं	१ १२
५ सुजात सुत	शुद्ध द्वारा सुजात की प्रशंसा	१ १२
६ भद्रिण सुत	शरीर से नहीं ज्ञान से बचा	१ १३
७ विद्या सुत	धर्म का उपदेश करे	१ १३
८ गन्ध सुत	धर्म को उपदेश	१ १५
९ विस्स सुत	नहीं शिक्षणा उत्तम	१ १५
१० भेरवाम सुत	जलका रहने काका कीन ?	१ १६
११ कपिण सुत	आनुष्मान् कपिण के पुत्रों की प्रशंसा	१ १६
१२ सदाव सुत	दो कविनाम मिश्र	१ १७

तीसरा खण्ड

खन्ध वर्ग

पहला परिच्छेद

२१. स्कन्ध संयुक्त

मूल पण्णासक

पहला भाग

१. नकुलपिता सुत्त
२. देवदह सुत्त
३. पठम हालिङ्गिकानि सुत्त
४. दुतिय हालिङ्गिकानि सुत्त
५. समाधि सुत्त
६. पटिसल्लान सुत्त
७. पठम उपादान परितस्सना सुत्त
८. दुतिय उपादान परितस्सना सुत्त
९. पठम अतीतानागत सुत्त
१०. दुतिय अतीतानागत सुत्त
११. ततिय अतीतानागत सुत्त

नकुलपिता वर्ग

- | | |
|---------------------------------|-----|
| चित्त का आतुर न होना | ३२१ |
| गुरु की शिक्षा, छन्द-राग का दमन | ३२२ |
| मागन्दिदय-प्रश्न की व्याख्या | ३२४ |
| शक्र-प्रश्न की व्याख्या | ३२६ |
| समाधि का अभ्यास | ३२६ |
| ध्यान का अभ्यास | ३२७ |
| उपादान और परितस्सना | ३२७ |
| उपादान और परितस्सना | ३२८ |
| भूत और भविष्यत् | ३२८ |
| भूत और भविष्यत् | ३२९ |
| भूत और भविष्यत् | ३२९ |

दूसरा भाग

अनित्य वर्ग

- | | | |
|------------------------|-------------------|-----|
| १. अनित्य सुत्त | अनित्यता | ३३० |
| २. दुक्ख सुत्त | दु ख | ३३० |
| ३. अनत्त सुत्त | अनात्म | ३३० |
| ४. पठम यदनिच्च सुत्त | अनित्यता के गुण | ३३० |
| ५. दुतिय यदनिच्च सुत्त | दु ख के गुण | ३३१ |
| ६. ततिय यदनिच्च सुत्त | अनात्म के गुण | ३३१ |
| ७. पठम हेतु सुत्त | हेतु भी अनित्य है | ३३१ |
| ८. दुतिय हेतु सुत्त | हेतु भी दु ख है | ३३१ |
| ९. ततिय हेतु सुत्त | हेतु भी अनात्म है | ३३१ |
| १०. आनन्द सुत्त | निरोध किसका ? | ३३२ |

तीसरा भाग

भार वर्ग

- | | | |
|------------------|------------------------------------|-----|
| १. भार सुत्त | भार को उतार फेंकना | ३३३ |
| २. परिज्झा सुत्त | परिज्ञेय और परिज्ञा की व्याख्या | ३३३ |
| ३. अभिजान सुत्त | रूप को समझे बिना दु ख का क्षय नहीं | ३३४ |
| ४. छन्दराग सुत्त | छन्दराग का त्याग | ३३४ |

५. पठम अस्ताद सुक्त	रुपादि का अस्ताद	१३४
६. द्वितीय अस्ताद सुक्त	आस्ताद की खोज	१३५
७. तृतीय अस्ताद सुक्त	आस्ताद से ही आसक्ति	१३५
८. अग्निवन्दन सुक्त	अग्निवन्दन से हुआ की उत्पत्ति	१३५
९. उप्याद सुक्त	हय की उत्पत्ति हुआ का अत्याद है	१३६
१०. अथमूक सुक्त	हुम्ब का मूक	१३६
११. परमगु सुक्त	अथमगुणा	१३६

बीया भाग

१. पठम न तुम्हाक सुक्त	बी अथवा नहीं उत्तम त्याग	१३७
२. द्वितीय न तुम्हाक सुक्त	बी अथवा नहीं उत्तम त्याग	१३७
३. पठम मिश्र सुक्त	अनुवाद के अनुसार समझा आता	१३७
४. द्वितीय मिश्र सुक्त	अनुवाद के अनुसार मापना	१३८
५. पठम आगन्ध सुक्त	किन्ना अत्याद अथ और विपरिभास ?	१३८
६. द्वितीय आगन्ध सुक्त	किन्ना अत्याद अथ और विपरिभास ?	१३९
७. पठम अनुबन्ध सुक्त	विरक्त होकर विहरना	१३९
८. द्वितीय अनुबन्ध सुक्त	अभित्य समझना	१४
९. तृतीय अनुबन्ध सुक्त	हुम्ब समझना	१४
१०. चतुर्थ अनुबन्ध सुक्त	अद्याय समझना	१४

पौषर्षी भाग

१. अथर्वीय सुक्त	अथवा आधार अथ वनवा	१४१
२. पवित्रा सुक्त	सत्कथ की उत्पत्ति और निरोध का मार्ग	१४१
३. पठम अभिष्वक्ता सुक्त	अभिष्वक्ता	१४२
४. द्वितीय अभिष्वक्ता सुक्त	अभिष्वक्ता	१४२
५. समनुपस्सता सुक्त	आपना माकसे से ही अस्मि की अभिषा	१४२
६. अथ सुक्त	पौष स्वम्ब	१४३
७. पठम लोण सुक्त	पचाई का ज्ञान	१४३
८. द्वितीय लोण सुक्त	अमय और आच्छाद की है	१४४
९. द्वितीय अग्निवन्दन सुक्त	आगन्ध का अथ बीसे ?	१४४
१०. द्वितीय अग्निवन्दन सुक्त	अथ का अथार्थ मगन	१४५

दूसरा परिच्छेद

मन्त्रिम पण्णासक

पहला भाग

१. अथ सुक्त	अवास्तव विमुक्त है	१४१
२. बीज सुक्त	पौष प्रकार के बीज	१४१
३. अथ सुक्त	माकसे का अथ बीसे ?	१४४
४. अथादाय वरिष्ठ सुक्त	अथादाय स्वर्णों की व्याख्या	१४८

५. सत्तद्धान सुत्त	मात स्थाओं में कुशल ही उत्तम पुरुष है	३४९
६. बुद्ध सुत्त	बुद्ध और प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु में भेद	३५१
७. पञ्चवर्गिय सुत्त	अनित्य, दुःख, अनात्म का उपदेश	३५१
८. महालि सुत्त	सत्त्वों की शुद्धि का हेतु, पूर्णकाश्यप का अहेतु-वाद	३५२
९. आदित्त सुत्त	रूपादि जल रहा है	३५३
१०. निरुत्तिपय सुत्त	तीन निरुत्तिपथ सदा एक-सा रहते हैं	३५३

दूसरा भाग

अर्हत् वर्ग

१. उपादिय सुत्त	उपादान के त्याग से मुक्ति	३५४
२. मज्झिमान सुत्त	मार से मुक्ति कैसे ?	३५४
३. अभिनन्दन सुत्त	अभिनन्दन करते हुए मार के बन्धन में	३५५
४. अनिच्छ सुत्त	छन्द का त्याग	३५५
५. दुक्ख सुत्त	छन्द का त्याग	३५५
६. अनत्त सुत्त	छन्द का त्याग	३५५
७. अनत्तनेय्य सुत्त	छन्द का त्याग	३५५
८. राजनीयसण्ठित सुत्त	छन्द का त्याग	३५५
९. राध सुत्त	अहंकार का नाश कैसे ?	३५६
१०. सुराध सुत्त	अहंकार से चित्त की विमुक्ति कैसे ?	३५६

तीसरा भाग

खज्जनीय वर्ग

१. अस्वाद सुत्त	आस्वाद का यथार्थ ज्ञान	३५७
२. पठम समुदय सुत्त	उत्पत्ति का ज्ञान	३५७
३. दुतिय समुदय सुत्त	उत्पत्ति का ज्ञान	३५७
४. पठम अरहन्त सुत्त	अर्हत् सर्वश्रेष्ठ	३५७
५. दुतिय अरहन्त सुत्त	अर्हत् सर्वश्रेष्ठ	३५८
६. पठम सीह सुत्त	बुद्ध का उपदेश सुन देवता भी भयभीत हो जाते हैं	३५८
७. दुतिय सीह सुत्त	देवता दूर ही से प्रणाम करते हैं	३५९
८. पिण्डोल सुत्त	लोभी की मुर्दाही से तुलना	३६१
९. पारिलेय्य सुत्त	आश्रवों का क्षय कैसे ?	३६३
१०. पुण्णमा सुत्त	पञ्चस्कन्धों की व्याख्या	३६५

चौथा भाग

स्थविर वर्ग

१. आनन्द सुत्त	उपादान से अहंभाव	३६७
२. तिस्स सुत्त	राग-रहित को शोक नहीं	३६७
३. थमक सुत्त	मृत्यु के बाद अर्हत् क्या होता है ?	३६९
४. अनुराध सुत्त	दुःख का निरोध	३७२
५. घक्कलि सुत्त	जो धर्म देखता है, वह बुद्ध को देखता है, घक्कलि द्वारा आत्म-हत्या	३७३
६. अस्सजि सुत्त	वेदनाओं के प्रति आसक्ति नहीं रहती	३७५
७. खेमक सुत्त	उदय-व्यय के मनन से मुक्ति	३७७

४ छत्र सुच	बुद्ध का मध्यम मार्ग	१७९
५ पदम राहुक सुच	पञ्चस्कन्ध के शाव से अहंकार से मुक्ति	१८०
६ द्वितीय राहुक सुच	किछके ज्ञान से मुक्ति ?	१८०

पाँचवाँ भाग

	पुण्य दण	
१ नदी सुच	अभित्यक्ता के शाव से पुनर्जन्म नहीं	१८१
२ पुण्य सुच	बुद्ध संसार से अनुपछित रहते हैं	१८१
३ केन सुच	शरीर में कोई सार नहीं	१८२
४ गोमय सुच	सभी संस्कार अभित्य हैं	१८३
५ बलसिद्ध सुच	सभी संस्कार अभित्य हैं	१८४
६ सामुद्रक सुच	सभी संस्कार अभित्य हैं	१८५
७ पदम गह्वर सुच	अविद्या में पड़े प्राणिनों के दुःख का अन्त नहीं	१८५
८ द्वितीय गह्वर सुच	विरम्वर आत्मचिन्तन करो	१८६
९ नाव सुच	भावना से आसनों का क्षय	१८६
१० सञ्ज्ञा सुच	अभित्य-संज्ञा की भावना	१८६

तीसरा परिच्छेद

चूळ पण्णासक

पहला भाग

	अन्त दण	
१ अन्त सुच	चार अन्त	१८९
२ हुक्क सुच	चार भावेक्षण्य	१८९
३ संस्कन्ध सुच	संस्कन्ध	१९०
४ परिशेष सुच	परिशेष धर्म	१९०
५ पदम समल सुच	पाँच ज्ञपादाव स्कन्ध	१९०
६ द्वितीय समल सुच	पाँच ज्ञपादाव स्कन्ध	१९०
७ छोटापम्ब सुच	छोटापम्ब को परमज्ञान की प्राप्ति	१९०
८ बरदा सुच	वर्ष्य	१९१
९ पदम चम्बराय सुच	चम्बराय का त्याग	१९१
१० द्वितीय चम्बराय सुच	चम्बराय का त्याग	१९१

दूसरा भाग

	धर्मकथिक वर्ग	
१ पदम मिक्खु सुच	अविद्या क्या है ?	१९२
२ द्वितीय मिक्खु सुच	विद्या क्या है ?	१९२
३ पदम कथिक सुच	कोई धर्मकथिक कैसे होता ?	१९२
४ द्वितीय कथिक सुच	कोई धर्मकथिक कैसे होता ?	१९३
५ चम्बराय सुच	चम्बराय	१९३
६ पदम परिमुक्खित सुच	रूप के बर्णार्थ ज्ञान से पुनर्जन्म नहीं	१९३
७ द्वितीय परिमुक्खित सुच	रूप के बर्णार्थ ज्ञान से पुनर्जन्म नहीं	१९३
८ सञ्जीव सुच	संयोग	१९४

९. उपादान सुत्त
१०. सील सुत्त
११. सुतवा सुत्त
१२. पठम कप्प सुत्त
१३. दुत्तिय कप्प सुत्त

- उपादान
- शीलवान् के मनन-योग्य धर्म
- श्रुतवान् के मनन-योग्य धर्म
- अहंकार का त्याग
- अहंकार के त्याग से मुक्ति

- ३९४
- ३९४
- ३९५
- ३९५
- ३९५

तीसरा भाग

: अविद्या वर्ग

१. पठम समुदयधम्म सुत्त
२. दुत्तिय समुदयधम्म सुत्त
३. ततिय समुदयधम्म सुत्त
४. पठम अस्साद सुत्त
५. दुत्तिय अस्साद सुत्त
६. पठम समुदय सुत्त
७. दुत्तिय समुदय सुत्त
८. पठम कोट्ठित सुत्त
९. दुत्तिय कोट्ठित सुत्त
१०. ततिय कोट्ठित सुत्त

- अविद्या क्या है ?
- अविद्या क्या है ?
- विद्या क्या है ?
- अविद्या क्या है ?
- विद्या क्या है ?
- अविद्या
- विद्या
- अविद्या क्या है ?
- विद्या
- विद्या और अविद्या

- ३९६
- ३९६
- ३९६
- ३९७
- ३९७
- ३९७
- ३९७
- ३९७
- ३९८
- ३९८

चौथा भाग

: कुक्कुल वर्ग

१. कुक्कुल सुत्त
२. पठम अनिच्च सुत्त
- ३-४. दुत्तिय-ततिय-अनिच्च सुत्त
- ५-७. पठम-दुत्तिय-ततिय दुक्ख सुत्त
- ८-१०. पठम-दुत्तिय-ततिय अनत्त सुत्त
११. पठम कुलपुत्त सुत्त
१२. दुत्तिय कुलपुत्त सुत्त
१३. दुक्ख सुत्त

- रूप धधक रहा है
- अनित्य से इच्छा हटाओ
- अनित्य से छन्दराग हटाओ
- दुःख से राग हटाओ
- अनात्म से राग हटाओ
- वैराग्य-पूर्वक विहरना
- अनित्य बुद्धि से विहरना
- अनात्म-बुद्धि से विहरना

- ३९९
- ३९९
- ३९९
- ३९९
- ४००
- ४००
- ४००
- ४००

पाँचवाँ भाग

: दृष्टि वर्ग

१. अज्झत्तिक सुत्त
२. एत मम सुत्त
३. एसो अत्ता सुत्त
४. नो च मे सिया सुत्त
५. मिच्छा सुत्त
६. सक्काय सुत्त
७. अन्तानु सुत्त
८. पठम अभिनिवेस सुत्त
९. दुत्तिय अभिनिवेस सुत्त
१०. आनन्द सुत्त

- अध्यात्मिक सुख-दुःख
- 'यह मेरा है' की समझ क्यों ?
- 'आत्मा लोक है' की मिथ्यादृष्टि क्यों ?
- 'न मैं होता' की मिथ्यादृष्टि क्यों ?
- मिथ्या-दृष्टि क्यों उत्पन्न होती है ?
- सक्काय दृष्टि क्यों होती है ?
- आत्म-दृष्टि क्यों होती है ?
- संयोजन क्यों होते हैं ?
- संयोजन क्यों होते हैं ?
- सभी सत्कार अनित्य और दुःख हैं

- ४०१
- ४०१
- ४०२
- ४०२
- ४०२
- ४०२
- ४०३
- ४०३
- ४०३
- ४०३

दूसरा परिच्छेद

२२ राध संयुक्त

पहला भाग

:

प्रथम वर्ग

१ मार सुप्त	मार क्या है ?	४०५
२ सप्त सुप्त	भासक कैसे होता है ?	४०५
३ भवभेषि सुप्त	संसार की खोरी	४१
४ परिष्कल्प सुप्त	परिच्छेद परिज्ञा भार परिज्ञाता	४१
५ पठम समज सुप्त	अपादान-रुद्धों के शाता ही समज-मादाय	४१
६ दुतिव समज सुप्त	अपादान रुद्धों के शाता ही समज-मादाय	४३
७ सोतापम्भ सुप्त	छोतापम्भ निश्चय ही शाव प्राप्त करगा	४३
८ अराहा सुप्त	अपादान-रुद्धोंके क्यापै शायते अर्हत्पदी मासि००	४३
९ पठम छन्दराग सुप्त	रूप के छन्दराग का त्याग	४३
१० दुतिव छन्दराग सुप्त	रूप के छन्दराग का त्याग	४०८

दूसरा भाग

:

द्वितीय वर्ग

१ मार सुप्त	मार क्या है ?	४१
२ मारधम्म सुप्त	मार धर्म क्या है ?	४१
३ पठम अविरच सुप्त	अविरच क्या है ?	४१
४ दुतिव अविरच सुप्त	अविरच धर्म क्या है ?	४१
५-६ पठम-दुतिव दुक्क सुप्त	दुक्क क्या है	४१
७-८ पठम-दुतिव अन्न सुप्त	दुक्क अनात्म है	४१
९ अन्नधम्म सुप्त	अन्नधर्म क्या है ?	४१
१० अन्नधम्म सुप्त	अन्न धर्म क्या है ?	४१
११ समुद्वयधम्म सुप्त	समुद्वय धर्म क्या है ?	४१
१२ विरोधधम्म सुप्त	विरोध धर्म क्या है ?	४१

तीसरा भाग

:

आयाजन वर्ग

१ मार सुप्त	मार के प्रति दुष्क का त्याग	४११
२ मारधम्म सुप्त	मारधर्म के प्रति छन्दराग का त्याग	४११
३-४ पठम-दुतिव अविरच सुप्त	अविरच और अविरच धर्म	४११
५-६ पठम-दुतिव दुक्क सुप्त	दुक्क और दुक्क-धर्म	४११
७-८ पठम-दुतिव अन्न सुप्त	अनात्म और अनात्म-धर्म	४११
९-१० अन्नधम्म-अन्नधम्म सुप्त	अन्न धर्म और अन्न धर्म	४११
११ समुद्वयधम्म सुप्त	समुद्वय धर्म के प्रति छन्दराग का त्याग	४११
१२ विरोधधम्म सुप्त	विरोध धर्म के प्रति छन्दराग का त्याग	४११

७

चौथा भाग

:

अपनिषिद्ध वर्ग

१ मार सुप्त	मार से दुष्क हटाने	४११
-------------	--------------------	-----

२. मारधम्म सुत्त	मारधर्म से इच्छा हटाओ	४१३
३-४. पटम-दुत्तिय अनित्य सुत्त	अनित्य और अनित्य-धर्म	४१३
५-६. पटम-दुत्तिय दुक्ख सुत्त	दुःख और दुःख धर्म	४१३
७-८. पटम-दुत्तिय धनत्त सुत्त	अनात्म और अनात्म-धर्म	४१३
९-११. सपयय-समुदय सुत्त	क्षय, व्यय और समुदय	४१३
१२. निरोधधम्म सुत्त	निरोध-धर्म से इच्छा हटाओ	४१४

तीसरा परिच्छेद

२३. दृष्टि संयुत्त

पदला भाग	स्रोतापत्ति वर्ग	
१. वात सुत्त	मिथ्या-दृष्टि का मूल	४१५
२. एत मम सुत्त	मिथ्या दृष्टि का मूल	४१६
३. सो अत्त सुत्त	मिथ्या-दृष्टि का मूल	४१६
४. नो च मे सिया सुत्त	मिथ्या-दृष्टि का मूल	४१६
५. नयि सुत्त	उच्छेदवाद	४१६
६. करोतो सुत्त	अक्रियवाद	४१७
७. हेतु सुत्त	हेतुवाद	४१७
८. महादिट्ठ सुत्त	अकृततावाद	४१८
९. मस्सतो छोको सुत्त	शाश्वतवाद	४१८
१०. अमस्सतो सुत्त	अशाश्वतवाद	४१९
११. अन्तवा सुत्त	अन्तवान्वाद	४१९
१२. अनन्तवा सुत्त	अनन्त-वाद	४१९
१३. त जीवं त सरीरं सुत्त	'जो जीव है वही शरीर है' की मिथ्यादृष्टि	४१९
१४. अज्ज जीव अज्जं सरीर सुत्त	जीव अन्य है और शरीर अन्य है	४१९
१५. होति तथागतो परम्मरणा सुत्त	मरने के बाद तथागत फिर होता है	४१९
१६. न होति तथागतो परम्मरणा सुत्त	मरने के बाद तथागत नहीं होता	४१९
१७. होति च न च होति तथागतो परम्मरणा सुत्त	तथागत होता भी है, नहीं भी होता	४१९
१८. नेव होति न न होति सुत्त	तथागत न होता है, न नहीं होता	४१९

दूसरा भाग

द्वितीय गमन

१. वात सुत्त	मिथ्यादृष्टि का मूल	४२०
२-१८. सब्बे सुत्तन्ता पुब्बे आगता येव	...	४२०
१९. रूपी अत्ता होति सुत्त	'आत्मा रूपवान् होता है' की मिथ्यादृष्टि	४२०
२०. अरूपी अत्ता होति सुत्त	'अरूपवान् आत्मा है' की मिथ्यादृष्टि	४२०
२१. रूपी च अरूपी च अत्ता होति सुत्त	रूपवान् और अरूपवान् आत्मा	४२०
२२. नेवरूपी नारूपी अत्ता होति सुत्त	न रूपवान्, न अरूपवान्	४२१
२३. एकन्त सुखी अत्ता होति सुत्त	आत्मा एकान्त सुखी होता है	४२१
२४. एकन्त दुक्खी अत्ता होति सुत्त	आत्मा एकान्त दुःखी होता है	४२१

३५ सुख-दुःखी भत्ता होति सुख	आत्मा सुख-दुःखी होता है	४२१
३६ अनुपलभ्यमान भत्ता होति सुख	आत्मा सुख-दुःख से रहित होता है	४२१

तीसरा भाग

:

तृतीय गमन

१ बाढ सुख	मिथ्यादृष्टि का मूक	४२२
२-२५ सन्धे सुखान्ता पुनरे जागता येव		४२२
२६ भरीगो होति परम्परया सुख	'आत्मा भरोग होता है की मिथ्यादृष्टि	४२२

चौथा भाग

:

चतुर्थ गमन

१ बाढ सुख	मिथ्यादृष्टि का मूक	४२३
२-२६ सन्धे सुखान्ता पुनरे जागता येव		४२३

चौथा परिच्छेद

२४ ओक्कन्त संयुक्त

१ अस्तु सुख	अस्तु अमित्य है	४२४
२ रूप सुख	रूप अमित्य है	४२४
३ विज्ञान सुख	अस्तु-विज्ञान अमित्य है	४२४
४ कस्तु सुख	अस्तु-विज्ञान अमित्य है	४२४
५ वेदना सुख	वेदना अमित्य है	४२५
६ सन्ध्या सुख	रूप संज्ञा अमित्य है	४२५
७ चेतना सुख	चेतना अमित्य है	४२५
८ तन्हा सुख	तृप्या अमित्य है	४२५
९ पातु सुख	तृप्ती पातु अमित्य है	४२५
१० अन्ध सुख	पञ्चसङ्ख्य अमित्य है	४२५

पाँचवाँ परिच्छेद

२५ उत्पाद संयुक्त

१ अस्तु सुख	अस्तु-निरोध सं दुःख-निरोध	४२६
२ रूप सुख	रूप-निरोध से दुःख-निरोध	४२६
३ विज्ञान सुख	अस्तु विज्ञान	४२६
४ कस्तु सुख	स्पर्श	४२६
५ वेदना सुख	वेदना	४२६
६ सन्ध्या सुख	संज्ञा	४२७
७ चेतना सुख	चेतना	४२७
८ तन्हा सुख	तृप्या	४२७
९ पातु सुख	पातु	४२७
१० अन्ध सुख	अन्ध	४२७

छठाँ परिच्छेद

२६. क्लेश संयुक्त

१. चक्षु सुत्त	चक्षु का छन्दराग चित्त का उपक्लेश हे	४२८
२. रूप सुत्त	रूप	४२८
३. विज्जाण सुत्त	विज्ञान	४२८
४. सम्फस्म सुत्त	स्पर्श	४२८
५. वेदना सुत्त	वेदना	४२८
६. सञ्जा सुत्त	मंज्ञा	४२८
७. सचेतना सुत्त	चेतना	४२८
८. तण्हा सुत्त	तृष्णा	४२९
९. धावु सुत्त	श्रावु	४२९
१०. सन्ध सुत्त	स्कन्ध	४२९

सातवाँ परिच्छेद

२७. सारिपुत्र संयुक्त

१ विवेक सुत्त	प्रथम ध्यान की अवस्था में	४३०
२ अधितक्क सुत्त	द्वितीय ध्यान की अवस्था में	४३०
३ पीति सुत्त	तृतीय ध्यान की अवस्था में	४३१
४ उपेक्खा सुत्त	चतुर्थ ध्यान की अवस्था में	४३१
५ आकास सुत्त	आकाशानन्त्यायतन की अवस्था में	४३१
६ विज्जाण सुत्त	विज्ञानानन्त्यायतन की अवस्था में	४३१
७ आकिञ्चज्ज सुत्त	आकिञ्चन्यायतन की अवस्था में	४३१
८ नेवसञ्ज सुत्त	नैवसज्जानासज्जायतन की अवस्था में	४३१
९ निरोध सुत्त	सज्जावेदयितनिरोध की अवस्था में	४३२
१० सूचिमुखी सुत्त	भिक्षु धर्मपूर्वक आहार ग्रहण करते हैं	४३२

आठवाँ परिच्छेद

२८. नाग-संयुक्त

१ सुद्धिक सुत्त	चार नाग-योनियाँ	४३३
२ पणीतवर सुत्त	चार नाग-योनियाँ	४३३
३ पठम उपोसथ सुत्त	कुछ नाग उपोसथ रखते हैं	४३३
४-६ दुतिय-ततिय-चतुत्थ उपोसथ सुत्त	कुछ नाग उपोसथ रखते हैं	४३३
७ पठम तस्स सुतं सुत्त	नाग योनि में उत्पन्न होने का कारण	४३४
८-१० दुतिप-ततिय-चतुत्थ तस्स सुतं सुत्त	नाग-योनि में उत्पन्न होने का कारण	४३४
११ पठम दानुपकार सुत्त	नाग-योनि में उत्पन्न होने का कारण	४३४
१२-१४ दुतिय-ततिय-चतुत्थ दानुपकार सुत्त	नाग-योनि में उत्पन्न होने का कारण	४३४

नवौं परिच्छेद

२९ सुपर्ण-संयुक्त

१ सुदृक् सुत	चार सुपर्ण-योगिनी	४३५
२ हरन्ति सुत	हर के बलते हैं	४३५
३. पद्म हृत्पकारी सुत	सुपर्ण-योगि में उत्पन्न होने का कारण	४३५
४-६ हुतिप-सतिप-चतुस्य हृत्पकारी सुत	सुपर्ण-योगि में उत्पन्न होने का कारण	४३५
७ पद्म वायुपकार सुत	वायु आदि होने से सुपर्ण-योगि में	४३६
८-१ हुतिप-सतिप-चतुस्य वायुपकार सुत	वायु आदि होने से सुपर्ण-योगि में	४३६

दसवौं परिच्छेद

३० गन्धर्व-काय संयुक्त

१ सुदृक् सुत	गन्धर्व-काय वंश क्यों है ?	४३७
२ सुचरित सुत	गन्धर्व योगि में उत्पन्न होने का कारण	४३७
३ पद्म वायु सुत	वायु से गन्धर्व-योगि में उत्पत्ति	४३७
४-११ वायु सुत	वायु से गन्धर्व-योगि में उत्पत्ति	४३८
१२ पद्म वायुपकार सुत	वायु से गन्धर्व-योगि में उत्पत्ति	४३८
१३-२३ वायुपकार सुत	वायु से गन्धर्व-योगि में उत्पत्ति	४३८

ग्यारहवौं परिच्छेद

३१ बलाहक-संयुक्त

१ वेद्यका सुत	बलाहक वंश क्यों है ?	४३९
२ सुचरित सुत	बलाहक-योगि में उत्पन्न होने का कारण	४३९
३. पद्म वायुपकार सुत	वायु से बलाहक योगि में उत्पत्ति	४३९
४-७ वायुपकार सुत	वायु से बलाहक-योगि में उत्पत्ति	४३९
८ धीत सुत	धीत होने का कारण	४३९
९ उन्म सुत	गर्मी होने का कारण	४४
१० जल्य सुत	जल्य होने का कारण	४४
११ वात सुत	वायु होने का कारण	४४
१२ अग्नि सुत	अग्नि होने का कारण	४४

बारहवौं परिच्छेद

३२ बत्सगोत्र-संयुक्त

१ अज्जाय सुत	अज्जाय से जाया प्रकार की मिथ्या-दृष्टियों की उत्पत्ति	४४१
२-५, अज्जाय सुत	अज्जाय से मिथ्या-दृष्टियों की उत्पत्ति	४४१
६-१ अदस्मय सुत	अदस्मय से मिथ्या-दृष्टियों की उत्पत्ति	४४१
११-१५, अजमिममय सुत	अजमिममय होने से मिथ्या-दृष्टियों की उत्पत्ति	४४२

- १६-२० अननुयोध सुत्त
 २१-२५ अप्रतिवेध सुत्त
 २६-३० असत्त्वक्षण सुत्त
 ३१-३५ अनुपलक्षण सुत्त
 ३६-४० अपच्युपलक्षण सुत्त
 ४१-४५ असमपेक्षण सुत्त
 ४६-५० अपच्युपेक्षण सुत्त
 ५१. अपप्रत्यक्षक्रम सुत्त
 ५२-५५ अपच्युपेक्षण सुत्त

भली प्रकार न जानने से मिथ्या-दृष्टियों की उत्पत्ति
 अप्रतिवेध न होने से मिथ्या-दृष्टियाँ
 भली प्रकार विचार न करने से मिथ्या-दृष्टियाँ
 अनुपलक्षण से मिथ्या दृष्टियाँ
 अप्रत्युपलक्षण से मिथ्या-दृष्टियाँ
 अप्रत्योप-प्रेक्षण से मिथ्या-दृष्टियाँ
 अप्रत्योप-प्रेक्षण से मिथ्या-दृष्टियाँ
 अप्रत्यक्ष कर्म से मिथ्या-दृष्टियाँ
 अप्रत्यक्ष कर्म से मिथ्या-दृष्टियाँ

तेरहवाँ परिच्छेद

३३. ध्यान-संयुत्त

- १ समाधि समापत्ति सुत्त
 २. ठिति सुत्त
 ३. बुद्धान सुत्त
 ४ कलित सुत्त
 ५ आरम्भण सुत्त
 ६. गोचर सुत्त
 ७ अभिनीहार सुत्त
 ८ सक्कच्च सुत्त
 ९. सातच्च सुत्त
 १० सप्पाय सुत्त
 ११. ठिति सुत्त
 १२ बुद्धान सुत्त
 १३ कलित सुत्त
 १४. आरम्भण सुत्त
 १५ गोचर सुत्त
 १६ अभिनीहार सुत्त
 १७ सक्कच्च सुत्त
 १८. सातच्च सुत्त
 १९ सप्पाय सुत्त
 २०. ठिति सुत्त
 २१-२७ पुब्बे भागत सुत्तन्ता येव
 २८-३४ बुद्धान सुत्त
 ३५-४० कलित सुत्त
 ४१-४५ आरम्भण सुत्त
 ४६-४९ गोचर सुत्त
 ५०-५२ अभिनीहार सुत्त
 ५३-५४ सक्कच्च सुत्त
 ५५ सातच्च सुत्त

ध्यायी चार हैं
 स्थिति कुशल ध्यायी श्रेष्ठ
 व्युत्थान कुशल ध्यायी उत्तम
 कल्य कुशल ध्यायी श्रेष्ठ
 आलम्बन कुशल ध्यायी
 गोचर कुशल ध्यायी
 अभिनीहार-कुशल ध्यायी
 गौरव करनेवाला ध्यायी
 निरन्तर लगा रहनेवाला ध्यायी
 सप्पायकारी ध्यायी
 ध्यायी चार हैं
 स्थिति कुशल
 कल्य-कुशल
 आलम्बन कुशल
 गोचर-कुशल
 अभिनीहार-कुशल
 गौरव करने में कुशल
 निरन्तर लगा रहने वाला
 सप्पायकारी
 स्थिति-कुशल

ध्यायी चार हैं

संयुक्त-सूची

	१४
१ देवता संयुक्त	१-१०
२ देवता संयुक्त	११-१६
३ देवता संयुक्त	१७-२८
४ देवता संयुक्त	२९-३०
५ देवता संयुक्त	३१-३३
६ देवता संयुक्त	३४-३८
७ देवता संयुक्त	३९-४०
८ देवता संयुक्त	४१-४६
९ देवता संयुक्त	४७-४८
१० देवता संयुक्त	४९-५०
११ देवता संयुक्त	५१-५२
१२ देवता संयुक्त	५३-५४
१३ देवता संयुक्त	५५-५६
१४ देवता संयुक्त	५७-५८
१५ देवता संयुक्त	५९-६०
१६ देवता संयुक्त	६१-६२
१७ देवता संयुक्त	६३-६४
१८ देवता संयुक्त	६५-६६
१९ देवता संयुक्त	६७-६८
२० देवता संयुक्त	६९-७०
२१ देवता संयुक्त	७१-७२
२२ देवता संयुक्त	७३-७४
२३ देवता संयुक्त	७५-७६
२४ देवता संयुक्त	७७-७८
२५ देवता संयुक्त	७९-८०
२६ देवता संयुक्त	८१-८२
२७ देवता संयुक्त	८३-८४
२८ देवता संयुक्त	८५-८६
२९ देवता संयुक्त	८७-८८
३० देवता संयुक्त	८९-९०
३१ देवता संयुक्त	९१-९२
३२ देवता संयुक्त	९३-९४
३३ देवता संयुक्त	९५-९६
३४ देवता संयुक्त	९७-९८
३५ देवता संयुक्त	९९-१००

खण्ड-सूची

१. पहला खण्ड : सगाथा वर्ग
२. दूसरा खण्ड : निदान वर्ग
३. तीसरा खण्ड : खन्ध वर्ग

पृष्ठ

१-१९०
१९१-३१८
३१९-४४८

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स

संयुत्त-निकाय

पहला भाग

नल वर्ग

§ १. ओघतरण सुत्त (१ १ १)

तृष्णा की वाढ़ से पार जाना

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार कर रहे थे ।

तब, कोई देवता रात बीतने पर अपनी चमक से सारे जेतवन को चमकाते हुये जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया ।

एक ओर खड़ा हो वह देवता भगवान् से बोला — भगवान् ! वाढ़ (= ओघ) को भला, आपने कैसे पार किया ।'

आवुस ! मैंने बिना रुकते और बिना कोशिश करते वाढ़ को पार किया ।^१

भगवान् ! सो कैसे आपने बिना रुकते और बिना कोशिश करते वाढ़ को पार किया ?

आवुस ! यदि कहीं रुकने लगता, तो डूब जाता, यदि कोशिश करने लगता, तो वह जाता । आवुस ! इसी तरह मैंने बिना रुकते और बिना कोशिश करते वाढ़ को पार किया ।

[देवता —]

अहो ! चिरकाल के वाढ़ देखता हूँ,

ब्राह्मण को, जिसने निर्वाण पा लिया है,

बिना रुकते और बिना कोशिश करते,

जिसने ससार की तृष्णा^१ को पार कर लिया है ॥

१ वाढ़ चार हैं—काम की वाढ़, भव की वाढ़, मिथ्या-दृष्टि की वाढ़ और अविद्या की वाढ़ । पाँच काम गुणों (=रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श) के प्रति तृष्णा का होना 'काम की वाढ़' है । रूप और अरूप (देवताओं) के प्रति तृष्णा का होना भव की वाढ़ है । जो वासठ (देखो—दीघनिकाय, ब्रह्मजालसूत्र) मिथ्या धारणाएँ हैं, उन्हें 'दृष्टि की वाढ़' कहते हैं । चार आर्य सत्त्यों के ज्ञान का न होना 'अविद्या की वाढ़' है ।

२ बौद्धधर्म दो अन्तों का वर्जन कर मध्यम मार्ग के आचरण की शिक्षा देता है । कहीं रुक रहने से कामभोग और बहुत कोशिश करने से आत्मपीडन वाले तपश्चरण का निर्देश किया गया है । बुद्धने इन दोनों अन्तों को त्याग मध्यम मार्ग से बुद्धत्व का लाभ किया ।

३ विसत्तिकं—“रूपादि आलम्बनों में आसक्त-विसक्त होने के कारण तृष्णा विसक्तिका कही जाती है ।”—अटकथा ।

उस देवता से यह कहा । दास्ता (=बुद्ध) ने स्वीकार किया ।

तब यह देवता दास्ता की स्वीकृति को जान भगवान् को अभिवादन और प्रशिक्षण कर वहीं पर मन्तव्यार्ण हो गया ।

§ २ निमोक्ष सुत्त (१ १ २)

मोक्ष

भावस्ती में ।

यह देवता भगवान् से बोला— भगवान् ! जीवों के निर्मोक्ष=प्रमोक्ष=विशेष का क्या आप जानते हैं ?

आहुस ! जीवों के निर्मोक्ष=प्रमोक्ष=विशेष को मैं जानता हूँ ।

भगवान् ! तो कैसे आप जीवों के निर्मोक्ष=प्रमोक्ष=विशेष को जानते हैं ?

नृष्णमूकक कर्मवन्धन के मष्ट हो जाने से

संज्ञा और विज्ञान के भी मिट जाने से

बढ़नाशों का जो निन्द्य तथा क्षान्त हो जाना है ।

आहुस ! मैं ऐसा जानता हूँ,

जीवों का निर्मोक्ष,

प्रमोक्ष और विशेष ॥

§ ३ उपनेय्य सुत्त (१ १ ३)

सांसारिक भोग का त्याग

यह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

जिन्गी जीत रही है उन्न जीही है ;

उदापा से पचने का कोई उपाय नहीं ।

धनु के इस भव को देखते हुये

मुक्त देवैवाले पुष्पों को करे ॥

[भगवान्—]

जिन्गी जीत रही है उन्न जीही है ;

उदापा से पचने का कोई उपाय नहीं ।

धनु के इस भव का देखते हुये

शान्ति चाहनेवाले सांसारिक भोग छोड़ दे ॥

§ ४ अप्पेन्ति सुत्त (१ १ ४)

सांसारिक भोग का त्याग

यह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

बन्ध गुजर रहा है रातें जीत रही हैं ;

जिन्गी के जमाने एक बार एक निन्द्य रहे हैं ;

१ "तप्पे का अर्थ निराश ही है । निराश को पाकर एव निमु छ, प्रमु छ, विविध हो करते हैं । एतन्नि यत्तं निमोक्ष प्रमोक्ष और विद्वत् एक ही चीज है ।" — भाष्यम् ।

मृत्यु के इस भय को देखते हुये ।
सुख देनेवाले पुण्यों को करें ॥

[भगवान्—]

वक्त गुजर रहा है, रतें बीत रही हैं,
जिन्मगी के जमाने एक पर एक निकल रहे हैं ।
मृत्यु के इस भय को देखते हुये,
शान्ति चाहनेवाला सामारिक भोग छोड़ दे ।

§ ५. कतिछिन्द सुत्त (१. १. ५)

पाँच को काटे

• वह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —
कितने को काटे, कितने को छोड़े ?
कितने और अधिक का अभ्यास करे ?
कितने सगों को पार कर कोई भिक्षु,
“बाढ़ पार कर गया” कहा जाता है ?

[भगवान्—]

पाँच को काटे, पाँच को छोड़ दे,
पाँच और अधिक का अभ्यास करे,
पाँच सगों को पार कर भिक्षु,
“बाढ़ पार कर गया” कहा जाता है ॥

§ ६. जागर सुत्त (१. १. ६)

पाँच से शुद्धि

वह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

जागे हुआँ में कितने सोये है ?
सोये हुआँ में कितने जागे हैं ?
कितने से मैल लग जाता है ?
कितने से परिशुद्ध हो जाता है ?

[भगवान्—]

जागे हुआँ में पाँच सोये है,
सोये हुआँ में पाँच जागे है,

१ “पाँच अवर-भागीय बन्धन (सयोजन) को काटे, पाँच उर्ध्व-भागीय बन्धन छोड़े, यहाँ काटने और छोड़ने का एक ही अर्थ है..।

“ श्रद्धा आदि पाँच इन्द्रियों का अभ्यास करे । पाँच सग ये हैं—राग, द्वेष, मोह, मान, दृष्टि ।”—अटकया ।

पाँच से मँह लगा जाता है
पाँच से परिमुद हो जाता है ॥

§ ७ अप्पदिषिदित सुत्त (१ १ ७)

सर्वथं पुत्र

बह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

जिनने धर्मों को (= धर्म मरक) नहीं जाना
आ जैसे तैसे के मत में पड़कर बहक गये हैं ।
सोचे हुए वे नहीं जानते हैं,
उनके जागने का अब समय आ गया ॥

[भगवान्—]

जिनने धर्मों को पूरा पूरा जान लिया
आ जैसे तैसे के मत में पड़कर नहीं बहक गये ।
वे सम्मुख हैं सब कुछ जानते हैं
विषम ज्ञान में भी उनका आचरण सम रहता है ॥

§ ८ सुसम्मुद्ध सुत्त (१ १ ८)

समस्त पुत्र

बह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

जो धर्मों के विषय में विमुक्त मूढ़ हैं
जैसे तैसे के मत में पड़कर बहक गये हैं ।
सोचे हुए वे नहीं जानते
उनके जागने का अब समय आ गया ॥

[भगवान्—]

जो धर्मों के विषय में मूढ़ नहीं हैं
जैसे तैसे के मत में पड़कर नहीं बहक गये ॥
वे सम्मुख हैं सब कुछ जानते हैं
विषम ज्ञान में भी उनका आचरण सम रहता है ।

§ ९ नपानकाम सुत्त (१ १ ९)

मृत्यु के राज्य से पार

बह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

जमिमान चाहनेवाला अपना समय नहीं कर सकता

१ भद्रा आदि पाँच इन्द्रियों के जाग रहत पाँच नीचरग गोये रहते हैं इसी तरह पाँच मोक्षरत्नों के लोभे रहते पाप रहता जाता रहती है पाप नीचरगों (= कामच्छन्द, ध्याहार, रावानमृद, अज्ञान कीदृश विविधता) में मीटल्य जाता है । पाँच इन्द्रियों (= प्रज्ञा, नीच, प्रज्ञा, मृति, लक्ष्मि) में परिमुद हो जाता है । — अदृष्टता ।

बिना समाधिस्थ हुए चार मार्गों का ज्ञान^१ भी नहीं हो सकता,
जंगल में अकेला प्रसाद के साथ विहार करते हुये,
मृत्यु के राज्य को पार नहीं कर सकता ॥

[भगवान्—]

मान को छोड़, अच्छी तरह समाधिस्थ,
प्रसन्न चित्त वाला, सर्वथा विमुक्त हो,
जंगल में अकेला सावधान हो विहार करते हुये,
मृत्यु के राज्य को पार कर जाता है ॥

§ १०. अरञ्ज सुत्त (१ १. १०)

चेहरा खिला रहता है

... वह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

जंगल में विहार करने वाले, शान्त, ब्रह्मचारी,
तथा एक बार ही भोजन करनेवालों का चेहरा कैसे खिला रहता है ?

[भगवान्—]

बीते हुए का वे शोक नहीं करते,
आनेवाले पर बड़े मनसूखे नहीं बाँधते,
जो मौजूद है उसी से गुजारा करते हैं,
इसी से उनका चेहरा खिला रहता है ॥
आने वाले पर बड़े मनसूखे बाँध,
बीते हुए का शोक करते रह,
मूर्ख लोग फीके पड़े रहते हैं,
हरा नरकट जैसे कट जाने पर ॥

नल वर्ग समाप्त

१. मोनं—“चार आर्य-सत्य का ज्ञान, उमे जो धारण करे (=मुनाति) वह मोन ।”—अट्ठकथा ।

दूसरा भाग

नन्दन वर्ग

§ १ नन्दन सुप्त (१ ० १)

नन्दन-यन

मृगा मीने सुना—एक समय भगवान् धावल्ली में अनाथपिण्डिक के जेठवन बाराम में बिहार करते थे। वहाँ भगवान् ने मिथुनों को आमन्त्रित किया—“मिथुनों! “मन्त्र! कहकर उन मिथुनों ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले :—

मिथुनों! बहुत पढ़क त्रयविंश श्लोक का कोई देवता नन्दन-यन में अप्सराओं से हिक मिन्नकर विषय पौंच कामगुणों का भीग विन्यास करते हुये उस समय यह गाथा बोला :—

वे सुप्त नहीं था सफ़ते हैं जिनने मन्त्र को नहीं देखा।

त्रिंश श्लोक के पद्यस्त्री देवताओं के आवास को ॥

मिथुनों! उसक पत्नी कहने पर किसी दूसरे देवता ने उसकी बात में कगाकर यह गाथा कही—

मूर्ख! तुम नहीं जानते

असा बड़व कोग पछाते हैं।

सभी संस्कार धर्मिक हैं

अपक हीना और कब हो जाया उनका स्वभाव है

पैदा होकर वे गुजर जाते हैं

उनका विष्णु साम्न हो जाना ही परम-यह है ॥

§ २ नन्दति सुप्त (१ ० ०)

चिन्ता-रहित

यह देवता भगवान् के मन्त्रुय यह गाथा बोला :—

पुत्रोंकाल पुत्रों से आनन्द करता है

ईने ही गार्होपाना गीतों से आनन्द करता है

सांसारिक वस्तुओं से ही मनुष्य को बाराम होता है

जिन काई वस्तु नहीं उमे आनन्द भी नहीं ॥

[भगवान्—]

पुत्रोंकाल पुत्रों की चिन्ता में रहता है

ईने ही गार्होपाना गीतोंकी चिन्ता में रहता है

सांसारिक वस्तुओं से ही मनुष्य को चिन्ता होती है,
जिसे कोई वस्तु नहीं उसे चिन्ता भी नहीं।

§ ३. नत्थि पुत्तसम सुत्त (१. २. ३)

अपने ऐसा कोई प्यारा नहीं

...वह देवता भगवान् के समुग पर गाथा बोला —

पुत्र के ऐसा कुछ प्यारा नहीं,
गौवों के ऐसा कुछ धन नहीं,
सूर्य के ऐसा कोई प्रकाश नहीं,
समुद्र सबने महान् जलराशि है ॥

[भगवान्—]

अपने के ऐसा कुछ प्यारा नहीं,
धान्य के ऐसा कुछ धन नहीं,
प्रजा के ऐसा कोई प्रकाश नहीं,
वृष्टि सबने महान् जलराशि है ॥

§ ४. खत्तिथ सुत्त (१. २. ४)

बुद्ध श्रेष्ठ है

मनुष्यों में क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं,
चौपायों में बलिबर्द्ध,
भार्याओं में कुमारी श्रेष्ठ हैं,
और, पुत्रों में वह जो जेठा है ॥

[भगवान्—]

सम्बुद्ध मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं,
अच्छी तरह मिराया गया जानवर चापायों में,
सेवा करने वाली भार्याओं में श्रेष्ठ हैं,
और, पुत्रों में वह जो कहना माने ॥

§ ५. सन्तिकाय सुत्त (१. २. ५)

शान्ति से आनन्द

दुपहरिया के समय,
पक्षियों के (छिप कर) बैठ रहने पर,
सारा जगल झाँक-झाँक करता है,
उससे मुझे बड़ा डर लगता है ॥

[भगवान्—]

दुपहरिया के समय,
पक्षियों के बैठ रहने पर,

सारा जंगल झोंक-झोंक करता है,
उससे मुझे बड़ा आनन्द आता है ॥

४६ निहावन्दी सुप्त (१ २ ६)

निद्रा भीर तन्द्रा का रयाग

निद्रा तन्द्रा जैसाई सना
जो नहीं लगता मोहन के बाद मशा सा आ जाता,
इन्से ससार के बीबा को
आर्य-मार्ग का साक्षात्कार नहीं होता ॥

[भगवाम्—]

निद्रा तन्द्रा जैसाई सेना
जो नहीं लगता मोहन के बाद मशा सा आ जाता,
उत्साह-पूर्ण इन्हें क्या देने से
आर्य-मार्ग छूट हो जाता है ॥

४७ कुम्भ सुप्त (१ २ ७)

कछुआ के समान रक्षा

करना कठिन है सहना भी बड़ा कठिन है
जो मूर्ख है उससे भयम-भाव का पाटना भी,
यहाँ आबाएँ बहुत हैं
जहाँ मूर्ख लोग हार खाते हैं ॥

[भगवाम्—]

कितने दिनों तक भयम-भाव को पास
यदि अपने बिना की वस्तु में नहीं का बरकत;
पद-पद में किम्वद कावणा
इच्छामा के अर्थात् रहनेवाला ॥
कछुआ जैसे जंगल की अपनी रीति-रिवाज में
बिने ही भिन्न अपने में ही मन के बिचारी को समेट,
कल्पित किसी को कष्ट न देत हुए
शान्त हा गया किसी की भी निद्रा नहीं करता है ॥

४८ हिरि सुप्त (१ २ ८)

पाप में मज्जाता

संसार में बहुत कम ऐसे पुरुष हैं
जो पाप करने में लज्जाते हैं,
वे निद्रा में बिने ही भीक रहने हैं
जिसे निद्रावा हुआ घोड़ा काबुल में ॥

[भगवान्—]

थोड़े से भी पाप करने में जो लजते हैं,
मदः स्मृतिमान् होकर विचरण करते हैं,
वे दुःखों का अन्त पाकर,
विषम ध्यान में भी तम आचरण करते हैं ॥

§ ९. कुटिसुत्त (१. २. ९)

शोषणी का भी त्याग

क्या आपको कोई शोषणी नहीं ?
क्या आपको कोई घोंसला नहीं ?
क्या आपको कोई बाल-प्रच्छे (=सन्तान) नहीं ? ,
क्या बन्धन से छूटे हुए हैं ?

[भगवान्—]

नहीं, मुझे कोई शोषणी नहीं,
नहीं, मुझे कोई घोंसला नहीं,
नहीं, मुझे कोई बाल-प्रच्छे (=सन्तान) नहीं,
हाँ, मैं बन्धन से छूटा हुआ हूँ ॥

[देवता—]

आपकी शोषणी मैं किसे कहता हूँ ?
आपका घोंसला मैं किसे कहता हूँ ?
आपकी सन्तान मैं किसे कहता हूँ ?
आपका बन्धन मैं किसे कहता हूँ ?

[भगवान्—]

माता को मान कर तुम शोषणी कहते हो,
भार्या को मान कर तुम घोंसला कहते हो,
पुत्रों को मानकर तुम सन्तान कहते हो,
तृष्णा को मानकर तुम बन्धन कहते हो ॥

[देवता—]

ठीक है, आपको कोई शोषणी नहीं,
ठीक है, आपको कोई घोंसला नहीं,
ठीक है, आपको कोई सन्तान नहीं,
आप बन्धन से सचमुच मुक्त हैं ॥

§ १०. समिद्धि सुत्त (१. २. १०)

काल अज्ञात है, काम भोगों का त्याग

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह के तपोदाराम में विहार कर रहे थे ।

तब आयुष्मान् समुत्ति रात के मिनसारे उठकर रात चीने क लिय वहाँ तपोदा (आर्जुन) के वहाँ गये। तपोदा में रात को एक ही बीबर पहले हुए पाहर पड़े रात सुखा रहे थे।

तब कोई वृक्ष रात काठने पर अपनी चमक से सारे तपोदा को चमकाते हुए वहाँ आयुष्मान् समुत्ति थे वहाँ गया। साहर, आनस में पड़ा हो पड़ गया घोसा :-

मिथु दिम भोग' निपे आप मिछादन करते हैं
भोग करते आप मिछादन नहीं करते हैं
मिथुजी माग करते आप मिछादन करें
फल का पेने ही मत गावाँ ॥

[समुत्ति—]

काठ' को मैं नहीं जगता
काठ तो भजन है इतका पता नहीं
इसीसे बिना भोग किए मिछा करता हूँ,
मेरा समय नहीं तो रहा है ॥

तब जब देवदत्त वृक्षी पर उतर कर आयुष्मान् समुत्ति को पड़ा—मिथुजी! आपने वहाँ टीली भरसा में प्रमत्ता हो ली है। आपकी ता अभी पुमातापरा हो है। आपके बेग काठे हैं। इस वृक्षी उध में आपने गम्बर क कामों का स्वाद तक नहीं लिया है। मिथुजी! आप अभी लोक के पग प्रमत्ता पड़ें। सामने की बात को छोड़कर मुरत में होनेवाली के पीछे मत पड़ें।

मरी अनुप। मैं सामने की बात को छोड़कर मुरत में होनेवाली के पीछे नहीं चढ़ता हूँ। अनुप मैं तो उम्मे मुरत में होनेवाली बात को छोड़ सामने की बात के पीछे में लगा हूँ। भगवान् ने ना कहा है—सांसारिक काम भाग मुरत का पीछे है; उनक केर में पड़ने से पड़ा मुरत उठना पड़ता है वही पताची हाती है। उनमें बड़े ऐप है। भर पड़ परम देवत ही देखने का देवता है (असीरदिक) बिना किसी देवी के; जो बड़े हुए परम को अजमा सकना है; पड़ परम परम पड़ तक ले प्रमत्ता है (अभेदविका) बिना भोग हुए परम का अपने ही आप अनुभव करण है।

मिथुजी! भगवान् ने सांसारिक काम भोग को मुरत की पीछे करने कहा है? उनक केर में पड़ने से क्या मुरत उठना पड़ता है? कैसे वही परम भी हाती है? उनमें क्या बड़े-बड़े ऐप है? परम देवता ही परम करने का देता है? परम करने परम-पड़ तक ले जाता है? बिना भोग परम को अपने ही आप अनुभव करण है?

अनुप! मैं अभी बरा हरना ही प्रमत्ता हुआ हूँ। हुए परम बिना का मैं बिलर-पुष्ट नहीं बना सकना। पर भगवान् और गम्बर गम्बर राजपुष्ट के तपोदासाम में बिबर कर रह है। तो बरब बरा बकर हुए बात को पड़ें; बिना भगवान् वगैरें बना हो सामने।

मिथुजी! हम दोनों के जिये भगवान् ने मित्रता अमान नहीं। हमने बड़े-बड़े राजा की देवता उड़े बड़े बड़े इतक है। मिथुजी! यदि आज ही भगवान् के बग बकर हुए बात को पड़ें तो अलबत्ता मैं बड़े राजा सुनने के लिये आ सकना हूँ।

“अनुप बहुत अच्छे बड़े आयुष्मान् समुत्ति ने पग देवता को उतर दिया, फिर वहाँ आयुष्मान् का क अलबत्ता बड़े बड़े अलबत्ता है।

१. “अनुप बड़ा बड़ा भगवान्” —अनुप।

२. “अनुप बड़ा बड़ा भगवान्” —अनुप।

एक ओर बैठ आयुष्मान् समृद्धि-भगवान् से बोले :— भन्ते ! मैं रात के भिन्नसारे उठकर गात धोने के लिये जहाँ तपोदा है वहाँ गया । तपोदा में गात धो एक ही चीवर पहने हुये बाहर खड़े-खड़े गात सुना रहा था । भन्ते ! तब, कोई देवता रात चीतने पर अपनी चमक से सारे तपोदा को चमकाते हुये जहाँ मैं था वहाँ आया । आकर आकाश में खड़ा हो यह गाथा बोला :—

भिक्षु, बिना भोग किये आप भिक्षाटन करते हैं ,

भोग करके आप भिक्षाटन नहीं करते ।

भिक्षुजी ! भोग करके आप भिक्षाटन करें ,

काल को ऐसे ही मत गवाँवें ॥

भन्ते ! उसके ऐसा कहने पर मैंने देवता को इस गाथा में उत्तर दिया .—

काल को मैं नहीं ज.नता,

काल तो अज्ञ त है, इसका पता नहीं,

इसीसे, बिना भोग किये भिक्षा करता हूँ,

मेरा समय नहीं खो रहा है ॥

भन्ते, तब उस देवता ने पृथ्वी पर उतर कर मुझे कहा—भिक्षुजी ! आपने दही छोटी अवस्था में प्रव्रज्या ले ली है । आपकी तो अभी कुम.रावस्था ही है । आपके वेश अभी काले ह । इस चढ़ती उम्र में आपने ससार के कामों का स्वाद तब नहीं लिया है । भिक्षुजी ! आप अभी लोक के ऐश-आराम करें । सामने की घात को छोड़कर मुद्गत में होनेवाली के पीछे मत दोढ़ें ।

भन्ते ! उसके ऐसा कहने पर मैंने यह उत्तर दिया—नहीं आयुस ! मैं सामने की घात को छोड़ कर मुद्गत में होनेवाली के पीछे नहीं दोढ़ता हूँ । आयुस ! मैं तो उलटे मुद्गत में होनेवाली घात को छोड़ सामने की घात के फेर में लगा हूँ । भगवान् ने तो कहा है—सासारिक काम-भोग मुद्गत की चीज है, उनके पीछे पड़ने से बढ़ा दु ख उठाना पड़ता है, बड़ी परेशानी होती है, उनमें बड़े-बड़े ऐश हैं । और यह धर्म देखते ही देखते फल देनेवाला है, बिना किसी देरी के, जो चाहे इस धर्म को अजमा सकता है, यह धर्म परम-पद तक ले ज नेवाला है, बिना लोग इस धर्म को अपने आप ही अनुभव करते हैं ।

भन्ते ! मेरे ऐसा कहने पर उस देवता ने कहा [ऊपर के जैसा] तो अलव्यता मैं धर्म-देशना सुनने के लिए आ सकता हूँ । भन्ते ! यदि उम देवता ने सच कहा है तो वह अवश्य यहाँ कहीं पास में खड़ा होगा ।

इस पर उस देवता ने आयुष्मान् समृद्धि को यह कहा, “हाँ भिक्षुजी, पूछें । मैं पहुँच गया हूँ ।” तब भगवान् ने उस देवता को गाथा में कहा—

सभी जीव कहे जानेवाले संज्ञा भर के हैं,

उनकी स्थिति कहे जाने भर में हैं,

इस घात को बिना समझे,

लोग मृत्यु के अचीन हो जाते हैं ।

जो कहे भर को समझता है,

१ अक्खेय्य-सङ्गिनो—पाँच स्कन्धों के आधार पर किसी जीव की ख्याति होती है । इन स्कन्धों के परे कोई तात्त्विक आत्मा नहीं है ।

मिलाओ ‘मिलिन्द प्रश्न’ की रथ की-उपमा । जैसे चक्र, अरा, धुरा इत्यादि अवयवों के आधार पर ‘रथ’ ऐसी सज्ञा होती है, वैसे ही नाम, रूप, वेदना, सज्ञा और संस्कार इन पाँच स्कन्धों को लेकर कोई जीव जाना जाता है । —अनात्मवाद का आदेश किया गया है ।

बह भाषा की मिथ्या-रहि में नहीं पड़ता^१;
 उम (क्षीणाश्रय) मित्र को ऐसा कुछ रह नहीं जाता
 जिसमें उस पर कोई दोष आरोपित किया जाय^२ ॥

यह ! यदि ऐसे किसी (क्षीणाश्रय) को जानते हो तो कहो ।

मन्ते ! भगवान् इस संक्षेप में कहे गये का अर्थ में विस्तार पूर्वक नहीं समझता । यदि कृपा कर भगवान् इस संक्षेप से कहे गये का अर्थ विस्तारपूर्वक बतायें तो मैं समझ सँझूँ ।

[भगवान्—]

किसी क बराबर हूँ, किसी स ठीका हूँ, सबका नीचा हूँ,
 जो ऐसा मन में जाता है वह उसके कारण झगड़ सकता है,
 जो तीनों प्रकार से अपने चित्त को स्थिर रखता है
 उस बराबर या ठीका होने का उपाय नहीं होता ॥

यह ! यदि ऐसे किसी को जानते हो तो कहो ।

मन्ते ! भगवान् के संक्षेप से कहे गये इसका भी अर्थ में विस्तारपूर्वक नहीं समझता । यदि कृपा कर भगवान् इस संक्षेप से कहे गये का अर्थ विस्तार पूर्वक बतायें तो मैं समझ सँझूँ ।

[भगवान्—]

किसी राग द्वेष और माह को छोड़ दिया है
 जो फिर माहा के गर्म में नहीं पड़ता^३
 नाम रूप के प्रति होनैवासी सारी तुल्यता को धार करता है
 उस कहे गौतम के बुद्ध-मुक्त, तुल्य-रहित को
 छोड़ते रहने पर भी नहीं पड़ते
 वृत्ता कोण या मयुष्य इस लोक में या परलोक में
 स्वर्ग में या समी कर्कों में ॥

यह ! यदि ऐसे किसी को जानते हो तो कहो ।

मन्ते ! भगवान् के संक्षेप से कहे गये इसका विस्तारार्थ मैं बोल सकता हूँ—

पाप नहीं करे बचन से या मन से
 या कुछ भी शरीर से सारे संसार में
 स्थितिमान् धार संयम हो कामों को छोड़
 लक्ष्य करनेवाले बुद्धों को ब बड़ाय ॥

लब्धन वर्ग समाप्त

१. पौब रहस्यीं त पर कोइ आत्मा महा है; इन बात को भिन्ने अच्छी तरह जान किया है । इन स्थितियों के अनिरत मनसम और बुद्ध स्वभाव का लक्षणकार कर जो उनके प्रति सर्वथा तुल्य-रहित हो चुका है ।

२. 'ऐसा कोइ कारण नहीं रहता जिसमें उस क्षीणाश्रय महात्मा के चित्त में बाह्य वद वद लक्ष्य कि वद राग में रह्य हो कि वा मोह से मुक्त है ।' —अद्वयपा ।

३. मार्ग भज्यमाण—निर्वाण के मार्ग में मनु-बुद्धि की 'मान' से लक्ष्मी या लक्ष्मी है ।—अद्वयपा ।

तीसरा भाग

शक्ति (= भाग्य) वर्ग

§ १. सत्ति सुत्त (१. ३. १)

सत्क्राय-दृष्टि का प्रहाण

श्रावस्ती में ।

“ वह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

भाला लेकर जैसे कोई चढ़ आया हो ,
जैसे शिर के ऊपर आग लग गई हो ,
काम-भाग के प्रहाण के लिये,
स्मृतिमान् होकर भिक्षु विचरण करें ॥

[भगवान्—]

भाला लेकर जैसे कोई चढ़ आया हो ,
जैसे शिर के ऊपर आग लग गई हो ,
सत्क्राय-दृष्टि के प्रहाण के लिये
स्मृतिमान् होकर भिक्षु विचरण करें ॥

§ २. फुसती सुत्त (१ ३ २)

निर्दोष को दोष नहीं लगता

नहीं छूनेवाले को नहीं छूता है,
छूने वाले को छूता है,
इसलिये, छूनेवाले को छूता है,
निर्दोष पर दोष लगानेवाले को ॥

[भगवान्—]

जो निर्दोष पर दोष लगाता है,
जो शुद्ध पुरुष निष्पाप है उस पर ।
तो सारा पाप उसी मूर्ख पर पलट जाता है,
उलटी हवा में फँकी गई जैसे पतली धूल ॥

ॐ जिस (अर्हत) को किसी कर्म के प्रति आसक्ति नहीं है, उससे उस कर्म का विपाक (= फल) भी नहीं लगता । आसक्ति के साथ कर्म करनेवाले ससारी जीव को उसका विपाक लगता है ।

“कर्म को स्पर्श न करनेवाले को विपाक भी स्पर्श नहीं करता, जो कर्म को स्पर्श करता है उसे विपाक भी स्पर्श करता है ।” —अट्ठकथा ।

[भगवान्—]

सभी जगह से उस मन को हटाना नहीं है,
जो मन अपने वश में आ गया है,
जहाँ जहाँ पाप है,
वहाँ वहाँ से मन को हटाना है^१ ॥

§ ५. अरहन्त सुत्त (१. ३ ५)

अर्हत्त्व

जो भिक्षु कृतकृत्य हो अर्हत् हो गया है,
क्षीणाश्रव, जो अपने अन्तिम देह को धारण कर रहा है,
'मैं कहता हूँ' ऐसा भी वह कहता है,
'मुझे कहते हैं' ऐसा भी वह कहता है^२ ॥

[भगवान्—]

जो भिक्षु कृतकृत्य हो अर्हत् हो गया है,
क्षीणाश्रव, जो अपने अन्तिम देह को धारण कर रहा है,
'मैं कहता हूँ' ऐसा भी वह कहता है,
'मुझे कहते हैं' ऐसा भी वह कहता है ॥
(किन्तु) वह पण्डित लोगों की बोलचाल के कारण ही,
केवल व्यवहार-मात्र के लिये ऐसा प्रयोग करता है^३ ॥

[देवता—]

जो भिक्षु कृतकृत्य हो अर्हत् हो गया है,
क्षीणाश्रव, जो अपने अन्तिम देह को धारण कर रहा है,
क्या वह अभिमान के कारण,
'मैं कहता हूँ' ऐसा और
'मुझे कहते हैं' ऐसा भी कहता है ?

१ “देवता की मिथ्या धारणा को हटाने के लिए भगवान् ने यह गाथा कही । कुछ चित्त निवारण करने योग्य भी हैं, और कुछ चित्त अम्यास करने योग्य भी । : ‘दान दूँगा, शील की रक्षा करूँगा’ इत्यादि रूप से जो चित्त सयत हो गया है, उसका निवारण नहीं किन्तु अम्यास करना चाहिए । जहाँ-जहाँ पापमय चित्त उत्पन्न होता है, वहाँ-वहाँ से उसे हटाना उचित है ।” —अट्ठकथा ।

२ किसी अरण्य में निवास करने वाले एक देवता ने कुछ क्षीणाश्रव अर्हत् भिक्षुओं को आपस में ‘मैं कहता हूँ, मुझे कहते हैं, मेरा पात्र, मेरा चीवर’ आदि कहते सुना । यह सुनकर उसे शका हुई कि जब पंच स्कन्ध से परे कोई ‘आत्मा या जीव’ नहीं है तो ये अर्हत् ‘मैं, मेरा’ का व्यवहार क्यों करते हैं !

३ “लोकों समञ्ज कुसलो विदित्वा बोहारमत्तेन सो बोहरेय्याति”

जनसाधारण के व्यावहारिक प्रयोग के अनुसार ही वह ‘मैं, मेरा’ कहता है । इससे यह नहीं समझना चाहिए कि उसकी दार्शनिक ‘आत्म-दृष्टि’ हो गई है । ‘स्कन्ध’ भोजन करते हैं, स्कन्ध बैठते हैं, स्कन्धों का पात्र है, स्कन्धों का चीवर है आदि वहने से व्यवहार नहीं चल सकता । कोई समझेगा भी नहीं । इसीलिए ऐसा न कह लौकिक व्यवहार के अनुसार ही प्रयोग करता है ।

[भगवान्—]

विलम्ब मान ग्रहीत हो गया ह
 उम्हें कोई गौंठ नहीं
 उनके सारे मान भीर ग्रन्थिवाँ मछ हो चुकी है,
 वह पण्डित तुम्हा से ऊपर उठ जाता है;
 'मैं कहता हूँ' ऐसा भी वह कहता है
 'तुमसे कहते हैं' ऐसा भी वह कहता है
 (किन्तु) वह लोगों की बोलचाल के कारण ही
 केवल व्यवहार मात्र के लिये ऐसा प्रयोग करता ह ॥

§ ६ पञ्चोत्त सुच (१ ३ ६)

प्रद्योत

संसार में कितन प्रद्योत हैं
 जिससे काँक प्रकाशमान होता है ?
 पृष्ठों के किसे भगवान् के पाम आय
 हम उस किम जानें ?

[भगवान्—]

लोक में चार प्रद्योत हैं
 पौषर्षा वहाँ नहीं है
 दिन में सूरज तपता है
 रात में चँद सोभता ह
 भाग दिन भीर रात दोनों समब
 जगह-जगह पर रोशनी देती है;
 किन्तु समुद्र सभी प्रकाशों में अंध है
 वह आभा भलीकड़ होती है ॥

§ ७ सरामुच (१ ३ ७)

नाम रूप का निरोध

संसार की धारा वहाँ पहुँच कर आगे नहीं बढ़ती ?
 वहाँ भीर नहीं बह कर काटना ?
 वहाँ नाम भीर रूप वहाँ
 विप्लव ही विग्रह हो जान है ?

[भगवान्—]

जहाँ बरु हृषी अग्नि भीर बाहु प्रतिष्ठित नहीं होत
 वहाँ धारा रुक जाती है

१ 'तुम्हें' की आभा क्या है ? मान, प्रतिष्ठित भडा या प्रमदका आदि का जो आभा है, सभी
 वृत्त के प्रादुर्भाव के कारण उदयन होत वया अन्धोक्त प्रमाण ही है । —मदक्या ।

यही भँवर नहीं चकर काटना,
यही नाम और रूप दोनों,
विल्कुल ही निरुद्ध हो जाते हैं ॥

§ ८. महद्धन सुत्त (१. ३. ८)

तृष्णा का त्याग

महाधन वाले, महाभोग वाले,
देश के अधिपति राजा भी
एक दूसरे की सम्पत्ति पर लोभ करते हैं,
कामों में उनकी तृप्ति नहीं होती ॥
उनके भी लोक के प्रति उत्सुक बने रहने,
और संसार की धारा में बहते रहने पर,
भला ऐसे कौन होंगे जिनने अनुत्सुक हो,
संसार की तृष्णा को छोड़ दिया हो ?

[भगवान्—]

घर को छोड़, प्रमजित हो,
पुत्र, पशु और प्रिय को छोड़,
राग और द्वेष को भी छोड़,
अविद्या को सर्वथा हटा कर,
जो क्षीणाश्रव अर्हत् भिक्षु हैं,
वही लोक में अनुत्सुक हैं ॥

§ ९. चतुचक्र सुत्त (१. ३. ९)

यात्रा ऐसे होगी

चार चक्रों वाला, नव दरवाजों वाला,†
अशुचिपूर्ण, लोभ से भरा है ।
हे महावीर ! (मार्ग) कीचड़ कीचड़ हो गया है,
कैसे यात्रा होगी ?

[भगवान्—]

वैरभाव‡ और लोभ को छोड़,
इच्छा, लोभ, और पापमय विचार को ।
तृष्णा को एकदम जड़ से खोद,
ऐसे यात्रा होगी ॥

†: “चार चक्रों वाला” से अर्थ है चार हरियापथ (=खड़ा होना, बैठना, सोना और चलना) वाला ।”—अट्ठकथा ।

‡ नद्धि = उपनाह । “पहले क्रोध होता है, वही आगे बढ़कर वैरभाव (=उपनाह) हो जाता है ।”—अट्ठकथा ।

§ १० एभिज्झ सुत्त (१ ३ १०)

दुःख से मुक्ति

एहि मृग के समान बांध बान्धे हुआ भीर
 अस्वाहारी कोमल-रहित
 सिंह के समान अद्वैत चलने वाले विप्राप
 कर्मों में अवेष्टा-साध जिसके मिट गये हैं
 वेस आपके पास आकर बैठता हूँ—
 दुःख से छुटकारा कैसे हो सकता है ?

[भगवान्—]

संसार में पाँच काम-गुण हैं
 कर्मों से न बड़ा गया है;
 इन्हें उत्पन्न होने वाली इच्छाओं को हटा
 इसी प्रकार दुःख से छुटकारा होगा ॥

शक्ति धर्म समाप्त

चौथा भाग

सतुल्लपकायिक वर्ग

§ १. सन्निभसुत्त (१. ४ १)

सत्पुरुषों का साथ

ऐसा मैंने सुना । एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

तब, कुछ सतुल्लपकायिक देवता रात घीतने पर अपनी चमक से सारे जेतवन को चमकाते हुये जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़े हो गये ।

एक ओर खड़े हो, उनमें से एक देवता भगवान् को यह गाथा बोला,—

सत्पुरुषों के ही साथ बैठे,
सत्पुरुषों के ही साथ मिले जुले,
सत्पुरुषों के अच्छे धर्म जानने से,
कल्याण होता है, अहित नहीं ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

सत्पुरुषों के ही साथ बैठे,
सत्पुरुषों के ही साथ मिले जुले,
सन्तों के अच्छे धर्म जानने से ही,
प्रज्ञा प्राप्त होती है, अन्यथा नहीं ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

सन्तों के अच्छे धर्म जानने से,
शोक में पड़ कर भी शोक नहीं करता ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला .—

सन्तों के अच्छे धर्म जानने से,
यान्धवों में सबसे अधिक तेज वाला होता है ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

सन्तों के अच्छे धर्म जानने से,
जीवों की अच्छी गति होती है ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

सन्तों के अच्छे धर्म जानने से,
सत्त्व बड़े सुख से रहते हैं ॥

तब, दूसरे देवता ने भगवान् से यह कहा— भगवान् ! इनमें किसका कहना सबसे ठीक है ?

एक-एक इंग से समी का कहना ठीक है; तौ भी मेरी आर से सुनो :—

सत्युक्तों के साथ बैठे
सत्युक्तों के ही साथ मिला जुल
सन्तों के अच्छे घर्म खाने से
समी दुःख से दूर जाता है ॥

भगवान् ने यह कहा । संतुष्ट हो वे देखता भगवान् का अभिवादन और प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गए ।

४ २ पच्छरी सुंत् (१ ४ २)

कंजूसी का त्याग

एक समय भगवान् ध्यावल्ली में अनाद्यपिण्डिक के जेतवम आश्रम में विहार करते थे ।

तब कुछ सत्सुपकारिण देवता रत्न बीतने पर अपनी कमर से सारे जेतवम की कमरवले हुए वहाँ भगवान् के वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक और बड़े हो गये ।

एक और छोटे हो उनमें से एक देवता भगवान् को यह गाथा बोला :—

मात्सर्य से और प्रमाद से
समुप्य दान नहीं करता है,
पुण्य की भाँजीला रखने वाले
जाही पुण्य को दान करना चाहिए ॥

तब दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला :—

कंजूस जिसके घर से दान नहीं देता है
नहीं देने से उसे वह सब कमा ही रहता है,
भूख बीर प्यास—जिससे कंजूस करता है
वह उस सूर्य की जन्म प्रमान्तर में कमा रहता है ॥
इसकिय कंजूसी करना छोड़
पाप हटाने वाला पुण्य-कर्म दान करे
परछोड़ में लेबस अपना किया पुण्य ही
प्राप्ति का आधार होता है ॥

तब दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला :—

मरे दुर्गों में वे नहीं मरते
जो ग्राह बहते साधियों की तरह
बोही ली भी बीज को आपस में बाँट कर (खाते हैं);
वही सनातन धर्म है ॥
बोझा रहने पर भी कितना दान देते हैं
बहुत रहने पर भी कितने दान नहीं देते;
पीड़ा रहने पर भी जो दान दिया जाता है
वह हजार दिने गये भी भी बराबरी करता है ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

कठिन से कठिन दान कर देने वाले,
हुंकर काम को भी कर डालने वाले का,
मूर्ख लोग अनुकरण नहीं करते;
सन्तों की बात आसान नहीं होती ॥
इसीलिये, सन्तो की और मूर्खों की,
अलग अलग गति होती है,
मूर्ख नरक में पड़ते हैं,
और सन्त स्वर्ग-गामी होते हैं ॥

तब, दूसरे देवता ने भगवान् से पूछा, “भगवन् ! इनमें किसका कहना ठीक है ?”
एक-एक ढंग से सभी का कहना ठीक है, तौ भी मेरी ओर से सुनो —

वह बड़ा धर्म कमाता है जो बहुत तगी से रहते भी,
स्त्री को पोसते हुये अपने थोड़े ही से कुछ दान करता है,
हजारों दाता के सैकड़ों और हजारों का दान
- वैसे की कल्प भर भी बराबरी नहीं कर सकता ॥

तब, दूसरे देवता ने भगवान् को गाथा में कहा—

क्यों उनका बड़ा महार्घ दान,
उसके दान की बराबरी नहीं कर सकता ?
हजारों दाता के सैकड़ों और हजारों का दान,
वैसे की कला भर भी बराबरी क्यों नहीं कर सकता ?

तब, भगवान् ने उस देवता को गाथा में कहा —

मार, काट, दूसरोंको सता,
तथा और अनुचित कर्म करनेवाले,
जो दान करते हैं, उनका यह,
रुला और मारपीट कर दिया दान,
शांति से दिये गए दान की बराबरी नहीं कर सकता ॥
इसीलिये, हजारों दाता के सैकड़ों और हजारों का दान भी,
वैसे दान की कला भर बराबरी नहीं कर सकता ॥

§ ३. साधु सुत्त (१.४.३)

दान देना उत्तम है

श्रावस्ती में ।

तब, कुछ सतुल्लपकायिक देवता रात बीतने पर । एक ओर खड़े हो, उनमें से एक देवता ने भगवान् के सम्मुख यह उद्दान के शब्द कहे —

भगवन् ! दान कर्म सचमुच में बड़ा उत्तम है ।
कजूसी से और प्रमाद से,

मनुष्यों को दान नहीं दिया जाता,
पुण्य की जाकीर रखने वाले
शानी पुण्य को दान करना चाहिये ॥

तब, एक दूसरे देखता मैं भगवान् के सम्मुख यह उदाह क क्षण कहो—

भगवान् ! दान-कर्म बड़ा उत्तम है
धोड़े से भी दान देना बड़ा उत्तम है
कितने धोड़े रहने पर भी दान करते हैं,
बहुत रहने पर भी कितने पक्षी लेते
धोड़े में से निकाल कर जो दान दिया जाता है
वह हजार के दान के परावर है ॥

तब एक दूसरे देखता मैं भगवान् के सम्मुख उदाह के यह क्षण कहो—

भगवान् ! दान-कर्म बड़ा उत्तम है
धोड़े से भी दान देना बड़ा उत्तम है
अच्छा से दिया गया दान भी बड़ा उत्तम है
धर्म से कमाये गये का दान भी बड़ा उत्तम है ॥
जो धर्मानुष्ठान कमाकर दान देता है
उत्साह-पूर्वक परिश्रम करके अर्जित कर
वह दान की वैतरणी को काँच
दिग्ध स्त्रियों को प्राप्त होता है ॥

तब एक दूसरे देखता मैं भगवान् के सम्मुख उदाह के यह क्षण कहो—

भगवान् ! दान-कर्म बड़ा उत्तम है
धोड़े से भी दान देना बड़ा उत्तम है
अच्छा से दिया गया दान भी बड़ा उत्तम है
धर्म से कमाये गये का दान भी बड़ा उत्तम है
भीर, समस्त ब्रह्मण्ड दिया गया दान भी बड़ा उत्तम है ॥
अमल ब्रह्मण्ड कर दिये गये दान की ब्रह्म में प्रशंसा की है
संसार में जो वृक्षिणा के पात्र हैं
उनको दिये गये दान का बड़ा फल होता है।
अपचाय क्षेत्र में जैसे रोपे गये बीज का ॥

तब एक दूसरे देखता मैं भगवान् के सम्मुख उदाह के यह क्षण कहो—

भगवान् ! दान-कर्म बड़ा उत्तम है
धोड़े से भी दान देना बड़ा उत्तम है
अच्छा से दिया गया दान भी बड़ा उत्तम है
धर्म से कमाये गये का दान भी बड़ा उत्तम है
अमल-ब्रह्मण्ड कर दिया गया दान भी बड़ा उत्तम है,
भीर, भीरों के प्रति संवत्स रक्षणा भी बड़ा उत्तम है ॥
जो प्राणिमों को विना कष्ट देते हुये विचरता है,

निन्दा से डरता है, और पाप-कर्म नहीं करता,
पाप के सामने जो डरपोक है वही प्रशसनीय है, यह सूर नहीं,
सन्त लोग डरते हैं और पाप नहीं करते ॥

तब, एक दूसरे देवता ने भगवान् से पूछा —

भगवन् ! इनमें किसका कृपना ठीक है ?
एक-एक ढग से सभी का कृपना ठीक है, तो भी मेरी ओर से सुनो .—
श्रद्धा से दिये गये दान की बड़ी प्रशंसा है,
दान में भी बढ़ कर धर्म का जानना है,
पहले, बहुत पहले जमानों में, सन्त लोग,
प्रज्ञा से निर्वाण तरु पा लेते थे ॥

§ ४. नसन्ति सुत्त (१ ४ ४)

काम नित्य नहीं

एक समय भगवान् भ्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

तब कुछ सत्तुल्लपक्रायिक देवता । एक ओर खड़े हो, उनमें से एक ने भगवान् के सम्मुख
यह गाथा कही—

मुनुष्यों में काम नित्य नहीं है,
ससार में लुभाने वाली चीज़ें हैं जिनमें ब्रम जाते हैं
जिनमें पढ़ कर मनुष्य भूल जाते हैं,
मृत्युके राज्य से छूट कर निर्वाण^१ नहीं पाते ॥
इच्छा बढ़ाने से पाप होते हैं,
इच्छा बढ़ाने से दुःख होते हैं,
इच्छा को दबा देने से पाप दब जाता है,
पाप के दब जाने से दुःख भी दब जाता है ॥
ससार के सुन्दर पदार्थ ही काम नहीं हैं,
राग-युक्त मन हो जाना ही पुरुष का काम है,
ससार में सुन्दर पदार्थ वैसे ही पड़े रहते हैं,
किन्तु, पण्डित लोग उनमें इच्छा उत्पन्न नहीं करते ॥
क्रोध को छोड़ दे, मान को बिल्कुल हटा दे,
सारे बन्धनों को काटकर गिरा दे,
नाम-रूप के प्रति अनासक्त रहनेवाले,
त्यागी को दुःख नहीं लगते ॥
काक्षाओं को छोड़ दिये, मनसुखे नहीं बाँधे,
नाम और रूप के प्रति होनेवाली तृष्णा को काट दिये,
उस गाँठ-कटे, निष्पाप और वितृष्ण को,
खोजते रहने पर भी नहीं पाते,

१. अपुनरागमन=निर्वाण, जहाँ से फिर लौटना नहीं है ।

देवता धर मनुष्य छाक में वा परकोक में
स्वर्ग में वा समी लोको में ॥

भाषुष्मान् मोघराज ने कहा—

यदि ब्रह्मे मुक्त पुरुष को नहीं देज पाय
देवता भीर मनुष्य छाक वा परकोक में,
परमार्थ ज्ञानमे बाके उस बरोचम का,
जो उन्हें ब्रह्मकार करते हैं व ब्रह्म हैं ॥

भगवान् ने कहा—

मोघराज ! वे सिद्ध ब्रह्म हैं
जो ब्रह्मे मुक्त पुरुष का ब्रह्मकार करते हैं,
धर्म को ऊँच संज्ञा को मिट
वे सिद्ध समी ब्रह्मों के ऊपर उठ जात हैं ॥

४ ५ उज्ज्वलानसञ्जी मुच (१ ४ ५)

तथागत बुद्धियों से परे हैं

एक समय भगवान् भाषरती में अनाद्यपिण्डिक क जेतवन वाराम में बिहार करते थे ।

तब कुछ उज्ज्वलान-संजी देवता रात बीतने पर अपनी ब्रह्म से सारे जेतवन को ब्रह्म कहें
भगवान् ने वहाँ धाए । जाकर आकास में कहे हो गये । आकास में लहे हो एक देवता ने भगवान् को
गाथा में कहाः—

कुछ वृत्त ही होत हुए अपने को
जो कुछ वृत्त ही बताता है
उस वृत्त तथा ठग का
जो कुछ मोग-काम है वह जोरी से होता है ॥
जो सब में करे वही बोले
जो वही करे वह मत बोले
विना करते हुये कहने बातों की
पण्डित लोग निन्दा करते हैं ॥

[भगवान्—]

यह केवल कहने भर से
या केवल सुन मर देने से
प्राप्त नहीं कर किता क्या सकता है
जो वह माग इच्छा करत है,
जिम्मे शाही पुरुष मुक्त हो जात हैं
ज्याम लगाने वाले मार के बन्धन से ॥
जमे शाही पुद्गल कभी नहीं करते
संसार की गति-विधि ज्ञान कर,

प्रज्ञा पा पण्डित लोग मुक्त हो जाते हैं,
इस ब्रह्म भयसागर को पार कर लेते हैं ॥

तब, उन देवताओं ने पृथ्वी पर उतर भगवान् के चरणों में शिर में प्रणाम कर भगवान् को कहा —

भन्ते ! हम लोगों से भारी भूल हो गई । सूर्य जमे, मृद जमे, वेवक्रफ जमे हो कर हम लोगों ने भगवान् को मिथाना चाहा ।

भन्ते ! भगवान् हमारे अपराध को क्षमा करें, भविष्य में ऐसी भूल नहीं होगी ।

इसपर भगवान् ने मुस्करा दिया ।

तब, वे देवता बहुत ही चिढ़ कर आकाश में उठ खड़े हो गये । एक देवता भगवान् के सम्मुख यह नाथा बोला —

अपना अपराध आप स्वीकार करने वालों को,
जो क्षमा नहीं कर देता है,
भीतर ही भीतर कोप रखने वाला, महाद्वेषी,
वह वैर को और भी बाँध लेता है ॥
यदि कोई भी बुराई नहीं हो,
यदि संसार में कोई भूल भी न करे,
और यदि वैर भी शान्त न हो जाय,
तो भला, कौन ज्ञानी बन सकता है ?
बुराई किसमें नहीं है ?
भला, किसमें भूल नहीं होती ?
कौन गफलत नहीं कर बैठता ?
कान पण्डित मठा स्मृतिमान् रहता है ?

[भगवान्—]

जो त्यागत बुद्ध है,
सभी जीवों पर अनुकम्पा रखते हैं,
उनमें कोई बुराई नहीं रहती,
उनसे कोई भूल भी नहीं होने पाती,
वे कभी भी गफलत नहीं करते,
वही पण्डित सदा स्मृतिमान् रहते ॥
अपना अपराध आप स्वीकार करने वालों को,
जो क्षमा नहीं कर देता है,
भीतर ही भीतर कोप रखने वाला, महाद्वेषी,
उस वैर को और भी बाँध लेता है ॥
ऐसा कहने वाले के प्रति मैं वैर नहीं रखता,
तुम्हारे अपराध को मैं क्षमा कर देता हूँ ॥

§ ६. सद्धा सुत्त (१. ४. ६)

प्रमाद का त्याग

एक समय भगवान् थावस्ती में अनाथपिण्डक के जेतवन आराम में विहार कर रहे थे ।

तब इउ मनुसुपकायिक देवता रात के वीतने पर अपनी कमर से सारे जेठघन को जसकते हुए जहाँ भगवान् थे वहाँ भाप और मगवान् का अभिवादन कर एक ओर लड़े हो गये। एक ओर एक हाँ उनमें से एक देवता ने भगवान् को गाथा में कहा —

मिस पुरुष को सदा मर्या बनी रहती है
भार को समझा मैं कभी नहीं पड़ता
उससे उसकी कीर्ति और बढ़ाई जाती है
तथा शरीर दुःख के पाद सीधे स्वर्ग को जाता है ॥

तब दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

श्रेष्ठ वृत्त करे अभिमान को छोड़ दे,
सारे बन्धनों को छोड़ जाये
माम और रूप में नहीं किसी बास
उस त्यागी के पाम लुप्ता नहीं जाती ॥

[भगवान्—]

प्रमाद में लगे रहते हैं मूर्ख दुर्बुद्ध लोग
शानी पुरुष प्रमाद की भ्रष्ट धन के पंसी रक्षा करता है ॥
प्रमाद में मत लगे कम-नाम का साथ मत हो
प्रमाद रहित हो भ्याल छगल बाछा परम सुख पाता है ॥

§ ७ समय सुत्त (१ ४ ७)

मिथु सम्मोचन

जमा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् पौष सी समी जहाँ मिथुओं के एक बड़े संघ के साथ शाक्य (जलपद्) में कपिलवस्तु के महावन में विहार करते थे । भगवान् और मिथु-संघ के स्वर्णार्थ दलों काठ के बहुत देवता आ इकट्ठे हुए थे ।

तब दुःखापास के बार देवताओं के मध्य में वह हुआ 'यह भगवान् पौष सा समी जहाँ मिथुओं के एक बड़े संघ के साथ शाक्य (जलपद्) में कपिलवस्तु के महावन में विहार करते हैं । भगवान् और मिथु-संघ के स्वर्णार्थ दलों लोक के बहुत देवता आ इकट्ठे हुये हैं । तो हम लोग भी यहाँ जहाँ भगवान् निराक्रो है चक्रकर भगवान् के पास एक एक गाथा कहें ।

तब वे देवता जैसे कोई बछवान् पुरण समरी पौह को पसार दे और पसारी पौह की समेत ल पैसे ही दुःखापास लोक में भव्यवान् हो भगवान् के सामने प्रगट हुये । तब वे देवता भगवान् की प्रणाम कर एक ओर लड़े हो गये ।

एक ओर लड़े हाँ एक देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

बह-जगह में पड़ी लमा कर्मा है
देवता लोग आकर इकट्ठे हुये हैं,
हम धर्म-मार्ग में हम लोग भी जाय है
अनराजित मिथुसंघ के स्वर्णार्थ ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला.—

उन भिक्षुओं ने समाधि लगा ली,
अपने चित्त को पूरा एकाग्र कर दिया,
स्वार्थी के जैसा लगाम को पकड़,
वे ज्ञानी इन्द्रियों को वज्र में रखते हैं ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

(राग-द्वेष-मोह) के आवरण,
तथा दृढ़ बन्धन को नष्ट कर, वे स्थिर चित्तवाले,
शुद्ध और निर्मल (होमार्ग पर) चलते हैं,
होगियार, सिखाये गये तरुण नाग जैसे ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

जो पुरुष बुद्ध की शरण में आ गये हैं,
वे दुर्गति^{*} में नहीं पड़ सकते,
मनुष्य शरीर छोड़ने के बाद,
देव-लोक में उत्पन्न होते हैं ॥

§ ८. सकलिक सुत्त (१. ४. ८)

भगवान् के पैर में पीड़ा, देवताओं का आगमन

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह के मद्दकुक्षि नामक मृगदाव में विहार करते थे ।

उस समय भगवान् का पैर एक पथर के टुकड़े से कुठ कट गया था । भगवान् को बड़ी वेदना हो रही थी—शरीर की वेदना दुःखद, तीव्र, कठोर, परेशान कर देनेवाली । भगवान् स्थिरचित्त से स्मृति-मान् और सप्रज्ञ हो उसे सह रहे थे ।

तब भगवान् सघाटी को चौपेट कर विछवा, दाहिनी करबट सिंह-शय्या लगा, कुछ हटाते हुए[†] पैर पर पैर रख, स्मृतिमान् और सप्रज्ञ हो लेट गये ।

तब सात सौ सत्तुल्लपकायिक देवता रात बीतने पर अपनी चमक से सारे मद्दकुक्षि को चमकाते हुये जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़े हो गये । एक ओर खड़ा हो, एक देवता ने भगवान् के पास उठान के यह शब्द कहे —

अरे ! श्रमण गौतम नाग हैं,
वे अपने नाग-बल से युक्त हो,
शारीरिक वेदना, दुःखद, तीव्र, कठोर को,
स्थिरचित्त से स्मृतिमान् और सप्रज्ञ हो सह रहे हैं ॥

तब, दूसरे देवता ने भगवान् के पास उठान के यह शब्द कहे —

अरे ! श्रमण गौतम सिंह के समान हैं । अपने सिंह-बल से युक्त हो शारीरिक वेदना को स्मृतिमान् और सप्रज्ञ हो स्थिर चित्त से सह रहे हैं ।

* अपाय=दुर्गति चार हैं—नरक, प्रेतलोक, असुरकाय, तिर्यग् योनि ।

† भगवान् लेटते समय पैर की[†] उठियों को एक दूसरे से थोटा-सा हटाकर रखते थे, उसे ही “पादे पाद अन्नाधाय” कहा गया है ।

तब दूसरे देवता ने भगवान् के पास उद्दान के पद दान्द कहे :—

भरे ! भ्रमण गीतम आजातीय है ! अपन आजातीय-मल से स्थिर-चित्त स सह रह ई ।

तब दूसरे देवता ने भगवान् के पास उद्दान के पद दान्द कहे :—

भरे ! भ्रमण गीतम बेजोष है ! अपन बेजोष बल से स्थिर-चित्त से सह रहे ई ।

तब दूसरे देवता ने भगवान् के पास उद्दान के पद दान्द कहे :—

भरे ! भ्रमण गीतम पड़े भारी भार बाहक ई । स्थिर-चित्त से सह रह ई ।

तब दूसरे देवता ने भगवान् के पास उद्दान के पद दान्द कहे :—

भरे ! भ्रमण गीतम बड़े दान्त है । स्थिर-चित्त स सह रहे ई ।

तब दूसरे देवता ने भगवान् के पास उद्दान के पद दान्द कहे :—

समाधि के सम्पास स इय विमुक्त चित्त को देखो ! न तो उदय है न द्या है नीर न कोई कांक्षिण करुं प्यग्रा गया है किन्तु बड़ा ही स्वामाधिक है । जो ऐसे को पुरुष भाग सिंह, आजातीय बेजोष भारबाहक दान्त कहे—मो केवल अपनी मूर्खता से कहता है ।

पञ्चाङ्ग वेद को माहाज सके ही पारण कर

सो क्यों तब मरु ही तपस्या करता रहे

किन्तु उसमें चित्त पूरा विमुक्त हो नहीं सकता

हीन कश्य बाले पार नहीं जा सकते ।

तुम्हा स प्रेरित ब्रत आदि के फेर में पड़े

सा वर्ष कठोर तपस्या करते हुये भी

उनका चित्त पूरा विमुक्त नहीं होता

हीन कश्य बाले पार नहीं जा सकते ।

आत्म-धर्म रखने वाले पुरुष को

आत्म तपस नहीं हो सकता

असमाहित पुरुष को मुनि मान नहीं आ सकता

जंगल में अकेला प्रसादबुद्ध विहार करते हुए

कोई शत्रु के राज्य की पार नहीं कर सकता ।

मान छोड़ बन्धी तरह समाहित हो

सुन्दर चित्त बाधा समी तरह स विमुक्त,

सावधान है जंगल में अकेला विहार करते हुये

बह शत्रु के राज्य के पार चला जाता है ।

§ ९. पञ्चुसणीतु मुत्त (१ ४ ९)

चर्म-प्रहज से स्वरा

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् वीशाळी में महावन की कूटागारशाळा में विहार करते थे ।

तब प्रद्युम्न की बेटी कोकनदा रात बीतने पर अपनी कमर से सारी महावन की चमकती हुई चट्टी भगवान् के बहाँ लाई, और भगवान् को अभिवादन कर एक नीर लगी हो गई ।

एक ओर लगी वह देवता कोकनदा प्रद्युम्न की बेटी भगवान् के सम्मुख बह गाया थीकी—

वैशाली के वन में विहार करते तुम,
 सर्वश्रेष्ठ भगवान् बुद्ध को,
 मैं कोकनदा प्रणाम करती हूँ,
 कोकनदा प्रद्युम्न की बेटी ॥
 मैंने पहले धर्म के विषय में सुना ही था,
 जिसको सर्वज्ञ बुद्धने साक्षात् किया था,
 आज मैं उसके साक्षात् जान रही हूँ,
 मुनि सुगत (=बुद्ध) से उपदेश किया गया ॥
 जो कोई दृग्य आर्य धर्म को,
 मूर्ख निन्दा करते फिरते हैं,
 वे घोर सौरव नरक में पड़ते हैं,
 चिर काल तक दुःखों का अनुभव करते ॥
 और जो इस आर्य धर्म में
 धीरता और शान्ति के साथ आते हैं,
 वे मनुष्य-जरीर को छोड़ कर,
 देव-लोक में उत्पन्न होते हैं ॥

§ १०. चुल्लपज्जुनधीतु सुत्त (१. ४ १०)

बुद्ध धर्म का साग

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् वैशाली में महावन की कूटागारशाला में विहार करते थे ।

तब, छोटी कोकनदा प्रद्युम्न की बेटी रात बीतने पर अपनी चमक से सागे महावन को चमकाती हुई जहाँ भगवान् थे वहाँ आई और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ी हो गई ।

एक ओर खड़ी हो वह देवता छोटी-कोकनदा प्रद्युम्न की बेटी भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोली —

यह मैं आई हूँ, त्रिजली की चमक जैसी कान्ति वाली,
 कोकनदा प्रद्युम्न की बेटी,
 बुद्ध और धर्म को नमस्कार करती हुई,
 मैंने यह अर्थवती गाथा कही ॥
 यद्यपि अनेक ढंग से मैं कह सकती हूँ,
 ऐसे (महान्) धर्म के विषय में,
 (तथापि) संक्षेप में उसके सार को कहती हूँ,
 जहाँ तक मेरी बुद्धि की योग्यता है ॥
 सारे ससार में कुछ भी पाप न करे,
 शरीर, वचन या मनसे
 कामों को छोड़, स्मृतिमान् और सप्रज्ञ,
 अनर्थ करनेवाले दुःख को मत बढ़ावे ॥

सतुल्लपकायिक वर्ग समाप्त ।

पाँचवाँ भाग

जलता धग

§ १ आदिष्ठ सुप्त (१ ५ १)

श्लोक में भाग लगी है

पेया मीने सुप्ता ।

एक समय भगवान् ध्यावस्ती में अनाद्यपिण्डिक के जेतवन वाराम में बिहार करते थे ।

तब कोई वैभता रात बीतने पर अपनी बमक से सारे जेतवन को बमकसे छुपे जहाँ भगवान् थे वहाँ जाया और भगवान् का अभिवादन कर एक और लड़ा हो गया ।

एक और लड़ा हो वह वैभता भगवान् के सम्मुख वह गाथा बोला:—

वर में भाग लग जाने पर

जो अपने अस्तपात्र बाहर निकल केता है

वह उमड़ी भलाई के लिये होता है,

गहरी तो वह वहीं जककर राख हो जाता है ॥

उम्मी प्रकार इस सारे कोऊ में भाग लग गई है

बरा की भाग और मर जाने की भाग

दान देकर बाहर निकल लो

दान दिया गया अच्छी तरह रक्षित रहता है ॥

दान देने से मुक्त की प्राप्ति होती है

गहरी दूने से उसे पेया ही होता है,

और लुरा खले हैं, या राख हर खेले हैं

या भाग लग जाती है या नष्ट हो जाता है ॥

और अन्तर में तो सब ही छूट जाता है

वह शरीर भी और स्वाध स्वाध सारी सम्पत्ति

हुने जान बूझ कर पण्डित बुद्ध

योग भी करते हैं और दान भी देने हैं ॥

अपने सामर्थ्य के अनुसार देकर और योग कर

बिम्बा रहित ही स्वर्ग में स्थान पाता है ॥

§ २ किं दर्द सुप्त (१ २)

क्या दान पाया क्या पाता है ?

क्या देने वाला बल होता है ?

क्या देने वाला बल होता है ?

यया देने वाला सुय देता है ?
 क्या देने वाला ओम् देता है ?
 कौन मय गुट देने वाला होता है ?
 मैं पूछता हूँ, कृपया बतायें ॥

[भगवान्—]

अन्न देने वाला बल देता है,
 वस्त्र देने वाला घण देता है
 वाहन देने वाला सुय देता है,
 प्रदीप देने वाला ओम् देता है,
 और, वह मय गुट देने वाला है,
 जो आश्रय (=गृह) देता है,
 अर अमृत देने वाला तो वह होता है,
 जो एक पार धर्म का उपदेश कर दे ॥

§ ३. अन्न सुत्त (१. ५. ३)

अन्न सबको प्रिय है

एक अन्न ही है जिसे सभी चाहते हैं,
 देवता और मनुष्य लोग दोनों,
 भला ऐसा कौन-सा प्राणी है,
 जिसे अन्न प्यारा न लगता हो ?

जो उस अन्न का श्रद्धा-पूर्वक दान करते हैं,
 अत्यन्त प्रसन्न चित्त से,
 उन्हीं को वह अन्न प्राप्त होता है,
 इस लोक में और परलोक में भी ॥

इमलिये, कजुसी करना छोड़,
 पाप हटाने वाला पुण्य-कर्म दान करे,
 परलोक में पुण्य ही (केवल)
 प्राणियों का आधार होता है ॥

§ ४. एकमूल सुत्त (१. ५. ४)

एक जड़वाला

एक जड़ वाला, दो मुँह वाला,
 तीन मल वाला, पाँच फैलाव वाला,
 बारह भँवर वाला समुद्र,
 और पाताल, सभी को ऋषि पार कर गये^१ ॥

१. “अविद्या तृष्णा की जड़ है, तृष्णा अविद्या की। यहाँ (एक जड़ से) तृष्णा ही अभिप्रेत है। वह तृष्णा शाश्वत और उच्छेद दृष्टि के भेद से दो प्रकार (=मुँह) की होती है। उसमें राग, द्वेष और

§ ५ अनोमनाम सुत्त (१ ५ ५)

मय-पूर्ण

अनोम नाम बासे सूक्ष्म द्रष्टा
ज्ञान देने वाले कर्मों में अनोमक;
उन सर्वज्ञ परिणत का देखो
मार्ग-मार्ग पर चलने हुये महर्षि का ॥

§ ६ अफ्छरा सुत्त (१ ५ ६)

राह कैसे कटगी ?

अप्सरसी के गण से बहुत पहलु मचा
पिप्सावा के गण से संवित
सुभासे में बाध देने वाला वह बन (नन्दन) है
राह कैसे कटगी ?^१

[मगवान्—]

वह मार्ग कहा सीधा है
वह स्थान हर मन से छुप है
कुछ भी आवाज न निकालन वाला रथ है
जिसमें धर्म के लोके लगे हैं ॥

ही उसकी बचाव है
स्थिति उस पर निरुद्ध बानर है
धर्म की मैं सारथी बनाता हूँ
सम्बद्ध रहि आगे जाऊँ बाधन वाला (मगवान्) है ॥

जिसके पास इस प्रकार की सवारी है
जिम्ही की के पास वा किम्ही दुख के पास
वह उस पर चढ़कर
निर्बाध तक पहुँच जाता है ॥

मोह तीन मज होते हैं ।^१ " । पौष कामगुण मज के बनाव हैं । वह मुग्धा कभी पूरी नहीं होती है, इस अर्थ में समझ करी ग' है । अप्याय और बाहर के बाध अन्तर् में कहे गये हैं " । मुग्धा को गहरा का रथ नहीं है इसलिये जाना कहा ग' है ।—अट्ठकथा ।

१ नन्दनपुत्र । 'मोहनं पुन' पाणि ।

२ कर्त' यात्रा मयिस्मन्ति—इति पुत्रनाथ हागा कैसे मुक्ति होगी ?

३ निर्बाध को लक्ष्य कर कहा गया है । अट्ठकथा ।

४ धार्मीरिक्-यित्तिरिक्-वीर्यं मेष्याय धम-अन्ध स पुच्छ—अट्ठकथा ।

५ 'अग्ने धीमहि रथ मे ऊपर चहुँ हुए का गिरान स बजान के लिये छकड़ी का पटर लगा दिया जाता है, वैसे ही इस मार्ग के रथ में अप्याय और बाध होनेवाली शीघ्र-पाप करने से मज्जा समझनी चाहिये ।—अट्ठकथा ।

§ ७. वनरोप सुत्त (१. ५. ७)

किनके पुण्य सदा बढ़ते हैं ?

किन पुरुषों के दिन और रात,
सदा पुण्य बढ़ते रहते हैं ?
धर्म पर दृढ़ रहने वाले शील से सम्पन्न,
कौन स्वर्ग जाने वाले हैं ?

[भगवान्—]

बगीचे ओर उपवन लगाने वाले,
नो लोग पुल बंधवाते हैं,
पाँसाला बेठाने वाले, कूँघे खुदवाने वाले,
राहगीरो को शरण देने वाले,
उन पुरुषों के दिन और रात,
सदा पुण्य बढ़ते रहते हैं,
धर्म पर दृढ़ रहने वाले, शील से सम्पन्न,
वे ही स्वर्ग जाने वाले हैं ॥

§ ८. इदं हि सुत्त (१. ५. ८)

जंतवन

ऋषियो से सेवित यह शुभ-स्थान जंतवन,
जहाँ धर्मराज (=बुद्ध) वास करते हैं,
मुझमें भारी श्रद्धा उत्पन्न कर देता है ॥

कर्म, विद्या, और धर्म,
शील और उत्तम जीवन ।
इन्हीं से मनुष्य शुद्ध होते हैं,
न तो गोत्र से और न धन से ॥

इमलिये, जो पण्डित पुरुष हैं,
अपने परमार्थ को दृष्टि में रख,
ठीक तौर से धर्म कमाते हैं,
इस प्रकार उनका चित्त शुद्ध हो जाता है ॥
सारिपुत्र की तरह प्रज्ञा से,
शील से और मन की शान्ति से,
जो भी भिक्षु पार चला गया है,
यही उसका परम-पद है ॥

§ ९. मच्छेर सुत्त (१. ५. ९)

कंजूसी के कुफल

जो ससार में कज्ज कहे जाते हैं,
मक्खीचूस, चिढ़कर गालियाँ देने वाले,

तूझों को भी जान दूँ तेरा
 आ पुरुष उम्ह बहका दूँ वास है
 उनके कर्म का फल कैसा होता है ?
 उनका परलोक कैसा होता है ?
 आप को पूछने के लिये आप,
 हम लोग उसे कैसे समझें ?

[भगवान्—]

जो समार में कर्म का बत है
 मन्त्री-मन्त्री बिचकर शास्त्रियों ने बाध
 तूझों को भी जान दूँ तेरा
 जो उम्ह बहका दूँ वास है
 वे नरक में तिरस्कीन योगि में
 का बमलोक में पैदा होते हैं;
 पति व मनुष्य-योगि में आते हैं
 तो किसी हरिष कुल में जन्म लेते हैं
 कपडा खाना पैसा भ्रातम खेद-वसाधा;
 उम्ह बहका दूँ वास है
 मूल किसी दूसरे पर भरोसा करते हैं
 तब उसे भी वे नीचे नहीं मिटती
 मोंकों के दूँते ही तेरा उम्ह बहका दूँ वास है
 परलोक में उनकी बड़ी बुद्धि होती है ॥

[दूधता—]

हमने हमें ऐसा जान किया
 जब है गीतम । एक दूसरी बात पूछते हैं—
 जो बहका दूँ वास है
 दिकने-मिकने वाले लुके दिक वाले
 बुद्ध के प्रति अद्भुत और धर्म के प्रति
 संघ के प्रति बड़ा गौरव रखने वाले;
 उनके कर्म का फल कैसा होता है ?
 उनका परलोक कैसा होता है ?
 आप को पूछने के लिये आप,
 हम लोग उसे कैसे समझें ?

[भगवान्—]

जो बहका दूँ वास है
 दिकने-मिकने वाले लुके दिक वाले
 बुद्ध के प्रति अद्भुत और धर्म के प्रति
 संघ के प्रति बड़ा गौरव रखने वाले;
 वे जन्म में शोभित होते हैं

जहाँ वे जन्म लेते हैं ॥
 यदि फिर मनुष्य-योनि में आते हैं,
 तो किसी बड़े धनाढ्य कुल में जन्म पाते हैं,
 रुपड़ा, खाना, ऐश-आराम, खेल-तमाशा,
 जहाँ खूब मन भर मिलते हैं,
 मनचाहे भोगों को पा,
 वरावर्ती देवों के, ऐसा आनन्द करते हैं,
 आँखों के देखते तो यह फल होता है,
 और, परलोक में बड़ी अच्छी गति होती है ॥

§ १०. घटीकार सुत्त (१. ५. १०)

बुद्ध धर्म से ही मुक्ति, अन्य से नहीं

[घटीकार देवता—]

अविह लोक में उत्पन्न हुये,
 सात मिश्र विमुक्त हो गये,
 राग, द्वेष (और मोह) नष्ट हो गये,
 इस भवसागर को पार कर गये ॥

वे कौन थे जो कीचड़ को लॉय गये,
 मृत्यु के उस बड़े दुस्तर राज्य को,
 जो मनुष्य के शरीर को छोड़ कर,
 सर्वोच्च स्थान को प्राप्त हुये ?

उपक, पलगण्ड और पक्कुसाति ये तीनों
 महिय और खण्डदेव, वाहुरग्गि और पिङ्गिय,
 यही लोग मनुष्य-देह को छोड़, सर्वोच्च स्थान को प्राप्त हुये ॥

[भगवान्—]

उनके विषय में तुम बिल्कुल ठीक कहते हो,
 जिन्होंने मार के जाल को फाट डाला,
 वे किसके धर्म को जान कर,
 भव-बन्धन तोड़ने में समर्थ हुये ?

[देवता—]

भगवान् को छोड़ कहीं और नहीं,
 आपके धर्मको छोड़ कहीं और नहीं,
 जिन आपके धर्मको जान कर,
 वे भव-बन्धनको तोड़ सके ॥

जहाँ नाम और रूप दोनों,
 बिल्कुल ही निरुद्ध हो जाते हैं,
 आपके उच्च धर्मको यहाँ जान,
 वे भव-बन्धन को तोड़ सके ॥

[भगवान्—]

तुम बड़ी गम्भीर बातें कर रहे हो
इसे ठीक जानना कठिन है ठीक से समझना बड़ा ही कठिन;
महा तुम किमके धर्म का आवक
इस प्रकार की बातें कर रहे हो ?

[देखना—]

पहले मैं एक कुम्हार था
वेह्लिंगम में एक घड़ा-साज
भगने माँ-बाप को पोस रहा था
(भगवान्) कश्यप का उपामक था ॥
मैथुन धर्म से विरत
ब्रह्मचारी पूरा त्यागी
एक ही गोश में रहने वाला था
पहले मित्र थे ॥
मैं मं इन्हें जानता हूँ,
बिमुक्त हुए सात भिक्षुओं का
रामा द्वेप (बार मोह) लष्ट हो गए हैं
जो भव-सागर को पार कर चुके हैं ॥

जैसे ही उस समय आप थे
जैसे भगवान् कहते हैं
पहले आप एक कुम्हार थे
वेह्लिंगम में एक घड़ा-साज
इस प्रकार इन पुरातन,
मित्रों का साथ हुआ था
ज्ञानों व्यवस्थाओं का
अन्तिम शरीर धारण करने वाला था ॥

जन्मना दया स्वभावात् ।

छठँ भाग

जरा वर्ग

§ १. जरा सुत्त (१. ६. १)

पुण्य चुराया नहीं जा सकता

कौन भी चीज़ है जो बुढ़ापा तक ठीक है ?

स्थिरता पाने के लिये क्या ठीक है ?

मनुष्यों का रत्न क्या है ?

क्या चोरों से नहीं चुराया जा सकता ?

शील पालना बुढ़ापा तक ठीक है ?

स्थिरता के लिये श्रद्धा ठीक है ,

प्रज्ञा मनुष्यों का रत्न है,

पुण्य चोरों से नहीं चुराया जा सकता ॥

§ २. अजरसा सुत्त (१. ६. २)

प्रज्ञा मनुष्यों का रत्न है

बुढ़ापा नहीं आने से भी क्या ठीक है ?

कौन भी अभिष्टित वस्तु ठीक है ?

मनुष्यों का रत्न क्या है ?

क्या चोरों से नहीं चुराया जा सकता ?

शील बुढ़ापा नहीं आने से भी ठीक है,

अभिष्टित श्रद्धा बड़ी ठीक है,

प्रज्ञा मनुष्यों का रत्न है,

पुण्य चोरों से नहीं चुराया जा सकता ॥

§ ३. मित्र सुत्त (१. ६. ३)

मित्र

राहगीर का क्या मित्र है ?

अपने घर में क्या मित्र है ?

काम पढ़ने पर क्या मित्र है ?

परलोक में क्या मित्र है ?

हथियार राहगीर का मित्र है,

माता अपने घर का मित्र है,

सहायक काम आ पढ़ने पर,

बार-बार मित्र होता है,

अपने किये जो पुण्य-कर्म हैं,

वे परलोक में मित्र होते हैं ॥

§ ४ वसु सुच (१ ६ २)

आधार

मनुष्यों का आधार क्या है ?

यहाँ सबसे बड़ा मन्त्र कौन है ?

क्रियस मयी जीते हैं ?

पृथ्वी पर जितने प्राणी बसते हैं ॥

पुत्र मनुष्यों का आधार है

भार्य सबसे बड़ी मायिन है

वृष्टि होले में सभी जीते हैं

पृथ्वी पर जितने प्राणी बसते हैं ॥

§ ५ अनेति सुत (१ ६ १)

पैदा होना (१)

मनुष्य को क्या पैदा करता है ?

उमर्र क्या है जो बढ़ता रहता है ?

कौन आवागमन के चक्र में पड़ता है ?

उमर्र का सबसे बड़ा भय क्या है ?

मृच्छ मनुष्य को पैदा करती है

उमर्र का चित्त ग्रीवता रहता है

प्राणी आवागमन के चक्र में पड़ता है

कुल्ल उमर्र का सबसे बड़ा भय है ॥

§ ६ अनेति सुच (१ ६ ६)

पैदा होना (२)

मनुष्य को क्या पैदा करता है ?

उमर्र क्या है जो बढ़ता रहता है ?

कौन आवागमन के चक्र में पड़ता है ?

क्रियस धुरधरा नहीं होता है ?

मृच्छ मनुष्य को पैदा करती है

उमर्र का चित्त ग्रीवता रहता है

प्राणी आवागमन के चक्र में पड़ता है

कुल्ल म उमर्र धुरधरा नहीं होता ॥

§ ७ अनेति सुच (१ ६ ७)

पैदा होना (३)

मनुष्य का क्या पैदा करता है ?

उमर्र क्या है जो बढ़ता रहता है ?

कौन आवागमन के चक्र में पड़ता है ?

उमर्र का आधार क्या है ?

मृच्छा मनुष्य का पैदा करती है

उमर्र का चित्त ग्रीवता रहता है

प्राणी आवागमन के चक्र में पड़ता है,
कर्म ही उसका आश्रय है ॥

§ ८. उप्पथ सुत्त (१. ६. ८)

वेराह

किस राह को लोग वेराह कहते हैं ?

रात-दिन क्षय होने वाला क्या है ?

ब्रह्मचर्य का मल क्या है ?

बिना पानी का कौन स्नान है ?

राग को लोग वेराह कहते हैं,
आयु रात-दिन क्षय होने वाली है,
स्त्री ब्रह्मचर्य का मल है,
जिसमें सभी प्राणी फँस जाते हैं,
तप और ब्रह्मचर्य यह बिना पानी का स्नान है ॥

§ ९. दुत्तिया सुत्त (१. ६. ९)

साथी

पुरुष का साथी क्या होता है ?

कौन उस पर नियन्त्रण करता है ?

किसमें अभिरत होकर मनुष्य,

सब दुःखों से मुक्त हो जाता है ?

श्रद्धा पुरुष का साथी होता है,
प्रज्ञा उस पर नियन्त्रण करती है,
निर्वाण में अभिरत होकर मनुष्य,
सब दुःखों से मुक्त हो जाता है ॥

§ १०. कवि सुत्त (१. ६. १०)

कविता

गीत* कैसे होती है ?

उसके व्यञ्जन क्या हैं ?

उसका आधार क्या है ?

गीत का आश्रय क्या है ?

छन्द से गीत होती है,
अक्षर उसके व्यञ्जन हैं,
नाम के आधार पर गीत बनती है,
कवि गीत का आश्रय है ॥

जरा वर्ग समाप्त ।

सातवों भाग

अद्द वर्ग

§ १ नाम सुत्त (१ ७ १)

नाम

क्या है जो सभी को अपने भीतर रखता है ?

किससे अधिक कुछ नहीं है ?

किस एक धर्म के

सभी कुछ वस्तु में चले जाते हैं ?

नाम सभी को अपने भीतर रखता है

नामसे अधिक कुछ नहीं है

नाम ही एक धर्म के

सभी कुछ वस्तु में चले जाते हैं ॥

§ २ विद्द सुत्त (१ ७ २)

विद्द

किससे लोक विवर्धित होता है ?

किस से वह सब को प्राप्त होता है ?

किस एक धर्म के

सभी वस्तु में चले जाते हैं ?

विद्द से लोक विवर्धित होता है ?

विद्द से ही सब को प्राप्त होता है

विद्द ही एक धर्म के

सभी वस्तु में चले जाते हैं ॥

§ ३ तण्हा सुत्त (१ ७ ३)

तण्हा

किस एक धर्म के

सभी वस्तु में चले जाते हैं ?

तण्हा ही एक धर्म के

सभी वस्तु में चले जाते हैं ॥

* 'वीर जीव वा वीर्य ऐसी नहीं है जो नाम से रहित हो। (वहीँ तक कि) जिस वृक्ष का फलपर का नाम नहीं होता है उसका नाम 'अनामक' (~~अनामक~~) हम देते हैं।

§ ४. संयोजन सुत्त (१. ७. ४)

बन्धन

लोक किस बन्धन में बंधा है ?
 इसका विचरना क्या है ?
 किसके प्रहाण होने से,
 'निर्वाण' ऐसा कहा जाता है ?
 "संसार में स्वाद लेना" यही लोक का बन्धन है,
 वितर्क इसका विचरना है,
 तृष्णा के प्रहाण होने से,
 'निर्वाण' ऐसा कहा जाता है ॥

§ ५. बन्धन सुत्त (१. ७. ५)

फाँस

लोक किस फाँस में फँसा है ?
 इसका विचरना क्या है ?
 किसके प्रहाण होने से,
 सभी फाँस कट जाते हैं ?
 "संसार में स्वाद लेना" यही लोक का बन्धन है,
 वितर्क इसका विचरना है,
 तृष्णा के प्रहाण होने से,
 सभी फाँस कट जाते हैं ॥

§ ६. अवभाहत सुत्त (१. ७. ६)

सताया जाना

लोक किससे सताया जा रहा है ?
 किससे घिरा पड़ा है ?
 किस तीर से चुभा हुआ है ?
 किससे सदा धुँवा रहा है ?
 मृत्यु से लोक सताया जा रहा है,
 जरा से घिरा पड़ा है,
 तृष्णा की तीर से चुभा हुआ है,
 इच्छा से सदा धुँवा रहा है ॥

§ ७. उद्धृत सुत्त (१. ७. ७)

लौंघा गया

लोक किससे लौंघ लिया गया है ?
 किससे घिरा पड़ा है ?
 किससे लोक ढँका छिपा है ?
 लोक किममें प्रतिष्ठित है ?

गुप्ता से लोक कौन सिखा गया है
 जरा से बिरा पड़ा है
 गुप्त से लोक वैसा किया है
 गुप्त में लोक प्रतिष्ठित है ॥

§ ८ पिहित सुच (१ ७ ८)

छिपा-हँका

किससे लोक छिपा-हँका है ?
 किसमें लोक प्रतिष्ठित है ?
 किससे लोक कौन सिखा गया है ?
 किससे बिरा पड़ा है ?
 गुप्त से लोक छिपा-हँका है
 गुप्त में लोक प्रतिष्ठित है
 गुप्तासे लोक कौन सिखा गया है
 जरा से बिरा पड़ा है ॥

§ ९ इच्छा सुच (१ ७ ९)

इच्छा

लोक किसमें बसता है ?
 किसकी वृत्ति कर छूट जाता है ?
 किसके महान् होने से
 सभी सम्पन्न कर जाता है ?
 इच्छा में लोक बसता है
 इच्छा की वृत्ति कर छूट जाता है
 इच्छा के महान् होने से
 सभी सम्पन्न कर जाता है ॥

§ १० लोक सुच (१ ७ १०)

लोक

किसके हाने से लोक वैरा होता है ?
 किसमें साथ रहता है ?
 लोक किसकी संभर जाता है ?
 किसके कारण गुप्त संभला है ?
 लोक के हाने से लोक वैरा होता है
 लोक में साथ रहता है
 लोक की वृत्ति संभर जाता है
 लोक के कारण गुप्त संभला है
 अथ वगैरे समाप्त ।

आठवाँ भाग

श्रुत्वा वर्ग

§ १. श्रुत्वा सुत्त (१. ८. १)

नाश

एक ओर खड़ा हो वह ड्रेमना भगवान के सम्मुख यह गाया बोला —

किसको नाश कर सुग्य से मोता है ?

किसको नाश कर शोक नहीं करता ?

किस एक धर्म का,

वध करना गोतम बताते है ?

क्रोध को नाश कर सुग्य से मोता है,

क्रोध को नाश कर शोक नहीं करता,

महाघिष के मूल क्रोध के,

जो पहले तो अच्छा लगता, है देवते ।

वध की पण्डित लोग प्रशंसा करने हैं,

उसी को नाशकर शोक नहीं करता ॥

§ २. रथ सुत्त (१. ८. २)

रथ

क्या देखकर रथ का आना मालूम होता है ?

क्या देखकर कहीं अशिका होना जाना जाता है ?

किमी राष्ट्रका चिह्न क्या है ?

कोई स्त्री किमसे पहचानी जाती है ?

भ्रजाको देखकर रथका आना मालूम होता है,

धूमको देखकर कहीं अशिका होना जाना जाता है,

राजा किमी राष्ट्रका चिह्न होता है,

कोई स्त्री अपने पतिसे पहचानी जाती है ॥

§ ३. वित्त सुत्त (१. ८. ३)

धन

मन्मारमं पुरुषका मन्वमे श्रेष्ठ वित्त क्या है ?

किसके उपार्जन करने से सुख मिलता है ?

रमों में सबसे स्वादिष्ट क्या है ?

मनुष्यके कैमे जीवनको लोग श्रेष्ठ कहते हैं ?

संसारमें पुण्यका सबसे श्रेष्ठ वित्त अज्ञा है
धर्मके उपासक करनेमें सुख मिलता है
रसों में सब से स्वादिष्ट मद्य है
महापूर्वक जीवन का योग श्रेष्ठ कहते हैं ॥

§ ४ युक्ति सुत्त (१ ८ ४)

पृष्टि

उगम वालों में श्रेष्ठ क्या है ?
गिरने वालों में सब से अच्छा क्या है ?
क्या है भूमते रहने वालों में ?
बोलते रहने वाला में उत्तम क्या है ?

बीज उगने वाला में श्रेष्ठ है
वृष्टि गिरने वालों में सब से अच्छा है
गीबें भूमते रहने वालों में
पुत्र बोलते रहने वाला में उत्तम है ॥
बिद्या उगने वालों में श्रेष्ठ है
गिरने वालों में अविद्या सब से बड़ी है
मिथुर्मय भूमते रहने वाला में
कुद वक्त्रभा में सर्वोत्तम है ॥

§ ५ भीत सुत्त (१ ७)

उपना

संसार में इतने लोग डरे हुये क्यों हैं ?
अनेक प्रकार से मार्ग कहा गया है ;
हे महाशायी गांतम ! मैं बाप से चुकता हूँ
क्यों तथा वह परकोक से सप नहीं करे ?

बचन बीर मन को डीक राखे म लगा
अरीर से पापाचरण नहीं करते हुये
अन्न-पान म मरे वर में रहते हुये
अज्ञात मनु, बौद्ध-बुद्ध कर भोग करनेवाला हिमवा-मिमवा
हम चार धर्मों पर कड़ा रह
परकोक से कुछ डर न करे ॥

§ ६ न बीरति सुत्त (१ ८ ६)

पुराणा न होना

क्या पुराणा होता है क्या पुराणा नहीं होता है ?

१ ॥ पुत्र का बहुत बोझना भव्या-पिता का बुरा नहीं करता ।

क्या बेराह में ले जाने वाला कहा जाता है ?
 धर्म के काम में क्या बाधक होता है ?
 क्या रात-दिन क्षय को प्राप्त हो रहा है ?
 ब्रह्मचर्य का मल क्या है ?
 क्या बिना पानी का नहाना है ?
 लोक में कितने छिद्र हैं,
 जहाँ चित्त स्थिर नहीं होता ?
 आपको पूछने के लिये आये,
 हम लोग इसे कैसे समझें ?

मनुष्यों का रूप पुराना होता है,
 उसके नाम और गोत्र पुराने नहीं होते,
 राग बेराह में जाने वाला कहा जाता है,
 लोभ धर्म के काम में बाधक होता है,
 आयु रात-दिन क्षय को प्राप्त हो रही है,
 स्त्री ब्रह्मचर्य का मल है, यहीं लोग फँस जाते हैं,
 तप और ब्रह्मचर्य,
 यही बिना पानी का नहाना है,
 लोक में छिद्र छ हैं,
 जहाँ चित्त स्थिर नहीं होता ॥

आलस्य और प्रमाद,
 उत्साह-हीनता, असयम,
 निद्रा और तन्द्रा यही छ छिद्र हैं,
 उनका सर्वथा वर्जन कर देना चाहिये ॥

§ ७. इस्सर सुत्त (१. ८. ७)

ऐश्वर्य

ससार में ऐश्वर्य क्या है ?
 कौन सा सामान सबमें उत्तम है ?
 लोक में शास्त्र का मल क्या है ?
 लोक में विनाश का कारण क्या है ?
 किसको ले जाने से लोग रोकते हैं ?
 ले जाने वाले में कौन प्यारा है ?
 फिर भी आते हुये किसका,
 पण्डित लोग अभिनन्दन करते हैं ?

ससारमें वश ऐश्वर्य है,
 स्त्री सभी सामानसे अच्छी है,
 क्रोध लोकमें शास्त्रका मल है,
 चोर लोकमें विनाशके कारण है,
 चोरको ले जानेमें लोग रोकते है,

मिष्टु के जानेवालोंमें प्यारा है
बार-बार आते हुए मिष्टुका
परिहृत लोग अभिनन्दन करते हैं ॥

५८ काम सुत्त (१८८)

अपनेका न दे

परमार्थकी कामना रखनेवाला क्या नहीं है ?

मनुष्य किसका परिवारा न करे ?

किम कल्याणका निष्काश ?

आर किस गुरेको नहीं निकाले ?

परमार्थकी कामना रखनेवाला अपनेको नहीं दे जाने

मनुष्य अपनेको परिवारा न करे

कल्याणवचनको निष्काश

गुरे को नहीं निकाले ॥

५९ पाथेय्य सुत्त (१८९)

राह-लक्ष्य

क्या राह-लक्ष्य बौध्दा है ?

भोगोंका वास किममें है ?

मनुष्यको क्या घसीट के जाता है ?

संसारमें क्या छोड़ना क्या कहिन है ?

इतने बीच किममें बँधे हैं

जैसे आकमें बौद्ध पड़ी ?

अब राह-लक्ष्य बौध्दा है ॥

ऐक्यमें सभी लोग बसते हैं

इच्छा मनुष्यको बसति के जाती है

संसारमें इच्छा छोड़ना क्या कहिन है

इतने बीच इच्छामें बँधे हैं

जैसे आकमें बौद्ध पड़ी ॥

६१ पञ्चोत्त सुत्त (१९१)

प्रचोत

लोक में प्रचोत क्या है ?

लोक में कीम जानने वाला है ?

प्राप्तिपों में कीम काम से महाबल है

क "बड़ा उत्पन्न कर धन देता है शीतली रखा करता है उषीमध कम करता है—इसीने एका कहा गया है ।"—महाकथा ।

क्या नाश कर सुख में सोता है ?
 क्या नाश कर शोक नहीं करता ?
 किन्तु एक धर्म का,
 वध करना गांतम को स्वीकार है ?
 क्रोध को नाश कर सुख से सोता है,
 क्रोध को नाश कर शोक नहीं करता,
 आगे अच्छा लगने वाले तथा वज्र^१ को हराने वाले ।
 विष के मूल क्रोध का,
 वध करता पण्डितों से प्रशंसित है,
 उन्मी को काट कर शोक नहीं करता ॥

§ ४. मागध सुत्त (२. १. ४)

चार प्रद्योत

एक ओर खड़ा हो, मागध देवपुत्र भगवान् से यह गाथा बोला—
 लोक में कितने प्रद्योत हैं,
 जिनमें लोक प्रकाशित होता है ?
 आप को पृष्ठने के लिये आग,
 हम लोग उम्मे कैसे जानें ?
 लोक में चार प्रद्योत हैं,
 पाँचवाँ कोई भी नहीं,
 दिन में सूरज तपता है, रात में चाँद शोभता है,
 ओर आग तो दिन रात वहाँ वहाँ प्रकाश देती है,
 समुद्र तपनेवालों में प्रेष है,
 उनका तेज अलौकिक ही होता है ॥

§ ५. दामलि सुत्त (२. १. ५)

ब्राह्मण कृतकृत्य है

श्रावस्ती में ।

तब दामलि देवपुत्र रात बीतने पर अपनी चमक से सारे जेतवन को चमका जहाँ भगवान् थे
 वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़ा हो दामलि देवपुत्र
 भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

यहाँ अथर्व परिश्रम से ब्राह्मण को अभ्यास करना चाहिये,
 कामों का पूरा ग्रहण करने से फिर जन्म ग्रहण नहीं होता ॥
 ब्राह्मण को कुछ करना नहीं रहता,
 हे दामलि ! भगवान् ने कहा,
 ब्राह्मण को तो जो करना था कर लिया गया होता है,
 जब तक कि प्रतिष्ठा नहीं पा लेता ॥
 नदियों में जन्तु सब अंगों से तैरने का प्रयत्न करता है,

^१ वज्र नामक असुर को हराने वाला, इन्द्र ।

दूसरा परिच्छेद

२ देवपुत्र-सयुक्त

पहला भाग

§ १ कस्तपु सुप्त (० १ ८)

मिथु अनुशासन (१)

येमा मैंने सुना ।

एक समथ भगवान् भावस्ती में अमाध्यपिपिहक के जेतवन घराम में बिहार करते थे ।

तब देव-पुत्र काश्यप रात बीतने पर अपनी कमक म मारे जेतवन को कमकते हुए वहाँ भगवान् से वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़ा हो काश्यप देवपुत्र भगवान् से बोझ—“भगवान् मे मिथु को प्रकाशित किया है किन्तु मिथु के अनुशासनकी नहीं ।”

तो काश्यप ! तुम्हीं बताओ जमा तुमने समझा है ।

“अच्छे उपदेश और

अमर्षों का उत्तर

पुष्प में अक्षय वास

तब चित की साधित का अन्वित करी ॥

काश्यप देवपुत्र ने यह कहा । भगवान् सहमत हुए । तब काश्यप देवपुत्र पुत्र को सहमत आन भगवान् का वन्दना और प्रशंसा कर वहाँ अन्तर्धान हो गया ।

§ २ कस्तपु सुप्त (० १ २)

मिथु-अनुशासन (२)

भावस्ती में ।

एक बार खड़ा हो काश्यप देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोल्य—

यदि मिथु प्यानी किमुक्त चित्तवाला अपनी दिव्यी चाह (अर्हत्पद) की प्राप्त करना चाह तो संसार का उन्मूलन होना और नष्ट होना (स्वभाव) जानकर पवित्र मनवाला और अनासक्त हो उन्मूलन यह गुण है ॥

§ ३ माप सुप्त (० १ ३)

किसके मास से सुप्त ?

भावस्ती में ।

तब माप देवपुत्र रात बीतने पर अपनी कमक म मारे जेतवन का कमकते हुए वहाँ भगवान् से वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़ा हो माप देवपुत्र ने भगवान् की गाथा में कहा—

- ध्यान-प्राप्त, ज्ञानी, निरहङ्कार, श्रेष्ठ, मुनि,
तब से भी जगह निकाल लेते हैं ।

हे पञ्चालचण्ड ! भगवान् बोले—
जिनने स्मृति का लाभ कर लिया,
वे अच्छी तरह समाहित हो,
निर्वाण की प्राप्ति के लिए,
धर्म का साक्षात्कार कर लेते हैं ।

§ ८. तायन सुत्त (२. १. ८)

शिथिलता न करे

तब, तायन देवपुत्र, जो पहले जन्म में एक तीर्थङ्कर था, रात घीतने पर अपनी चमक से सारे जेतवन को चमकाते हुये जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया ।

एक ओर खड़ा हो, तायन देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

सोता को काट दो, पराक्रम करो,
हे ब्राह्मण ! कामों को दूर करो,
कामों को बिना छोड़े हुए मुनि,
एकाग्रता को नहीं प्राप्त होता ॥
यदि करना है तो करना चाहिये,
उसमें दृढ़ पराक्रम करे,
जो प्रमत्त अपने उद्देश्य में शिथिल है,
वह और भी अधिक मैल चढ़ा लेता है ॥
एक दम नहीं करना बुरी तरह करने से अच्छा है,
बुरी तरह करने से पीछे अनुताप होता है,
करे तो अच्छी तरह ही करना अच्छा है,
जिसके करने पर पछतावा नहीं होता ॥
अच्छी तरह न पकड़ा गया कुश,
जैसे हाथ को ही काट लेता है,
वैसे ही, शिथिलता से ग्रहण किया गया श्रमण-भाव,
नरक को ही ले जानेवाला होता है ॥

जो कुछ शिथिल काम है, जो द्रव्य सङ्ग्रह है,
झूठा जो ब्रह्मचर्य है, वह अच्छा फल नहीं देता ॥

तायन देवपुत्र ने यह कहा । यह कह, भगवान् को प्रणाम और प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया ।

तब, रात घीतने पर भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओं ! इस रात को तायन-देवपुत्र, जो पहले जन्म में एक तीर्थङ्कर था, मेरा अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया ।

एक ओर खड़ा हो, तायन देवपुत्र मेरे सम्मुख यह गाथा बोला—

सोता को काट दो ।

किन्तु, बर्मीन ऊ ऊपर आकर बर्मी कासित नहीं करता,
 वह तो मर पार कर चुका ॥
 दामलि ! ब्राह्मण की पत्नी उपमा है
 क्षीणाश्रव चतुर भार प्यासी की
 ब्रम्भ और मृत्यु के अन्त को पाकर
 वह क्रीडित नहीं करता वह तो पार कर चुका ॥

§ ६ कामद मुत्त (२ १ ६)

सुखद सन्तोष

एक बार कहा ही कामद दक्षपुत्र न भगवान् को यह कहा—

भगवान् ! यह दुष्कर है कहा ही दुष्कर है ।

दुष्कर होने पर भी लोग कर लेते हैं

हे कामद ! भगवान् बोले—

सौद्व सौकों के अम्पात्ती स्थिरात्म

प्रवर्धित को अति सुखद सन्तोष होता है ॥

भगवान् ! यह सन्तोष कहा दुष्कर है ।

दुष्कर होने पर भी लोग पा लेते हैं

हे कामद ! भगवान् बोले —

चित्त को शान्त करने में रत

त्रिभन्दा दिन और रात

भावना करने में लगा रहता है ॥

भगवान् ! चित्त का प्रयास लगाता कहा कठिन है ।

चित्त लगाता कठिन होने पर भी लोग लगा लेते हैं

हे कामद ! भगवान् बोले—

इन्द्रिज्जी का शान्त करन में रत

वे मृत्यु के पाक को काट कर

हे कामद ! पण्डित लोग यह करते हैं ॥

भगवान् ! दुःख द मार्ग पण्डित है ।

दुर्गम यह भवना पीढ़

हे कामद ! अर्थ लोग पले जाते हैं

अनार्य लोग इस बोद्ध मार्ग में

शिर के बल गिर पड़ते हैं

आर्यों के भिये तो मार्ग बराबर है

आर्य काल विषम मार्ग में भी परापर पर चलते हैं ॥

§ ७ पयात्तवण्ड मुत्त (२ १ ७)

वृत्ति-नाम न धम का सासारवार

एक बार कहा ही पयात्तवण्ड मुत्त भगवान् के समुदाय यह गाथा बोला—

मैं भारी विपत्ति में आ पड़ा हूँ,
 सो मुझे आप अपनी शरण दें ॥

तब, भगवान ने सूर्य देवपुत्र के लिए असुरेन्द्र राहु को गाथा में कहा—

अर्हत् बुद्ध की शरण में,
 सूर्य चला आया है,
 हे राहु ! सूर्य को छोड़ दो,
 बुद्ध सभी के प्रति अनुकम्पा रखते हैं ॥
 जो माले अन्धकार में प्रकाश देता है,
 चमकने वाला, मण्डल वाला, उग्र तेज वाला,
 आकाश में चलने वाला, उये राहु ! मत निगलो,
 राहु ! मेरे पुत्र सूर्य को छोड़ दो ॥

तब, असुरेन्द्र राहु सूर्य देवपुत्र को छोड़, डरा हुआ-सा जहाँ वेपचित्ति असुरेन्द्र था वहाँ आया
 और सवेग से भरा, रोयें खड़ा किये एक ओर खड़ा हो गया ।

एक ओर खड़े असुरेन्द्र राहु को वेपचित्ति असुरेन्द्र ने गाथा में कहा—

क्यों इतना डरा-सा हो,
 राहु ने सूर्य को छोड़ दिया ?
 सवेग से भरा हुआ आकर,
 तुम इतने भयभीत क्यों खड़े हो ॥

मरे शिर के सात टुकड़े हो जायें,
 जन्म भर मुझे कभी सुख नहीं मिले,
 बुद्ध से आज्ञा पाकर मैं,
 यदि सूर्य को नहीं छोड़ दूँ ॥

पहला भाग समाप्त ।

मिथुनो ! तायन रेबपुत्र न यह कहा । यह कह मुझे प्रणाम और प्रशिक्षण कर वहीं अस्तर्थाव
हो गया । मिथुनो ! तायन की गाथाओं को सीजो उन्हें सम्मान करो । मिथुनो ! तायन की गाथाएँ
वही सभी ब्रह्मचर्य की पहली पाठें हैं ।

§ ९ चन्द्रिम सुच (२ १ ९)

चन्द्र-ग्रहण

आपस्ती में ।

उस समय चन्द्रमा दश पुत्र अमुरेन्द्र राहु से पकड़ लिया गया था । तब चन्द्रमा रेबपुत्र
भगवान् को स्मरण करते हुए उस समय यह गाथा बोला—

महावीर बुद्ध ! आप को नमस्कार ह
आप सभी प्रकार से विमुक्त हैं ;
मैं भारी विपत्ति में आ पड़ा हूँ,
मैं मुझे आप अपनी शरण में ॥

तब भगवान् न चन्द्रमा रेबपुत्र के लिए अमुरेन्द्र राहु को गाथा में कहा—

महत बुद्ध की शरण में
चन्द्रमा क्या भया है
राहु चौद को छाड़ दो
बुद्ध सभी के प्रति अनुकम्पा शक्त हैं ॥

तब अमुरेन्द्र राहु चन्द्रमा रेबपुत्र को छाड़ रहा हुआ-सा वहाँ दीपवर्षित अमुरेन्द्र था
वहाँ आया और संबरा न भरा रावें गया किन्तु बुद्ध और छोड़ा हो गया ।

एक बार गये हुए अमुरेन्द्र राहु को दीपवर्षित अमुरेन्द्र ने गाथा में कहा—

क्या इतना दरा-सा हो
राहु ने चन्द्रमा का छाड़ दिया ?
संबरा न भरा हुआ आकर
तुम इतना अपमान क्यों करते हो ?

मेरे शिर के मात दुरुहे हो जाँय
जगम भर मुझ कभी मुग नहीं मिले
बुद्ध न आज्ञा पा कर मैं
परि चन्द्रमा का वहीं छाड़ दूँ ॥

७ १० सुरिय सुच (१ १०)

सूर्य-ग्रहण

उस समय सूर्य रेबपुत्र अमुरेन्द्र राहु से पकड़ लिया गया था । तब सूर्य भगवान् को स्मरण
करने हुके उग सबक यह गाथा बोला—

महावीर बुद्ध ! आपका नमस्कार ह
आप सभी प्रकार से विमुक्त हैं

तत्र, दीर्घयष्टि देवपुत्र रात वीतने पर जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़ा हो, दीर्घयष्टि देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

यदि भिक्षु ध्यानी, त्रिमुक्त चित्त वाला हो,
और मन की भीतरों चाह (= अर्हत् फल) को प्राप्त करना चाहें,
तो ससार का उत्पन्न होना और नष्ट होना (स्वभाव) जान कर,
पवित्र मन वाला और अनात्मक हो, उसका यह गुण है ॥ॐ

§ ४. नन्दन सुत्त (२. २. ४)

शीलवान् कौन ?

एक ओर खड़ा हो नन्दन देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

हे गौतम ! आप महाज्ञानी को मैं पूछता हूँ,
भगवान् का ज्ञान-दर्शन खुला है,
कैसे को लोग शीलवान् कहते हैं ?
कैसे को लोग प्रज्ञावान् कहते हैं ?
कैसा पुरुष दु खों के परे रहता है ?
कैसे पुरुष की देवता भी पूजा करते हैं ?

जो शीलवान्, प्रज्ञावान्, भावित्तात्म,
समाहित, ध्यानरत, स्मृतिमान्,
क्षीणाश्रव, अन्तिम देहधारी सर्वशोक-प्रहीण ह ॥
वैसे ही को लोग शीलवान् कहते हैं,
वैसे ही को लोग प्रज्ञावान् कहते हैं,
वैसा ही पुरुष दु खों के परे हो जाता है,
वैसे ही पुरुष की देवता भी पूजा करते हैं ॥

§ ५. चन्दन सुत्त (२. २. ५)

कौन नहीं झूबता ?

एक ओर खड़ा हो चन्दन देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

रात दिन तत्पर रह,
कौन बाढ़ को तर जाता है ?
अप्रतिष्ठित और अनालम्ब,
गहरे (जल) में कौन झूबता नहीं है ?

जो सदा शील-सम्पन्न,
प्रज्ञावान्, एकाग्र-चित्त,
उत्साहशील तथा सयमी है,
वह दुस्तर बाढ़ को तर जाता है ॥
जो काम सज्ञा से घिरत,

दूसरा भाग

अनाद्यपिण्डिक-वर्ग

§ १ चन्द्रिमस सुप्त (० २ १)

ध्यानी पार जायेंगे

भावस्ती में ।

तब चन्द्रिमस वैद्युत रात पीठमे पर वहाँ भगवान् से वहाँ गया और भगवान् का भक्ति
वादन कर एक ओर लड़ा हो गया । एक ओर लड़ा हो चन्द्रिमस वैद्युत भगवान् के सम्मुख बह
गाथा बोला—

वे ही कस्यान को प्राप्त होंगे
मच्छद-रहित कम्पर में पशु के समान ;
जो ध्यानों को प्राप्त
पूकाम प्रशयापम और स्मृतिमान हैं ॥
वे ही पार जायेंगे
मच्छरी के समान जाड़ का बाद कर
जो ध्यानों को प्राप्त
अत्रमस और वकैरा-ध्यामी हैं ॥

§ २ वेणु सुप्त (२ ० ५)

ध्यामी मृग्यु से वध मर्ही जाते

एक और लड़ा हो वेणु (= विष्णु) वैद्युत भगवान् के सम्मुख बह गाथा बोला—

वे मनुष्य सुप्ती हैं
जो बुद्ध को उपासना कर
गीतम के शासन में ध्या
अत्रमस हाफ्न शिसा प्रहण करते हैं ॥

हे वेणु ! भगवान् काहे—

मेरी शिक्षाओं का भी ध्यानी पापन करते हैं
बयोचित काम में प्रमाण नहीं करत हुए ये
मृग्यु के बरा में जायेवाले नहीं होत ॥

§ ३ दीपलट्टि सुप्त (० ० ३)

मिश्र भगुनामन

देसा मीने सुप्त ।

एक गमक भगवान् राजगृह व वेणुयत वाग्वन्ध निगाय में बिहार करते हैं ।

तब, दीर्घयष्टि देवपुत्र रात बीतने पर जहाँ भगवान् थे वहाँ आया आर भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़ा हो, दीर्घयष्टि देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

यदि भिक्षु ध्यानी, विमुक्त चित्त वाला हो,
और मन की भीतरी चाह (= अर्हत् फल) को प्राप्त करना चाहें,
तो मत्सर का उत्पन्न होना और नष्ट होना (स्वभाव) जान कर,
पवित्र मन वाला और अनासक्त हो, उसका यह गुण है ॥६॥

§ ४. नन्दन सुत्त (२. २. ४)

शीलवान् कौन ?

एक ओर खड़ा हो नन्दन देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

हे गौतम ! आप महाज्ञानी जो मैं पृछता हूँ,
भगवान् का ज्ञान-दर्शन चुला टे,
कैसे को लोग शीलवान् कहते हैं ?
कैसे को लोग प्रज्ञावान् कहते हैं ?
कैसा पुरुष दु खों के परे रहता है ?
कैसे पुरुष की देवता भी पूजा करते हैं ?

जो शीलवान्, प्रज्ञावान्, भावितात्म,
समाहित, ध्यानरत, स्मृतिमान्,
क्षीणाश्रव, अन्तिम देहधारी सर्वशोक-प्रहीण छ ॥
वैसे ही को लोग शीलवान् कहते हैं,
वैसे ही को लोग प्रज्ञावान् कहते हैं,
वैसा ही पुरुष दु खों के परे हो जाता है,
वैसे ही पुरुष की देवता भी पूजा करते हैं ॥

§ ५. चन्दन सुत्त (२. २. ५)

कौन नहीं ब्रूवता ?

एक ओर खड़ा हो चन्दन देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

रात दिन उत्पर रह,
कौन बाढ़ को तर जाता है ?
अप्रतिष्ठित और अनालम्ब,
गहरे (जल) में कौन ब्रूवता नहीं है ?

जो सदा शील-सम्पन्न,
प्रज्ञावान्, एकाग्र-चित्त,
उत्साहशील तथा सयमी है,
वह दुस्तर बाढ़ को तर जाता है ॥
जो काम सज्ञा से विरत,

कम-जन्मन का पार कर गया
संसार में स्वाद नहीं कटा तथा बने रहन की जिम इच्छा नहीं रही ;
बही गहरे जल में नहीं डूबता है ॥

§ ६ वासुदत्त सुत्त (२ ६)

कामुकता का प्रहाण

एक और लका हो सुवत्स देवपुत्र भगवान् क सम्मुख यह गाथा बोला —

जैसे माछा जुम गया हो
या सिर क ऊपर जाग करा गई हो
वैसे ही माग-बिसाग की इच्छा क प्रहाण क क्रिये
स्मृतिमान् हो भिक्षु विचरण करे ॥

§ ७ सुवत्स सुत्त (२ ७)

चित्त की घयड़ाहट कैसे दूर हो ?

एक और लका हो सुवत्स देवपुत्र भगवान् क सम्मुख यह गाथा बोला—

यह चित्त सदा घबराया रहता है
मन सदा जड़ेग से मरा रहता है
माने बाके कामों का टपाक कर,
आर व्याप होने कामों को करने में ॥
मैं दूझा हूँ, व्याप बताये कि क्या काह
प्रेता (उपाध) है त्रिमय चित्त घबराता नहीं है ॥

बोध्यह क जन्मान

इन्द्रिय-सेवर

तथा सारे संसार न बिरल होना छोड़

मैं किसी दूसरी तरह प्राणियों का कल्याण नहीं देखता हूँ ॥

सुवत्स देवपुत्र वहीं जन्मार्थन हो गया ।

§ ८ ककुध सुत्त (२ ८)

भिक्षु को भामन् और खिस्ता नहीं

देना मैंने मुना ।

एक समय भगवान् साकल क भञ्जनपत्र प्रग्राप में बिहार करते थे ।

तब ककुध देवपुत्र वहीं भगवान् से वहीं आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर
लका हो ककुध देवपुत्र न भगवान् का यह कहा—

भिक्षु जी भामन् ता है ?

भामुन क्या काकर ?

भिक्षु जी तो क्या बिना कर रहे है ?

भामुन मरत मरा क्या बिना है ?

भिक्षु जी, तो क्या आनन्द भी नहीं कर रहे हैं और न चिन्ता ?
आजुम ! ऐसी ही बात है ।

[ककुध—]

भिक्षु जी, न तो आप चिन्तित हैं,
न तो आपको कोई आनन्द है,
अकेला बैठे आप का,
क्या मन उदास नहीं होता ?

[भगवान्—]

हे ककुध ! न तो मैं चिन्तित हूँ,
न तो मुझे कोई आनन्द है,
अकेला बैठे मेरा मन,
उदास नहीं होता है ॥

[ककुध—]

भिक्षु जी, आप को चिन्ता क्यों नहीं ?
आपको आनन्द भी क्यों नहीं है ?
अकेला बैठे आप का,
मन उदास क्यों नहीं होता ?

[भगवान्—]

चिन्तित पुरुष को ही आनन्द होता है,
आनन्दित पुरुष को ही चिन्ता होती है,
भिक्षु को न चिन्ता है और न आनन्द,
आजुम ! इसे ऐसा ही समझो ॥

[ककुध—]

चिरकाल पर देव रहा हूँ,
मुक्त हुए ब्राह्मण को,
जिम भिक्षु को न चिन्ता है और न आनन्द,
जो भवसागर को पार कर गये हैं ॥

§ ९. उत्तर सुत्त (२ २ ९)

सासारिक भोग को त्यागो

राजगृह में ।

एक ओर खड़ा हो उत्तर देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—
जीवन ब्रीत रहा है, आयु थोड़ी है,
बुढ़ापा से बचने का कोई उपाय नहीं,
मृत्यु में यह भय देखते हुये,
सुख लाने वाले पुण्य कर्म कहे ॥

[भगवान्—]

जीवन ब्रीत रहा है, आयु थोड़ी है,
बुढ़ापा से बचने का कोई उपाय नहीं,

स्रापु में बह मय देखते हुये
सामारिक भोग छोड़ दे निर्वाण की लोख में ॥७॥

§ १० अनाद्यपिण्डिक मुच (० ० १०)

जैतघन

एक और कहा हा अनाद्यपिण्डिक देवपुत्र भगवान् के सम्मुख बह गाथा बोला—

यही बह जैतघन है
जपियों से मभित
बर्मराज (चुड़) बाहों बसते हैं,
मुच में बही भद्रा पैदा करता है ॥
कर्म बिद्या और धर्म
लीक पाकन करना और उत्तम जीवन
इसी में मनुष्य छुड़ होते हैं
न तो मोक्ष से और न बन् से ॥
इसकिये पण्डित पुरुष
अपनी मलाई का क्वाक करते हुये
अच्छी तरह से धर्म कमावे
इस तरह बह बिछुड़ होता है ॥
सारिपुत्र की तरह मशा से
शीक स और चित्त की शांति से
को मिष्ट पार कहा जाता है
बही परम-पद पाता है ॥†

अनाद्यपिण्डिक देवपुत्र ने यह कहा । यह कह भगवान् को अभिवादन और प्रशिक्षण कर के वहीं अन्तर्धान हो गया ।

तब उस रात के बीचों पर भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—

भिक्षुओ ! आज की रात बह देवपुत्र मेरे सम्मुख कहा हो बह गाथा बोला—

यही बह जैतघन है
यही परम-पद पाता है ॥

यह कह मुझे अभिवादन और प्रशिक्षण करके वहीं अन्तर्धान हो गया ।

इतना कहे जाने पर आधुप्मान् जानन्द ने भगवान् को कहा— 'अन्ते ! बही अनाद्यपिण्डिक देवपुत्र हो गया है ? अनाद्यपिण्डिक पृथपति आधुप्मान् सारिपुत्र के प्रति कहा भद्रास्तु वा ।

ठीक कहा जानन्द ! जो तर्क से समझा जा सकता है उसे तुमने समझ लिया । जानन्द ! अनाद्यपिण्डिक ही देवपुत्र हुआ है ।

अनाद्यपिण्डिक धर्म समाप्त ।

* बही गाथामें १ १ ३ में ।

† बही गाथामें १ ५ ८ में ।

तीमरा भाग

नानातीर्थ-वर्ग

§ १. शिव सुत्त (२. ३. १)

सत्पुरुषों की संगति

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् ध्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

तब, शिव देवपुत्र एक ओर खड़ा हो भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

सत्पुरुषों के ही साथ रहो,

सत्पुरुषों के ही साथ मिलो-जुलो,

सन्तों के ऊँचे धर्म को जान,

भला ही होता है, बुरा नहीं ॥

“सन्तों के ऊँचे धर्म को जान,

ज्ञान का साक्षात्कार करता है, जो दूसरी तरह से नहीं होता ॥

सन्तों के ऊँचे धर्म को जान,

शोक के बीच में रह शोक नहीं करता ॥

सन्तों के ऊँचे धर्म को जान,

धानधनों के बीच शोभता है ॥

सन्तों के ऊँचे धर्म को जान,

सत्त्व सुगति को प्राप्त होते हैं ॥

सन्तों के ऊँचे धर्म को जान,

सत्त्व परम-सुख पाते हैं ॥

तब, भगवान् ने शिव देवपुत्र को गाथा में उत्तर दिया—

सत्पुरुषों के ही साथ रहे,

सत्पुरुषों के ही साथ मिले जुले,

सन्तों के ऊँचे धर्म को जान,

सभी दुःखों से छूट जाता है ॥ ❀

§ २. खेम सुत्त (२. ३. २)

पाप-कर्म न करे

एक ओर खड़ा हो, खेम देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

मूर्ख दुर्बुद्धि लोग विचरण करते हैं,

अपना सजु आप ही हो कर
 पाप कर्म किया करते हैं
 जिसका कुछ बड़ा कटु होता है ॥
 उस काम का करना अच्छा नहीं
 जिसको करके अनुत्पाद करना पड़े
 जिसका अर्ध ५ साध रोते हुए
 कुछ भोगना पड़ता है ॥
 उसी काम का करना अच्छा है
 जिसे करके अनुत्पाद न करना पड़े
 जिसका आनन्द और सुखी सुखी से
 (अच्छा) एक मित्रता है ॥
 पहले ही उस काम को कर
 जिससे अपना हित होता जाने
 गाड़ीबाज की तरह चिन्ता में न पड़
 और पुरुष पूरा पराक्रम करे ॥
 जैसे कोई गाड़ीबाज
 समतल पथी सड़क को छोड़
 ऊँची नीची राह में आ
 चुरा दूद जाने से चिन्ता में पड़ जाता है ॥
 जैसे ही धर्म को छोड़
 अधर्म में पड़ जाने से
 मूर्ख मनु के गुण में गिर कर
 चुरा दूद जाने काक जैसा चिन्ता में पड़ जाता है ॥

३ सेरि सुष्ठ (० ३ ३)

दान का सद्व्यय

एक और लड़ा हो मेरी देवगुप्त भगवान् को वह गाथा बोझ—

अन्न वा मो समी चाहते हैं
 दानों देवता और मनुष्य
 भन्ना ऐसा हीन प्राणी है
 जिसको अन्न नहीं माला हो ?

[भगवान्—]

जो अन्न अद्भुत एक दान करते हैं
 अल्पज प्रयत्न चित्त से
 उन्हीं को अन्न प्राप्त होत है
 इस लोक में और परलोक में ॥
 इसलिये कृपणी छाड़ दूर कर गुप्त दान करे
 पुण्य ही परलोक में प्राणियों का आधार होता है ॥

भन्ते ! आश्चर्य है, अद्भुत है ! भगवान् ने यह ठीक ही कहा है कि—

जो भक्त श्रद्धापूर्वक दान करते हैं ।

भन्ते ! बहुत पहले मैं सेरी नाम का एक राजा था । मैं दानी, दानपति और दान की प्रशंसा करनेवाला था । चारों फाटक पर मेरी ओर से दान दिया जाता था—भ्रमण, ब्राह्मण, गरीब, राही, लाचार और भिखमंगों को ।

भन्ते ! जब मैं जनान में जाता तो वे कहने लगतीं—आप तो दान दे रहे हैं, हम नहीं दे रही हैं । अच्छा होता कि हम लोग भी आप के चलते दान करना और पुण्य कमातीं ।

भन्ते ! तब मेरे मन में यह हुआ—मैं दानी, दानपति और दान की प्रशंसा करने वाला हूँ । 'दान दूँगी' ऐसा कहनेवाली स्त्रियों को मैं क्या कहूँ । भन्ते ! तब, मैंने पहले फाटक को उनके लिये छोड़ दिया । वहाँ स्त्रियों की ओर से दान दिया जाने लगा, मेरा दान लौट आता था ।

भन्ते ! तब, मेरे बहाल विधे क्षत्रियों ने मेरे पास आकर कहा—महाराज की ओर से दान दिया जाता है और स्त्रियों की ओर से भी दान दिया जाता है, किन्तु हम लोगों की ओर से नहीं । महाराज के चलते हम लोग भी दान दें और पुण्य कमायें ।

भन्ते ! सो मैंने दूसरे फाटक को उन क्षत्रियों के लिये छोड़ दिया । वहाँ क्षत्रियों की ओर से दान दिया जाने लगा, मेरा दान लौट आता था ।

भन्ते ! तब मेरे निपाहियों ने । सो मैंने तीसरे फाटक को उन निपाहियों के लिये छोड़ दिया । मेरा दान लौट आता था ।

भन्ते ! तब, ब्राह्मण और गृहपतियों में... । सो मैंने चौथे फाटक को उन ब्राह्मण और गृहपतियों के लिये छोड़ दिया । मेरा दान लौट आता था ।

भन्ते ! तब, लोगों ने मेरे पास आकर यह कहा—अब तो महाराज की ओर से कोई भी दान नहीं दिया जाता है ।

भन्ते ! इस पर मैंने उन लोगों को कहा—लोगों ! बाहर के प्रान्तों से जो आमदनी उठती है उसका आधा राजमहल में ले आओ और आधे को वहीं दान कर दो—भ्रमण, ब्राह्मण, गरीब, राही, लाचार और भिखमंगों को ।

भन्ते ! इस प्रकार बहुत दिनों तक दान दे कर मैंने जो पुण्य कमाये है उसकी कहीं हद नहीं पाता—इतना पुण्य है, इतना उसका फल है, इतने काल तक स्वर्ग में रहना होगा ।

भन्ते ! आश्चर्य है, अद्भुत है ! भगवान् ने ठीक ही कहा है—

जो भक्त श्रद्धा-पूर्वक दान करते हैं,

अत्यन्त प्रसन्न चित्त से,

उन्हीं को भक्त प्राप्त होते हैं,

इस लोक में और परलोक में ॥

इसलिये, कजूमी छोड़,

छूट कर खूब दान करे,

पुण्य ही परलोक में

प्राणियों का आधार होता है ॥

§ ४. घटीकार सुत्त (२. ३. ४)

बुद्धधर्म से ही मुक्ति, अन्य से नहीं

एक ओर खड़ा हो घटीकार देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

बहिष् लोक में उत्पन्न हुए

(ऐं १ ५ १)

४५ अन्तु सुच (२ ३ ५)

अप्रमादी को प्रणाम्

ऐसा मैं न सुना ।

एक समय कुछ भिक्षु हिमयन्त के पास कोशक के बंगलों में विहार करते थे । वे उद्धत मंद, चपक चकवाही भरी बात निकाहने वाले गूढ़ स्थिति वाले अमप्रज्ञ अमसाहित प्रचंड चित्त वाले अस्वस्थ इन्द्रियों वाले थे ।

तब अन्तु दंपत्य पूर्विका के उपोसथ की जहाँ न भिक्षु थे वहाँ आया । आकर उसने उन भिक्षुओं को गामाओं में कहा—

पहले सुख से रहते थे भिक्षु गांतम के आचक ।

कोम-रहित मिश्रात्म करते थे कोम-रहित रहने की आशा ।

संसार की अल्पिता जान समने दुःखों का भग्न कर दिया न

जब तो अपने की बिगाड़ गाँव में जमीनदार के ऐसा ।

हैस कर खाते और बढ़ रहते हैं दूसरों के घर की पीछों के कोभी ।

मैं न क प्रति हाथ जोड़ इनमें कितनों को प्रणाम् करता हूँ ॥

पूछे हुने थे अनाथ जैसे जैसे मुहाँ पेंका हो जैसे ।

औ प्रमत्त होकर रहते हैं उनके प्रति मैं ऐसा कहता हूँ ।

और की अप्रमाद से विहार करते हैं

उन्हें मेरा प्रणाम् है ॥

४६ रोहितस्स सुच (२ ३ ६)

लोक का भग्न चककर जहाँ पाया जा सकता बिना भग्न पाये मुक्ति भी नहीं

आचरनी में ।

एक और जात्रा हो रोहितस्स दंपत्य भगवान् से बड़ बोका—भगते ! जहाँ न कोई जनमता है न बड़ा होता है न मरता है न शरीर छोड़कर फिर उत्पन्न होता है ? भगते ! क्या एक चककर लोक का भग्न जाना ऐंका था पाया जा सकता है ?

आहुस ! जहाँ न कोई जनमता है न बड़ा होता है न मरता है न शरीर छोड़ कर फिर उत्पन्न होता है, लोक के उस भग्न को एक चककर जाना ऐंका था पाया जाना मैं नहीं बताता ।

भगते ! आचरनी है अरुमुच है । औ भगवान् ने हतमा डीक कहा— लोक के उस भग्न की चक-चककर जाना ऐंका था पाया जाना मैं नहीं बताता ।

भगते ! बहुत पहले मैं रोहितस्स नाम का एक कवि भोजपुत्र बड़ा अक्षिमात् आकाश में विचरन करमेशाक्य था । भगते ! उस समय मेरी ऐसी गति शक्ति थी जैसे कोई होशिवार तीरम्बाज—सिखावा हुआ जिसका हाथ साफ हो गया है त्रिपुत्र अम्मासी—एक इन्कै तीर की बड़ी आसानी से लाख की छाया तक पेंक दे ।

भगते ! उस समय मेरा डेग ऐसा पक्का था जैसे बुरब के समुद्र से केका बल्लिम के समुद्र तक । भगते ! तब मेरे चित्त में बड़ क्वाक आवा—मैं चक-चककर लोक के भग्न तऊ पहुँचूँगा ।

भन्ते ! मैं मैं इस प्रकार की गति में, इस प्रकार के डेग भरते, प्याना-पीना छोड़, पाग्याना-पेनाय छोड़, सोना और आराम करना छोड़, मैं वर्ष की आयु तक जीता रहूँ यथावर चलते रहूँ भी लोक के अन्त को बिना पाये बीच ही में मर गया ।

भन्ते ! आश्चर्य है, अद्भुत है ! जो भगवान् ने इतना ठीक कहा— 'लोक के इस अन्त को चल-चलकर जाना, देखा या पाया जाना मैं नहीं बताता ।

आनुम ! मैं कहता हूँ कि—बिना लोक का अन्त पाये दुःखों का अन्त करना सम्भव नहीं है । आनुम ! और यह भी कि—दुर्मी व्याम भर यज्ञा धारण करने वाले कलेंवर (= शूर्पाक) में लोक, लोक को उत्पत्ति, लोक का निरोध और लोक के निरोध करने का मार्ग, सभी मौजूद हैं ।

चल चलकर नहीं पहुँचा जा सकता, लोक का अन्त कभी भी,
और बिना लोक का अन्त पाये, दुःख में छुटकारा नहीं है ॥

इसलिये, बुद्धिमान् लोक को पहिचाने,
लोक के अन्त को पानेवाला, प्रज्ञाचर्य धारण करनेवाला,
लोक के अन्त को ठीक से जान,
न लोक की आशा करता है और न परलोक की ॥

§ ७. नन्द सुत्त (२. ३. ७)

समय बीत रहा है

एक ओर खड़ा हो नन्द देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—
समय बीत रहा है, रातें निकल रही हैं,
(देखो १ १ ४)

§ ८. नन्दिविशाल सुत्त (२. ३. ८)

यात्रा कैसे होगी ?

एक ओर खड़ा हो नन्दिविशाल देवपुत्र ने भगवान् को गाथा में कहा—
चार चक्को वाला, नव दरवाजों वाला, ...
(देखो १ ३ ९)

§ ९. सुमित्र सुत्त (२. ३. ९)

आयुष्मान् सारिपुत्र के गुण

श्रावस्ती में ।

तब, आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् आनन्द को भगवान् ने कहा—आनन्द ! तुम्हें सारिपुत्र सुहाता है न ?

भन्ते ! मूर्ख, दुष्ट, मूढ़ और सनके आठमी को छोड़ कर भला ऐसा कौन होगा जिसे आयुष्मान् सारिपुत्र नहीं सुहायें ! भन्ते ! आयुष्मान् सारिपुत्र महाज्ञानी हैं, महाप्रज्ञ हैं, बड़े पण्डित हैं । आयुष्मान् सारिपुत्र की प्रज्ञा अत्यन्त प्रसन्न है । उनकी प्रज्ञा बढ़ी तीव्र है । उनकी प्रज्ञा बढ़ी तीक्ष्ण है । उनकी प्रज्ञा में पैठना आसान नहीं । भन्ते ! आयुष्मान् सारिपुत्र बड़े अत्येच्छ हैं, सतोषी हैं, विवेकी हैं,

अनासक्त हैं उस्ताही हैं बत्ता हैं बचन-कुशल हैं बताने वाले हैं पाप की निन्दा करते बाढ हैं । भन्ते ! मूर्ख हुए, मूढ़ और सनने भाइयों का छोड़ कर भला ऐसा कील होगा जिसको आपुष्मान् सारिपुत्र नहीं सुहायें ।

आनन्द ! ऐसी ही बात है । भला ऐसा कील होगा जिसको सारिपुत्र नहीं सुहायें !
आनन्द ! सारिपुत्र महाशायी हैं महाप्रभ हैं ।

तब सुसिम वैद्यपुत्र आपुष्मान् सारिपुत्र के गुण कहे जाने के समय वैद्यपुत्रों का बड़ी मारी मण्डली के साथ वहाँ भगवान् के वहाँ आवा और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर लड़ा हा गया । एक ओर लड़ा हो सुसिम वैद्यपुत्र ने भगवान् का कहा—

भगवान् ! सुगत ! ऐसी ही बात है । भला ऐसा कील होगा जिसको आपुष्मान् सारिपुत्र नहीं सुहायें ।

भन्ते ! आपुष्मान् सारिपुत्र महाशायी हैं महाप्रभ हैं ।

तब सुसिम वैद्यपुत्र की मण्डली ने आपुष्मान् सारिपुत्र के गुण कहे जाने के समय मंगुह प्रसुहित और प्रीति-मुक्त हो प्रसन्न कान्ति धारण की । उसे सुम अच्छी कतिबाछा अच्छी तरह काम किया गया पीछे कनी कपड़ में भेद कर रक्खा वैद्युर्ण मणि भासता है तपता है और चमकता है—
जग ही सुसिम वैद्यपुत्र की मण्डली ने प्रसन्न कान्ति धारण की ।

जैसे अच्छे सोने का आभूषण दण्ड सुवर्णकार से बड़ी कारीगरी के साथ गढ़ा गया पीछे कनी कपड़े में कपेट कर रक्खा भासता है तपता है और चमकता है—वैसे ही सुसिम वैद्यपुत्र की मण्डली ने प्रसन्न कान्ति धारण की ।

जैसे रात के सितसारे औपचि-तारका (छत्र तारा) वैसे ही सुसिम वैद्यपुत्र की मण्डली ने प्रसन्न कान्ति धारण की ।

जैसे शरत्काल में बादल के इट जाने और आकास शुद्ध जाने पर धूरण आकाश में चर सारी अभिपारी को दूर कर के भासता है तपता है और चमकता है—वैसे ही सुसिम वैद्यपुत्र की मण्डली ने प्रसन्न कान्ति धारण की ।

तब सुसिम वैद्यपुत्र ने आपुष्मान् सारिपुत्र के विषय में भगवान् के पास यह गाथा कहा—
परिहृत और लड़ा ज्ञानी ओष-रहित सारिपुत्र

अव्यय्य सुरत दान्त अपि जिनने बुद्ध के तेज का काम किया है ॥

तब भगवान् ने आपुष्मान् सारिपुत्र के विषय में सुसिम वैद्यपुत्र को गाथा में यह कहा—

परिहृत और लड़ा ज्ञानी ओष-रहित सारिपुत्र

अव्यय्य, सुरत दान्त अपनी मज्झरी की राह देण रहा है ॥

६ १० नाना तिरियय सुच (२ ३ १०)

नाना तीर्थों के मत बुद्ध भगुवा

ऐसा मीने सुभा ।

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कच्छण्डक निवाप में बिहार करते थे ।

तब कुछ दूरे मठाल आकर वैद्यपुत्र—असम सहसी निक, आकोठक वेदवहरी और माणय शामिय—रात बीतने पर अपनी चमक से सारे वेलुवन को चमका वहाँ भगवान् ने वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर लड़े हा गये ।

एक ओर लड़ा हो असम वैद्यपुत्र पूरण कस्तप के विषय में भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोका—

यदि कोई पुरुष मारे या काटे,
या किसी को बर्बाद कर दे—
तो कस्मप उसमें अपना कोई पाप,
या पुण्य नहीं देखते ॥
उन्ने विश्वस्त धात प्रताई ह,
वे गुरु सम्मान के भाजन है ॥

तब, सहली देवपुत्र मक्खलि-गोसाल के विषय में भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

कठिन तपश्चरण और पाप जुगुप्सा में मयत,
मान, कलह-त्यागी,
ग्रान्त, बुराईयों से विरत, मत्तवार्दी,
उन जैसे कभी पाप नहीं कर सकते ॥

तब, निरु देवपुत्र निगण्ट नातपुत्र के विषय में भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

पाप में घृणा करने वाले, चतुर, भिक्षु,
चारों आस में सुमवृत्त रहने वाले,
देखे सुने को कहते हुये,
उनमें भला क्या पाप हो सकता है ?

तब, आकोटक देवपुत्र नाना तीर्थों के विषय में भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

पकुध कातियान, निगण्ट,
और भी जो ये हैं मक्खलि, पूरण,
श्रामण्य पाने वाले ये गण के नायक हैं,
ये भला मत्पुरुषों में दूर कैसे हो सकते हैं ?

तब, वेट्ठवरी देवपुत्र ने आकोटक देवपुत्र को गाथा में कहा—

हुँआ हुँआ कर राने वाला अटना मियार,
सिंह के समान कभी नहीं हो सकता,
नगा, झड़ा, यह गण का गुरु,
जिसकी चलन में मन्देह किया जा सकता है,
सज्जनों के सरीखा एकदम नहीं है ॥

तब, पापी मार वेट्ठवरी देवपुत्र में पैठ भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

तप और दुष्कर क्रिया करने में जो लगे हैं,
जो उनको विचार पूर्वक पालन करते हैं,
और जो सांसारिक रूप में आसक्त हैं,
देवलोक में मजे उठाने वाले,
वे ही लोग परलोक बनाने का,
अच्छा उपदेश देते हैं ॥

तब, भगवान् ने 'यह पापी मार है' जान उसे गाथा में उत्तर दिया—

राजगृह के पहाड़ों में,

विपुल धन बना जसा इ
 द्योत^१ हिमालय में ओछ है,
 आकाश में चढ़ने वालों में सूरज,
 बख्तालों में समुद्र ओछ है
 मछलों में चम्पूमा,
 बीसे ही दयताओं के साथ सारे लोक में
 तुम ही मनुष्य बने जाते हैं ॥

दशपुत्र सयुक्त समाप्त

तीसरा परिच्छेद

३. कोशल-संयुक्त

पहला भाग

प्रथम दर्ग

§ १. दहर सुत्त (३. १. १)

चार को छोटा न समझे

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जैनघन आराम में विहार करते थे ।

तब, कोशल-राज प्रसेनजित् जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् के साथ समोदन कर भावभगत के शब्द समाप्त कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर घेठ, कोशल-राज प्रसेनजित् ने भगवान् को यह कहा—आप गौतम क्या अनुत्तर पूर्ण-बुद्धत्व पा लेने का दावा नहीं करते ?

महाराज ! यदि कोई किसी को सचमुच सम्यक् बहे तो वह मुझ ही को कह सकता है ।

महाराज ! मैंने ही उस अनुत्तर पूर्ण-बुद्धत्व का साक्षात्कार किया है ।

हे गौतम ! जो दूसरे श्रमण और ब्राह्मण हैं—सबवाले, गणी, गणाचार्य, विख्यात, यशस्वी, तीर्थंकर, बहुत लोगों से सम्मानित जैसे, पूरण-करसप, मङ्गल्लि-गोसाल, निगण्ठ नातपुत्र, संजय चेलट्टि पुत्र, पक्रुध कच्चायन, अजित केसरकम्बली—वे भी मुझ से पूछे जाने पर अनुत्तर सम्यक् सम्बुद्धत्व पाने का दावा नहीं करते हैं ! आप गौतम तो आयु में भी छोटे हैं और नये नरे प्रव्रजित भी हुए हैं !

महाराज ! चार ऐसे हैं जिनको 'छोटे हैं' समझ अवज्ञा या अपमान करना उचित नहीं । कौन से चार ? (१) क्षत्रिय को 'छोटा है' समझ अवज्ञा या अपमान करना उचित नहीं, (२) साँप को , (३) आग को , और (४) भिक्षु को । महाराज इन चार को—'छोटे हैं' समझ अवज्ञा या अपमान करना उचित नहीं ।

भगवान् ने यह कहा । यह कह कर भगवान् बुद्ध ने फिर भी कहा—

ऊँचे कुल में उत्पन्न, बड़े, यशस्वी क्षत्रिय को,
'छोटा है' जान कम न समझे, उसका कोई अपमान न करे ,
राज्य पाकर क्षत्रिय नग्रेष्ठ-पद पर आरुढ़ होता है,
बह क्रुद्ध होकर राज-शक्ति से अपना बटला ले लेता है,
हसलिये, अपनी जान की रक्षा करते हुए वेमा करने से राज भावे ॥
गाँव में, या जंगल में, कहीं भी जो साँप को देखे,
'छोटा है' जान उसे कम न समझे, उसका अनादर न करे,

रंग विरंग के बड़े तेज सौंप बिचरते हैं
 असावधान रहने वाले को रौंभ लेते हैं कभी पुरुष या स्त्री की
 इसलिये अपनी जान बचाते हुये बैसा करने से बाज आये ॥
 छपटों में सब कुछ जसा दूने वाली काले मार्ग पर चलने वाली भाग को
 "छाया है" जान कम न समझे कोई उसका अनादर न करे
 जम्बवान पाकर वह बहुत यड़ी हा जाती है
 बढ़कर असावधान रहने वाले का क्या होती है स्त्री या पुरुष को
 इसलिये अपनी जान बचाते हुये बैसा करने से बाज आये ॥
 काले मार्ग पर चलने वाली भाग जिस बच को खल्य होती है
 वहाँ कुछ काल व्यतीत होने पर हरिवाली फिर भी छग जाती है ॥
 किन्तु जिस घालसम्पन्न मिथु अपने तेज स जका देता है
 वह पुत्र पशु नापाक या धन कुछ भी नहीं पाता
 निःसम्पन्न निर्बल शिर कर ताक-बुझ-म्या हो जाता है ॥
 हमसिय पवित्र गुरुन अपनी भलाई का रूपाय कर
 सौंप भाग और पशुधर्म छत्रिय
 बार हात्मसम्पन्न मिथु क साथ ठीक से पेश आये ॥

वह बढ़ने पर कोसलगात्र प्रसेनजित् भगवान् स बोध—मन्त्र ! पद्म डीक कहा ! मन्त्रे ! जैसे
 उकट का सीपा कर द हँके को उधार दे भटक का राह दिया है, भौधियारे में सेल-प्रवीण दिया है—
 धौल वाले कप दण्ड के—बम ही भगवान् न जयेक प्रकार से धम की प्रकाशित कर दिया है । मन्त्रे !
 यह मैं भगवान् की शरण जाता हूँ, धर्म की धार मिथु-संप की । मन्त्रे ! आज ये जन्म भर के छिये
 मुझ शरणागत का भगवान् उपासक श्रीकार परें ।

५ ० पुरिस मुत्त (३ १ ०)

तीस अद्वितक भम

आपसी में ।

तब कोशानात्र प्रसेनजित् वहाँ भगवान् पे बहा भावा और भगवान् का अभिवादन कर एक
 और बंद गया ।

एक और बंद, काशानात्र प्रसेनजित् ने भगवान् का बंद कहा—मन्त्र ! पुरुष के कितने धम
 अन्धधाम धर्म उन्मत्त होने हैं या उनके अद्वित गुण और कह क भिन्न होते हैं ?

महाराज ! पुरुष के तीस धम अपना म धर्म उदरक होने हैं जो बमक अद्वित गुण और कह क
 भिन्न हैं । कब तीन ? (१) महाराज ! पुरुष का मोक्ष अन्धधाम धर्म उन्मत्त होने है या उसके अद्वित ।
 (२) महाराज ! पुरुष का धम अन्धधाम धर्म । (३) महाराज ! पुरुष को मोक्ष अन्धधाम धर्म ...।
 महाराज ! पुरुष क वही नाम केय अन्धधाम धर्म उन्मत्त होने है या उसके अद्वित गुण और कह
 क भिन्न हैं ।

भोम ह्य और माह

शारणिम का ५ पुरुष का

अग्ने ही अगिर उ गज हाकर जा कर देत है

अग्ने अग्ने ही कब केय दे देव को ॥

§ ३. राजरथ सुत्त (३. १. ३)

मन्त-धर्म पुगना नहीं होता

श्रावस्ती में ।

एक ओर बैठ कोशल-राज प्रसेनजित् ने भगवान् को यह कहा—भन्ते ! क्या ऐसा कुछ है जो जन्म लेकर न पुगना होता हो और न मरता हो ।

महाराज ! ऐसा कुछ नहीं है जो न पुगना होता हो और न मरता हो । महाराज ! जो घड़े-घड़े के चे क्षत्रिय-परिवार के हैं—धनार्थ, धर्म, माण्डार, महाभोगवाले, जिनके पास सोना-चौद्री अफगत हैं, विद्या, उपकरण, इन तीन धान्य से सम्पन्न—ये भी जन्म लेकर बिना बड़े हुए और मरे नहीं रहते ।

महाराज ! जो बैठे के चे ब्राह्मण-परिवार के हैं वे भी जन्म लेकर बिना बड़े हुए और मरे नहीं रहते ।

महाराज ! जो बर्तन भिक्षु हैं—क्षीणाश्रय, जिनका व्रतार्थ-वास पूरा हो गया है, जिनने जो कुछ करना या कर लिया है, जिसका भार उनसे चुका है, जो परमार्थ को प्राप्त हो चुके हैं । जिनका भव-वन्धन कट गया है, परम ज्ञान प्राप्त कर जा विमुक्त हो गये हैं—उनका भी शरीर नष्ट जाता है और वेकार हो जाता है ।

घड़े डाढ़-पाट के राजा के रथ भी पुराने हो जाते हैं,
यह शरीर भी दुःखापा को प्राप्त हो जाता है,
मन्तों का धर्म पुगना नहीं होता,
मन्त लोग मरुत्तों से ऐसा कहा करते हैं ॥

§ ४. पिय सुत्त (३. १. ४)

अपना प्यारा कौन ?

श्रावस्ती में ।

एक ओर बैठ, कोशल-राज प्रसेनजित् ने भगवान् को यह कहा—भन्ते ! यह, अकेला बैठ ध्यान करने मेरे मन में ऐसा चिन्तन उठा—“किनको अपना प्यारा है और किनको अपना प्यारा नहीं है ।” भन्ते ! तब मेरे मन में यह हुआ—“जो शरीर से दुराचार करते हैं, वचन से दुराचार करते हैं, मन से दुराचार करते हैं उनको अपना प्यारा नहीं है ।” यदि वे ऐसा कहे भी—“मुझे अपना प्यारा है” तो भी, सचमुच मैं उनको अपना प्यारा नहीं हूँ ।

तो क्यों ? जो शत्रु शत्रु के प्रति करता है, वही वे अपने प्रति आप करते हैं । इसलिये, उनको अपना प्यारा नहीं है ।

और, जो शरीर से सदाचार करते हैं, वचन से सदाचार करते हैं, मन से सदाचार करते हैं, उनको अपना प्यारा है । यदि वे ऐसा कहे भी—“मुझे अपना प्यारा नहीं है” तो भी सचमुच उनको अपना प्यारा है ।

तो क्यों ? जो मित्र मित्र के प्रति करता है, वही वे अपने प्रति आप करते हैं । इसलिये उनको अपना प्यारा है ।

महाराज ! यथार्थ में ऐसी ही बात है । जो शरीर से दुराचार करते हैं इसलिये, उनको अपना प्यारा नहीं है । और, जो शरीर से सदाचार करते हैं इसलिये, उनको अपना प्यारा है ।

जिसे अपना प्यारा है वह अपने को पाप में मत लगावे,

हुकूम करनेवालों की मुक्त मुक्त नहीं होता ॥
 मनुष्य-शरीर को छोड़ दृष्टि के पक्ष में आ गये का
 भङ्गा, क्या अपना होगा ! भसा वह क्या लेकर जाता है ।
 क्या उसने पीछे पीछे जाता है साथ न छोड़ने वाली छाया जैसा ।
 पाप और पुण्य दोनों को मनुष्य यहाँ करता है
 वही उसका अपना होता है और उसी को लेकर वह जाता है
 वही उसने पीछे-पीछे जाता है साथ न छोड़न पाछी अपना उर ॥
 इसकिये कल्याण कर अपना परकोक पचाते दूये ।
 पुण्य ही परकोक में मायियों का आधार होता है ॥

§ ५ अचरस्वित्त मुच (३ १ ५)

अपनी रखवाली

एक और बेट कोटल-नाम प्रसेनजित् ने मगधान् को बह कहा—मन्ते ! यह अच्छा बेट भ्राम
 करते मरे मम में क्या बितर्क उठा “किन्तु अपनी रक्षावाली कर ली है और किन्तु अपनी रक्षावाली
 नहीं की है ?

मन्ते ! तब मरे मम में वह दृष्ट्य—जो शरीर से दुराचार करते हैं पचम से दुराचार करते ह
 मम से दुराचार करते हैं उनसे अपनी रक्षावाली नहीं कर ली है । मने ही उनकी रक्षा क लिये हाथी
 रथ और पैदल सेना हों किन्तु ली ली उनकी रक्षावाली नहीं हुई है ।

तो क्यों ? बाहर की ही उनकी रक्षा हुई है आभ्यात्म की नहीं । इसकिये उनकी अपनी रक्ष
 वाली नहीं हुई है ।

जो शरीर से सदाचार करते हैं उनसे अपनी रक्षावाली कर ली है । मने ही पैदल सेना न
 हों किन्तु ली ली उनकी अपनी रक्षावाली हो गई है ।

तो क्यों ? आभ्यात्मिक रक्षा उनकी ही गई है बाहर की नहीं हुई है । इसकिये उनकी अपनी
 रक्षावाली हो गई है ।

मगधराज ! वपार्थ में पृथी ही बात है । जो शरीर से दुराचार करते हैं इसकिये उनका अपनी
 रक्षावाली नहीं हुई है और जो शरीर से सदाचार करते हैं इसकिये उनकी अपनी रक्षावाली हो गई है ।

शरीर का संवम शीक है वक्त्र का संवम शीक है

मम का संवम शीक है सखी का संवम शीक है

पूर्ण संवम लब्धावान् रक्षा कर किपा गया कहा जाता है ॥

§ ६ अप्यक्त मुच (३ १ ६)

किछोमी थोड़ ही हैं

भावस्ती में ।

एक और बेट कोटल-नाम प्रसेनजित् ने मगधान् को कहा—मन्ते ! यह अच्छा बेट भ्राम करने
 मरे मम में क्या बितर्क उठा—“सत्ता में बहुत बड़े ही ऐसे हैं जो बड़े बड़े लोग या मठवाले नहीं हो जाते
 हों मल नहीं हो जाते हों बड़े लोग नहीं बन जाते हों लोगों में दुराचर्य नहीं करने लग जाते हों
 बहिक संसार में पैदा ही कोय बहुत बड़ी बड़े-बड़े लोग या मठवाले हो जाने हैं मल हो जाते हैं बड़े
 लोगी बन जाते हैं और लोगों में दुराचर्य करते लग जाते हैं ।

महाराज ! यथार्थ में ऐसी ही बात है । समार में बहुत थोड़े ही ऐसे हैं ।

काम-भोग में आरक्त, कामों के लाभ में अन्धा बने,
किसी हठ की परवाह नहीं करते, मृग जैसे फैलाये जाल की,
नतीजा कड़ुआ होता है, उसका फल दुःखद होता है ॥

§ ७ अत्थकरण सुत्त (३. १. ७)

कचहरी में झूठ बोलने का फल दुःखद

एक ओर बैठ, कोणलराज प्रसेनजित् ने भगवान् को यह कहा—“भन्ते ! कचहरी में इन्साफ करते, मैं ऊँचे कुल के क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहपति,—बड़े धनाढ्य, मालदार, महाभोग वाले, जिनके पास मोना-चौद्री अफरात है, वित्त, उपकरण, 'ग्न और 'धान्य से सम्पन्न—सभी को सासारिक कामों के चलते जान-बूझ कर झूठ बोलते देखता हूँ । भन्ते ! तब, मेरे मन में यह विचार हुआ, “कचहरी करना मेरा बस रहे । अब मेरे अमात्य ही कचहरी लगावें ।”

महाराज ! जो ऊँचे कुल के क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहपति जान-बूझ कर झूठ बोलते हैं, उनका चिरकाल तक अहित और दुःख होगा ।

काम-भोग में आरक्त, कामों के लोभ में अन्धा बने,
किसी हठ की परवाह नहीं करते, मछलियाँ जैसे पड़ गये जाल की,
नतीजा कड़ुआ होता है, उसका फल दुःखद होता है ॥

§ ८ मल्लिका सुत्त (३. १. ८)

अपने से प्यारा कोई नहीं

श्रावस्ती में ।

उस समय कोशलराज प्रसेनजित् अपनी रानी मल्लिका देवी के साथ महल के ऊपर वाले तल्ले पर गया हुआ था । तब, कोशलराज प्रसेनजित् ने मल्लिका देवी को कहा—मल्लिके ! क्या तुम्हें अपने से भी बड़ कर कोई दूसरा प्यारा है ?

नहीं महाराज ! मुझे अपने से भी बड़ कर कोई दूसरा प्यारा नहीं है । क्या आप को महाराज, अपने से भी बड़ कर कोई दूसरा प्यारा है ?

नहीं मल्लिके ! मुझे भी अपने से बड़ कर कोई दूसरा प्यारा नहीं है ।

तब, कोशलराज प्रसेनजित् महल से उतर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठ, कोशलराज प्रसेनजित् ने भगवान् को यह कहा—

भन्ते ! मैं अपनी रानी मल्लिका देवी के साथ महल के ऊपर वाले तल्ले पर गया हुआ था । इस पर मैंने मल्लिका देवी को कहा—नहीं मल्लिके ! मुझे भी अपने से बड़ कर कोई दूसरा प्यारा नहीं है ।

इसे जान, भगवान् ने मुँह से उस समय यह गाथा निकल पड़ी—

सभी दिशाओं में अपने मन की दौड़ा,
कहीं भी अपने से प्यारा दूसरा कोई नहीं मिला,
वैसे ही, दूसरों को भी अपना बड़ा प्यारा है,
इसलिये, अपनी भलाई चाहने वाला दूसरे को मत सताये ॥

§ ९ यज्ज सुत्त (३ १ ९)

पौंथ प्रकार के यज्ज पीड़ा और क्रिस्ता-गदित यज्ज ही हितकर

भावस्ती म ।

उस समय कोसकराज प्रसेनजित् की और म एक महायज्ज होने वाला था । पौंथ सी पैर पौंथ सी पछड़ पौंथ सी पछड़ियाँ पौंथ सी धरियाँ और पौंथ सी भेड़ सभी बातें के जित् धून में पौंथ थे । जो पास नीकर और भज्जारे ध ब भी लाठी और गध से घमकाय बाजर भौन् गिरात रीत ठेपा रियाँ कर रहे थे ।

तब कुछ भिक्षु सुबह में पहल और पात्र-बीयर के भावस्ती में पिण्डपात क सिध पैठ । भावस्ती में पिण्डाकर से फाट, मोज्ज कर सेने पर जहाँ भगवान् थे वहाँ जाये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ उन भिक्षुओं ने भगवान् का कह कहा—मन्ते ! कोसकराज प्रसेनजित् की और से एक महायज्ज होने बाक्य है । जौंयु गिराते रोते ठेपारियाँ कर रहे हैं ।

इसे जान भगवान् क मुँह से उस समय यह गाथायें निकल पड़ी—

जह्व-मोच पुरुष-मोच सम्बक पात्रा बाजपथ
निरागल योर ऐसी ही बड़ी-बड़ी कशामाँ
समी कम भज्जा फल नहीं होता है ॥

भेड़ बकरे और गीबें तरह-तरह क जहाँ मारे जाते हैं
सुमार्ग पर बाक्य महर्षि लोग ऐसे पशु नहीं बताते हैं ॥
जिस पशु में ऐसी गुँठें नहीं हाँती हैं सदा अनुकूल पशु करते हैं
भेड़ बकर और गीबें तरह-तरह क जहाँ नहीं मारे जाते
सुमार्ग पर बाक्य महर्षि लोग ऐसे ही पशु बताते हैं
जुबिमान् पुरुष ऐसा ही पशु करे इस पशु का महाफल है
इस पशु करनेबाधे का उपवास होता है अहित नहीं
वह पशु मछान् होता है वेचता प्रसन्न होते हैं ॥

§ १० यज्जन सुत्त (३ १ १०)

यज्ज यज्जन

उस समय कोसकराज प्रसेनजित् ने बहुत लोगों को गिरस्तार करवा लिया था । कितने रस्ती से और कितने सौकर से जौंयु दिये गये थे ।

तब कुछ भिक्षु सुबह में पहल ओर पात्र-बीयर के भावस्ती में निष्ठादन क किए पैठे । भावस्ती में निष्ठादन स कीट, मोज्ज कर सेने पर जहाँ भगवान् थे वहाँ जाये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ उन भिक्षुओं ने भगवान् को कह कहा—मन्ते ! कोसकराज प्रसेनजित् ने बहुत लोगो को गिरस्तार करवा किया है । कितने रस्ती से और कितने सौकर से जौंयु दिये गये हैं ।

इसे ज्ञाय भगवान् के मुँह से उस समय यह गाथायें निकल पड़ी—

ऊपरी रंग-रूप से मनुष्य जाना नहीं जाता,
 पेचल देप कर ही किसी में विश्वास मत करे,
 बड़े संयम का भड़क दिवा कर,
 दुष्ट लोग भी विचरण किया करते हैं ॥
 नकली, मिट्टी का बना भड़कदार कुण्डल के समान,
 या लोहे का बना और सोने का पानी चढ़ाया जैसे हो,
 कितने वेप बना कर विचरण करते हैं,
 भीतर से मैला और बाहर से चमकने ॥

§ २. पञ्चराज सुत्त (३. २. २)

जो जिसे प्रिय है, वही उसे अच्छा है

श्रावस्ती में ।

उस समय, प्रसेनजित् प्रमुख पाँच राजाओं के बीच, पाँचों काम-गुणों का भोग करते हुये, यह बात चली—काम-भोगों में सबसे बढ़िया कौन है ?

उनमें से एक ने कहा—रूप काम-भोगों में सबसे बढ़िया है । उनमें से एक ने कहा—शब्द काम-भोगों में सबसे बढ़िया है । गन्ध बढ़िया है । रस बढ़िया है । स्पर्श बढ़िया है । वे राजा एक दूसरे को समझा नहीं सके ।

तब, कोशल-राज प्रसेनजित् ने उन राजाओं को कहा—हमलोग चलें । जहाँ भगवान् हैं वहाँ जाकर भगवान् से इस बात को पूछें । जैसा भगवान् बतावें वैसा ही हमलोग समझें ।

“बहुत अच्छा” कह, उन राजाओं ने कोशलराज प्रसेनजित् को उत्तर दिया ।

तब प्रसेनजित्-प्रमुख वे राजा जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ, कोशलराज प्रसेनजित् ने भगवान् को कहा—भन्ते ! हम पाँच राजाओं के बीच, पाँचों काम-गुणों का भोग करते हुए, यह बात चली—काम-भोगों में सबसे बढ़िया कौन है ? एक ने कहा—रूप शब्द गन्ध रस स्पर्श । भन्ते ! सो आप बतावें कि काम-भोगों में सबसे बढ़िया कौन है ।

महाराज ! मैं कहता हूँ कि पाँच काम-गुणों में जिसको जो अच्छा लगे उसके लिये वही बढ़िया है । महाराज ! जो रूप एक के लिये अत्यन्त प्रिय होता है, वही रूप दूसरे के लिये अत्यन्त अप्रिय होता है । जिन रूप से एक सन्तुष्ट हो जाता है और उसकी इच्छायें पूरी हो जाती हैं, उन रूप से कहीं बढ़-बढ़कर भी दूसरा रूप उसे नहीं भाता है । वही रूप उसके लिये सर्वोत्तम और अलौकिक होते हैं ।

महाराज ! जो शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श एक के लिये अत्यन्त प्रिय ।

उस समय, चन्दनङ्गलिक उपासक उस परिषद् में बैठा था । तब, चन्दनङ्गलिक उपासक अपने आसन से उठ, उपरनी को एक कन्धे पर सँभाल, भगवान् की ओर हाथ जोड़ कर बोला—भगवान् ! मुझे कुछ कहने की इच्छा हो रही है ।

भगवान् बोले—तो चन्दनङ्गलिक ! कहो ।

तब चन्दनङ्गलिक उपासक ने भगवान् के सम्मुख अनुरूप गाथाओं में उनकी स्तुति की ।

जैसे सुन्दर कोकनद पद्म,

प्रातः काल खिला और सुगन्ध से भरा रहता है,

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

§ १ छटिल सुच (१ २ १)

ऊपरी रूप-रंग न जानता कठिन

एक समय भगवान् धावस्ती में सुगारमाता के पूर्वोराम प्रासाद में बिहार करते थे ।

उस समय साँस को ध्यान से उठ भगवान् बाहर निकल कर बैठे थे ।

तब कोसक-नाम प्रसेनजित् वहाँ भगवान् से वहाँ ध्याना और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ।

उस समय सात बहिन सात गिण्ड सात नागी, सात एकप्रतिष्ठ और सात परित्राजक कर्क के रोयें और भावून बढ़ाये अपने विविध प्रकार के सामान किए भगवान् के पास से ही गुजर रहे थे ।

तब प्रसेनजित् ने वासन से उठ पृष्ठ कन्धे पर ऊपरी को रसभाक शशिने कुटने को बगीच पर देख बिबर से सात जटिक से छबर हाथ बीड़कर तीन बार अपना नाम सुनाया—भन्ते ! मैं राक्ष प्रसेनजित् हूँ ।

तब राक्ष उस सात बहिनों के निकल जाने के बाद ही वहाँ भगवान् से वहाँ ध्याना और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ राक्ष ने भगवान् को यह कहा—भन्ते ! जोक में जो अर्हत हैं या अर्हत-मार्ग पर आकर उनमें से एक हैं ।

महाराज ! आपने—जो गृहस्थ काम योगी बाक-बच्चों में रहनेवाले काशी के चन्दन को लगाये बाके माछ-गन्ध और उबटन का इस्तेमाल करनेवाले, रुपये-पैसे बढ़ोने वाले हैं—यह गकल समझ किया कि वे अर्हन् या अर्हन्-मार्ग पर आकर हैं ।

महाराज ! साथ रहने ही से किसी का भीख जाना जा सकता है, सो भी बहुत कम तक रह, प्ये नहीं, सो भी सदा ध्यान में रहने से ऐस नहीं, सो भी प्रज्ञावान् पुरुष से ही अप्रज्ञावान् से नहीं ।

महाराज ! स्पष्टहार ही स किसी की ईमानदारी का पता लगाता है, सो भी बहुत कम के बाद प्ये नहीं, सो भी सदा ध्यान में रहने से ऐस नहीं, सो भी प्रज्ञावान् पुरुष से ही अप्रज्ञावान् से नहीं ।

महाराज ! विपत्ति पक्षे पर ही मनुष्य की स्थिरता का पता लगाता है, अप्रज्ञावान् से नहीं ।

महाराज ! बात चीत करने पर ही मनुष्य की प्रज्ञा का पता लगाता है, अप्रज्ञावान् से नहीं ।

भन्ते ! ध्यायर्ष है अद्भुत है ! भगवान् ने झीक बताया कि— यह गकल समझ किया कि वे अर्हन् या अर्हन् के मार्ग पर आकर हैं । साथ रहने ही से... अप्रज्ञावान् से नहीं ।

भन्ते ! ये पुरुष मेरे गुलाम हैं भेदिका हैं, किसी बागद का भेद लेकर आते हैं । उनसे पहले मैं भेद छेकर पीछ पीसा ही समझता-सुझता हूँ ।

भन्ते ! जब से उस भक्त भवून को धो, स्नान कर उबटन लगा बाल बबबा उजले बध रहन, रोज कम-गुणों का भोग करेंगे ।

हसे जान भगवान् के मुँह से उस समय यह गाथाये विरल पड़ी—

कोशलराज प्रसेनजित् ने सुना कि मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र ने धावा मार दिया है ।

तब कोशलराज प्रसेनजित् भी चतुरङ्गिणी सेना ले काशी में मगधराज अजातशत्रु के सामने आ दटा ।

तब दोनों में बड़ी भारी लड़ाई छिड़ गई । उस लड़ाई में मगधराज ने कोशलराज को हरा दिया । हार खा, कोशलराज प्रसेनजित् अपनी राजधानी श्रावस्ती को लौट गया ।

तब कुछ भिक्षु सुत्र में पहन और पात्र चीवर ले श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिये पड़े । भिक्षाटन से लोट भोजन कर लेने के बाद जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा—

भन्ते ! मगधराज ने काशी पर धावा मार दिया । 'हार खा, कोशलराज प्रसेनजित् अपनी राजधानी श्रावस्ती को लौट आया ।

भिक्षुओ ! मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र बुरे लोगों से मिलने-जुलने वाला और बुराईयों को ग्रहण करने वाला है । और कोशलराज प्रसेनजित् भले लोगों से मिलने-जुलने वाला और भलाईयों को ग्रहण करने वाला है । भिक्षुओ ! किन्तु, हार खाये कोशलराज प्रसेनजित् की यह रात भारी गम में बीतेगी ।

जीत होने में वैर बढ़ता है,
हारा हुआ गम से सोता है,
शान्त हो गया पुरुष सुख से रहता है,
हार-जीत की बातों को छोड़ ॥

§ ५ दुतिय सङ्गाम सुत्त (३ २ ५)

अजातशत्रु की हार, लुटेरा लूटा जाता है

तब मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र ने चतुरङ्गिणी सेना को साज कोशलराज प्रसेनजित् के विरुद्ध काशी पर धावा मार दिया ।

कोशलराज प्रसेनजित् ने सुना कि मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र ने धावा मार दिया है ।

तब, कोशलराज प्रसेनजित् भी चतुरङ्गिणी सेना ले काशी में मगधराज अजातशत्रु के सामने आ दटा ।

तब, दोनों में बड़ी भारी लड़ाई छिड़ गई । उस लड़ाई में कोशलराज प्रसेनजित् ने मगधराज को हरा दिया और जीता गिरफ्तार भी कर लिया ।

इस पर, कोशलराज प्रसेनजित् के मन में यह हुआ—भले ही मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र ने कुछ भी नहीं करने वाले मेरे विरुद्ध कुछ करना चाहा, तो भी तो मेरा भाज्जा होता है । तो, क्यों न मैं उसकी चतुरङ्गिणी सेना को छीन उसे जीता ही छोड़ दूँ ।

तब, कोशलराज ने मगधराज को जीता ही छोड़ दिया ।

तब, कुछ भिक्षु भगवान् के पास आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा—

भन्ते ! तब, कोशलराज प्रसेनजित् ने मगधराज अजातशत्रु को जीता ही छोड़ दिया ।

इसे जान, भगवान् के मुँह से उस समय यह गाथायें निकल पड़ीं—

अपनी मरज़ी भर कोई लड़ता है,
किन्तु, जब दूसरे लड़ने लगते हैं,
तो वह लड़ने वाला लूटा जाता है,

बस ही उन आभारों हुए अहीरसस को देखो

आकाश में तपते हुये आदित्य के प्रेमा ।

तब उन पाँच राजाओं ने स्वयंमङ्गलिक उपासक की पाँच बख्श में दे किये ।

तब उन पाँच बखों को स्वयंमङ्गलिक ने भगवान की सेवा में अर्पण किया ।

३३ दोषपाक सुप्त (३ ० ३)

मात्रा से भोजन करे

आवस्ती में ।

उस समय कोसलराज प्रसेनजित् प्रेण भर भोजन करता था । तब कोसलराज प्रसेनजित् भोजन कर लम्बी-लम्बी साँस लेते वहाँ भगवान् ये वहाँ जाया और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गया ।

तब कोसल-राज प्रसेनजित् को भोजन कर लम्बी-लम्बी साँस लेते देखकर भगवान् के मुख से उस समय यह गाथा निकल पड़ी—

महा स्मृतिमान् रहने वाले

प्राप्त भोजन में मात्रा जानने वाले

उस अनुप्य की बेवतार्थ कम होती है

(वह भोजन) आपु को पाकना हुआ पीर-पीरे इजम होता है ॥

उस समय सुवर्द्धान् मायावक राजा के पीछे लड़ा था ।

तब राजा ने सुवर्द्धान् मायावक को आमन्त्रित किया—तात सुवर्द्धान् ! भगवान् ने तुम यह गाथा सीख लो । मेरे भोजन करने के समय यह गाथा पढ़ना । इससे किये बराबर प्रतिष्ठित तुम्हें भी बहापल (अकार्पायक) सिद्ध करेंगे ।

“महाराज ! बहुत अन्ध” कह सुवर्द्धान् मायावक ने राजा को उत्तर दे भगवान् ने उस गाथा को सीख राजा के भोजन करने के समय कहा करता—

महा स्मृतिमान् रहने वाले

प्राप्त भोजन में मात्रा जानने वाले

उस अनुप्य की बेवतार्थ कम होती है

(वह भोजन) आपु को पाकना हुआ पीर-पीरे इजम होता है ॥

तब राजा क्रमशः नाछि भर ही भोजन करने लगा ।

तब कुछ समय के बाद राजा का शरीर बड़ा सुखीक और गरीमा हो गया । अबही गाथों पर आप भरते हुये राजा के मुख से उस समय उवाच के यह शब्द निकल पड़े—

अरे ! भगवान् ने दोनों तरह से मुझ पर अनुकम्पा की है—इस लोक की वाता में और परलोक की वाता में भी ।

३४ पञ्चम सङ्गम सुप्त (३ ० ४)

मङ्गार की दू पातों प्रसेनजित् की द्वारा

आवस्ती में ।

तब भगवान् भोजनशान्त परेदिपुत्र ने चतुर्विणी गता ॥ मात्र कोसलराज प्रसेनजित् के बिन्दु कापी पर गाथा मार दिया ।

॥ शङ्कराचार्य महाराज । उनके अंगों में अस्मिता निवृत्ति है—अद्वय ।

इसीलिए, हाथी का पैर दया होने में सबका अशुभा माना जाता है । महाराज ! इसी तरह, यह एक धर्म लोक और परलोक दोनों की यात में समान रूप से आवश्यक शरत्ता है ।

आयु, आरोग्य, धर्म, स्वर्ग, उवाकुलीनता,
और अधिकाधिक सुख पाने की इच्छा रखने वालों के लिये,
पुण्य कर्मों में पण्डित लोग अप्रमाद की प्रशंसा करते हैं,
अप्रमत्त पण्डित दोनों अर्थों को पा लेता है,
जो अर्थ लौकिक है और जो अर्थ पारलौकिक है,
अर्थों को जान लेने में वह धीरे पुण्य पण्डित काफ़ी जाता है ॥

§ ८. दुतिय अप्रमाद सुत्त (३. २. ८)

अप्रमाद के गुण

श्रावस्ती में ।

एक ओर बैठ, कोशलराज प्रसेनजित् ने भगवान् को कहा । भन्ते ! एकान्त में ध्यान करते मेरे मन में ऐसा वितर्क उठा—भगवान् ने धर्म को बड़ा अच्छा समझाया है । किन्तु, वह भले लोगों के साथ रहने तथा मिलने जुलने वालों के लिए ही है । बुरे लोगों के साथ रहने तथा मिलने-जुलने वालों के लिए नहीं है ।

महाराज ! ठीक मैं ऐसी ही बात है । मैंने धर्म को बड़ा अच्छा समझाया है । किन्तु वह भले...

महाराज । एक समय मैं शाक्य-जनपद में शाक्यों के एक कस्थे में विहार करता था । तब, आनन्द भिक्षु जहाँ मैं था वहाँ आया और मेरा अभिवादन करके एक ओर बैठ गया । महाराज ! एक ओर बैठ, आनन्द भिक्षु ने मुझे कहा—

“भन्ते ! ब्रह्मचर्य का करीब आधा तो भले लोगों के साथ मिलने-जुलने और रहने में ही होता है ।”

महाराज ! इसपर मैंने आनन्द भिक्षु को कहा—ऐसा मत कहो आनन्द ! ऐसी बात नहीं है । ब्रह्मचर्य का बिल्कुल ही भले लोगों के साथ मिलने-जुलने और रहने में टिका है । आनन्द ! भले लोगों के साथ मिलने-जुलने और रहनेवाले भिक्षु से ही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग के विचारपूर्ण अभ्यास करने की आशा की जा सकती है ।

आनन्द ! भले लोगों के साथ मिलने-जुलने और रहने वाला भिक्षु आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का कैसे अभ्यास करता है ?

आनन्द ! भिक्षु विवेक, वैराग्य, निरोध तथा त्याग लाने वाली सम्यक् दृष्टि की भावना करता है, सम्यक् संकल्प की भावना करता है, सम्यक् वाक् की भावना करता है, सम्यक् कर्मान्त की भावना करता है, सम्यक् आजीव की भावना करता है, सम्यक् व्यायाम की भावना करता है, सम्यक् स्मृति की भावना करता है, सम्यक् समाधि की भावना करता है—विवेक-दायक, वैराग्य-दायक, निरोध-दायक तथा त्याग-दायक । आनन्द ! इसी तरह, भले लोगों के साथ मिलने-जुलने और रहने वाला भिक्षु आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का अभ्यास करता है ।

आनन्द ! इस प्रकार, यह समझ लेना चाहिये कि ब्रह्मचर्य का बिल्कुल ही भले लोगों के साथ मिलने-जुलने और रहने में टिका है ।

आनन्द ! मुझ ही भले मित्र (=कल्याण-मित्र) के साथ रह, जन्म ग्रहण करने वाले प्राणी जन्म से मुक्त हो जाते हैं, बड़े होने वाले प्राणी बुढ़ापा से मुक्त हो जाते हैं, क्षीण होने वाले प्राणी क्षय से मुक्त हो जाते हैं, मरने वाले प्राणी मृत्यु से मुक्त हो जाते हैं, शोक करने वाले, रोने पीटने वाले, दुःख और

मूर्ख समझता है—हाथ मार किया ।
 तभी तक जब तक उसका पाप नहीं छूटता है ;
 किन्तु, जब पाप अपना गतीला जाता है,
 तब मूर्ख दुःख ही दुःख पाता है ॥
 मारने वाले को मारने वाला मिळता है
 बीतने वाले को बीतने वाला मिळता है
 गाड़ी देने वाले को गाड़ी देने वाला (बीर)
 बिगाड़ने वाले को बिगाड़ने वाला;
 इस तरह अपने किये कर्म के फेर में पड़
 खड़े वाला खड़ा जाता है ॥

§ ६ धीतु सुच (३ २ ६)

स्त्रियाँ भी पुरुषों से घेद्य होती हैं

आचस्ती में ।

तब कोसकराज प्रसेनजित् वहाँ भगवान् ने वहाँ अथा भीर भगवान का अभिवादन कर एक
 बार बैठ गया ।

तब, कोई आदमी वहाँ कोसकराज प्रसेनजित् या वहाँ गया भीर काज में कुम्पकुम्पा कर बोका—
 महाराज ! मस्तिष्क वैद्य को धक्का पड़ा हुई है ।

उसके ऐसा कहन पर कोसकराज का मन गिर गया ।

कोसकराज प्रसेनजित् के मनको गिरा देख भगवान् के मुँह से उस समय यह वाक्याने निकल पड़ी—

राजन् ! कोई-कोई स्त्रियाँ भी पुरुषों से बड़ी बड़ी
 बुद्धिमती ब्रीकबती मास की सेवा करने वाली भीर पतिव्रता होती हैं,
 जता पाकन-पोषन कर ॥
 दिशानों की बीतने वाला महा मूरबीर उससे पुत्र पैदा होता है,
 बेसी अच्छी की का पुत्र राज्य का अनुसामक करता है ॥

§ ७ अप्पमाद् सुच (३ २ ७)

अप्रमान् के शुभ

आचस्ती में ।

एक और बैठ, कोसकराज प्रसेनजित् ने भगवान् को कहा—मन्ते ! क्या ऐसा कोई एक बर्ग है
 जो लोक भीर परलोक दोनों की बात में समान कर से आचरनक रहता हो ?

हाँ महाराज ! ऐसा एक वर्ग है जो लोक भीर परलोक दोनों की बात में समान रूप से आचरनक रहता है ।

अन्ते ! वह कौन-सा वर्ग है जो लोक भीर परलोक दोनों की बात में समान रूप से आचरनक रहता है ?

महाराज ! अप्पमाद् एक वर्ग है जो लोक भीर परलोक दोनों की बात में समान रूप से आचरनक रहता है । महाराज ! पृथ्वी पर रहनेवाले कितने जीव हैं सभी के घेर हाथी के घेर में बड़े जाते हैं ।

में आये बेकार ही नष्ट हो जायगा । महाराज ! इसी तरह, ऐसे लोग बहुत भोग पाकर भी उसमें सुख नहीं उठा सकते । त्रिना भोग किया गया धन बेकार में नष्ट हो जाता है ।

महाराज ! भले लोग बहुत भोग पाकर उससे स्वयं सुख उठाते हैं, माता-पिता को सुख देते हैं, श्रमण ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देते हैं । इस प्रकार, उनके भली भौति भोग किये धन को न तो राजा ले जाने दें, न चोर चुरा लेंते हैं, न आग । महाराज ! ऐसा होने में, उनका भली भौति भोग किया गया धन सफल होता है, बेकार नहीं जाता ।

महाराज ! किसी गौय या कस्मे के पास ही एक रावली हो रमणीय । उसके जल को आदमी ले जाये और प्रयोग में लायें । महाराज ! इस तरह उसका जल काम में आने रहने में सफल होता है बेकार नहीं जाता है । महाराज ! इसी तरह भले लोग बहुत भोग पाकर उसमें स्वयं सुख उठाते हैं । माता पिता को सुख देते हैं । महाराज ! ऐसा होने से उनका भली भौति भोग किया गया धन सफल होता है, बेकार नहीं जाता ।

अ-मनुष्य (=भूत-प्रेत) वाले स्थान में जैसे शीतल जल,

त्रिना पीया जाकर ही सूख जाता है,

ऐसे ही, बुरे लोग धन पाकर,

न तो अपने भोग करते हैं और न दान देने हैं ॥

जो धीर और विज्ञ पुत्त भोगों को पा,

भोग करता और कामों में लगाता है,

वह उत्तम पुरुष अपने प्राति-समूह का पोषण करके,

निन्दा रहित हो स्वर्ग-स्थान को जाता है ॥

§ १०. दुतिय अपुत्तक सुत्त (३२१०)

कंजूसी त्याग कर पुण्य करे

श्रावस्ती में ।

तब, कोशलराज प्रसेनजित् दुपहरिये में जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, ओर भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये कोशलराज प्रसेनजित् को भगवान् ने कहा— महाराज ! इस दुपहरिये में भला, आप कहाँ से आ रहे हैं ?

भन्ते ! यह श्रावस्ती का मेठ साँ लाख अशर्फियाँ, रुपयों की तो बात क्या ? पत्तों की छावनी वाले जर्जर रथ पर निकला करता था ।

महाराज ! ठीक में ऐसी ही बात है । महाराज ! बहुत पहले, उस सेठ ने तगरसिखि नाम के प्रत्येक बुद्ध को भिक्षा दिलवाई थी । “श्रमण को भिक्षा दो” कह, वह उठ कर चला गया । बाद में, उसे पश्चात्ताप होने लगा—अच्छा होता कि नौकर-चाकर ही भिक्षा में दिये गये इस अन्न को खाते । इसके अलावे, उसने धन के लिये अपने भाई के इकलौते पुत्र की हत्या कर डाली थी ।

महाराज ! उस सेठ ने तगरसिखि नाम के प्रत्येक बुद्ध को जो भिक्षा दिलवाई थी उस पुण्य के फलस्वरूप उसने सात बार स्वर्ग में जन्म लेकर सुगति पाई । उस पुण्य के क्षीण हो जाने पर उसने सात बार इसी श्रावस्ती में सेठान् की ।

महाराज ! भिक्षा देने के बाद, उसे जो पश्चात्ताप हुआ—अच्छा होता कि नौकर चाकर ही भिक्षा में दिये गये इस अन्न को खाते !—उसी के फल-स्वरूप उसका चित्त अच्छे-अच्छे भोजनों की ओर नहीं झुकता है, अच्छे-अच्छे वस्त्रों की ओर नहीं झुकता है, अच्छी-अच्छी सवारियों की ओर नहीं झुकता है, अच्छे-अच्छे पाँच काम-गुणों की ओर नहीं झुकता है ।

केबली में पड़ रहने वाल परशामी में पड़ रहने वाल मार्जी शाक परशामी स मुक्त हो बात है। आनन्द ! इस प्रकार से जान लेना चाहिये कि ब्रह्मचर्य का विद्वत्सु ही भक्त लोगों के साथ मिलने-जुलने और रहने में रिक्त है।

महाराज ! इसलिये आप भी यही सोचें। भक्त लोगों के साथ ही मिल-जुलना भक्ते लोगों के साथ ही रहेगा। महाराज ! इसलिये आप का कुसङ्ग-धर्मों में अभिमात्र रहने के लिये सीखना चाहिये।

महाराज ! आपके अभिमात्र-पूर्वक बिहार करने में आपकी रानिया के मन में बह डाला—राजा अभिमात्र पूर्वक बिहार करते हैं; ता इस सोचा का भी अभिमात्र-पूर्वक ही बिहार करना चाहिये।

महाराज ! आपके अर्धान्ध शक्तिवों के भी मन में बह डाला।

महाराज ! गौत और सहर बाबा के भी मन में बह डाला।

महाराज ! इस तरह आपके अभिमात्र पूर्वक बिहार करने से आप स्वयं मयत रहना किसी भी संयत रहेंगी तथा आप का लज्जामा और मज्जार भी संयत रहेगा।

अधिकधिक सांगा की इच्छा रखने वाला के मिय

पुनः क्रियाओं में पवित्र होना अभिमात्र की प्रसंसा करते हैं

अभिमय पवित्र होनों अर्थों का काम करता है

इस लोक में जो धर्म है और जो पारसीकिक धर्म है

धीरे धुन्य अपने धर्म का ही ज नये से पवित्र कहा जाता है ॥

४६ अपुसक सुत (३ ९)

कंसूसी न कर

आपस्ती में।

तब कोसलराज प्रसेनजित् दुपहरिये में वहाँ भगवान् व वहाँ आपा और भगवान् का अभि वादन कर एक और बैठ गया।

एक और बैठे हुए कोसलराज प्रसेनजित् को भगवान् ने कहा—महाराज ! इस दुपहरिये में आप मका कहीं से जा रहे हैं ?

भन्ते ! वह आपस्ती का सेठ गृहपति मर गया है। उस मिये के भन को राजमहक भेजवा कर मैं जा रहा हूँ। भन्ते ! अस्ती काका जलकिर्पों, दुपहों की तो क्या बात ! भन्ते उस संद का वह मोक्ष होता था—वह बार महा के साथ तुम्ही का बात जाता था। वह ऐसा कथा पहनता था—तीन जोषा का दार पहनता था। उसकी ऐसी सवारी होती थी—पत्ता की कबली बाके कर्कर रथ पर निकला करता था।

हैं महाराज ! ठीक ऐसी ही बात है। महाराज ! पुर कोम बहुत मोग पा कर भी उससे कुछ नहीं छद्म सकते हैं न माता पिता का सुल देते हैं न जी-बघों को सुल देते हैं न नीकर चक्रों को सुल देते हैं न शोख-मुहरीका को सुल देते हैं न जमज-जाहना को दान दक्षिणा देते हैं जिससे अपनी गति हो और स्वर्ग तथा सुख मिल। इस प्रकार उनके बिना मोग किये जब को वा ठा राजा के कहे हैं वा और नुरा केते हैं वा आता जहा देती है वा पानी बहा के जाता है वा अधिक कोनों का हा जाता है। महाराज ! ऐसा होने से बिना भाग किया गया जब केकर में लड़ हो जाता है।

महाराज ! कोई विजय भवान में एक बाबली हो लच्छ जक बाकी सीतक जक वाली भवान्यकर बकबाली साक प्राये बाकी रमनीव। उसक जक को न तो कोई ध्वषी के जाच न पड़े; व उससे स्वान करे न उसकी नीर किन्ती प्रबोना में कोई लजे। महाराज ! हम तरह कपना जक बिना किन्ती काम

तीसरा भाग

तृतीय वर्ग

§ १. पुगल सुच (३. ३. १)

चार प्रकार के व्यक्ति

श्रावस्ती में ।

तब कोशलराज प्रसेनजित् जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठे हुए कोशलराज प्रसेनजित् को भगवान् ने कहा—महाराज ! ससार में चार प्रकार के लोग पाये जाते हैं । कौन से चार प्रकार के ? (१) तम-तम-परायण, (२) तम-ज्योति-परायण, (३) ज्योति-तम-परायण, (४) ज्योति-ज्योति-परायण । महाराज ! कोई पुरुष तम-तम-परायण कैसे होता है ?

महाराज ! कोई पुरुष नीच कुल में पैदा होता है, चण्डाल-कुल में, वेन-कुल में, निपाद-कुल में, रथकार-कुल में, पुक्कुस-कुल में, दरिद्र और बड़ी तंगी से रहनेवाले निर्धन-कुल में । जहाँ खाना-पीना बड़ी तंगी से मिलता है । वह दुर्वर्ण, न देखने लायक, नाटा और मरीज़ होता है । वह काना, लला, लँगड़ा या लूझ होता है । उसे अन्न, पान, वस्त्र, सवारी, माला, गंध, विलेपन, शय्य, घर, प्रदीप कुछ नहीं प्राप्त होता है ।

वह शरीर से दुराचरण करता है, वचन से दुराचरण करता है, मन से दुराचरण करता है । इन दुराचरण के कारण यहाँ से मर कर अपाय में पड़ बड़ी दुर्गति को पाता है । महाराज ! जैसे कोई पुरुष एक अन्धकार से निकल कर दूसरे अन्धकार में पड़ता है, एक तम से निकलकर दूसरे तम में पड़ता है, एक खून के मल से निकलकर दूसरे में पड़ता है, वैसी ही गति इस पुरुष की होती है । महाराज ! ऐसे ही कोई पुरुष तम-तम-परायण होता है ।

महाराज ! कोई पुरुष तम-ज्योति-परायण कैसे होता है ?

महाराज ! कोई पुरुष नीच-कुल में पैदा होता है कुछ नहीं प्राप्त होता है ।

वह शरीर से सदाचार करता है, वचन से, सदाचार करता है, मन से सदाचार करता है । इन सदाचार के कारण, यहाँ से मर कर स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त करता है । महाराज ! जैसे कोई पुरुष जमीन से खाट पर चढ़ जाय, खाट से घोड़े की पीठ पर, घोड़े की पीठ से हाथी के हौदे पर, हाथी के हौदे से महल पर, वैसी ही बात इस पुरुष की है । महाराज ! इसी तरह कोई पुरुष तम-ज्योति-परायण होता है ।

महाराज ! कोई पुरुष ज्योति-तम-परायण कैसे होता है ?

महाराज ! कोई पुरुष ऊँचे कुल में उत्पन्न होता है, ऊँचे क्षत्रिय-कुल में, ब्राह्मण-कुल में, गृहपति-कुल में, धनाढ्य, महाधन, महाभोग वाले कुल में । वह सुन्दर, दर्शनीय, साफ और बढ़ा रूपवान् होता है । अन्न-पान यथेच्छ लाभ करता है ।

महाराज ! उस सेठ ने धन के लिए जो अपने भाई के इकसीठे पुत्र की इस्पा कर बाँधी थी उसके फलस्वरूप बहू हजारा भार क्लान्तों वर्ष तक नरक में पकता रहा । उसी क फलस्वरूप निरुता रहकर उसका धन सातवें बार राज कोष में चरु गया । महाराज ! उस सेठ का पुण्य समाप्त हो गया है, और भवा भी कुछ संचित नहीं है । महाराज ! आज यह सेठ महा रौरव नरक में पक रहा है ।

मन्ते ! इस तरह वह सेठ महा रौरव नरक में उत्पन्न हुआ है ?

हाँ महाराज ! इस तरह वह सेठ महा रौरव नरक में उत्पन्न हुआ है ।

धन धान्य चोरी सोना

और भी जो कुछ सामान है

चोर चोर, भग्नदूर तथा और भी दूसरे सहारे रहने वाले हैं

सब को साथ लेकर नहीं जाना होता है

सभी को वहीं छोड़ जाना होता है ॥

जो कुछ शरीर से करता है वचन से या चित्त से

वही उसका अपना होता है और उसी को लेकर जाता है

वही उसके पीछे-पीछे जाता है पीछे-पीछे जाने वाली छाया के समान ॥

इसकिये पुण्य करे, परकोक बनाये,

परकोक में पुण्य ही माणियों का आधार होता है ॥

द्वितीय धर्म समाप्त

तीसरा भाग

तृतीय वर्ग

§ १. पुगल सुत्त (३. ३. १)

चार प्रकार के व्यक्ति

श्रावस्ती में ।

तब कोशलराज प्रसेनजित् जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठे हुए कोशलराज प्रसेनजित् को भगवान् ने कहा—महाराज ! संसार में चार प्रकार के लोग पाये जाते हैं । कोन से चार प्रकार के ? (१) तम-तम-परायण, (२) तम-ज्योति-परायण, (३) ज्योति-तम-परायण, (४) ज्योति-ज्योति-परायण । महाराज ! कोई पुरुष तम-तम-परायण कैसे होता है ?

महाराज ! कोई पुरुष नीच कुल में पैदा होता है, चण्डाल-कुल में, वेन-कुल में, निपाद-कुल में, रथकार-कुल में, पुक्कुस-कुल में, दरिद्र और बड़ी तंगी से रहनेवाले निर्धन-कुल में । जहाँ खाना-पीना घड़ी तंगी से मिलता है । वह दुर्वर्ण, न देखने लायक, नाटा ओर मरीज़ होता है । वह काना, लल्ला, लँगड़ा या लूँघ होता है । उसे अन्न, पान, वस्त्र, सवारी, माला, गंध, विलेपन, शय्य, घर, प्रदीप कुछ नहीं प्राप्त होता है ।

वह शरीर से दुराचरण करता है, वचन से दुराचरण करता है, मन से दुराचरण करता है । इन दुराचरण के कारण यहाँ से मर कर अपाय में पड़ बड़ी दुर्गति को पाता है । महाराज ! जैसे कोई पुरुष एक अन्धकार से निकल कर दूसरे अन्धकार में पड़ता है, एक तम से निकलकर दूसरे तम में पड़ता है, एक खून के मल से निकलकर दूसरे में पड़ता है, वैसी ही गति इस पुरुष की होती है । महाराज ! ऐसे ही कोई पुरुष तम-तम-परायण होता है ।

महाराज ! कोई पुरुष तम-ज्योति-परायण कैसे होता है ?

महाराज ! कोई पुरुष नीच-कुल में पैदा होता है कुछ नहीं प्राप्त होता है ।

वह शरीर से सदाचार करता है, वचन से सदाचार करता है, मन से सदाचार करता है । इन सदाचार के कारण, यहाँ से मर कर स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त करता है । महाराज ! जैसे कोई पुरुष जमीन से खाट पर चढ़ जाय, खाट से घोड़े की पीठ पर, घोड़े की पीठ से हाथी के हौदे पर, हाथी के हौदे से महल पर, वैसी ही बात इस पुरुष की है । महाराज ! इसी तरह कोई पुरुष तम-ज्योति-परायण होता है ।

महाराज ! कोई पुरुष ज्योति-तम-परायण कैसे होता है ?

महाराज ! कोई पुरुष ऊँचे कुल में उत्पन्न होता है, ऊँचे क्षत्रिय-कुल में, ब्राह्मण-कुल में, गृहपति-कुल में, धनाढ्य, महाधन, महाभोग वाले कुल में । वह सुन्दर, दर्शनीय, साफ और बड़ा रूपवान् होता है । अन्न-पान यथेच्छ लाभ करता है ।

महाराज ! वह शरीर से बुराचारण करता है । इन बुराचार के कारण यहाँ से मर कर भयाप में पड़ चुनिति को प्राप्त होता है ।

महाराज ! जैसे कोई पुरुष मद्य से हाथी के हीन पर उतर आये हाथी के हीन से बोने की पीठ पर बोने की पीठ से छाट पर खाट से जमीन पर, जमीन से अन्धकार में; वैसे ही बात इस पुरुष की है । महाराज ! इसी तरह कोई पुरुष ज्योति-तम-परायण होता है ।

महाराज ! कैसे कोई पुरुष ज्योति-ज्योति-परायण होता है ?

महाराज ! कोई पुरुष जैसे कुछ में उत्पन्न होता है । वह शरीर से सदाचार करता है स्वर्ग में उ पड़ हो सुगति को प्राप्त करता है । महाराज ! जैसे कोई पुरुष जमीन से खाट पर पड़ आये मद्य पर, वैसे ही बात इस पुरुष की है । महाराज ! इसी तरह कोई पुरुष ज्योति-ज्योति-परायण होता है ।

महाराज ! संसार में इतने प्रकार के पुरुष होते हैं—

हे राजन् ! (जो कोई) हरिश्च पुरुष अज्ञात कर्मज मन्त्रीभूत पाप-संकल्पोंवाला छूटे मत मानने वाला पुरुष ज्यों में जादर-रहित होता है असम ज्ञातय भयबा दूसरे भी पाचकों को डौंटा और याचिका देता है ओषी शारितक होता है मँगने वालों को भोजन देते हुए रोक्ता है ।

हे राजन् ! हे जनाधिप ! उस प्रकार का पुरुष तम-तम परायण है; वह यहाँ से मर के धोर नरक में पड़ता है ।

हे राजन् ! (जो कोई) हरिश्च पुरुष अज्ञात कर्मज-रहित होता है दाम देता है अह संकल्पों वाला ज्यमम मग वाला पुरुष असम ज्ञातय भयबा दूसरे पाचकों को भी उठकर अभिवादन करता है संयम का अभ्यास करता है मँगने वालों को भोजन देते हुए मभा नहीं करता ।

हे राजन् ! उस प्रकार का पुरुष तम-ज्योति-परायण है; वह यहाँ से मर कर स्वर्ग लोक में उत्पन्न होता है ।

हे राजन् ! (जो कोई) जनाध्य पुरुष अज्ञात कर्मज होता है मन्त्रीभूत पाप-संकल्पों वाला छूटे मत मानने वाला पुरुष असम ज्ञातय भयबा दूसरे पाचकों को भी उठकर अभिवादन करता है संयम का अभ्यास करता है मँगने वालों को भोजन देते हुए मभा कर देता है ।

हे राजन् ! उस प्रकार का पुरुष ज्योति-तम-परायण है वह यहाँ से मर कर धोर नरक में पड़ता है ।

हे राजन् ! (जो कोई) जनाध्य पुरुष अज्ञात कर्मज-रहित होता है दाम देता है अह संकल्पों वाला ज्यमम मग वाला पुरुष असम ज्ञातय भयबा दूसरे पाचकों को भी उठ कर अभिवादन करता है संयम का अभ्यास करता है मँगने वालों को भोजन देते हुए मभा नहीं करता ।

हे राजन् ! उस प्रकार का पुरुष ज्योति-ज्योति-परायण है; वह यहाँ से मर कर स्वर्ग लोक में उत्पन्न होता है ।

३ २ अग्निका मुक्त (३ ३ २)

मृत्यु निघट है पुण्य कर

भावन्ती में ।

एक और ब्रह्म को समझान प्रलेखित को मगवान् ने कहा—महाराज ! इस दुपहरिने में जका जाय नहीं तो का रहे है ?

भन्ते ! मेरी दादी मर गई है । वह बड़ी बूढ़ी, पुरनिया, आयु पूरी हुई, एक सौ बीस साल की थी ।

भन्ते ! मेरी दादी मुझे बड़ी प्यारी थी । भन्ते ! हस्ति-रत्न को भी पाना मैं स्वीकार नहीं करूँ यदि मेरी दादी न मरे । भन्ते ! हस्ति-रत्न को भी मैं दे डालूँ यदि मेरी दादी न मरे । भन्ते ! अश्व-रत्न को भी पाना मैं स्वीकार नहीं करूँ यदि मेरी दादी न मरे । भन्ते ! अश्व-रत्न को भी मैं दे डालूँ यदि मेरी दादी न मरे । भन्ते ! अच्छे-अच्छे गाँव । भन्ते ! जनपद ।

महाराज ! सभी जीव मरण-शील हैं, एक न एक समय उनका मरना अवश्य है, मरने से वे किसी तरह नहीं बच सकते ।

भन्ते ! आश्चर्य है, अद्भुत है ! भगवान् ने बड़ा ही ठीक कहा है—सभी जीव मरण-शील हैं, एक न एक समय उनका मरना अवश्य है, मरने से वे किसी तरह नहीं बच सकते हैं ।

हाँ, महाराज ! यथार्थ में ऐसी ही बात है । सभी जीव मरण-शील हैं ।

महाराज ! कुम्हार के जितने घड़े हैं—कच्चे भी और पके भी—सभी फूट जाने वाले हैं, एक न एक दिन उनका फूटना अवश्य है, फूटने से वे किसी तरह नहीं बच सकते । महाराज ! वस, ठीक वैसे ही सभी जीव मरण-शील हैं, एक न एक समय उनका मरना अवश्य है, मरने से वे किसी तरह नहीं बच सकते ।

सभी जीव मरेंगे, मृत्यु में ही जीवन का अन्त होता है,
उनकी गति अपने कर्म के अनुसार होगी, पुण्य-पाप के फल से,
पाप करने से नरक को, पुण्य करने से सुगति को,
इसलिये सदा पुण्य कर्म करे, जिससे परलोक वनता है,
अपना कमाया पुण्य ही प्राणियों के लिये परलोक में आधार होता है ॥

३ लोक सुत्त (३. ३. ३)

तीन अहितकर धर्म

श्रावस्ती में ।

एक ओर बैठ, कोशलराज प्रसेनजित् ने भगवान् को कहा—भन्ते ! लोक में कितने धर्म अहित, दुःख तथा कष्ट के लिये उत्पन्न होते हैं ?

महाराज ! तीन धर्म लोक में अहित, दुःख तथा कष्ट के लिये उत्पन्न होते हैं ।

कौन से तीन ? महाराज ! लोभ धर्म लोक में अहित, दुःख तथा कष्ट के लिये उत्पन्न होता है ।

महाराज ! द्वेष धर्म । महाराज ! मोह धर्म ।

महाराज ! यह तीन धर्म लोक में अहित, दुःख तथा कष्ट के लिये उत्पन्न होते हैं ।

लोभ, द्वेष और मोह, पाप चित्त वाले पुरुष को,

अपने भीतर ही उत्पन्न होकर नष्ट कर देते हैं,

जैसे अपना ही फल बेले के पेड़ को ॥॥

§ ४ इस्सत्थ सुत्त (३. ३. ४)

दान किसे दे ? किसे देने में महाफल ?

श्रावस्ती में ।

एक ओर बैठ, कोशलराज प्रसेनजित् ने भगवान् को कहा—भन्ते ! किसको दान देना चाहिये ?

॥ यही गाथा ३. १. २ में भी ।

महाराज ! जिसके प्रति सब में भद्रा ही ।

मन्ते ! किसको दान देने से महाफल होता है ?

महाराज ! यह दूसरी बात है कि जिसको दान देना चाहिये और यह दूसरी कि जिसको दान देने से महाफल होता है । महाराज ! श्रीकृष्ण को दिये गये दान का महाफल होता है । दुःखी को दिये गये दान का नहीं ।

महाराज ! तो मैं आप को ही पूछता हूँ कैसा आपको लगे वैसा उत्तर दें ।

महाराज ! मान लें आपको कहीं कबाई छिड़ जाय, कुछ ठन जाय । तब कोई धर्मिय-कुमार आपके पास आये—जिसने कुछ दिया नहीं सीपी है जिसका हाथ साफ नहीं है अनपक्व, उपोष कर्षण करने वाला कर जाने वाला भाग खा होने वाला । तो क्या आप उसे विमुक्त करेंगे ? कैसे पुरुष से आपको कुछ प्रयोजन निकलेगा ?

नहीं मन्ते ! उस पुरुष को मैं नहीं विमुक्त करूँगा, बस से मेरा कोई प्रयोजन नहीं ।

तब कोई ब्राह्मण-कुमार आप के पास आये । तब कोई वैश्य-कुमार शूद्र-कुमार ।

नहीं मन्ते !- बसे से मेरा कोई प्रयोजन नहीं ।

महाराज ! मान लें आपको कहीं कबाई छिड़ जाय, कुछ ठन जाय । तब कोई धर्मिय-कुमार आपके पास आये—जिसने कुछ दिया अच्छी तरह सीपी है जिसका हाथ साफ है पूरा जम्पासी को कमी न डरे कपड़े नहीं कमी पीठ न दिखाने । तो क्या आप उसे विमुक्त करेंगे ? कैसे पुरुष से आपको प्रयोजन निकलेगा ?

हाँ मन्त ! उस पुरुष का मैं विमुक्त कर दूँगा । कैसे ही पुरुष से तो काम निकलेगा ।

तब कोई ब्राह्मण-कुमार, वैश्य-कुमार शूद्र-कुमार । हाँ मन्ते ! बसे ही पुरुष से तो काम निकलेगा ।

महाराज ! ठीक उसी तरह चाहे जिस किसी कृष्ण से घर से पंखर हो कर प्रव्रजित हुआ हो वह पाँच भद्रों से रहित और पाँच भद्रों से युक्त होता है । उसको दान दिये गये का महाफल होता है ।

जिन पाँच भद्रों से यह रहित होता है ? कामच्छन् से रहित होता है । हिंसा-भाव से रहित होता है । आत्मरुच से रहित होता है । भीक्षुत्व-कीदृश्य से रहित होता है । यह इन पाँच भद्रों से रहित होता है ।

जिन पाँच भद्रों से यह युक्त होता है ? असीश्य क्षीर-सम्पत्ति से युक्त होता है । असीश्य समाधि सम्पत्ति से युक्त होता है । असीश्य प्रज्ञा-सम्पत्ति से युक्त होता है । असीश्य विमुक्ति-सम्पत्ति से युक्त होता है । असीश्य शान्त-वर्णन से युक्त होता है । यह इन पाँच सम्पत्तियों से युक्त होता है ।

इन पाँच भद्रों से रहित और पाँच भद्रों से युक्त (अमल) को दिये गये दान का महाफल होता है ।

भगवान् ने यह कहा । यह कह कर कुछ भे फिर भी कहा—

तीरन्तर्ही बल और कार्ये विग्न युक्त मैं हूँ

उसी को राजा कुछ क क्रिये विमुक्त करता है

जाति के कारण बाध को नहीं ॥

वैसे ही जिस में क्षमाशीलता मूल भाव और बल है

उसी की प्रति प्रतिमाने पुरुष को बुद्धिमान् लोग

हीन जाति में भी दान दान से पूजन है ॥

रूप आश्रय को अवधारण पण्डितों को बगल

निज बल में दृष्टे गुरुवाले भीदुःख में राधा पतनाने ॥

अब बल भीजन बल शान्तमान

मीने लोगों को श्रद्धा-पूर्वक दान दे,
 जैमे, मेघ गढ़गढ़ाते और नैकदां पिजली चमकाते,
 धरम कर सभी नीची जगहों को भर देता है,
 वैसे ही, श्रद्धालु पण्डित पुरष भोजन के दान से,
 सभी याचकों को खान-पान से भर देता है,
 वड़े प्रसन्न चित्त से बोलता है, 'देओ, देओ' कहता है,
 यही इत्यका गरजना है, प्रसन्नते हुए मेघ का,
 वह नदी पुण्य की वारा देने वाले पर ही बरसती है ॥

§ ५. पञ्चतूपम सुत्त (३ ३ ५)

मृत्यु घेरे आ रही है, धर्माचरण करे

श्रावस्ती में ।

एक ओर बैठे हुए कोसलराज प्रसेनजित् को भगवान् ने कहा—महाराज ! कहाँ से आना हो रहा है ?

भन्ते ! राज्य-सम्बन्धी कामों में मैं अभी घेतला चला था । क्षत्रिय, अभिषेक किये गये, ऐश्वर्य के मद से मत्त, सासारिक काम के लोभ में पड़े, देशों को कब्जा में रखने वाले, वड़े-वड़े राज्यों को जीत कर राज करने वाले राजाओं को बहुत काम रहते हैं ।

महाराज ! मान लें, पूरव दिशा से आप का कोई श्रद्धालु और विश्वस्त आदमी आवे और कहे—महाराज ! आप को मालूम हो—मैं पूरव दिशा से आ रहा हूँ, वहाँ मैंने देखा कि एक मेघ के समान महान् पर्वत सभी जीवों को पीसते हुए आ रहा है । महाराज ! आप जैसा उचित समझें वैसा करें ।

तब, दूसरा आदमी पच्छिम दिशा से आवे, तीसरा आदमी उत्तर दिशा से आवे, चौथा आदमी दक्खिन दिशा से आवे और कहे —वहाँ मैंने देखा कि एक मेघ के समान महान् पर्वत सभी जीवों को पीसते हुए आ रहा है । महाराज ! आप जैसा उचित समझें वैसा करें ।

महाराज ! मनुष्यों के इस प्रकार नष्ट होने के कारण भय आ पड़ने पर क्या करना होगा ?

भन्ते ! इस प्रकार के भय आ पड़ने पर, धर्माचरण, सयम-अभ्यास और पुण्य कर्म के सिवा और क्या किया जा सकता है ?

महाराज ! मैं आपको कहता हूँ, बताता हूँ । महाराज ! (वैसे ही) आप पर जरा और मृत्यु (का पहाड़) बढ़ा आ रहा है । महाराज ! जरा और मृत्यु के इस तरह चढ़ते आने से क्या करना चाहिये ?

भन्ते ! जरा और मृत्यु के इस तरह चढ़ते आने से धर्माचरण, सयम-अभ्यास और पुण्य कर्म के सिवा और क्या किया जा सकता है ?

भन्ते ! क्षत्रिय वड़े-वड़े राजाओं को जीत कर राज करने वाले राजाओं को जो हस्ति-युद्ध, अश्व-युद्ध, रथ-युद्ध, पैदल-युद्ध का सामना करना पड़ता है, वह जरा और मृत्यु के चढ़ते आने के सामने क्या चीज है ?

भन्ते ! इस राज-कुल में वड़े वड़े ऐसे गुणी मन्त्री हैं, जो अपने मन्त्र के बल से आते शत्रुओं को भगा दे सकते हैं । उनका मन्त्र-युद्ध भी जरा और मृत्यु के चढ़ते आने के सामने बेकार है ।

भन्ते ! इस राजकुल का खजाना ऊपर नीचे सोना से भरा है, जिस धन से हम आते शत्रुओं को फोड़ दे सकते हैं । यह धन-युद्ध भी जरा और मृत्यु के चढ़ते आने के सामने बेकार है ।

भन्ते ! जरा और मृत्यु के इस तरह चढ़ते आने से धर्माचरण के सिवा और क्या किया जा सकता है ?

महाराज ! ठीक में ऐसी ही यात है । जरा और श्राप के इस तरह चढ़ते आने स धर्माचरण के सिवा और क्या किया जा सकता है ?

मगबाहू ने यह कहा । यह कह कर पुनः ने आर मी कहा—

जैसे बड़े-बड़े शीख गगन-शुम्बी पर्वत
समी ओर से आते हैं चारों दिशाओं की पीलते हुए,
वैसे ही जरा और श्राप का प्राणिजों पर चढ़ता आता है ॥
हाप्रिय आह्वान बैस्य श्राप जगदाक पुनकुस
कोई भी नहीं छुट्टा समी समाप्त रूप से पीसे जा रहे हैं
न तो बहो हाथियों का बरकार है, न रथ और न पक्ष का
और न तो उसे मन्त्र से वा घन से रोन्ना जा सकता है ॥
इसकिये पवित्र पुन्य अपनी मलाई बैचते हुए
पुनः धर्म और संघ के प्रति अज्ञात होते ॥
जो मम-बचन-काव से धर्माचरण करता है
संसार में उसकी प्रसंसा होती है मरकर स्वर्ग में अमन्य करता है ॥

कोसक संयुक्त समाप्त

चौथा-परिच्छेद

४. मार-संयुक्त

पहला भाग

प्रथम वर्ग

§ १. तपोकर्म सुत्त (४. १. १)

कठोर तपश्चरण वेकार

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् अभी तुरन्त ही बुद्धत्व लाभ कर उरुवेला में नेरञ्जरा नदी के तट पर अजपाल निग्रोध के नीचे विहार करते थे ।

तब एकान्त में ध्यान करते हुये भगवान् के मन में यह वितर्क उठा—उस दुष्कर क्रिया से मैं छूट गया । बड़ा अच्छा हुआ कि मैं अनर्थ करनेवाली उस दुष्कर क्रिया से छूट गया । बड़ा अच्छा हुआ कि स्थिर और स्मृतिमान् रह कर मैंने बुद्धत्व पा लिया ।

तब, पापी मार भगवान् के चित्त के वितर्क को अपने चित्त से जान जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

तुम तप-कर्म में दूर हो,
जिससे मनुष्य शुद्ध होता है ।
अशुद्ध अपने को शुद्ध समझता है,
शुद्धि के मार्ग से गिरा हुआ ॥

तब भगवान् ने 'यह पापी मार है' जान, गाथा में उत्तर दिया,—

मुक्ति-लाभ के लिए सभी कठोर तपश्चरण को वेकार जान,
उससे कुछ मतलब नहीं निकलता है,
जैसे जमीन पर पड़ी बिना डाल पत्तवार के नाव ॥
शील, समाधि और प्रज्ञा वाले बुद्धत्व के मार्ग का अभ्यास करते,
परम शुद्धि को मैंने पा लिया है,
हे अन्तक ! तुम जीत लिये गये ॥

तब, पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ, दुःखित और खिन्न हो वहाँ अन्तर्धान हो गया ।

§ २ नाग सुप्त (४ १ २)

हाथी के रूप में मार का आना

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् बनी तुरत ही बुद्धत्व प्राप्त कर बहवेषा में मेरुजंगल नदी के तट पर अश्वपाल निम्बो के नीचे बिहार करते थे ।

उस समय भगवान् रात की काली अधिवारी में सुखे मगध में बड़े थे । तिससिम हूँ भी पड़ रही थी ।

तब पापी मार भगवान् की बरा कैंपा और रोंगटे काढ़े कर देखे की इच्छा से एक बहुत बड़े हाथी का रूप धर कर वहाँ भगवान् के वहाँ आया । उसका शिर का माथे एक काली चट्टान । उसके शीत से माथे झलझला जाँदी । उसकी सूँड़ भी माथे एक विशाल हड्डी ।

तब भगवान् ने 'बह पापी मार है' काव गाथा में कहा—

इस दीर्घ संसार में अच्छे तुरे रूप धर कर तुम फिरते हो

अरे पापी ! इसे जब रहने दे, जन्तक ! तुम बह हो गये ॥

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया समस्त दुर्मित और शिष्ट हो वहाँ जन्तकान हो गया ।

§ ३ सुप्त सुप्त (४ १ ३)

संयमी मार के यश में वहाँ आते

बहवेषा में ।

उस समय भगवान् रात की काली अधिवारी में सुखे मगध में बड़े थे । तिससिम हूँ भी पड़ रही थी ।

तब पापी मार भगवान् को बरा कैंपा रोंगटे काढ़े कर देखे की इच्छा से वहाँ भगवान् के वहाँ आया और तरह-तरह के छेदे बड़े अच्छे तुरे रूप दिखाने लगा ।

तब भगवान् ने 'बह पापी मार है' काव गाथा में कहा—

इस दीर्घ संसार में अच्छे तुरे रूप धर कर तुम फिरते हो,

अरे पापी ! इसे जब रहने दे, जन्तक ! तुम बह हो गये ॥

जो शरीर बचन और सब से संबल रहते हैं

वे मार के यश में वहाँ आते वे मार के घर में वहाँ पड़ते ॥

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया समस्त दुर्मित और शिष्ट हो वहाँ जन्तकान हो गया ।

§ ४ पाप्त सुप्त (४ १ ४)

बुद्ध मार के जाळ से मुक्त

ऐसे मैंने सुना ।

एक समय भगवान् बारामसी के कपिलवस्तु मगधराज में बिहार करते थे । वहाँ भगवान् ने मिथुनों की आमन्त्रित किया—“मिथुनों !

“मदन्त !” कह कर जब मिथुनों ने भगवान् की उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! मन को उचित मार्ग में लगा और उचित उत्साह कर मैंने अलौकिक विमुक्ति पायी है, अलौकिक विमुक्ति का साक्षात्कार किया है ।

भिक्षुओ ! तुम भी मन को उचित मार्ग में लगा और उचित उत्साह कर अलौकिक विमुक्ति का लाभ करो, अलौकिक विमुक्ति का साक्षात्कार करो ।

तब, पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और यह गाथा बोला—

मार के जाल में बँध गये हो,
जो (जाल) दिव्य और मनुष्य लोक के हैं,
मार के बन्धन से बँधे हो,
श्रमण ! मुझसे तेरा छुटकारा नहीं ॥

[भगवान्—]

मार के जाल से मैं मुक्त हूँ,
जो दिव्य और मनुष्य लोक के हैं,
मार के बन्धन से मुक्त हूँ,
अन्तक ! तुम जीत लिये गये ॥

तब, पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ५. पास सुत्त (४. १. ५)

बहुजन के हित-सुख के लिए विचरण

एक समय भगवान् चाराणसी के ऋषिपतन शृगदाव में विहार करते थे । वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—“भिक्षुओ !”

“भदन्त !” कह कर उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! दिव्य लोक और मनुष्य लोक के जितने जाल हैं सभी से मैं मुक्त हूँ । भिक्षुओ ! तुम भी जितने जाल हैं सभी से मुक्त हो । भिक्षुओ ! बहुजनों के हित के लिये, बहुजनों के सुख के लिये, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो । एक साथ दो मत जाओ । भिक्षुओ ! आदि में कल्याण-(कारक), मध्य में कल्याण-(कारक), अन्त में कल्याण-(कारक) (हम) धर्म का उपदेश करो । अर्थ-सहित = व्यजन-सहित, पूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो । अल्प दोषवाले भी प्राणी हैं, धर्म के न श्रवण करने से उनकी हानि होगी । (सुनने से वह) धर्म के जानने वाले बनेंगे । भिक्षुओ ! मैं भी जहाँ उरुवेला है, जहाँ सेनानी ग्राम है, वहाँ धर्म-देशना के लिये जाऊँगा ।

तब, पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और गाथा में बोला—

सभी जाल में बँधे हो,
जो (जाल) दिव्य और मनुष्य लोक के हैं,
बड़े बन्धन में बँधे हो,
श्रमण ! मुझसे तेरा छुटकारा नहीं ॥

[भगवान्—]

मैं सभी जाल से मुक्त हूँ,
जो दिव्य और मनुष्य लोक के हैं,

बड़े बम्पन से मैं हूँ चुका
भक्त ! तुम बलि दिये गये ॥

४ ६ सप्त सुच (४ १ ६)

एकान्तवास से विचलित न हो

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कर्मकनिषाप में बिहार करते थे ।

उस समय भगवान् रात की काजी भँजिपारी में लुके मैदान में बैठे थे । रिमरिम पानी भी पड़ रहा था ।

तब पापी मार भगवान् को डरा कँपा रोंगटे काढ़े कर देने की इच्छा से एक विनाश सर्पराज का रूप धारकर जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । जैसे एक बड़े वृक्ष की बनी लाव हो बैसा उसका सरीर था । जैसे महीवार की चटई हो बैसा उसका पल था । जैसे कोसक की बनी (चमकती) पाकी हो बैसी उसकी आँके थी । जैसे गड़गड़ते मेघ से बिजली कड़कती है वैसे ही उसके मुँह से भीस कापकापी थी । जैसे कोहार की सापी चकने से सम्य होता है वैसे ही उसके माँस छेने और छीड़ने से स्रव्य होता था ।

तब भगवान् ने यह पापी मार है जान गाथा में कहा—

जो एकान्तवास का सेवन करता है
बढ़ आत्मसंयत मुनि जेह है
सब कुछ त्यागकर वह वहीं विचार करे
बैस पुरुष के किए वह विरक्त भगुक्त है ॥
तरह-तरह के भीष विचारत हैं तरह-तरह के डर पैदा करनेवाले
बहुत हैंस मच्छर भीर सर्प विचरू—
वह एक रोंचे को भी नहीं हिचके
एकान्तवास करमेवाका महासुखि है ॥
आकाश कर जाय पृथ्वी काँप जाय
मनी प्राणी डर जायें,
यदि छती में साक भी जुभायें,
तो भी बुद्ध सांसारिक यस्तुओं में आसक्त नहीं करते ॥

तब पापी मार 'तुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ बुझित और किङ्ग हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

४ ७ सोपसि सुच (४ १ ७)

वितप्य बुद्ध

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कर्मकनिषाप में बिहार करते थे ।

तब भगवान् बहुत बहुर तक लुके मैदान में चंचलमान करते रहे । रात के मिनचारे पैरों की पच्चार बिहार के भीतर गये । वहाँ राक्षसी करबट सिंह जप्या कया कुछ हयते हुए पिर पर पिर रक्त स्थितिमात्र भार संभर हो, मन में उन्माद संज्ञा (= उन्मत्त का विचार) का जेह गये ।

* उपधि—पक्षरज की उपधियों—अनुकथा ।

तब, पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् से यह गाथा बोला—
 क्या सोते हो ? क्यों सोते हो ?
 क्यों ऐसा बेखबर सो रहे हो ?
 सूना घर पाकर सो रहे हो ?
 सूरज उठ जाने पर क्यों यह सो रहे हो ?

[भगवान्—]

जिसे फँसा लेने वाली और विष से भरी
 तृष्णा कहीं भी बहकाने को नहीं है,
 जो सभी उपधियों के मिट जाने से बुद्ध हो गये हैं,
 लेटे हैं रे मार ! इससे तुम्हारा क्या ?

तब, पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ, दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ८. आनन्द सुत्त (४. १. ८)

अनासक्त चिन्तित नहीं

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।
 तब, पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् के पास यह गाथा बोला—

पुत्रों वाला पुत्रों से आनन्द करता है,
 वैसे ही गौवों वाला गौवों से आनन्द करता है,
 सासारिक चीजों से ही मनुष्य को आनन्द होता है,
 वह आनन्द नहीं करता जिसे कोई चीज नहीं ॥

[भगवान्—]

पुत्रों वाला पुत्रों की चिन्ता में रहता है,
 वैसे ही गौवों वाला गौवों की चिन्ता में रहता है,
 सासारिक चीजों से ही मनुष्य की चिन्ता होती है,
 वह चिन्ता नहीं करता जिसे कोई चीज नहीं ॥

तब, पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ९. आयुसुत्त (४. १. ९)

आयु की अल्पता

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह के वेल्लुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे ।
 वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—

“भिक्षुओ” ।

“भदन्त !” कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—मित्रभो ! मनुष्यों की भायु थोड़ी है। परकोक जाना (सीम) है। पुष्प कमाया चाहिये ब्रह्मचर्य पाकना चाहिये। जो जन्म लेता है वह मरने से कभी बच नहीं सकता। मित्रभो ! जो बहुत बीता है वह सी बच बीता है, उससे कुछ कम या अधिक।

तब पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् से गाथा में पोसा—

मनुष्यों की भायु छद्मी है सत्पुरुष इसकी परवाह न करे
दुष्कर्मों के बन्धों की तरह रहे शत्रु जन्मी नहीं आ रहे हैं ॥

[भगवान्—]

मनुष्यों की भायु थोड़ी है
सत्पुरुष इससे बच सचेत रहे
मिरपर आग लगा गई है ऐसा समझते रहे
ऐसा कोई समझ नहीं जब शत्रु न बन आये।

तब पापी मार 'मुझ भगवान् ने पहचान लिया' समझ हुआ कि और सिद्ध हो नहीं
बलवान् हो गया।

४ १० आयु मुक्त (४ १ १०)

आयु का क्षय

राजपुरुष में।

जहाँ भगवान् बोले—मित्रभो ! मनुष्यों की भायु थोड़ी है। परकोक जाना (सीम) है। पुष्प कमाया चाहिये ब्रह्मचर्य पाकना चाहिये। जो जन्म लेता है वह मरने से कभी बच नहीं सकता। मित्रभो ! जो बहुत बीता है वह सी बच बीता है उससे कुछ कम या अधिक।

तब पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् से गाथा में बोला—

दिन और रात बड़े नहीं आ रहे हैं
बीच (का प्रवाह) कभी रुकता नहीं है
मनुष्यों के चारों ओर आयु बीसे ही बूझती रहती है;
जैसे हाथ गाड़ी के चुरे के ॥

[भगवान्—]

दिन और रात बीते जा रहे हैं
बीच (का प्रवाह विनाश में) रुक जाता है
मनुष्यों की भायु क्षीय हो रही है
छोटी-छोटी बहियों का जैसे चढ़ा पायी ॥

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ हुआ कि और सिद्ध हो नहीं
बलवान् हो गया।

प्रथम वर्ग समाप्त।

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

§ १. पासाण सुत्त (४. २. १)

बुद्धों में चञ्चलता नहीं

एक समय, भगवान् राजगृह में गृद्धकूट पर्वत पर विहार करते थे ।

उस समय भगवान् रात की काली अँधियारी में खुले मैदान में बैठे थे । रिमरिम पानी भी पड़ रहा था ।

तब, पापी मार भगवान् को डरा, कंपा और रोंगटे पड़े कर देने की ह्ज़ा से जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् के पास ही बड़े-बड़े पत्थरों को लुढ़काने लगा ।

तब भगवान् ने 'यह पापी मार है' जान गाथा में कहा—

चाहे सारे गृद्धकूट पर्वत को ही क्यों न लुढ़का दे,
बिल्कुल विमुक्त बुद्धों में कोई चञ्चलता पैदा नहीं हो सकती ।

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ हुआ खित और खिन्न हो वही अन्तर्धान हो गया ।

§ २. सीह सुत्त (४. २. २)

बुद्ध सभाओं में गरजते हैं

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

उस समय भगवान् बड़ी भारी परिपद् के बीच धर्मोपदेश कर रहे थे ।

तब पापी मार के मन में यह हुआ—यह श्रमण गौतम बड़ी भारी परिपद् के बीच धर्मोपदेश कर रहा है । तो क्यों न मैं श्रमण गौतम के पास चलकर लोगों के मत को फेर दूँ ।

तब पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् से गाथा में बोला—

सिंह के ऐसा क्यों गरज रहा है, सभा में निडर हो कर,
तुम से जोड़ लेने वाला मौजूद है, अपने को बड़े विजयी समझे बैठे हो ॥

[भगवान्—]

जो महावीर हैं वे सभाओं में निडर हो कर गरजते हैं,

बलशाली बुद्ध, जो भवसागर को पार चुके हैं ॥

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ हुआ खित और खिन्न हो वही अन्तर्धान हो गया ।

§ ३. सकलिक सुत्त (४. २. ३)

पत्थर से पैर कटना, तीव्र वेदना

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह के महुकुच्छि मृगदाव में विहार करते थे ।

उस समय भगवान् के पैर एक पत्थर के टुकड़े से कट गये थे। भगवान् को बड़ी पीड़ा हो रही थी—शारीरिक दुःखार्त्त तीव्र कठोर कट्ट बड़ी बुरी। उसे भगवान् स्थिरता से स्मृतिमान् और संमग्न हो सह रह थे।

तब पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् से गाथा में बोला—

इतना मन्द क्यों पड़े हो क्या किसी विचार में पड़े हो ?

क्या तुम्हारी आवश्यकताये पूरी नहीं हैं।

अकेला इस एकान्त स्थान में

निद्रास्त-मा क्यों छटे हो ?

[भगवान्—]

मैं मग्न नहीं पड़ा हूँ न किसी विचार में मग्न हूँ,

मैंने परमार्थ पा लिया है मेरे शोक इट गये हैं

अकेला इस एकान्त स्थान में

सभी जीवों पर अनुकम्पा करने वाला मैं सो रहा हूँ व

जिनकी छाती में बाण चुभ गया है

को रह रह कर हृदय को फाड़-सा देता है

वे बाण काय भी सी आते हैं,

तो सारी बेदुनामी से रहित मैं क्यों न मोड़ूँ !

जागने में मुझे बाँका नहीं और न मैं सोने से डरता हूँ,

रात या दिन का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं

संसार में मैं कहीं भी अपनी हानि नहीं देखता

इसलिये मैं सो रहा हूँ,

सभी जीवों पर अनुकम्पा करने वाला ॥

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ बुझित और निश्चि हो वहीं अन्तर्जाग हो गया।

३ ४ पठिरूप मुक्त (४ २ ४)

सुख अनुरोध विरोध सं मुक्त

एक समय भगवान् कोशल में एकशान्ता नामक आश्रमों के गाँव में बिहार करने थे। उस समय भगवान् गृहस्थों की एक बड़ी परिषद् के दीर्घ धर्मोपदेश कर रहे थे।

तब पापी मार के मन में यह आया—यह अमन्य गालम गृहस्थों की बड़ी परिषद् के बीच धर्मोपदेश कर रहा है। हाँ वही न मैं जहाँ अमन्य गालम है वहाँ चलकर उनके मन को केरूँ।

तब बापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् से गाथा में बोला—

तुम्हें पैदा करना सुख नहीं जो तुम्हारे को मिटता रहे हो

पैदा करते हुए अनुरोध और विरोध में मन जमो ॥

[भगवान्—]

दिन और अनुकम्पा करने वाले तुम

तुम्हारे को अनुकम्पन कर रहे हैं ॥

तुम अनुरोध और विरोध में मुक्त हैं ॥

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ दुःखित और खिन्न हो वही अन्तर्धान हो गया ।

§ ५. मानस सुत्त (४. २. ५)

इच्छाओं का नाश

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन भाराम में विहार करते थे ।

तब पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् से गाथा में बोला—

आकाश में उड़ने वाला जाल, जो वह मन की उड़ान है ।

उससे तुम्हें फँसा लूँगा, श्रमण ! मुझसे तेरा छुटकारा नहीं ॥

[भगवान्—]

रूप, शब्द, रस, गन्ध और स्पर्श, मन को लुभा लेने वाले,

इनके प्रति मेरी सारी इच्छाएँ मिट गईं,

अन्तक ! तुम जीत लिये गये हो ॥

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ दुःखित और खिन्न हो वही अन्तर्धान हो गया ।

§ ६. पत्त सुत्त (४. २. ६)

मार का बैल बनकर आना

श्रावस्ती में ।

उस समय भगवान् ने पाँच उपादान स्कन्धों के विषय में धर्मोपदेश कर भिक्षुओं को दिखा दिया, धता दिया, लगन लगा दिया, और उनके भावों को जना दिया । और, भिक्षु-लोग भी बड़े ध्यान से मन लगाकर कान दिये धर्म श्रवण कर रहे थे ।

तब पापी मार के मन में यह हुआ—यह श्रमण गौतम पाँच उपादान स्कन्धों के विषय में धर्मोपदेश कर । तो क्यों न मैं जहाँ श्रमण गौतम हैं वहाँ चलकर उनके मत को फेर दूँ !

उस समय, कुछ पात्र खुले मैदान में पड़े (सूख रहे) थे ।

तब, पापी मार एक बैल का रूप धरकर जहाँ वे पात्र पड़े थे वहाँ आया ।

तब, एक भिक्षु ने दूसरे भिक्षु से यह कहा—स्वामीजी, कहीं यह बैल पात्रों को तोड़ न दे ।

उसके ऐसा कहने पर भगवान् ने उस भिक्षु को कहा—भिक्षु ! वह बैल नहीं है । यह पापी मार तुम लोगों के मत को फेरने आया है ।

तब भगवान् ने 'यह पापी मार है' जान गाथा में कहा—

- रूप, वेदना, संज्ञा, विज्ञान और संस्कार को,
'न यह मैं हूँ, और न यह मेरा है' ऐसा जान,
उनके प्रति विरक्त रहता है,
ऐसे विरक्त, शान्त, सभी बन्धनों से छूटे पुरुष को,
सभी जगह खोजते रहकर भी,
मार-सेना नहीं पा सकती ॥

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ हुआ कि और सिद्ध हो यहाँ अन्तर्धान हो गया ।

१७ आयतन सुप्त (४ २ ७)

आयतनों में ही मय

एक समय भगवान् वैशाखी में महाघन की फूटागार शाखा में बिहार करत थे ।

उस समय भगवान् ने छः स्पर्शावतनों के विषय में धर्मोपदेश कर मिश्रुओं को शिक्षा दिया । और मिश्रु लोग भी कान बिने धर्म प्रवचन कर रहे थे ।

तब पापी मार के मन में बह जाया—पह, भ्रमण गाठम छः स्पर्शावतनों के विषय में । तो क्यों न मैं वहाँ भ्रमण गीतम है वहाँ खड़ा कर बैठने मत को कर दूँ ।

तब पापी मार वहाँ भगवान् ने वहाँ आया और भगवान् के पास ही महा मन्त्रोपाङ्ग शब्द करने लगा—सापी घृष्णी पद नहीं ।

तब एक मिश्रु ने दूसरे को कहा—मिश्रु मिश्रु ! मातो घृष्णी पद नहीं ।

उसके ऐसा करने पर भगवान् ने उस मिश्रु का कहा—मिश्रु ! घृष्णी पद नहीं रही है । यह मार तुम लोगों के मत को फेर देने के किम आया है ।

तब, भगवान् ने 'यह पापी मार है' नाम गाया में कहा—

कय शब्द रस शब्द स्पर्ध और भी जितने धर्म हैं

संसार में वही मय है इनके पीछे संसार पागल है

इनसे ऊपर ठंड पुख का आवाज स्मृतिमान् हो

मार के शब्द को कौन सूर्य के ऐसा कमकटा है ।

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ हुआ कि और सिद्ध हो यहाँ अन्तर्धान हो गया ।

१८ पिण्ड सुप्त (४ २ ८)

पुत्र को मिश्रा न मिश्री

एक समय भगवान् मगध में पञ्चशास नामक माछणों के ग्राम में बिहार करते थे ।

उस समय उस ग्राम में बुद्धों का परस्पर घेरे देव का उत्सव मत्वा हुआ था ।

तब भगवान् सुबह में पहल और पात्र नीकर के गीत में मिश्राटन के किये पड़े ।

उस समय पञ्चशास ग्राम के माछणों पर पापी मार सवार हो गया था—कि जिसमें भ्रमण गीतम को मिश्रा न मिश्री पावे ।

तब भगवान् जैसे बुद्धे-बुद्धने पात्र को लेकर पञ्चशास ग्राम में मिश्राटन के किये पड़े थे वैसे ही बुद्धे-बुद्धने पात्र को किये काट गये ।

तब पापी मार वहाँ भगवान् ने वहाँ आया और भगवान् से बोझ—भ्रमण ! क्या मिश्रा मिश्री ?

तब पापी ने बैसा किया जिसमें मुझे मिश्रा नहीं मिश्री ।

अन्ते ! तो भगवान् दूसरी बार पञ्चशास ग्राम में मिश्राटन के किये पड़े । इस बार मैं ऐसा कहूँगा जिसमें भगवान् को मिश्रा मिश्रीगी ।

मार ने कहा अतुल्य कमाया भी बुद्ध से क्या किया

रे पापी ! क्या समझता है कि मेरे पाप का कष्ट नहीं मिश्रीगी ?

तुम पूर्वक जीता हूँ, जिय, मुझे कुछ अपना नहीं है,
(समाधि-जन्य) प्राणि से मनुष्य रहूँगा,
जैसे धानाक्षर देव ॥

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ दुःखित और गिन हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ९. कस्सक सुत्त (४. २. ९)

मार का रूपक के रूप में आना

श्रावस्ती में ।

उस समय, भगवान् ने निर्वाण सम्मन्धी धर्मोपदेश कर भिक्षुओं को दिया '। और, भिक्षु लोग भी' कान दिये धर्म श्रवण कर रहे थे ।

तब, पापी मार के मन में यह आया—'यः श्रमण गौतम निर्वाण-सम्मन्धी धर्मोपदेश कर '। तो, क्यों न मैं जहाँ श्रमण गौतम है वहाँ चढ़कर उनके मत को फेर दूँ ।

तब पापी मार रूपक का रूप धर—पुरुष पदे हल की फन्धे पर लिये, एक लम्बी छड़नी लिये, घाल बिगरे, टाट के कपड़े पड़ने, पैरों में कीचड़ लगावे, जहाँ भगवान् ने वहाँ आया, और भगवान् ने बोला—'श्रमण ! मेरे प्रश्नों का जेवा है ?'

र पापी ! तुम्हें जेलों से क्या काम ?

श्रमण ! मेरी ही आँख है, मेरे ही रूप है, मेरी ही आँख से जाने जाये वाले विज्ञानायतन हैं ।

श्रमण ! कहाँ जाकर मुझसे झूट सकते हो ?

श्रमण ! मेरे ही शब्द, गन्ध, रस, रसम् ।

श्रमण ! मेरा ही मन है, मेरे ही धर्म हैं, मेरे ही मन-संस्पर्श-विज्ञानायतन हैं । श्रमण ! कहाँ जाकर मुझसे झूट सकते हो ?

पापी ! तेरी ही आँख है, तेरे ही रूप है, तेरी ही आँख से जाने जाये वाले विज्ञानायतन हैं । पापी ! जहाँ आँख नहीं है, रूप नहीं है, आँख से जाने जाये वाले विज्ञानायतन नहीं हैं, वहाँ तेरी गति नहीं है ।

पापी ! जहाँ शब्द, गन्ध, रस, रसम् नहीं हैं ।

पापी ! तेरा ही मन है, तेरे ही धर्म हैं, तेरे ही मन-संस्पर्श-विज्ञानायतन हैं । पापी ! जहाँ मन नहीं है, धर्म नहीं है, मन-संस्पर्श-विज्ञानायतन नहीं हैं, वहाँ तेरी गति नहीं है ।

जो लोग कहते हैं 'यह मेरा है', जिसे लोग कहते हैं 'मेरा है' ।

यदि तुम्हारा भी मन यहाँ है, तो हे श्रमण ! मुझसे नहीं झूट सकते ॥

[भगवान्—]

जिसे लोग कहते हैं वह मेरा नहीं है,

जो लोग कहते हैं वह मैं नहीं हूँ,

रे पापी ! इसे ऐसा जान,

मेरे मार्ग को भी तू नहीं देख सकेगा ॥

तब, पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

६ १० रत्न मुक्त (४ २ १०)

सांसारिक कामों की विषय

एक समय भगवान् कोशुल में हिमालय के पास जंगल की एक छुरिया में विहार करते थे ।

तब एकान्त में ध्यान करते समय भगवान् के मन में यह चिन्तक उठा—क्या बिना भारे या भरवाये बिना बीते या बितवाये बिना दुःख दिये जा दुःख विषयवाये धर्म-पूर्वक राज्य बिना जा सकता है ?

तब पापी मार भगवान् के चिन्तक को अपने चित्त से ज्ञान जहाँ भगवान् थे वहाँ भाषा नीर बोझा—मन्ते ! भगवान् राज्य करें—बिना भारे धर्म-पूर्वक ।

पापी ! तुमने क्या देखकर मुझे ऐसा कहा :—मन्ते ! भगवान् राज्य करें—बिना भारे धर्म-पूर्वक ।

मन्ते ! भगवान् ने चारों अक्षिपाद की भाषणा कर की है उनका जन्मास कर किया है अब पर पूरा अधिकार पा लिया है उनकी सत्तक बना लिया है उनका अनुष्ठान कर लिया है, उनका परिचय और प्रयोग कर लिया है मन्ते ! यदि भगवान् चाहें कि यह पर्वतराज हिमालय सोने का हो जाय तो भगवान् के केवल अधिकार करने मात्र से सारा सुवर्ण-पर्वत हो जायगा ।

[भगवान् -]

विष्णुज नसकी सोने के पर्वत का
दुःख भी एक पुरुष के किये काफ़ी नहीं है
यह समझ कर (संसार में) रहें ॥
जिनके कारण जिसने दुःख देख लिया
उन कामों की ओर वह कैसे छुकेगा ?
सांसारिक कामों की बन्धन जाय
अब पर विजय पाया सीखे ॥

तब पापी मार मुझे भयवान ने पहचान लिया समझ हुआ और दिख हो अन्तर्धान हो गया ।

द्वितीय सर्ग समाप्त ।

तीसरा भाग

तृतीय वर्ग

(ऊपर के पाँच)

§ १. सम्बहुल मुक्त (५. ३ १)

माग का बहकाना

पेसा मने सुना ।

एक समय भगवान् शाक्य जनपद के शीलावती प्रदेश में विहार करते थे ।

उस समय भगवान् के पास ही कुछ अप्रमत्त, आतापी (= फ्लेशों को तपाने वाले) और प्रहितात्म (= सयमी) भिक्षु विहार करते थे ।

तब, पापी मार ब्राह्मण का रूप धर, —लम्बी जटा बढाये, मृगचर्म ओढ़े, बूढ़ा, घड़ेरी जैसा छुका, घुर-घुर साँम लेते, गृहर का दण्ड लिये—जहाँ वे भिक्षु थे वहाँ आया । आकर भिक्षुओं ने बोला—आप लोगो ने बड़ी छोटी अवस्था में प्रव्रज्या ले ली है, अभी तो आप कुमार ही हैं, आप के केश अभी काले ही हैं, आप की हतनी अच्छी जयानी है, हम चरती उन्न में आपने तो सत्कार के कामों का स्वाद भी नहीं लिया है । आप मनुष्य के भोगों को भोगें । सामने की बात को छोड़कर मुद्गत में होनेवाली के पीछे मत दीढ़ें ।

नहीं ब्राह्मण ! हम सामने की बात को छोड़कर मुद्गत में होनेवाली के पीछे नहीं दौड़ रहे हैं । ब्राह्मण ! हम तो उल्टे मुद्गत में होनेवाली बात को छोड़कर सामनेवाली के फेर में हैं । ब्राह्मण ! भगवान् ने सत्कार के कामों को मुद्गत में होनेवाला बतलाया है, दुःख से पूर्ण, परेशानी से भरा, इन कामों में केवल दोष ही दोष हैं । और, यह धर्म सांख्यिक (= आँखों के सामने फल देनेवाला), शीघ्र ही सफल होनेवाला (= अकालिक), ठंके की चोट पर सच्चा घतया जा सकने वाला (= एहिपस्सिको = जिसके विषय में किसी को कहा जा सकता है—‘आओ, देख लो’), मुक्ति के पास ले जानेवाला, विज्ञ पुरुषों से अपने भीतर ही भीतर समझ लिया जानेवाला है ।

उनके ऐसा कहने पर पापी मार गिर हिला, जीभ निकाल, ललाट पर तीन सिकोदन (भ्रूभंग) बढा लाठी टेकता हुआ चला गया ।

तब, वे भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने भगवान् को यह कहा—

मन्ते ! हम लोग भगवान् के पास ही अप्रमत्त, आतापी, और प्रहितात्म हो विहार कर रहे हैं । तब कोई ब्राह्मण, लम्बी जटा बढाये आकर बोला—आपने बड़ी छोटी अवस्था में । सामने की बात को छोड़ कर मुद्गत में होनेवाली के पीछे मत दीढ़ें ।

मन्ते ! इस पर हमने उस ब्राह्मण को उत्तर दिया—नहीं ब्राह्मण ! हम सामने की बात को छोड़ कर मुद्गत में होनेवाली के पीछे नहीं दौड़ रहे हैं । और यह धर्म सांख्यिक है ।

मन्ते ! हम लोगों के ऐसा कहने पर वह ब्राह्मण लाठी टेकता हुआ चला गया ।

भिक्षुओ ! वह ब्राह्मण नहीं था । वह पापी मार तुम लोगों के मत को फेर देने के लिये आया था ।

हूँ तो जान, भगवान् क' हूँ से उस समय यह गाथा निरुद्ध पड़ी—

जिसने जिसके कारण दुःख होना जान लिया
 वह उन कामों की ओर कैसे रुक सरता है ?
 सांसारिक कामों को सम्पन्न जान
 उन पर बिजय पाना सीखे ॥

४ २ समिद्धि सुच (४ ३ २)

समुद्धि को डराना

एक समय भगवान् शाप्य जनपद में शीलापत्नी प्रदेश में बिहार करते थे ।

उस समय आमुष्मान् समुद्धि भगवान् के पास ही अग्रमण आतापी, और प्रतिहात्म हो बिहार कर रहे थे ।

तब एकान्त में ध्यान करते समय आमुष्मान् समुद्धि के मन में यह चिंतक' उठ—मेरा क्या काम हुआ ! मेरा क्या भाग्य हुआ कि मेरे गुरु अर्थात् सम्पद् समुत्तर हुए । मेरा क्या काम हुआ ! मेरा क्या भाग्य हुआ कि मैं इस स्वाध्याय धर्म-विनय में प्रवृत्त हुआ । मेरा क्या काम हुआ ! मेरा क्या भाग्य हुआ कि मेरे गुरु-साईं शीलापत्नी और पुष्पात्मा हैं ।

तब पापी मार आमुष्मान् समुद्धि के चिंतक' को अपने चित्त से जान बूझी आमुष्मान् समुद्धि से बूझी आया । आकर, आमुष्मान् समुद्धि के पास ही महाभयोत्पादक शब्द कहने लगा। माओ पुष्पी पड़ पड़ी ।

तब आमुष्मान् समुद्धि बूझी भगवान् से बूझी आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ आमुष्मान् समुद्धि ने भगवान् को कहा—

भगवन् ! मैं भगवान् के पास ही अग्रमण आतापी और प्रतिहात्म हो बिहार कर रहा हूँ ।

भगवन् ! तब एकान्त में ध्यान करते समय मेरे मन में यह चिंतक' उठ । भगवन् ! तब मेरे पास ही एक महाभयोत्पादक शब्द होने लगा। माओ पुष्पी पड़ पड़ी ।

समुद्धि ! यह पुष्पी नहीं कटी का रही थी । वह पापी मार तुम्हारे मन को डेर देने के लिए आया था । समुद्धि ! माओ बूझी अग्रमण आतापी और प्रतिहात्म होकर बिहार करो ।

“भगवन् ! बहुत अच्छा” कह, आमुष्मान् समुद्धि भगवान् की उत्तर से, आसन से उठ भगवान् को अभिवादन और प्रवृत्ति कर बड़े गये ।

दूसरी बार भी आमुष्मान् समुद्धि बूझी बिहार करने को । दूसरी बार भी एकान्त में ध्यान करते समय आमुष्मान् समुद्धि के मन में चिंतक' उठ मेरा क्या काम हुआ ! मेरा क्या भाग्य हुआ ! कि मेरे गुरु-साईं शीलापत्नी और पुष्पात्मा हैं ।

दूसरी बार भी पापी मार गया । माओ पुष्पी पड़ पड़ी ।

तब आमुष्मान् समुद्धि ‘यह पापी मार है’ जान गाथा में बोले—

प्रज्ञा से मैं प्रवृत्त हुआ हूँ घर से वैधर हो,
 स्थिति और प्रज्ञा को मैंने जान किया मेरा चित्त समाधिस्थ हो गया
 बेसी इच्छा हो बीसे रूप विचार्यो
 उससे मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता ॥

तब पापी मार ‘समुद्धि मित्र ने मुझे पहचान लिया समझ बुद्धि और चित्त हो बूझी अग्रमण हो गया ।

§ ३. गोधिक सुत्त (४. ३. ३)

गोधिक की आत्महत्या

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह के चेलु इन कलन्दक निपाय में विहार करते थे ।

उस समय, आयुष्मान् गोधिक-ऋषिगिरि के पास कालशिला पर विहार करते थे । तब अप्रमत्त, अतापी और प्रतिहात्म होकर विहार करते हुए आयुष्मान् गोधिक ने समाधि से होनेवाली चित्त-विमुक्ति को प्राप्त किया । फिर, आयुष्मान् गोधिक की वह समाधि से होनेवाली चित्त-विमुक्ति टूट गई ।

दूसरी बार भी, अप्रमत्त, अतापी और प्रतिहात्म होकर विहार करते हुए आयुष्मान् गोधिक ने समाधि से होनेवाली चित्त-विमुक्ति को प्राप्त किया । दूसरी बार भी, आयुष्मान् गोधिक की वह समाधि से होनेवाली चित्त-विमुक्ति टूट गई ।

तीसरी बार भी, आयुष्मान् गोधिक की वह समाधि से होने वाली चित्त-विमुक्ति टूट गई ।

चौथी बार भी, पाँचवीं बार भी, छठीं बार भी, आयुष्मान् गोधिक की वह समाधि होनेवाली चित्त-विमुक्ति टूट गई ।

सातवीं बार भी, अप्रमत्त, अतापी और प्रतिहात्म होकर विहार करते हुए आयुष्मान् गोधिक ने समाधि से होनेवाली चित्त-विमुक्ति को प्राप्त किया ।

तब, आयुष्मान् गोधिक के मन में यह हुआ—छठीं बार तक मेरी समाधि से होनेवाली चित्त-विमुक्ति टूट चुकी है—तो क्यों न मैं आत्महत्या कर लूँ ।

तब, पापी मार आयुष्मान् गोधिक के वितर्क को अपने चित्त से जान, जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् से गाथा में बोला—

हे महावीर ! हे महाप्रज्ञ ! जो अपनी ऋद्धि से दीप्त हो रहे हैं ।
सभी वैर और भय से मुक्त ! सर्वज्ञ ! मैं पैरों पर प्रणाम करता हूँ ॥
हे महावीर ! आपका श्रावक, हे मृत्युञ्जय !
मरने की इच्छा और विचार कर रहा है हे तेजस्वी ! उसे रोकें,
भगवान् ! आपके शासन में लगा कोई श्रावक,
हे लोक-विख्यात ! बिना निर्वाण पाये,
शैक्ष्य ही होते कैसे मृत्यु को प्राप्त हो जायगा ?
उस समय तक आयुष्मान् गोधिक ने आत्महत्या कर ली थी ।
तब भगवान् 'यह पापी मार है' जान गाथा में बोले—
धीर पुरुष ऐसे ही करते हैं, जीवन में उनकी आशा नहीं रहती है,
तृष्णा को जब से उखाड़, गोधिक ने निर्वाण पा लिया ॥

तब भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ !! जहाँ ऋषिगिरि के पास कालशिला है वहाँ चल चलो, जहाँ गोधिक कुलपुत्र ने आत्महत्या कर ली है ।

“भन्ते ! बहुत अच्छा” कह, उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

तब, कुछ भिक्षुओं के साथ भगवान् जहाँ ऋषिगिरि के पास कालशिला थी वहाँ गये । भगवान् ने दूर ही से आयुष्मान् गोधिक को खाट पर कधा झुकाये सोये देखा ।

उस समय कुछ धुवाँ सा, कुछ छाया सा, पूरब की ओर उड़ा जाता था, पश्चिम की ओर उड़ा

जाता था; ऊपर की ओर उड़ा जाता था; दक्षिण की ओर उड़ा जाता था; ऊपर, नीचे, समी ओर उड़ा जाता था ।

तब भगवान् ने मिथुओं को धामनिष्ठ किया—मिथुओ ! ऐसी कुछ बुझाता सा कुछ छाया सा समी ओर उड़ा जाता है ।

समते ! जी हों ।

मिथुओ ! वह पापी मार गोधिक कुङ्कुम के बिशान की समी ओर खोज रहा है—गोधिक कुङ्कुम का बिशान कहीं प्रतिष्ठित है । मिथुओ ! गोधिक का बिशान कहीं भी प्रतिष्ठित नहीं है; उसने विवाह पा किया है ।

तब पापी मार बिम्ब-पण्डु बीजा (जो बीज पके बैठ के समान पीछा था) को छे बहों भय बानू ये बहों भाया और गाथा में बोला—

ऊपर नीचे और देगे मैं दिशाओं और अनुविशाओं में
मैंने खोज छात्र कर भी नहीं पाया वह गोधिक कहीं गया ॥
वह बीर, पति-सम्पन्न ध्यावी सदा ध्यान-रत
दिन रात क्या वह जीवन की इच्छा न करते हुए
सूखु की सेना को भीत पुनर्जन्म न ग्रहण कर
मृष्या को वह से उखाड़ गोधिक ने परिभिर्माण पा किया ॥
भारी लोक में वह उसकी काँच से बीजा बिसर गई
इससे वह मार खिन्न हो नहीं समर्थमान हो गया ॥

४ ४ सत्त्वस्तानि सुत (४ १ ४)

मार द्वारा सात साठ पीछा किया जाना

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् लक्ष्मणा में निरञ्जना नदी के तीर पर अजपाछ विप्रोच के नीचे विहार करते थे ।

उस समय पापी मार सात साठ से भगवान् का पीछा कर रहा था—उनमें कोई दोष निराकर्म की इच्छा न किन्तु उसे कभी कोई दोष नहीं मिला ।

तब पापी मार बहों भयबानू ये बहों भाया और भगवान् से पाछा में बोला—

वह निमित्त सा हो वन में ध्यान करते हो
क्या तुम्हारा वन वह हो गया है जिसकी किन्न कर रहे हो ?
क्या गाँव में तुमने कुछ उत्पात किया है
कि जिससे लोगों को अपनी मोंद भी नहीं देते ?
क्या तुम्हें किमी से सी बारी नहीं होती ?

[भगवान्—]

लोक के सारे मूक को बचाव
बिना उत्पात किन्ने चिन्ता-रहित हो ध्यान करता हूँ
जीवन के समी खोज और व्यक्त को कार,
है वसत कोयीं न किन्न ! अजीव-रहित हो ध्यान करता हूँ ॥

[मार—]

जिसे कहते हैं 'यह मेरा है', जो कहते हैं 'यह मेरा है',
यहाँ यदि तुम्हारा मन लगा है, तो श्रमण ! मुझमें तेरा छुटकारा नहीं ॥

[भगवान्—]

जिसे लोग कहते हैं वह मेरा नहीं है, जो कहते हैं वह मैं नहीं हूँ,
रे पापी ! ऐसा जान, मेरे मार्ग को भी तू नहीं देख सकेगा ॥

[मार—]

यदि तुम्हें मार्ग का पता लग गया है, धैर्य और अजर-पद-गामी,
तो उस पर अकेला ही जाओ, दूसरों को क्यों सिखाते हो ॥

[भगवान्—]

लोग पूछते हैं कि मृत्यु के राज्य का पार कहाँ है,
जो उस पार जाने को उत्सुक हैं,
उनसे पूछा जाकर मैं बताता हूँ
कि उपाधियों का विलकुल अन्त कहाँ है ॥

[मार—]

भन्ते ! किसी गाँव या कस्बे के पास ही एक बावली हो, जिसमें एक केकड़ा रहता हो । तब, कुछ लड़के या लड़कियाँ उस गाँव या कस्बे से निकल कर उस बावली के पास जायँ । जाकर उस केकड़े को पानी से निकाल जमीन पर रख दें । वह केकड़ा जिधर पैर मोड़े उधर ही उसे वे लड़के या लड़कियाँ लकड़ी या पत्थर से पीटें और उसके अंग-प्रत्यंग को छोड़ दें । और, तब वह केकड़ा फिर भी पानी में बैठने से लाचार हो जाय ।

भन्ते ! ठीक वैसे ही, जो मेरे अच्छे वड़े पुष्ट अंग थे सभी को भगवान् ने तोड़ दिया, मरोड़ दिया, नष्ट कर दिया । भन्ते ! अब मैं भगवान् में दोष निकालने के लिये आने में असमर्थ हो गया ।

तब, पापी मार भगवान् के सम्मुख यह करुणा-पूर्ण गाथा बोला—

चर्वी जैसे उजले पत्थर को देख,
कौआ झपट्टा मारा,
यह कुछ कोमल चीज होगी,
बढ़ी स्वादवाली होगी ॥
वहाँ कोई स्वाद नहीं पा,
कौआ उड़ गया,
पत्थर पर झपटने वाले कौए जैसा,
गौतम को छोड़ मैं भाग जाऊँ ॥

तब पापी मार भगवान् के सम्मुख यह करुणापूर्ण गाथा कह वहाँ से हट कर भगवान् के पास ही जमीन पर पालथी लगा बैठ गया । चुप हो, गूँगा रह, कंधा गिरा, वह जमीन को तिनके से खोदने लगा ।

§ ५. मारदुहिता सुत्त (४. ३. ५)

मार कन्याओं की पिराजय

तब, तृष्णा, अरति और रगा मार की लड़कियाँ जहाँ पापी मार था वहाँ भाई । आकर पापी मार को गाथा में बोली—

इसी से लोगों के साथ मिलता-जुलता नहीं हूँ,
मुझे किसी से भी दोस्ती नहीं लगती है ॥

तब, अरति, मार की लड़की भगवान् से गाथा में बोली—

‘ भिक्षु संसार में कैसे विहार करता है ?
पाँच बाढ़ों को पार कर छठों को कैसे पार करता है ?
कैसे ध्यान के अभ्यासी को काम सज्जार्थे,
पकड़ नहीं सकती, बाहर ही बाहर रहती हैं ?

[भगवान्—]

जिसकी काया शान्त हो गई है, चित्त विमुक्त हो गया है,
जिसे संस्कार नहीं, स्मृतिमान्, बिना घर का,
धर्म को जान अवितर्क ध्यान लगाने वाला,
न क्रोध करता है, न वैर बाँधता है, न मन मारता है ॥
भिक्षु ऐसे ही संसार में विहार करता है,
पाँच बाढ़ों को पार कर छठों को पार करता है,
वैसे ध्यान के अभ्यासी को काम सज्जार्थे,
पकड़ नहीं सकती, बाहर ही बाहर रहती हैं ॥

तब, मार की लड़की रगा भी भगवान् से गाथा में बोली—

तृष्णा को काट गण और सघ वाला जाता है,
और भी बहुत प्राणी जायेंगे,
यह प्रव्रजित बहुत से लोगों को,
मृत्यु-राज से छुड़ा कर पार ले जायगा ॥

बुद्ध उन्हें ले जाते हैं,
तथागत (=बुद्ध) अपने सद्धर्म से,
धर्म से ले जाये जाने वाले,
ज्ञानियों को ढाह कैसी ।

तब तृष्णा, अरति और रगा, मार की लड़कियाँ जहाँ पापी मार था वहाँ आ ।

पापी मार ने उन लोगों को आती देखा देखकर वह गाथा में बोला—

मूर्ख ! कमल की नाल से पर्वत को मथना चाह्य,
पहाड़ को नख से खोदना, लोहे को दाँत से चबाना,
चट्टान को शिर से टकराना, पाताल का अन्त खोजना,
या वृक्ष के टूँड को छाती से भिड़ाना चाह्य
हार मान, गौतम को छोड़ चले आओ ॥

चटक मटक से आई,
तृष्णा, अरति और रगा,
हवा जैसे रूई के फाड़े को (बिखेर दे)-
बुद्ध ने उन्हें जैसे, बिखेर दिया ॥

तृतीय वर्ग समाप्त ।

पाँचवाँ परिच्छेद

५ मिथुनी-संयुक्त

§ १ आलसिका सुप्त (५ १)

काम भोग तीर जैसे हैं

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय मगवान् भावस्ती में अनाद्यपिच्छिक के जेतयन आराम में बिहार करते थे ।

तब आलसिका मिथुनी सुबह में पहल भीर पाप पीर के आबस्ती में मिश्रादब के छिये पैठी ।
मिश्रादब से कीट भीजन करने के उपरान्त एकान्त-सेवन के छिये जहाँ अम्यक बन है वहाँ जूझी गई ।

तब पापी मार आलसिका मिथुनी को बरा कंया भीर रोने लगे कर देने, भीर शान्ति को तीर देने की ह्ज्म से जहाँ आलसिका मिथुनी भी वहाँ जाया । जाकर आलसिका मिथुनी से गाथा में बोला—

संसार से छुटकारा नहीं है एकान्त-सेवन से क्या कबवा !

सांसारिक कामों का भोग करो पीछे कहीं पकटावा न पड़े त

तब आलसिका मिथुनी के मन में यह हुआ—क्रीव यह मनुष्य था कमनुष्य गाथा में बोल रहा है ?

तब आलसिका मिथुनी के मन में यह हुआ—यह पापी मार मुझे बरा कंया भीर रोने लगे कर देने भीर शान्ति संग कर देने की ह्ज्म से गाथा बोल रहा है ।

तब आलसिका मिथुनी 'यह पापी मार है' जाब गाथा में बोली—

संसार से जो छुटकारा होता है प्रजा से मैंने उसे पा किया है,

प्रमत्त पुरुषों के मित्र पापी ! तुम उस पक्ष को नहीं जानते ।

सांसारिक काम तीर माके जैसे हैं जो रङ्गनों की दृष्टि रहते हैं

जिसे तुम काम भोग कहते हो उसमें मेरी रुचि नहीं रही ।

तब पापी मार 'आलसिका मिथुनी ने मुझे पहचान लिया' समझ बुझित भीर किछ हो बड़ी अन्तर्धान हो गया ।

§ २ सोमा सुप्त (५ २)

स्त्री-माय क्या करेगा ?

आवस्ती में ।

तब सोमा मिथुनी सुबह में पहल भीर पाप पीर के आबस्ती में मिश्रादब के छिये पैठी ।

मिश्रादब से कीट भीजन करने के बाद दिव के बिहार के छिये जहाँ अम्यक बन है वहाँ बली गई । अन्तर्धान में है एक बूझ के नीचे दिन के बिहार के छिये बैठ गयी ।

तब पापी मार सोमा मिथुनी को बरा कंया भीर रौगट लगे कर देने, तथा समाधि से गिरा देने के बिचार से जहाँ सोमा मिथुनी भी वहाँ जाया । जाकर सोमा मिथुनी से गाथा में बोला—

ऋषि लोग जिम पद को पाते हैं उसका पाना बड़ा कठिन है,

दो अंगुल भर प्रज्ञावाली स्त्रियाँ उसे नहीं पा सकती हैं ॥

तब, सोमा भिक्षुणी के मन में यह हुआ—कोन यह मनुष्य या अमनुष्य गाथा में बोल रहा है ?

तब, सोमा भिक्षुणी के मन में यह हुआ—यह पापी मार मुझे डरा, कँपा और रोंगटे खड़े कर देने, तथा समाधि से गिरा देने के विचार से गाथा बोल रहा है ।

तब, सोमा भिक्षुणी “यह पापी मार है” जान गाथा में बोली—

जब चित्त समाहित हो जाता है, ज्ञान उपस्थित रहता है,

और धर्म का पूर्णतः साक्षात्कार हो जाता है, तब स्त्री-भाव क्या करेगा !!

जिस किसी को ऐसा विचार होता है—मैं स्त्री हूँ, अथवा पुरुष हूँ,

अथवा कुछ और ही, उसी से मार ऐसा कह सकता है ॥

तब, पापी मार “सोमा भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया” समझ, दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ३. किंसा गौतमी सुत्त (५ ३)

अज्ञानान्धकार का नाश

श्रावस्ती में ।

तब, कृशा-गौतमी भिक्षुणी सुबह में पहन और पात्र चीवर ले श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिये पैठी ।

भिक्षाटन से लौट, भोजन कर लेने के बाद दिन के विहार के लिए जहाँ अन्धवन है वहाँ चली गई । अन्धवन में पैठ, एक वृक्ष के नीचे दिन के विहार के लिये बैठ गई ।

तब, पापी मार समाधि से गिरा देने के विचार से गाथा में बोला—

पुत्र-मृत्यु के शोक में पड़ी जैसे, अकेली, रोनी सूरत लिये ,

वन में अकेली पैठ कर क्या किसी पुरुष की खोज में है ?

तब कृशा-गौतमी भिक्षुणी के मन में यह हुआ—“पापी मार गाथा बोल रहा है ।

तब कृशा-गौतमी ने “यह पापी मार है” जान गाथा में उत्तर दिया—

पुत्र-मृत्यु के शोक से मैं ऊपर उठ चुकी हूँ, पुरुष की खोज भी जाती रही,

न शोक करता हूँ, न रोती हूँ, आवुस ! तुमसे भी भय डर नहीं ॥

ससार में स्वाद लेना छूट चुका, अज्ञानान्धकार हटा दिया गया,

मृत्यु की सेना को जीत, आश्रय-रहित हो विहार करती हूँ ॥

तब पापी मार “कृशा-गौतमी भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया” समझ, दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ४. विजया सुत्त (५. ४)

काम-तृष्णा का नाश

श्रावस्ती में ।

तब विजया भिक्षुणी [पूर्ववत्] दिन के विहार के लिये बैठ गई ।

तब पापी मार गाथा में बोला —

कम उम्र वाली तुम सुन्दरी हो, और मैं एक नया कुमार हूँ,

पञ्चाङ्गिक साज से आभो, हम मौन उषाओं ॥

तब विजया मिथुनी ने “यह पापी मार है आज गाथा में उत्तर दिया—

छुभावने रूप शब्द रस गन्ध भीर स्पर्श

तुम्हारे ही किये छोड़ देती हूँ मार ! मुझे उसकी आवश्यकता नहीं

इस गंदगी से मेरे शरीर से प्रभुदूर नार नष्ट हो जाने पाके से,

मेरा मन इतना है दुष्प्रभाती है मेरी काम-गुण्य मित्र गई है ।

जो रूप-छोक या अरूप-छोक का (देवत्व) है

और जो ज्ञान की शान्त अवस्था है सभी में मेरा अज्ञानान्धकार नष्ट हो गया है ॥

तब पापी मार “विजया मिथुनी ने मुझे पहचान किया” समस्त दुःखित भीर पित्र हो नहीं अन्तर्भाव हो गया ।

§ ५ उत्पलवर्णा सुत (५ ५)

उत्पलवर्णा की कद्रिमता

भावस्ती में ।

तब उत्पलवर्णा मिथुनी अन्धवन में किसी सुपुष्पित साज वृक्ष के नीचे खड़ी हो गई ।

तब पापी मार गाथा में बोला—

मिथुनि ! सुपुष्पित साज वृक्ष के नीचे तुम अकेली खड़ी हो

तुम्हारे बीसा सौम्य है दूसरा नहीं है जो नहीं भाई हो

नाशक ! बदमासों से तुम्हें डर नहीं लगाता ?

तब उत्पलवर्णा मिथुनी ने “यह पापी मार है” आज गाथा में उत्तर दिया—

बीसे यदि सी हजार सी बदमास चके आये

तो मैं नहीं डर सकती मेरा एक रीत्य भी नहीं हिल सकता ।

अकेली रह कर भी मार ! तुम से मुझे सब नहीं ॥

जमी में अन्तर्भाव हो जा सकती हूँ,

तुम्हारे पैर में घुस जा सकती हूँ,

जोड़ों के बीच खड़ी रहने पर भी

तुम मुझे नहीं देख सकते ॥

चित के बारीभूत हो जाने पर कद्रिबों भी स्पर्श प्राप्त हो जाती है

मैं सभी वनवनों से मुक्त हूँ, आहुत ! तुमसे मैं नहीं डरती ॥

तब पापी मार “उत्पलवर्णा मिथुनी ने मुझे पहचान किया” समस्त दुःखित भीर चित्र हो नहीं अन्तर्भाव हो गया ।

§ ६ चाला सुत (५ ६)

अग्म-ग्रहण के दोष

भावस्ती में ।

तब चाला मिथुनी दिव के बिहार के किने बैठ गई ।

तब पापी मार चाला मिथुनी की नहीं आवा । अन्ध चाला मिथुनी से वह बोला—

मिथुनि ! तुम्हें क्या नहीं दखता है ?

[मार]

आवुस ! मुझे जन्म ग्रहण करना नहीं रुचता है ।

तुम्हें जन्म ग्रहण करना क्यों नहीं रुचता ?

जन्म लेकर कामों का भोग करता है ।

तुम्हें यह किसने सिखा दिया कि — हे भिक्षुणि ! तुम्हें जन्म-ग्रहण करना मत रुचे ?

[चाला भिक्षुणी—]

जन्म लेकर मरना होता है, जन्म लेकर दुःख देखता है,

बँधा जाता, मारा जाना, कष्ट भुगतना, इसी से जन्म नहीं रुचता है ॥

बुद्ध ने धर्म का उपदेश दिया, जन्म-ग्रहण से छूटने को,

सभी दुःख के ग्रहण के लिये, उन्हीं ने मुझे सच्चा मार्ग दिखाया ॥

जो जीव रूप के फेर में पड़े हैं, जो अरूप के अधिष्ठान में,

निरोध (=निर्वाण) को न जानते हुये, पुनर्जन्म लेने वाले ॥

तब, पापी मार “चाला भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया” समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ७. उपचाला सुत्त (५. ७)

लोक सुलग-धधक रहा है

श्रावस्ती में ।

तब, उपचाला भिक्षुणी दिन के विहार के लिए बैठ गई ।

तब, पापी मार ‘उपचाला भिक्षुणी से यह बोला — भिक्षुणि ! तुम कहाँ उत्पन्न होना चाहती है ?

आवुस ! मैं कहाँ भी उत्पन्न होना नहीं चाहती ।

[मार—]

अश्वत्थि, और याम, और तुपित (नामक देव-लोक के) देवता,

निर्माणरति लोक के देवता, वशवर्ती लोक के देवता हैं,

वहाँ चित्त लगाओ, उसका सुख अनुभव कर सकोगी ॥

[उपचाला भिक्षुणी—]

अश्वत्थि, और याम, और तुपित लोक के देवता,

निर्माणरति लोक के देवता, वशवर्ती लोक के जो देवता

वे सभी काम के बन्धन से बँधे हैं, फिर भी मार के वश में आते हैं ॥

सारा लोक सुलग रहा है, सारा लोक धधक रहा है,

सारा लोक लहर रहा है, सारा लोक काँप रहा है ॥

जो कम्पित नहीं होता, जो चलायमान नहीं है,

ससारी लोगों की जहाँ पहुँच नहीं है,

जहाँ मार की भी गति नहीं होती,

वहाँ मेरा मन लगा है ॥

तब, पापी मार “उपचाला भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया” समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

४८ सीसुपचाला सुप्त (५ ८)

बुद्ध शासन में रुचि

आपस्ती में ।

तब शीर्षोपचाळा मिश्रणी दिन के बिहार के किए बैठ गई ।

तब पापी मार शीर्षोपचाळा मिश्रणी से यह बोला—

मिश्रणि ! तुम्हें कौन सम्प्रदाय रचता है ?

आनुस ! मुझे किसी का भी सम्प्रदाय नहीं रचता है ।

[मार—]

किस किए तार मुझा किया है ? मिश्रणी-सा माधम हो रही हो

कोई सम्प्रदाय तुम्हें नहीं रचता; क्या मरकती फिरती है ?

[शीर्षोपचाळा मिश्रणी—]

(धर्म से) बाहर रहने वाले सम्प्रदाय के होते हैं,

आत्म-रहित में जिनकी मर्यादा होती है,

उनके मत मुझे स्वीकार नहीं हैं

वे धर्म के आगने वाले नहीं हैं ॥

शाक्य-कुल में अवतार किये हैं

बुद्ध जिनकी बराबरी का कोई पुरुष नहीं

सर्व-विजयी मार जित,

जो कहीं भी पराजित नहीं होते

सर्वथा सुख, पूर्ण स्वतन्त्र

परम ज्ञानी सब कुछ जानते हैं

सभी कर्मों के फल को प्राप्त

अपानियों के क्षय हो जाने से मिश्रण;

बही भगवान् मेरे पुरुष हैं

उनहीं का शासन मुझे दखता है ॥

तब पापी मार 'शीर्षोपचाळा मिश्रणी ने मुझे पहचान किया' समझ हुआ और फिर जो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

४९ सेला सुप्त (५ ९)

इस से बन्धन और निरोध

आपस्ती में ।

तब सेला मिश्रणी— दिन के बिहार के किये बैठ गई ।

तब पापी मार सेला मिश्रणी को बरा हैम की हृष्ट से गाथा में बोला—

किये इस पुनके को कहा किया पुनके को सिरजने बाध्य कौन है ?

कहीं से यह पुनका पैदा हुआ कहीं इस पुनके का निरीब हो जाता है ?

तब सेला मिश्रणी ने "यह पापी मार है" भाव गाथा में उत्तर दिया—

न तो यह पुनका स्वर्ण गया हो गया है

न तो इस अन्ध-ज को बुझा किया ने ज्ञान दिया है

हेतु के होने से हो गया है

हेतु के दह जाने से दह जगता (निरीब हो जाता) है ॥

जैसे किसी बीज को,
 खेत में रोप देने से पंथा उग आता है,
 पृथ्वी का रस, ओर तरी, दोनों को पाकर,
 वैसे ही, स्कन्ध, धातु ओर छ. आयतनों के,
 हेतु के होने से हो गया है,
 उस हेतु के रुक जाने से निरोध हो जाता है ॥

तब पापी मार “शैला भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया” समझ, दुःखित और खिन्न होकर वही
 अन्तर्धान हो गया ।

§ १०. वजिरा सुत्त (५. १०)

आत्मा का अभाव

श्रावस्ती में ।

तब वज्रा भिक्षुणी सुबह में पहन और पात्र चीवर ले श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिये पैठी ।

भिक्षाटन से लौट, भोजन कर चुकने के बाद जहाँ अन्धवन है, वहाँ दिन के विहार के लिये
 चली गई । अन्धवन में पैठ, एक वृक्ष के नीचे दिन के विहार के लिये बैठ गई ।

तब पापी मार वज्रा भिक्षुणी को ढरा, कँपा और रोगटे खड़े कर देने, तथा समाधि से गिरा देने
 की इच्छा से जहाँ वज्रा भिक्षुणी थी वहाँ आया । आकर वज्रा भिक्षुणी से गाथा में बोला —

किसने इस प्राणी को बनाया है, प्राणी का बनाने वाला कहाँ है ?

कहाँ से प्राणी पैदा हो जाता है, कहाँ प्राणी का निरोध हो जाता है ?

तब वज्रा भिक्षुणी के मन में यह हुआ—कौन यह मनुष्य या अमनुष्य गाथा में बोल रहा है ?

तब वज्रा भिक्षुणी के मन में यह हुआ—यह पापी मार मुझे ढरा, कँपा और रोगटे खड़े कर देने,
 तथा समाधि से गिरा देने की इच्छा से गाथा में बोल रहा है ।

तब वज्रा भिक्षुणी ने “यह पापी मार है” जान, गाथा में उत्तर दिया —

“प्राणी” क्या बोल रहे हो,

मार ! तुम मिथ्या आत्म-दृष्टि में पड़े हो,

यह तो केवल सस्कारों का पुञ्ज भर है,

“प्राणी” † यथार्थ में कोई नहीं है ॥

जैसे अवयवों को मिला देने से,

“रथ” ऐसा शब्द जाना जाता है,

वैसे ही, (पाँच) स्कन्धों के मिलने से,

कोई ‘प्राणी’ समझ लिया जाता है ॥

दुःख ही उत्पन्न होता है,

दुःख ही रहता है, और चला जाता है,

दुःख को छोड़ और कुछ नहीं पैदा होता है,

दुःख को छोड़ और किसी का निरोध भी नहीं होता है ॥

तब पापी मार “वज्रा भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया” समझ वही अन्तर्धान हो गया ।

भिक्षुणी-संयुक्त समाप्त

छठाँ परिच्छेद

६ ब्रह्म-सयुत

पहला भाग

प्रथम वर्ग

§ १ आयाचन सुच (६ १ १)

पेसा मीने सुता ।

एक समय भगवान् उदयेला में सभी तुरत ही बुद्धत्व प्राप्त कर मेरुज्जरा नदी के तीर पर धाज पाल विप्रोप के नीचे बिहार करते थे ।

तब एकान्त में व्याप करते भगवान् के मन में यह चिन्त उठा— 'मीने गम्भीर दुर्बलता पुर जोष प्राप्त उत्तम तर्क से अप्राप्य विपुल तथा परिश्रमों द्वारा जाबने योग्य इस धर्म को पा किया । यह जनता काम-लूप्ता में रमण करने वाली काम-रत काम में प्रसन्न है । काम में रमण करने वाली इस जनता के किये वह जो धर्म-आरण करी प्रतीत समुत्पन्न है वह दुर्बलता ही है । और वह भी दुर्बलता ही है जो कि यह सभी संस्कारों का समग्र सभी उपाधियों से मुक्ति, लूप्ता-शून्य विराग विरोध (बुद्ध-विरोध) बाधा निर्माण । यदि मैं धर्मोपदेश भी करूँ और दूसरे उसको न समझ पायें तो मेरे किये यह तरबुद्ध और एककीक ही होगी ।'

उसी समय भगवान् को पहले कभी न सुनी यह बहुसुत गाथाएँ सुन पड़ीं—

‘वह धर्म पाया कह स इसका न सुक सकाजाना ।

नहि राग-द्वेष-प्रक्षिप्त को है सुकर इसका व्यापना ॥

गंभीर उष्णी धारबुद्ध दुर्बलता सुखम प्रतीत का ।

तम-सुख-आहित रागरत द्वारा न संभव वेदना ॥’

भगवान् के ऐसा समझने के कारण उदय चित्त धर्म प्रचार की और न सुककर कल्प-उत्सुकता की और सुक गया । तब सहस्रपति-ब्रह्मा ने भगवान् के चित्त की बात को जाबकर प्रत्यक्ष किया— ‘कौन बाधा हो व्यापण है । जब तथागत नहिन् सम्यक संबुद्ध का चित्त धर्म-प्रचार की और न सुक कल्प उत्सुकता (अव्यसनीकता) की और सुक जाये ।’

(पेसा व्याप कर) सहस्रपति-ब्रह्मा उसे बलवान् पुरष (विना परिश्रम) कही बौद्ध को समेट ले और समेटे बौद्ध को पैदा है ऐसे ही ब्रह्मलोक से अन्तर्धान हो भगवान् के सामने प्रगट हुआ । फिर सहस्रपति-ब्रह्मा ने उपरान्त (अपरा) एक कल्पे पर करक आदिने जातु को दृष्टी पर रत विपार भगवान् के कथन दाब ओष भगवान् स कहा— ‘मन्ते ! भगवान् धर्मोपदेश करें । सुगत ! धर्मोपदेश करें ।’ अथ मन्त्र बाधे भी प्रतीति है, धर्म न सुकने स वह नष्ट हो जायेंगे । उपदेश करें धर्म की सुनने बाधे भी होयेंगे । सहस्रपति-ब्रह्मा ने वह कहा और वह कहकर यह भी कहा—

भगव मैं सक्रिय पितृवादी से चिन्तित

वहके नष्ट धर्म पैदा हुआ ।

(अव) अमृत का द्वार खुला गया,
 विमल (पुरुष) से जाने गये इस धर्म को सुनें ॥
 जैसे शैल पर्वत के शिखर पर खड़ा (पुरुष),
 चारों ओर जनता को देखे ।
 उसी तरह, हे सुमेध ! हे सर्वत्र नेत्र वाले !
 धर्म-रूपी महल पर चढ़ सब जनता को देखो ॥
 हे शोक रहित ! शोकाकुल जन्मजरा से पीड़ित जनता को देखो,
 उठो वीर ! हे संग्रामजित् ! हे सार्थवाह ! उक्लण-क्लण !
 जग में विचरो, धर्म-प्रचार करो,
 भगवन् ! जानने वाले भी मिलेंगे ॥

तब भगवान् ने ब्रह्मा के अभिप्राय को जानकर, और प्राणियों पर दया करके, बुद्ध-नेत्र से लोक का अवलोकन किया । बुद्ध-नेत्र से लोक को देखते हुये भगवान् ने जीवों को देखा, उनमें कितने ही अल्प-मल, तीक्ष्ण-बुद्धि, सुन्दर स्वभाव, शीघ्र समझने योग्य प्राणियों को भी देखा । उनमें कोई कोई परलोक और पाप से भय करते, विहार रहे थे । जैसे उत्पलिनी, पद्मिनी या पुढरीकिनी में से कितने ही उत्पल, पद्म या पुढरीक उदक में पैदा हुये, उदक में बड़े, उदक से ग्राह्य न निकल (उदक के) भीतर ही डूबे पोषित होते हैं । कोई कोई उत्पल (=नीलकमल), पद्म (=रक्तकमल), या पुढरीक (=श्वेतकमल) उदक में उत्पन्न, उदक में बड़े (भी) उदक के बराबर ही खड़े होते हैं । कोई कोई उत्पल उदक से बहुत ऊपर निकल कर, उदक से अलिप्त (हो) खड़े होते हैं । इसी तरह भगवान् ने बुद्ध-चक्षु से लोक को देखा—अल्पमल, तीक्ष्ण-बुद्धि, सुस्वभाव, सुबोध्य प्राणियों को देखा जो परलोक तथा पाप से भय खाते विहार कर रहे थे । देख कर सहस्रपति ब्रह्मा से गाथा में कहा—

उनके लिये अमृत का द्वार खुल गया,
 जो कानवाले हैं, वे (उसे सुनने के लिए) श्रद्धा छोड़ें,
 हे ब्रह्मा ! पीड़ा का ख्याल कर,
 मैंने मनुष्यों में निपुण, उत्तम, धर्म को नहीं कहा ॥

तब ब्रह्मा-सहस्रपति—“भगवान् ने धर्मोपदेश के लिये मेरी बात मान ली”—यह जान भगवान् को अभिवादन और प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ २. गारव सुत्त (६ १. २)

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् अभी तुरत ही बुद्धत्व लाभ कर उरुवेला में नेरञ्जरा नदी के तीर पर अजपाल निग्रोध के नीचे विहार करते थे ।

तब एकान्त में ध्यान करते भगवान् के चित्त में ऐसा वितर्क उठा—यिना किसी को ज्येष्ठ माने और उसके प्रति गौरव रखते विहार करना दुःख है । मैं किस श्रमण या ब्राह्मण को ज्येष्ठ मान, उसका सत्कार और गौरव करते विहार करूँ ?

तब भगवान् के मन में यह हुआ—अपरिपूर्ण शील की पूर्ति के लिये ही किसी दूसरे श्रमण या ब्राह्मण को ज्येष्ठ मान उसका सत्कार और गौरव करते विहार करना चाहिये । किन्तु, मैं—देवताओं के साथ, मार के साथ, ब्रह्मा के साथ, इस सम्पूर्ण लोक में, तथा श्रमण ब्राह्मण देव और मनुष्यवाली

१ श्रद्धा छोड़ें = कान दे = श्रद्धापूर्वक सुने ।

इस प्रश्न में—अपने जैसा किसी दूसरे भ्रमण या माहण को शीकसम्पन्न नहीं देखता हूँ, जिसे अपना ज्येष्ठ नाम उसे सत्कार और गौरव करूँ।

अपरिपूर्ण समाधि की पूर्ति के लिये ही किसी दूसरे भ्रमण या माहण को ज्येष्ठ नाम उसका सत्कार और गौरव करते बिहार करना चाहिये। ।

अपरिपूर्ण प्रज्ञा की पूर्ति के लिये ही ।

अपरिपूर्ण विमुक्ति की पूर्ति के लिये ही ।

अपरिपूर्ण विमुक्ति ज्ञान-दर्शन के सिध ही किसी दूसरे भ्रमण या माहण को ज्येष्ठ नामकर उसका सत्कार और गौरव करते बिहार करना चाहिये। किन्तु मैं अपने जैसा किसी दूसरे भ्रमण या माहण को विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन से सम्पन्न नहीं दृष्टता हूँ जिसे अपना ज्येष्ठ नाम उसे सत्कार और गौरव करूँ।

तो अच्छा हो कि मैं अपने समुद्र धर्म को ही ज्येष्ठ नाम उसे सत्कार और गौरव करते बिहार करूँ।

तब सहाय्यति प्रज्ञा भगवान् के बितर्क को अपने चित्त से ज्ञान जैसे—बर्फवायु पुरुष समीची बौद्ध को पसार दे और पसारी बौद्ध को समेट ले बैस ही—प्रज्ञा लोक में अन्तर्धान हो भगवान् के सामने प्रगट हुआ।

तब सहाय्यति प्रज्ञा उपरमी को एक पन्थे पर सम्माज भगवान् की ओर हाथ जोड़कर यह बोला—

भगवान् ! पत्नी ही बात है। भगवान् ! पत्नी ही बात है। मन्ते ! पूर्ण दुग को जो अर्हत् सम्पन्न समुद्र हो गये हैं वे भगवान् की धर्म को ही ज्येष्ठ नाम उसे सत्कार और गौरव करते बिहार किया करते थे। मन्ते ! मणिप्य काफ में जो अर्हत् सम्पन्न समुद्र हागे वे भगवान् की धर्म को ही । इस समय, अर्हत् सम्पन्न समुद्र भगवान् की धर्म का ही ज्येष्ठ नाम उसे सत्कार और गौरव करते बिहार करें।

सहाय्यति प्रज्ञा ने यह कहा। यह कहकर फिर वह भी कहा—

मृतकाक में समुद्र को हो गये अनागत में जो कुछ होंगे
और जो अभी समुद्र हैं बहूतों के सोऊ बसामेबाके ।
समी धर्म के प्रति गौरव-शील हो बिहार करते थे और करत हैं
जैसे ही बिहार करेंगे भी तुम्हों की पही आज है ।
इसलिये परमार्थ की कसना करनेबाके
और महरब की आकांक्षा रखनेबाके को
सहर्ष का गौरव करना चाहिये
तुम्हों के उपदेश को स्मरण करतें हुए ॥

३ ३ प्रज्ञादेय सुत्त (६ १ ३)

आहुति प्रज्ञा को नहीं मिसती

जैसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् आयस्ती में समाधायिपिटका के अनुष्ठान धराम में बिहार करत थे ।

उस समय किसी माहणी का द्रष्टव्य नामक एक पुत्र भगवान् के पास घर से बेबर हो प्रमत्त हो गया था ।

तब आहुत्या द्रष्टव्य ने अशेष पणाल में अधमल आतापी (अग्नेयों की उपनिषत्ता) और प्रतिताम हा बिहार करत प्रज्ञादेय के उस अनुष्ठान धराम धर्म को देखते ही देखते स्वयं काव और

साक्षात् कर लिया जिसके लिये कुलपुत्र सम्यक् घर से वेधर हो प्रव्रजित हो जाते हैं। “जाति क्षीण । गई, ब्रह्मचर्य-वास सफल हो गया, जो करना था सो कर लिया गया, अब वाद के लिये कुछ नहीं रहा जान लिया । आयुष्मान् ब्रह्मदेव अर्हंतों में एक हुये ।

तब, आयुष्मान् ब्रह्मदेव सुबह में पहन और पात्रचीवर ले श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिये पैटे श्रावस्ती में बिना कोई घर छोड़े भिक्षाटन करते जहाँ अपनी माता का घर था वहाँ पहुँचे ।

उस समय, आयुष्मान् ब्रह्मदेव की माता ब्राह्मणी प्रतिदिन ब्रह्मा को आहुति दे रही थी ।

तब, सहस्रपति ब्रह्मा के मन में यह हुआ—यह आयुष्मान् ब्रह्मदेव की माता ब्राह्मणी प्रतिदिन ब्रह्मा को आहुति दे रही है । तो, मैं चलकर उसे सबेरा उत्पन्न कर दूँ ।

तब, सहस्रपति ब्रह्मा—जैसे कोई चलवान् पुरुष समेटी बाँह को पसार दे और पसारी बाँह व समेट ले वैसे ही—ब्रह्मलोक में अन्तर्धान हो आयुष्मान् ब्रह्मदेव की माता के घर के सामने प्रगट हुआ

तब, सहस्रपति ब्रह्मा आकाश में खड़ा हो, आयुष्मान् ब्रह्मदेव की माता ब्राह्मणी से गाथाओं में बोला—

हे ब्राह्मणि ! यहाँ से ब्रह्मलोक दूर है,
जिमके लिये प्रतिदिन आहुति दे रही हो,
हे ब्राह्मणि ! ब्रह्मा का तो यह भोजन भी नहीं है,
ब्रह्म-मार्ग को बिना जाने क्यों भटक रही है ॥
हे ब्राह्मणि ! यह तुम्हारा (पुत्र) ब्रह्मदेव,
उपाधियों से मुक्त, देवताओं से भी वदा-चदा,
अपनापन छूटा, भिक्षु, जो किसी दूसरे को नहीं पोसता,
तुम्हारे घर भिक्षा के लिये आया है ॥
सत्कार के योग्य, दुःख-मुक्त, भावितात्मा,
मनुष्य और देवताओं का पूजा-पात्र,
पापों को हटा, ससार से जो लिप्त नहीं होता,
शान्त हो भिक्षाटन कर रहा है ॥
न उसके कुछ पीछे है, और न कुछ आगे,
शान्त, बुद्धि हुआ, उत्पात-रहित, इच्छा-रहित,
रागी और वीतराग सभी के प्रति जिसने दण्ड त्याग दिया है,
वही तुम्हारी आहुति अन्न-पिण्ड को भोग लगावे ॥
क्लेश-रहित, जिसका चित्त ठढ़ा हो गया है,
दान्त नाग जैसा स्थिरता से चलनेवाला,
भिक्षु, सुशील, सुधिसुक्त चित्त,
वही तुम्हारी आहुति अन्न-पिण्ड को भोग लगावे ॥
उसी के प्रति भटल श्रद्धा से,
दक्षिणा-पात्र के प्रति दक्षिणा का दान कर,
भविष्य में सुख देनेवाला पुण्य कर,
हे ब्राह्मणि ! धारा पार किये मुनि को देखकर ॥

x

x

x

उम्मी क प्रति अछ भइ से
 ब्राह्मणी बे बक्षिष पाप के प्रति दक्षिणा क दान किया ।
 भविष्य में सुख देनेवाला पुण्य किया
 मगसागर पार किये मुनि को देखकर ।

§ ४ चक्रवर्त्तु मुनि (६ १ ४)

चक्र वृत्ता का मान-मर्दन

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् ब्राह्मस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतथन आराम में बिहार करते थे ।

उस समय चक्र वृत्ता को ऐसी पाप-पछि उत्पन्न हुई थी—यह मित्त है यह भुव है यह साक्षवत है यह अण्डण्ड है यह दृढेवाका नहीं है यही (अण्डकोक में बना रहता) न पैदा होता है न पुराना होता है न समाप्त होता है न यहाँ से सरकर कहीं दूसरी जगह जन्म ग्रहण करता है और इससे बढ़कर दूसरी मुक्ति भी नहीं है ।

तब भगवान् चक्र वृत्ता के मन की बात को अपने चित्त से जान—जैसे कोई ब्रह्मचान् पुण्य समेटी बाँह को पमार दे और पसारी बाँह को समर के जैसे ही—अतबन में अन्तर्धान हो वस्तु अण्डकोक में प्रगट हुये ।

चक्र वृत्ता ने भगवान् को दूर से ही आते देखा । देखकर भगवान् को यह कहा—

मारिप ! पधारें । मारिप ! आपका स्वागत हो । मारिप ! चिरकाल पर यहाँ पधारने की कृपा की है । मारिप ! यह निरव है और इससे बढ़कर दूसरी मुक्ति भी नहीं है ।

उसके ऐसा कहने पर भगवान् ने चक्र वृत्ता को यह कहा—

साक है चक्र वृत्ता जन्मिया में पड़ गये हैं । सोक है चक्र वृत्ता जन्मिया में पड़ गये हैं । वे अनित्य रहते हुये भी उस मित्त कह रहे हैं; अनभुव रहते हुये भी उसे भुव कह रहे हैं; असाक्षवत रहते हुये भी उस साक्षवत कह रहे हैं; अण्डवाका होते हुये भी उसे अण्डक कह रहे हैं; दृढेवाका होते हुये भी उसे नहीं दृढेवाका कह रहे हैं; यहाँ पैदा होता है उसे कह रहे हैं यहाँ पैदा नहीं होता । इससे बढ़कर भी सार्त्त मुक्ति (विर्वाण) के होते हुये कह रहे हैं कि इससे बढ़कर दूसरी मुक्ति नहीं है ।

हे गीतम ! हम बहत्तर (महा) अपने पुण्य-कर्म से

बड़े जन्मभरवाके अतिवरा से छूटे हैं

अण्डकोक में उत्पन्न होना ही दुःखों से अन्तिम मुक्ति है;

हमें ही लोग (ईश्वर कटी विमर्ता आदि नामों सेल) पुकारत हैं ।

[भगवान्—]

दे चक्र ! इसकी आयु भी बोधी ही है छम्पी नहीं

जिस आयु को तुम छम्पी समझ रहे हो ।

मैकफों हमारों और करोफों बर्ब की

दे महा ! तुम्हारी आयु को मैं जानता हूँ न

मैं जन्मवृत्ती भगवान् हैं,

अति जरा और शोक स मैं ऊपर उठ गया हूँ ।

[वक्क ब्रह्मा—]

मेरा पहला शील और व्रत क्या था ?
आप कहें कि मैं जानूँ ॥

[भगवान्—]

जो तुमने बहुत मनुष्यों को पानी पिलाया था,
जो घाम में रोड़ाये प्यासे ये,
यही पहले का तुम्हारा शील-व्रत था,
सोकर जागे के ऐसा मुझे याद है ॥
जो गंगा के किनारे धार में पड़कर,
वह जाते पुरुष को तुमने वचा दिया था,
यही पहले का तुम्हारा शील-व्रत था;
सोकर जागे के ऐसा मुझे याद है ॥
गंगा की धार में ले जायी जाती नाव को,
मनुष्य की लालच से, बड़े सर्प-राज के द्वारा,
बड़ा बल लगाकर छुड़ा दिया था,
यही पहले का तुम्हारा शील-व्रत था,
सोकर जागे के ऐसा मुझे याद है ॥
मैं कण्व नाम का तुम्हारा शिष्य था,
उसे बड़ा बुद्धिमान् समझा,
यही पहले का तुम्हारा शील-व्रत था,
सोकर जागे के ऐसा मुझे याद है ॥

[वक्क ब्रह्मा—]

अरे ! आप मेरी इस आयु को जानते हैं,
वैसे ही बुद्ध अन्य बातों को भी जानते हैं,
सो यह आप का देदीप्यमान तेज,
ब्रह्मलोक को प्रकाश से भर दे रहा है ॥

§ ५. अपरादिष्टि सुत्त (६ १ ५)

ब्रह्मा की बुरी दृष्टि का नाश

श्रावस्ती में ।

उस समय किसी ब्रह्मा को ऐसी पाप-दृष्टि उत्पन्न हो गई थी—कोई ऐसा श्रमण या ब्राह्मण नहीं है जो यहाँ आ सके ।

तब, भगवान् [पूर्ववत्] उस ब्रह्मलोक में प्रगट हुये ।

तब भगवान् उस ब्रह्मा के ऊपर आकाश में बलती आग जैसे पालथी लगाकर बैठ गये ।

तब, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन के मन में यह हुआ—भगवान् इस समय कहाँ विहार करते हैं ?

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने अपने अलौकिक विशुद्ध दिव्य-चक्षु से भगवान् को उस ब्रह्मा के ऊपर आकाश में बलती आग जैसे पालथी लगाकर बैठे देखा । देखकर, जेतवन में अन्तर्धान हो ब्रह्मलोक में प्रगट हुये ।

तत्र आयुष्मान् महासाहस्यश्च तस्य प्रज्ञा क ऊपर आकाश में बहती भाग जमे पालपी लगा कर
पूरव की ओर भगवान् से कुछ नीचे बैठ गये ।

तत्र आयुष्मान् महासाहस्यश्च क मन्त्र में यह हुआ—भगवान् इस समय कहाँ विहार करते हैं ?

[पूरवर्ण] तत्र आयुष्मान् महासाहस्यश्च दक्षिण की ओर भगवान् से कुछ नीचे बैठ गये ।

[पूरवर्ण] तत्र आयुष्मान् महासाहस्यश्च पच्छिम की ओर भगवान् से कुछ नीचे बैठ गये ।

तत्र आयुष्मान् अनुगच्छ उत्तर की ओर भगवान् से कुछ नीचे बैठ गये ।

तत्र आयुष्मान् महासाहस्यश्च तस्य प्रज्ञा से गाथा में बोले—

आयुम ! आज भी तुम्हारी पत्नी धारणा है

जो झूठी धारणा पहले थी ?

हय रई हा मयम यो-यरे

दिप्य लोह में हम महातेज का ?

[प्रज्ञा—]

मारिप ! आज मरी वह धारणा बही है जो पहले थी

हय रईा हूँ मयम यो-यरे दिप्य लोह में हम महातेज को ।

प्रज्ञा आज भी यह कम कह सकता हूँ

कि मैं मिय भर साधन हूँ ॥

तत्र भगवान् तस्य प्रज्ञा का संबोधन किया प्रज्ञात्मक में अन्तर्धान हो उत्तयन में प्रगट हुये ।

तत्र तस्य प्रज्ञा ने अपने एक साथी को आमन्त्रित किया—मुनो मारिप ! यहाँ आयुष्मान्
महासाहस्यश्च हैं वहाँ आओ । जाकर आयुष्मान् महासाहस्यश्च से यह कहा—मारिप मीत्रव्यापन !
क्या भगवान् के दूसरे भी धावक ऐसे ही कश्चिमात् और प्रतापी हैं जैसे आप मीत्रव्यापन कावच
कणिक अनुगच्छ ?

“मारिप ! बहुत मरग्य यह वह साथी तस्य प्रज्ञा को उत्तर दे जहाँ आयुष्मान् महासाहस्यश्च
वच से बहाँ गया । जाकर महासाहस्यश्च ने बोला—मारिप साहस्यश्च ! क्या भगवान् के दूसरे भी
धावक ऐसे ही कश्चिमात् और प्रतापी हैं जैसे आप साहस्यश्च कावच कणिक या अनुगच्छ ?

तत्र आयुष्मान् महासाहस्यश्च ने उरी गाथा में उत्तर दिया —

मन्त्र विद्या का ज्ञानमेवासि ज्ञान प्रज्ञा

विद्या की ज्ञाने ज्ञानमेवासि

आज-काल और और

यह क बहुत आश्चर्य है ॥

तत्र वह आयुष्मान् महासाहस्यश्च के वह का अभिव्यक्ति और अनुमान कर जहाँ वह
महासाहस्यश्च का बहाँ गया जाकर तस्य प्रज्ञा ने बोला —

आयुष्मान् महासाहस्यश्च ने कहा कि—

मन्त्र विद्या का ज्ञानमेवासि ज्ञान प्रज्ञा

विद्या की ज्ञाने ज्ञानमेवासि

आज-काल और और

यह क बहुत आश्चर्य है ॥

तस्य वह वह । मन्त्र होकर प्रज्ञा ने उगड़े करे का अभिव्यक्ति दिया ।

§ ६. पमाद सुत्त (६. १. ६)

ब्रह्मा को संविग्न करना

श्रावस्ती में ।

उस समय भगवान् दिन के विहार के लिये ध्यान लगाये बैठे थे ।

तब, सुब्रह्मा और शुद्धावास नाम के दो प्रत्येक ब्रह्मा जहाँ भगवान् थे वहाँ आये । आकर एक-एक किवाड़ से लग चढ़े हो गये ।

तब, सुब्रह्मा प्रत्येक ब्रह्मा ने शुद्धावास प्रत्येक ब्रह्मा को यह कहा—मारिप ! भगवान् मे मत्स्यग करने का यह समय नहीं है, भगवान् दिन के विहार के लिये ध्यानस्थ हैं । हाँ, फलाना ब्रह्मलोक बड़ा उत्कृतिशील और गुलजार है । किंतु वहाँ का ब्रह्मा प्रमाद-पूर्ण हो विहार करता है । आओ मारिप ! जहाँ वह ब्रह्मलोक है वहाँ चले । चलकर उस ब्रह्मा को संवेग दिलायें ।

“मारिप ! बहुत अच्छा” कह, शुद्धावास प्रत्येक ब्रह्मा ने सुब्रह्मा प्रत्येक ब्रह्मा को उत्तर दिया ।

तब, वे भगवान् के सामने अन्तर्धान हो उस लोक में प्रगट हुये ।

उस ब्रह्मा ने उन ब्रह्माओं को दूर ही से आते देखा । देख, उन ब्रह्माओं को यह कहा—हे मारिपो ! आप कहाँ से पधार रहे हैं ?

मारिप ! हम लोग उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् के पास से आ रहे हैं । मारिप ! आप भी उन भगवान् की सेवा को चलेंगे ?

ऐसा कहने पर, वह ब्रह्मा उस प्रमाद का अनादर करते हुये, अपने को हजार गुना बड़ा रूप बना सुब्रह्मा प्रत्येक ब्रह्मा से बोला—मारिप ! मेरी क्रद्धि के इस प्रताप को देखते हैं ?

हाँ मारिप ! आप की क्रद्धि के इस प्रताप को देखता हूँ ।

मारिप ! मैं ऐसा क्रद्धिमान् और प्रतापी होते हुये भी किसी दूसरे श्रमण या ब्राह्मण की सेवा को क्यों चलूँ ?

तब, सुब्रह्मा प्रत्येक ब्रह्मा अपने को दो हजार गुना बड़ा रूप बना उस ब्रह्मा से बोला—मारिप ! मेरी क्रद्धि के इस प्रताप को देखते हैं ?

हाँ मारिप ! आपकी क्रद्धि के इस प्रताप को देखता हूँ ।

मारिप ! हम और आप से भगवान् क्रद्धि तथा प्रताप में बहुत बड़े-चढ़े हैं । मारिप ! आप उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् की सेवा को चलेंगे ?

तब, उस ब्रह्मा ने सुब्रह्मा प्रत्येक ब्रह्मा को गाथा में कहा—

तीन (सौ) गरुड़, चार (सौ) हंस,
और पाँच सौ वाधिन से युक्त मुझ ध्यानी का,
हे ब्रह्मा ! यह विमान जलते के समान,
उत्तर दिशा में चमक रहा है ॥

[सुब्रह्मा—]

आपका विमान कैसा भी क्यों न जले,

उत्तर दिशा में चमकते हुये ।

रूप के सदैव विनश्वर स्वभाव को देख,

उस कारण से पण्डित रूप में रमण नहीं करता ॥

तब, सुब्रह्मा प्रत्येक ब्रह्मा और शुद्धावास प्रत्येक ब्रह्मा उस ब्रह्मा को संवेग दिला कहीं अन्तर्धान हो गये ।

वह ब्रह्मा दूसरे समय से उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् की सेवा को गया ।

§ ७ कोकालिक मुच (६ १ ७)

कोकालिक के सम्बन्ध में

आवस्ती में ।

उस समय भगवान् दिन के बिहार के किये व्यासस्थ बैठ थे ।

तब सुप्रह्ला भीर शुद्धाघात नाम के दो प्रत्येक प्रह्ला बहौ भगवान् थे वहाँ आये । जाकर, एक-एक किबाइ से कहा करते हो गये ।

तब सुप्रह्ला प्रत्येक प्रह्ला कोकालिक मित्र की उरस्थ करते भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

किसका बाह नहीं है उसका मखा कौन पण्डितजन बाह जगाने की इच्छा करेगा ।

किसका पार नहीं है उसका पार जगाने की कोशिश करनेवाले को

मैं मूढ़ भीर प्रह्लाजन समझता हूँ ॥

§ ८ तिस्सक मुच (६ १ ८)

तिस्सक के सम्बन्ध में

आवस्ती में ।

उस समय भगवान् दिन के बिहार के किये व्यासस्थ बैठ थे ।

तब सुप्रह्ला भीर शुद्धाघात एक-एक किबाइ से कहा करते हो गये ।

तब सुप्रह्ला प्रत्येक प्रह्ला कस्तमोरक तिस्सक मित्र के विषय में भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

किसका बाह नहीं है मखा कौन बुद्धिमान् उसका बाह जगाना चाहेगा ?

किसका पार नहीं है उसका पार जगाने की कोशिश करनेवाले को

मैं मूढ़ भार प्रह्ला-विहीन समझता हूँ ॥

§ ९ तुवुमहा मुच (६ १ ९)

कोकालिक को समझाना

आवस्ती में ।

तब तुवु प्रत्येक प्रह्ला रात धीमे पर अपनी चमक सँभारे जेतवन को चमकते हुए बहौ कोकालिक मित्र था बहौ आया । जाकर आकाश में पड़ा हो कोकालिक मित्र से बोला—हे कोकालिक ! सारिपुत्र भीर मीरुगन्धायन के प्रति बिच में प्रह्ला जानी । सारिपुत्र भीर मीरुगन्धायन बने लगे मित्र है ।

आहुस ! तुम कीज हो ?

मैं तुवु प्रत्येक प्रह्ला हूँ ।

आहुस ! क्या भगवान् ने तुमकी जन्मागामी होना नहीं बताया था ! तब बहौ कैसे आये ? देखो, तुम्हारा यह किता अवराह है ?

पुरुष के जन्म के साथ ही साथ उसके मुँह में एक कुंठार पैदा होता है ।

उसने अपने ही की कटा करवा है मूर्ख तुरी बातें बोलते हुये ॥

जो जिन्दगी की प्रसंसा करता है

या उसकी निन्दा करता है जो प्रशसा-पात्र है,
 मुँह से वह पाप कमाता है,
 उस पाप के कारण उसे कभी सुख नहीं मिलता ॥
 यह दुर्भाग्य छोटा है,
 जो जूए में अपना धन खो बैठे,
 अपने और अपने सत्र कुछ के साथ .
 सबसे बड़ा दुर्भाग्य तो यह है
 जो बुद्ध के प्रति कोई अपराध लगावे ॥
 सौ, हजार निरर्बुद,
 छत्तिस और पाँच अर्बुद तक,
 आर्य पुरुष की निन्दा करने वाला नरक में पकता है,
 वचन और मन को पाप में लगा ॥

§ १०. कोकालिक सुत्त (६ १. १०)

कोकालिक द्वारा अग्रश्रावकों की निन्दा

श्रावस्ती में ।

तब, कोकालिक भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ कोकालिक भिक्षु ने भगवान् को कहा—भन्ते ! सारिपुत्र और मौद्गल्यायन पापेच्छ हैं, पाप-पूर्ण इच्छाओं के वश में पड़े हैं ।

इस पर भगवान् ने कोकालिक भिक्षु को कहा—ऐसी बात मत कहना कोकालिक ! ऐसी बात मत कहना कोकालिक ! कोकालिक ! सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के प्रति मन में श्रद्धा लाली । सारिपुत्र और मौद्गल्यायन बड़े अच्छे हैं ।

दूसरी बार भी कोकालिक भिक्षु ने भगवान् को कहा—भन्ते ! भगवान् के प्रति मुझे बड़ी श्रद्धा और बड़ा विश्वास है, किन्तु, सारिपुत्र और मौद्गल्यायन पापेच्छ हैं, पाप-पूर्ण इच्छाओं के वश में पड़े हैं । दूसरी बार भी भगवान् ने कोकालिक भिक्षु को कहा— सारिपुत्र और मौद्गल्यायन बड़े अच्छे हैं ।

तीसरी बार भी ।

तब, कोकालिक भिक्षु आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम और प्रदक्षिणा करके चला गया ।

वहाँ से आने के बाद ही, कोकालिक भिक्षु के सारे शरीर में सरसों भर के फोड़े उठ गये ।

सरसों भर के हो भूँग भर के हो गये, मटर भर के हो गये, कोलट्टि भर के हो गये, वैर भर के हो गये, आँवला भर के हो गये, छोटे बेल भर के हो गये, बेल भर के हो गये, बेल भर के हो फूट गये— पीव और लहू की धार चलने लगी ।

उसी से कोकालिक भिक्षु की मृत्यु हो गई । मर कर कोकालिक भिक्षु पद्म नामक नरक में उत्पन्न हुआ—सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के प्रति बुरे भाव मन में लाने के कारण ।

तब, सहस्रपति ब्रह्मा रात बीतने पर अपनी चमक से सारे जेतवन को चमका जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया ।

एक ओर खड़ा हो, सहस्रपति ब्रह्मा ने भगवान् को यह कहा —भन्ते ! कोकालिक भिक्षु की मृत्यु हो गई । भन्ते ! सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के प्रति मन में बुरे भाव लाने के कारण कोकालिक भिक्षु मर कर पद्म नरक में उत्पन्न हुआ है ।

सहस्रपति मन्त्र ने यह कहा । वह कह, भगवान् को अभिवादन और प्रशिक्षण कर वहीं अन्तर्धान हो गया ।

इस रात के बीतने पर भगवान् ने भिक्षुओं का आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! इस रात को सहस्रपति मन्त्र । मुझे अभिवादन और प्रशिक्षण कर वहीं अन्तर्धान हो गया ।

तब किसी भिक्षु ने भगवान् को यह कहा—मन्ते ! पद्म नरक में कितनी छम्बी आसु होती है ?

भिक्षु ! पद्म नरक की आसु बड़ी छम्बी होती है; यह कहा नहीं जा सकता है कि इतने साक या इतने सौ साक या इतने हजार साक या इतने लाख साक ।

मन्ते ! उसकी कोई उपमा की जा सकती है ?

भगवान् बोले—जी जा सकती है ।

भिक्षु ! कोशाल के नाप से बीस लारी तिष्ठ का कोई भार हो । तब कोई पुरुष सौ साक हजार साक पर उसमें से एक-एक तिष्ठ का दाना बिछाक दे । भिक्षु ! तो कोशाल के नाप से बीस लारी तिष्ठ का यह भार इस क्रम से बढ़ी घट कर स्वतन्त्र हो जायगा; उसने से भी एक अद्भुत नरक नहीं होता है । भिक्षु ! बीस अद्भुत नरक का एक निरद्भुत नरक होता है । बीस निरद्भुत नरक का एक अवयव नरक होता है । बीस अवयव नरक का एक अट्ट नरक होता है । बीस अट्ट नरक का एक अद्भुत नरक होता है । बीस अद्भुत नरक का एक कुमुद नरक होता है । बीस कुमुद नरक का एक सौगन्धिक नरक होता है । बीस सौगन्धिक नरक का एक उत्पल नरक होता है । बीस उत्पल नरक का एक पुण्डरीक नरक होता है । बीस पुण्डरीक नरक का एक पद्म नरक होता है ।—हे भिक्षु ! इसी पद्म नरक में कोकास्तिक उत्पल हुआ है ।

भगवान् ने यह कहा । इतना कहकर बुद्ध और भी बोले—

पुरुष के कर्म के साथ ही साथ

उसके मुँह में एक कुत्तर पैदा होता है ।

उससे अपने ही को काट करता है

मूर्ख हरी चारों ओरोंसे डूबे ।

जो भिक्षुभीन की प्रशंसा करता है

या उसकी भिक्षा करता है जो प्रशंसा-पात्र है

मुँह से वह पाप कमाता है;

उस पाप से उसे कभी सुख नहीं मिलता ।

यह दुर्मान्य कर्म है

जो जल में अपना मन डार आन

अपने और अपने सब कुछ के साथ ।

सब से बड़ा दुर्मान्य तो यह है

जो बुद्ध के प्रति कोई अपराध लगावे ।

सौ हजार शिरध्वज,

अधिस और पाँच अर्धुद बक

बाधे पुरुष की भिक्षा करने काका

बचन और मन को पाप में लगा ।

प्रथम वर्ग समाप्त ।

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग (पञ्चक)

१. सनकुमार सुत्त (६ २. १.)

बुद्ध सर्वश्रेष्ठ

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह में सर्पिणी नदी के तीर पर विहार करते थे ।

तब, ब्रह्मा सनत्कुमार रात बीतने पर • । एक ओर खड़ा हो, ब्रह्मा सनत्कुमार ने भगवान् से गाथा में कहा—

मनुष्यों में क्षत्रिय श्रेष्ठ है,
जात-पात के विचार करने वालों के लिये
विद्या और आचरण से सम्पन्न (बुद्ध),
देवता और मनुष्यों में श्रेष्ठ है ॥

ब्रह्मा सनत्कुमार ने यह कहा । बुद्ध भी डममे सम्मत रहे ।

तब, ब्रह्मा सनत्कुमार 'बुद्ध इससे सहमत हैं' जान, भगवान् को अभिवादन और प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ २. देवदत्त सुत्त (६. २. २)

सत्कार से छोटे पुरुष का विनाश

एक समय, भगवान् देवदत्त के तुरत ही जाने के बाद राजगृह के गृच्छकूट पर्वत पर विहार करते थे ।

तब, सहस्रपति ब्रह्मा रात बीतने पर भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया ।

एक ओर खड़ा हो, सहस्रपति ब्रह्मा देवदत्त के विषय में भगवान् के सामने यह गाथा बोला —
केला का अपना फल ही केले के वृक्ष को नष्ट कर देता है,
अपना ही फल वेणु को, और नरकट को भी ।
अपना सत्कार छोटे पुरुष को नष्ट कर देता है,
जैसे खच्चरी को अपना गर्भ ॥

§ ३. अन्धकविन्द सुत्त (६ २. ३)

संघ-वास का महात्म्य

एक समय भगवान् मगध में अन्धकविन्द में विहार करते थे ।

उम समय, भगवान् रात की काली अधियारी में खुले मैदान में बैठे थे । रिमक्षिम पानी भी पड़ रहा था ।

तब, सहस्रपति प्रज्ञा रात धीतने पर भगवान् का अभिवादन कर एक ओर गया हो गया । एक ओर गया हो, सहस्रपति प्रज्ञा भगवान् के सामने यह गाथा बोला:—

पूर, एकान्त स्थान में जात करे ।
 धन्यनों से मुक्त जीवन बितावे,
 यदि यहाँ उत्तम सम न को
 तो संघ में मिल संघत और स्मृतिमान् हांकर रह ।
 धर-धर मिहाराव करते हुए
 संपतेभिन्न प्रानी स्मृतिमान्
 पूर एकान्त स्थान में जात करे
 मय से छुट, निर्भय विमुक्त ॥
 जहाँ भवावत सौं विपु हों
 विजली कड़कती हो मेव गङ्गागङ्गा हो
 कसरी भी बिहारी वाली रात :
 रैन स्थाव में स्थावचित मिष्टु बैठा है ॥
 इसे डीक में मने जाँचों देता है
 कोनों की यह दबक कहावत नहीं है;
 एक ही जगत्पर्य में
 हठार से मूल्य को जीत लिया ॥
 पाँच सौ दीपों से अधिक
 और दस-दस बार सी
 समी छोट-आपस
 तिरस्कीन बोधि में को नहीं यह सकतै ॥
 और जो दूसरे बाकी बचे हैं
 जिन्हें मैं कहा पुण्यबाह् जावता हूँ
 उनकी गिबली भी नहीं कर सकता
 छट कहा जाने के दर से ॥

१४ अरुणवती मुच (६ २ ४)

अमिभू का अरुण-प्रवर्ण

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् आचर्य में विहार करते थे । तब भगवान् ने मिष्टुज को आश्विनित किया—“हे मिष्टुजो ! “सहस्र !” कह कर जग मिष्टुजों ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—मिष्टुजो ! पूर्ण का मैं अरुणवती नाम का एक राक्षस था । अरुणवती राक्षस की राजधानी का नाम अरुणवती था । मिष्टुजो ! अरुणवती राजधानी से को कई सन्ध्या सन्ध्या भगवान् शिकी विहार करते थे ।

मिष्टुजो ! कई सन्ध्या सन्ध्या भगवान् शिकी को अमिभू और सन्ध्या नाम के दो जोड़ आग्र-भावक थे ।

मिष्टुजो ! तब भगवान् शिकी ने अमिभू मिष्टु को आश्विनित किया—आओ आग्र ! यहाँ एक बड़ा कोक है यहाँ कोक जब तक सोकर का समय भी होगा ।

भिक्षुओ ! तब, “भन्ते ! बहुत अच्छा” कह अभिभू भिक्षु ने भगवान् शिखी को उत्तर दिया ।
भिक्षुओ ! तब, भगवान् शिखी और अभिभू भिक्षु...अरुणवती राजधानी में अन्तर्धान हो
ब्रह्मलोक में प्रगट हुये ।

भिक्षुओ ! तब, भगवान् शिखी ने अभिभू भिक्षु को आमन्त्रित किया—हे ब्राह्मण ! इस
ब्रह्मभूमि में ब्रह्मा और ब्रह्मभूमिवासियों को धर्मोपदेश करो ।

भिक्षुओ ! ‘भन्ते, बहुत अच्छा’ कह, अभिभू भिक्षु ने भगवान् शिखी को उत्तर दे, ब्रह्मभूमि
में बैठे ब्रह्मा और ब्रह्मभूमिवासियों को धर्मोपदेश कर दिया दिया, प्रशंसा दिया, उत्तेजित और उत्साहित
कर दिया ।

भिक्षुओ ! किन्तु, ब्रह्मा और ब्रह्मभूमिवासियों चिढ़ गये और बुरा मानने लगे—भला यह कैसी बात
है कि गुरु बुद्ध के उपस्थित रहते एक शिष्य धर्मोपदेश करे ।

भिक्षुओ ! तब, भगवान् शिखी ने अभिभू भिक्षु को आमन्त्रित किया—हे ब्राह्मण ! ब्रह्मा
और ब्रह्मभूमिवासियों चिढ़ गये और बुरा मानने लगे हैं—भला यह कैसी बात है कि गुरु बुद्ध के उपस्थित
रहते एक शिष्य धर्मोपदेश करे । तो इन्हें जरा अच्छी तरह सबेरा दिया दो ।

भिक्षुओ ! ‘भन्ते, बहुत अच्छा’ कह, अभिभू भिक्षु भगवान् शिखी को उत्तर दे, दृश्यमान
शरीर से भी धर्मोपदेश करने लगा, अदृश्यमान शरीर से भी , नीचे के आधे शरीर को दृश्यमान
करने पर भी ‘ऊपर के आधे शरीर को दृश्यमान करने पर भी ’

भिक्षुओ ! तब, ब्रह्मा और ब्रह्मभूमिवासियों सभी आश्चर्य तथा अद्भुत में भर गये—आश्चर्य है,
अद्भुत है ! धम्म के ऋद्धि-बल और प्रताप ॥

तब, अभिभू भिक्षु भगवान् शिखी से बोला—भन्ते ! इस ब्रह्मलोक में रह, जैसे भिक्षु सघ में
कह रहा हूँ वैसे ही कहते हुये हजार लोकों को अपना स्वर सुना सकता हूँ ।

ब्राह्मण ! वस, यही मोका है । वस, यही मोका है कि तुम ब्रह्मलोक में रह हजार लोकों में अपनी
बात सुनाओ ।

भिक्षुओ ! ‘भन्ते, बहुत अच्छा’ कह, अभिभू भिक्षु ने भगवान् शिखी को उत्तर दे ब्रह्मलोक में
खड़े-खड़े इन गायकों को कहा—

उत्साह करो, घर छोड़ कर निकल जाओ,
बुद्ध के शासन में लग जाओ,
मृत्यु की सेना को तितर बितर कर दो,
जैसे हाथी फूस की झोपड़ी को ॥
जो इस धर्म विनय में प्रमाद-रहित हो विहार करेगा,
वह ससार में आवागमन को छोड़ दुःखों का अन्त कर देगा ॥

भिक्षुओ ! तब भगवान् शिखी और अभिभू भिक्षु ब्रह्मा और ब्रह्मभूमिवासियों को सबेरा दिला ।
ब्रह्मलोक में अन्तर्धान हो अरुणवती में प्रगट हुये ।

भिक्षुओ ! तब, भगवान् शिखी ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! ब्रह्मलोक से बोलते
अभिभू भिक्षु की गायकों को तुम ने सुना ?

हाँ भन्ते ! ब्रह्मलोक से बोलते अभिभू भिक्षु की गायकों को हमने सुना ।

भिक्षुओ ! ब्रह्मलोक से बोलते अभिभू भिक्षु की गायकों को जो सुना उन्हें कहो ।

भन्ते ! यह सुना —

उत्साह करो, घर छोड़ कर निकल जाओ,
बुद्ध के शासन में लग जाओ,

मृत्यु की सेवा को तितर बितर कर दो ।

बंस हाथी घूम की सोपनी को ॥

मिथुभो ! ठीक कहा ठीक कहा ! तुमने ब्रह्मलोक से चौकते भस्मिन् मिथु की गाथाओं को ठीक में सुना ।

भगवान् ने यह कहा । संतुष्ट होकर मिथुओं ने भगवान् के कहे का अभिनन्दन किया ।

§ ५ परिनिष्पन्न मुक्त (६ २ ५)

महापरिनिर्वाण

एक समय भगवान् अपने परिनिर्वाण के समय कुशीनारा में मच्छों के सावजन उपवसन में दो शाक वृक्षों के बीच विहार करते थे ।

तब भगवान् ने मिथुओं को आमन्त्रित किया—मिथुभो ! मैं तुम्हें कह रहा हूँ “समी संस्कार नश्वर हैं अग्रम द के नाथ जीवन के कल्प का सम्पादन करो । पही बुद्ध का अन्तिम उपदेश है ।

तब भगवान् प्रथम ध्याय में डीन हो गये । प्रथम ध्याय छोड़कर द्वितीय ध्याय में डीन हो गये । तृतीय चतुर्थ ध्याय में डीन हो गये । चतुर्थ ध्याय छोड़कर, आकाशान्त्यायतन विज्ञानान्त्यायतन आर्किषम्यायतन ईशसंज्ञानासंज्ञायतन में डीन हो गये ।

ईशसंज्ञानासंज्ञायतन छोड़ आर्किषम्यायतन में डीन हो गये । [कमला] द्वितीय ध्याय को छोड़ प्रथम ध्याय में डीन हो गये ।

प्रथम ध्याय छोड़ द्वितीय तृतीय चतुर्थ ध्याय में डीन हो गये । चतुर्थ ध्याय से उठते ही भगवान् परिनिर्वाण की प्राप्ति हो गये ।

भगवान् के परिनिर्वाण की प्राप्ति होते ही सहस्रम्पत्ति महा बह गाथाएँ बोली—

संसार के समी जीव पुत्र न एक समय बिना होंगे ही

किन्तु लोड में जो ऐसे बेचोड़ बुद्ध हैं

तथागत बकप्राप्त, भीर सन्तुष्ट परिनिर्वाण की प्राप्ति हो गये ॥

भगवान् के परिनिर्वाण की प्राप्ति होते ही वैशेन्द्र शब्द बह गया बोला—

समी संस्कार व्यनित्य हैं

उत्पन्न होना भीर पुराना हो जाया अबका स्वभाव है

उत्पन्न होकर निवृद्ध हो जाते हैं

उबका विष्कृष्य शान्त हो जाया ही सुख ह ॥

भगवान् के परिनिर्वाण की प्राप्ति होते ही आयुष्मान् आनन्द यह गाथा बोली—

बह समय बड़ा भीर या रोमाञ्जित कर वैशेन्द्र का

समी प्रकार से ज्येष्ठ बुद्ध के परिनिर्वाण की प्राप्ति होते ॥

भगवान् के परिनिर्वाण की प्राप्ति होते ही आयुष्मान् अनुदण्ड यह गाथा बोली—

उन स्थिर-चित्त का समान किसी का जीवन कारण नहीं या

अचर परम शाश्वत पाने के किन्हे

परम बुद्ध परिनिर्वाण की प्राप्ति हो गये ॥

विचिन्तार चित्त से वेदुवाओं का जन्म कर दिया

ईश्वर प्रदीप्त बुद्ध जाता है

बसे ही उनके चित्त की विमुक्ति हो गई ॥

ब्रह्म-संयुक्त समाप्त ।

सातवाँ परिच्छेद

७. ब्राह्मण-संयुक्त

पहला भाग

अर्हत्-वर्ग

§ १. धनञ्जानि सुक्त (७. १. १)

क्रोध का नाश करे

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे ।

उस समय, किसी भारद्वाज गोत्र के ब्राह्मण की धनञ्जानि नाम की ब्राह्मणी बुद्ध, धर्म और संघ के प्रति बड़ी श्रद्धावती थी ।

तब, धनञ्जानि ब्राह्मणी ने भारद्वाज गोत्र ब्राह्मण के लिये भोजन परोसती हुई आकर तीन बार उदान के शब्द कहे—उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् को नमस्कार हो ।

इस पर, ब्राह्मण ने ब्राह्मणी को कहा—तू ऐसी चण्डालिन औरत है कि जैसे-तेसे मथमुंडे श्रमण के गुण गाती रहती है । रे पापिन् ! तुम्हारे गुरु की मैं बातें बताऊँ ।

ब्राह्मण ! देवताओं के साथ, मार के साथ, ब्रह्मा के साथ इस सारे लोक में, किसी भी श्रमण, ब्राह्मण, देव या मनुष्य, को मैं ऐसा नहीं देखती हूँ जो उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् पर दोष लगा सके । ब्राह्मण ! तुम क्या ? चाहो तो उनके पास जाओ, जाकर देख लो ।

तब, भारद्वाज गोत्र का ब्राह्मण क्रुद्ध और चिढ़ा हुआ जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर भगवान् का सम्मोदन किया । आवभगत और कुशल-क्षेम के प्रश्न पूछकर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ, ब्राह्मण भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

किस का नाश कर सुख से सोता है ?

किस का नाश कर शोक नहीं करता ?

किस एक धर्म का,

वध करना, हे गौतम ! आप को रुचता है ?

[भगवान्—]

क्रोध का नाश कर सुख से सोता है,

क्रोध का नाश कर शोक नहीं करता,

विष के मूल स्वरूप क्रोध का,

हे ब्राह्मण ! जो पहले बड़ा अच्छा लगता है,

वध करना उत्तम पुरुषों से प्रशंसित है,

उसी का नाश करके शोक नहीं करता ॥

भगवान् क ऐसा करने पर माह्वान ने कहा—धन्य हो गीतम ! धन्य हो ! हे गीतम ! जैसे उज्ज्वल का सफ़र दे रङ्गे को उधार दे, मटके को राह बता दे अन्धकार में लेख-प्रदीप जल्य दे कि अँधकारों रूपों को दृष्ट करें, वैसे ही आप गीतम ने अनेक प्रकार से धर्म का उपदेश किया। यह मैं आप गीतम की शरण में जाता हूँ, धर्म की ओर मिश्र-संध की। मैं आप गीतम के पास प्रव्रज्या पाठे उपसम्पदा पाऊँ।

भारद्वाज गोत्र के माह्वान ने भगवान् के पास प्रव्रज्या पाई और उपसम्पदा भी पाई।

उपसम्पदा होने के कुछ ही बाद आपुष्पाम्भु भारद्वाज ने एकान्त में अप्रमत्त आठापी की प्रद्विष्टाण्य हो बिहार करते हुए सीमा ही उस महाशय-पास के अन्तिम एक (अधिराज) को देखते हैं पण्यत जानकर प्राप्त कर लिया जिसके लिए कुछपुत्र महाशयक धर सं बेघर होकर ठीक से प्रमत्त होते हैं। 'जाति क्षीण हो गई, महाशय पास पूरा हो गया जो करना या सो कर दिया गया अब पुनः और आते क लिए बाकी नहीं है —युमा जान लिया।

४२ अककोस सुत्त (७ १ २)

गाळियों का दान

एक समय भगवान् राजगृह के येलु यल कसम्भविवाप से बिहार करते थे।

छोटा मुँह भारद्वाज माह्वान ने सुना कि भारद्वाजगोत्र माह्वान समण गाँतम के पास घर से बेघर हो प्रमत्त हो गया है। कुछ और पिछ हो जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। अन्धकार खोटी-खोटी बातें कहते हुए भगवान् का पत्रकर बताने और गाळियों बते लगा।

उसके ऐसा करने पर भगवान् उस छोटा मुँह भारद्वाज माह्वान से बोले। माह्वान ! क्या तुम्हारे यहाँ कोई योग मुहीय या पणु पाण्यय पटुना आते हैं या नहीं ?

हाँ गीतम ! कभी-कभी मेरे योग मुहीय या पणु-पाण्यय मेरे यहाँ पटुना आते हैं।

माह्वान ! क्या तुम उनके लिये गाने-पीने की चीजें भी तैयार करवाते हो ?

हाँ गीतम ! कभी-कभी उनके लिये गाने-पीने की चीजें भी मैं तैयार करवाता हूँ।

माह्वान ! यदि वे किसी कारण से उन चीजों का उपयोग नहीं कर सकते हैं तो चीजें किसको मिलती हैं ?

गातम ! यदि वे उन चीजों का उपयोग नहीं कर पाते हैं तो वह चीजें मुझ ही को मिलती हैं।

माह्वान ! उगी तरह जो तुम कभी भी खोटी बातें ब कहनेवाले मुझ को खोटी बातें कह रहे हो, कभी भी झूठ नहीं होनेवाले मुझ पर झूठ हो रहे हो, कभी किसी की कुछ अच्छ-बीचा न कहनेवाले मुझ को अच्छ-बीचा कह रहे हो—उन्हीं में स्वीकार नहीं करना। तो माह्वान ! यह बातें तुम ही को मिल रही हैं, तुम ही का मिल रही हैं।

माह्वान ! जो खोटी बातें कहनेवाले को खोटी बातें कहता है वह इन्कारों पर झूठ होता है। अच्छ-बीचा कहनेवाले को अच्छ-बीचा कहता है—यह अन्धकार का गिनना-विगना कहा जाता है। मैं तुम्हारे साथ अन्धकार का गिनना-विगना नहीं करता। तुम्हारे दिव का मैं उपयोग ही नहीं करता। तो माह्वान ! वह कर्म तुम ही को मिल रही हैं तुम ही की मिल रही हैं।

अब गीतम को तो राजा की मर्यादा मर्यादा है—अन्धकार खोटी बातें हैं। अब आप गीतम होते जो बर पाठने हैं।

[भगवान्—]

अब दिव को जो बर पाठने (हो) को अच्छ-बीचा न आप में रहे हैं

एक बार जहाँ विगुण और विवश विष विगुण सत्य हो गया है।

उससे उसी की बुराई होती है, जो बदले पर क्रोध करता है,
 क्रुद्ध के प्रति क्रोध नहीं करनेवाला, अजेय संग्राम जीत लेता है ॥
 दोनों को लाभ पहुँचाता है, अपने को भी और दूसरे को भी,
 दूसरे को गुस्साया जान जो सावधान होकर शान्त रहता है ॥
 दोनों की इलाज करनेवाले उसे, अपनी भी और दूसरे की भी,
 लोग 'वैवकूफ' समझते हैं, जिन्हें धर्म का कुछ ज्ञान नहीं ॥

इतना कहने पर, खोटा मुँह भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से बोला—धन्य है आप गौतम !
 धन्य हैं !

.. [पूर्ववत्] । आयुष्मान् भारद्वाज अर्हता में एक हुये ।

§ ३. असुरिन्द सुत्त (७. १. ३)

सह लेना उत्तम है

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे ।

असुरेन्द्रक-भारद्वाज ब्राह्मण ने सुना—भारद्वाज-गोत्र ब्राह्मण श्रमण गौतम के पास घर से
 बेघर हो प्रव्रजित हो गया है । क्रुद्ध और पित्र होकर वह जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर, खोटी-खोटी
 बातें कहते हुये भगवान् को फटकार बताने और गालियाँ देने लगा ।

उसके ऐसा कहने पर भगवान् चुप रहे ।

तब, असुरेन्द्रक भारद्वाज ब्राह्मण बोल उठा—श्रमण ! तुम्हारी जीत हो गई ॥ तुम्हारी जीत
 हो गई ॥

[भगवान्—]

मूर्ख अपनी जीत समझ लेता है, मुँह से कठोर बातें कहते हुये,
 जीत तो उसी की होती है जो ज्ञानी चुपचाप सह लेता है ॥
 उससे उसी की बुराई होती है जो बदले में क्रोध करता है,
 क्रुद्ध के प्रति क्रोध नहीं करनेवाला अजेय संग्राम जीत लेता है ॥
 दोनों को लाभ पहुँचाता है, अपने को भी और दूसरे को भी,
 दूसरे को गुस्साया जान जो सावधान होकर शान्त रहता है ॥
 दोनों की इलाज करने वाले उसे, अपनी भी और दूसरे की भी,
 लोग "वैवकूफ" समझते हैं, जिन्हें धर्म का कुछ ज्ञान नहीं ॥

भगवान् के ऐसा कहने पर असुरेन्द्रक-भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से बोला—धन्य हैं आप
 गौतम ! धन्य हैं ॥

[पूर्ववत्] । आयुष्मान् भारद्वाज अर्हता में एक हुये ।

§ ४. विलङ्गिक सुत्त (७. १. ४)

निर्दोषी को दोष नहीं लगता

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे ।

विलङ्गिक-भारद्वाज ब्राह्मण ने सुना—भारद्वाज गोत्र ब्राह्मण श्रमण गौतम के पास घर से
 बेघर हो प्रव्रजित हो गया है ।

कुछ भीर सिद्ध होकर वहाँ भगवान् ये वहाँ आया । आकर शुपचाप एक ओर लड़ा हो गया ।
तब भगवान् विष्णुकिन्-भारद्वाज के बितर्क को अपने चित्त से ज्ञात उसे गायत्र में बोले—

चित्तमें कुछ सुराई नहीं है
जो कुछ भीर पाप से रहित है
वस पुण्य की जो सुराई करता है;
वह सुराई जसी सूर्य पर कीट पकती है
उछली हवा लेंकी गई जैसे पतली पूछ ॥

[पूर्ववत्] । आमुष्मान् मारद्वाज अर्हतों में एक हुये ।

§ ५ अहिंसक मुण्य (७ १ ५)

अहिंसक फौज !

आयस्ती में ।

तब अहिंसक भारद्वाज माछण वहाँ भगवान् ये वहाँ आया । आकर भगवान् का सम्मोदन किया, आबभगत और कुसल-धम के प्रश्न पूछने के बाद एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ अहिंसक भारद्वाज माछण भगवान् से बोला—हे गौतम ! मैं अहिंसक हूँ ।
हे गौतम ! मैं अहिंसक हूँ ।

[भगवान्—]

जैसा नाम है वैसा ही होबो तुम सब में अहिंसक ही होबो
जो शरीर से बचन से भीर सब से हिंसा नहीं करता
वही सब में अहिंसक होता है जो पराये को कमी नहीं सताता ॥

भगवान् के ऐसा कहने पर अहिंसक भारद्वाज माछण भगवान् से बोला—कल्प है आप गौतम !
धम्म है ।

आमुष्मान् मारद्वाज अर्हतों में एक हुये ।

§ ६ जटा मुण्य (७ १ ६)

जटा को सुझसाने वाला

आयस्ती में ।

तब जटा भारद्वाज माछण वहाँ भगवान् ये वहाँ आया । आकर भगवान् का सम्मोदन किया,
आबभगत और कुसल-धम के प्रश्न पूछने के बाद एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ, जटा भारद्वाज माछण भगवान् से पाणा में बोला—
भीतर में जटा है बाहर में भी जटा छगी है
जटा में सारे प्राली उकसे हुये हैं
तो मैं आप गौतम से पूछता हूँ,
कौन मरता इस जटा को सुरक्षा सजता है ?

[भगवान्—]

महापाद् वर लीज पर प्रतिष्ठित हो
चित्त भीर मर्या की आश्रय करते हुये,

छे शों को तपानेवाला बुद्धिमान् भिक्षु,
 वही इस जटा को सुलझा सकता है ॥
 जिसने राग-द्वेष और अविद्या को हटा दिया है,
 जिनके आश्रय क्षीण हो गये हैं, अर्हत्;
 उनकी जटा सुलझ चुकी है ॥
 जहाँ नाम और रूप विलकुल निरुद्ध हो जाते हैं,
 प्रतिघ और रूप-सन्ना भी,
 वहीं जटा कट जाती है ॥

भगवान् के ऐसा कहने पर जटा-भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से बोला—धन्य हैं आप गौतम !
 धन्य हैं ॥

• आयुष्मान् भारद्वाज अर्हत्तों में एक हुये ।

§ ७. सुद्धिक सुत्त (७. १. ७)

कौन शुद्ध होता ?

श्रावस्ती में ।

एक ओर बैठ, सुद्धिक-भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् के पास यह गाथा बोला—

ससार में कोई ब्राह्मण शुद्ध नहीं होता है,
 बड़ा शीलवान् हो तप करते हुये,
 जो विद्या और आचरण से युक्त है वही शुद्ध होता है,
 और कोई दूसरे लोग नहीं ॥

[भगवान्—]

बड़ा बोलनेवाला कोई जाति से ब्राह्मण नहीं होता है,
 (वह) जिसका मन विलकुल मैला है, ढोंगी, चालबाज ॥
 क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चण्डाल, पुक्कुस,
 उत्साही आत्म-सयमी तथा सदा उद्यम में तत्पर रह,
 परम शुद्धि को पा लेता है, हे ब्राह्मण ! ऐसा जानो ॥

• [पूर्ववत्—] । आयुष्मान् भारद्वाज अर्हत्तों में एक हुये ।

§ ८. अग्निक सुत्त (७. १. ८)

ब्राह्मण कौन ?

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे ।

उस समय अग्निक-भारद्वाज ब्राह्मण के यहाँ घी के साथ खीर तैयार थी—अग्नि-हवन करने के निमित्त ।

तब, भगवान् सुवह में पहन और पात्र चीवर ले राजगृह में भिक्षाटन के लिये पैठे । राजगृह में घर-घर भिक्षाटन करते क्रमशः जहाँ अग्निक भारद्वाज ब्राह्मण का घर था वहाँ पहुँचे । पहुँचकर एक ओर खड़े हो गये ।

अग्निक-भारद्वाज ने भगवान् को भिक्षाटन करते देखा । देखकर भगवान् को गाथा में कहा —

(जो) ठीक बेहो को बापनेवाला जैसी व्यक्ति का, वही विद्वान्,
तथा विद्या और भाषण से सम्पन्न हो वही इस लीर को प्राप्त है

[मगधान्—]

वही जोसनेवाला कोई व्यक्ति से बाह्य नहीं होता है
वह जिसका सब विशुद्ध सैका है होगी आत्मा ॥
जो पूर्व जन्म की बातों को जानता है स्वर्ग और अपव्यय को देखता है
जो आवागमन से छूट गया है परम शान्ति मुनि
इन तीनों को जानने के कारण वह माह्यम वैविध्य होता है
विद्या और भाषण से सम्पन्न वही इस लीर का भोग करे ॥
ह गौतम ! आप भोग छगायें । आप गौतम माह्यम हैं ।

[मगधान्—]

धर्मोपदेश करने पर मिला भोजन मुझे स्वीकार नहीं,
ह माह्यम ! शान्ति का वह धर्म नहीं
जुड़ धर्मोपदेश के लिये दिये गये को स्वीकार नहीं करते
माह्यम ! धर्म के रहने पर वही बात होती है ॥
हमारे लक्ष और पान से
केवली महापि झीजाभय
परम छुड़ बुधे की सेवा करो
पुण्यार्की तुम्हारा पुण्य पौ ॥
माधुष्यान् भारद्वाज धर्मों में एक बुधे ।

४ ९ सुन्दरिफ सुच (७ १ ९)

दक्षिणा के योग्य पुरुष

एक समय मगधान् कोशल में सुन्दरिका नदी के तीर पर विहार करते थे ।

उस समय सुन्दरिका मारुताज माह्यम सुन्दरिका नदी के तीर पर अग्नि-दहन कर हुतावशेष की परिचर्या कर रहा था ।

तब सुन्दरिका-भारद्वाज उठ जातों और देखने लगा—जान इस हुतावशेष को भोग कगाने ?

सुन्दरिका भारद्वाज ने एक वृक्ष के नीचे मगधान् को खिर बने बैठा देखा । बैगनर धाये हाथ से हुतावशेष को और दक्षिणे हाथ से कमण्डलु को ले वहीं मगधान् थे वहीं आया ।

तब सुन्दरिका भारद्वाज के जाने की आहूत पर मगधान् ने शिर पर से कीचर उतार दिया ।

तब सुन्दरिका भारद्वाज “अरे ! वह मयमुंहा है ॥ अरे ! वह मयमुंहा है ॥” कहता उठे पूर्व आर आया आया ।

तब सुन्दरिका भारद्वाज क मय में वह हुआ—वितने माह्यम भी माय मुझका लिया करते हैं । तो मैं बचकर उसकी आत पूर्ण ।

तब सुन्दरिका भारद्वाज वहीं मगधान् थे वहीं आया । आकर मगधान् से बोला—अब किस काम के हैं ?

[मगधान्—]

जान मन हुआ कर्म पूछो

नदी में भी आग पैदा हो जाती है

नीच कुलपाते भी धीर मुनि होते हैं,
 श्रेष्ठ और लज्जाशील पुरुष होते हैं,
 सत्य से दान्त, और सयमी होते हैं,
 दुःखों से अन्त को जाननेवाले, ब्रह्मचर्य के फल पाये,
 यज्ञोपवीत तुम उमका आवाहन करो ।
 वह समग्र पर हवन करता है, दक्षिणा पाने का पात्र ॥

[सुन्दरिक—]

हाँ ! मेरा यह यज्ञ किया हुआ हवन किया हुआ सफल हुआ,
 कि आप जैसे ज्ञानी मिल गये,
 आप जैसों के दर्शन नहीं होने के कारण ही
 दूसरे-तीसरे हव्यशेष को खा लिया करने हैं ॥
 आप भोग लगावें । आप गौतम ब्राह्मण हैं ।

[भगवान्—]

धर्मोपदेश करने पर मिला भोजन मुझे स्वीकार नहीं,

[पूर्ववत्—]

तो, हे गौतम ! यह हव्यशेष मैं किसे दूँ ?

हे ब्राह्मण ! देवता के साथ इस लोक में मैं किसी को नहीं देखता हूँ जो इस हव्यशेष को
 खाकर पचा ले—बुद्ध या बुद्ध के श्रावक को छोड़ । तो, हे ब्राह्मण ! या तो तुम इस हव्यशेष को किसी
 ऐसी जगह छोड़ दो जहाँ घास उगी न हो, या बिना प्राणीवाले किसी जल में बहा दो ।

तब, सुन्दरिक भारद्वाज ने उस हव्यशेष को बिना प्राणीवाले किसी जल में बहा दिया ।

तब, वह हव्यशेष पानी पर गिरते ही चटचटाते हुये भभक उठा, लहर उठा । जैसे, दिन भर,
 आग में तपाया लोहे का फार पानी में पड़ते ही चटचटाते हुये भभक उठता है, लहर उठता है, वैसे ही
 वह हव्यशेष पानी पर पड़ते ही चिड़चिड़ाते हुये भभक उठा, लहर उठा ।

तब, सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण कौतूहल से भर जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर एक ओर
 खड़ा हो गया ।

एक ओर खड़े हुये सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण को भगवान् ने गाथा में कहा—

हे ब्राह्मण ! लकड़ियाँ जला-जलाकर,
 अपनी शुद्धि होना मत समझो, यह बाहरी ढोंग भर है ।
 पण्डित लोग उससे शुद्धि नहीं बताते,
 जो बाहरी घनावट से शुद्धि पाना चाहता है ॥
 हे ब्राह्मण ! मैं लकड़ियाँ जलाना छोड़,
 आध्यात्म ज्योति जलाता हूँ,
 मेरी आग सदा जलती रहती है, नित्य समाहित रहता हूँ,
 मैं अर्हत् हूँ, ब्रह्मचारी हूँ ॥
 हे ब्राह्मण ! अभिमान तुम्हारे लिये अनाज है,
 क्रोध धूँआ, मिथ्या-भाषण राख,
 जीभ खुवा, हृदय जलाने की जगह,
 अपना सुदान्त आत्मा ही ज्योति है ॥
 धर्म जलाशय है, शील घाट है,

निर्मल और मज्जनों से प्रसन्न
जिसमें शायी पुरुष स्नान करते हैं
स्वच्छ गायत्राके पार तर जाते हैं ॥
सत्य धर्म संघम तथा महाचर्यपात्रा
हे ब्राह्मण ! सम्पन्न मार्ग खोज है
सुमार्ग पर आ गये लोगों को ममस्वर करी
जसी तर को मैं धर्मात्मा फहता हूँ ॥

[पूर्ववत्] । आनुष्माद् भारद्वाज अर्हंतों में एक हुये ।

६ १० बहुधीतु सुप्त (७ १ १०)

पैयों की खोज में

एक समय भगवान् कोशाल नगर के एक बंगल में विहार करते थे ।

उस समय किसी माय्छाखगोत्र ब्राह्मण के पीढ़ बँध गुम हो गये थे ।

तब वह ब्राह्मण अपने पैयों की खोजता हुआ जहाँ वह बंगल या जहाँ आ निम्न । आकर
उस बंगल में भगवान् की आसन्न जगामे फिर को सीधा किये स्मृतिमात्र हो बिदे देखा ।

देखकर जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर भगवान् के पास यह गाथायें बोध्य—

अवश्य ही इस समय को पीढ़ बँध नहीं है
आज छ दिन हुये इसे माखन नहीं
इसी से यह समय सुखी है ॥
अवश्य ही इस समय को तिक-कट की बर्बादी नहीं होती होगी
पैये एक पत्तेबाके या दो पत्तेबाके होकर
इसी से यह समय सुखी है ॥
अवश्य ही इस समय के काकी घण्टार में बूढ़े
पुण्ड पैर नहीं रहे हैं
इसी से यह समय सुखी है ॥
अवश्य ही सात महीनों से इस समय की विघ्नजन
पढ़ी-पढ़ी बीकर और बड़ीस से मरी पढ़ी नहीं है
इसी से यह समय सुखी है ॥
अवश्य ही इस समय की सात विघना कदकियाँ
एक बैटबाकी और दो बैटबाकी नहीं हैं
इसी से यह समय सुखी है ॥
अवश्य ही इस समय को पीछी और तिछों से मरे शरीरबाकी की
नहीं होगी जो काय मारकर जयाती होगी
इसी से यह समय सुखी है ॥
अवश्य ही इस समय को सुबह ही सुबह कर्मचार
“सुखान्ते कर्म सुखान्ते” कह, नहीं रंग करते होंगे
इसी से यह समय सुखी है ॥

[भगवान्—]

नहीं ब्राह्मण ! मुझे चौदह चैल नहीं है,
आज छ दिन हुये यह भी पता नहीं,
ब्राह्मण ! इसी से मैं सुखी हूँ ॥

[इसी तरह]

नहीं ब्राह्मण ! मुझे सुबह ही सुबह कर्जेंदार,
“चुकाओ, कर्जा चुकाओ” कहकर नहीं तग करते हैं,
ब्राह्मण ! इसी से मैं सुखी हूँ ॥

...[पूर्ववत्] । आयुष्मान् भारद्वाज अर्हतां में एक टुये ।

अर्हत्-वर्ग समाप्त ।

दूसरा भाग

उपासक-वर्ग

§ १ किसि सुच (७ २ १)

बुद्ध की बोधी

एसा मीने सुना ।

एक समय भगवान् मगध में क्षिण्णागिरि पर एकमात्रा नामक ब्राह्मण-ग्राम में बिहार करते थे ।

उस समय बोधी के एक पर छपि मारदाज ब्राह्मण के पाँच सौ हक बना रहे थे ।

तब भगवान् बुद्ध में पहल और पाबधीवर के वहाँ छपि-मारदाज ब्राह्मण का काम बना रहा था वहाँ गये ।

उस समय छपि मारदाज ब्राह्मण की और से जाना बौद्ध का रहा था । तब भगवान् वहाँ जाकर एक और पड़े हो गये ।

छपि मारदाज ब्राह्मण ने भगवान् को भिझा के किये पड़ा देया । देखकर भगवान् से यह बोला—भ्रमण । मैं जोतता और बोता हूँ । मैं जोत-बोकर खाता हूँ । भ्रमण । तुम भी जोतों और बोमो । तुम भी जोत बोकर खाओ ।

ब्राह्मण । मैं भी जोतता और बोता हूँ । मैं भी जोत-बोकर खाता हूँ ।

किन्तु, मैं तो आप गौतम के पुर हक पर छपुनी या बेल कुछ नहीं देखता हूँ । इस पर भी आप गौतम कहते हैं—ब्राह्मण । मैं भी जोतता और बोता हूँ । मैं भी जोत-बोकर खाता हूँ ।

तब छपि-मारदाज ब्राह्मण भगवान् से गाथाएँ कहा—

छपक होने का दावा करते हैं किन्तु आप की पेंती में नहीं देखता

हक बुद्धा है कहे—उस पेंती की मैं कैसे जानूँ ॥

[भगवान्—]

भद्रा बीज तप बुद्धि प्रज्ञा ही मेरा कुमार्द और हक है

रत्न । हरिस है सब की जोत है स्थिति काक-छपुनी है

शरीर और बचन से संवत चीजक का भेदाज जाननेवाला

साब की निराई करता हूँ, सारक मरा बिभाम है

बाँव मेरा कपूनी बेल है को निबान तक ले जाता है

बिना कहे बुद्धे बपता जाता है जहाँ बकर-गोक नहीं करता ॥

ऐसी शरीर करनेवाला अमृत की उपज पाता है

हम लोगी को कर, सभी बुद्धों से हूँ जाता है ॥

आप गौतम माता कहाने । आप गौतम सबसुच हैं हक हैं । की आप की पेंती में अमृत की उपज होती है ।

[भगवान्—]

धर्मोपदेश करने पर मिला भोजन मुझे स्वीकार नहीं,
हे ब्राह्मण ! ज्ञानियों का यह धर्म नहीं,
बुद्ध धर्मोपदेश के लिये दिये गये को स्वीकार नहीं करते,
ब्राह्मण ! धर्म के रहने पर यही बात होती है ॥
दूसरे अन्न और पान से,
केवली, महर्षि, क्षीणाश्रय,
परम शुद्ध हुये की सेवा करो,
पुण्यार्थी तुम्हारा पुण्य बढ़े ॥

ऐसा कहने पर कृपि-भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से बोला—धन्य है आप गौतम ! धन्य है ॥
हे गौतम, जैसे उलटे को पलट दे, ढँके को उघार दे, भटके को राह बता दे, या अन्धकार में तेल-प्रदीप जला दे जिसमें आँखवाले रूपों को देख लें, वैसे ही भगवान् गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशा ।
यह मैं भगवान् गौतम की शरण में जाता हूँ, धर्म की, और सघ की । आज से जन्म भर के लिये आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें ।

§ २. उदय सुत्त (७. २. २)

बार-बार भिक्षाटन

श्रावस्ती में ।

तब, भगवान् सुबह में पहन और पात्र चीवर ले जहाँ उदय ब्राह्मण का घर था वहाँ पधारे ।

तब, उदय ब्राह्मण ने भगवान् के पात्र को भात से भर दिया ।

दूसरी बार भी ।

तीसरी बार भी उदय ब्राह्मण ने भगवान् के पात्र को भात से भर कर कहा—श्रमण गौतम बड़े परके हैं, बार-बार आते हैं ।

[भगवान्—]

बार-बार लोग बीज बोते हैं,
बार-बार मेघ-राज बरसते हैं,
बार-बार खेतिहर खेत जोतते हैं,
बार-बार देशवालों को उपज होती है ॥
बार-बार याचक याचना करते हैं,
बार बार दानपति दान देते हैं,
बार-बार दानपति दान देकर,
बार-बार स्वर्ग में स्थान पाते हैं ॥
बार-बार ग्वाले दूध बूहते हैं,
बार-बार बच्चा माँ के पास जाता है,
बार-बार मेहनत-परिश्रम करते हैं,
बार-बार मूर्ख गर्भ में पड़ता है ॥
बार-बार जन्म लेता है और मरता है,
बार-बार लोग श्मशान ले जाते हैं,

पुनर्वन्ध से छूटने के मार्ग को पा

महा जानी बार-बार मही जन्म ग्रहण करता है ॥

[पूर्ववन्] । जन्म से जन्म भर के किन्ध आप गौतम मुझे अपना घरजागत उपासक स्वीकार करें ।

§ ३ देवहित सुघ (७ २ ३)

सुख की उन्मत्ता, दाम का पाष

आवस्ती में ।

उस समय भगवान् को बाढ की भीमारी हो गई थी । आयुष्मान् उपघान भगवान् की सेवा में लग गये ।

तब भगवान् ने आयुष्मान् उपघान को आमन्त्रित किया—उपघान । तुनी कुछ गरम पानी ले आओ ।

“मम्मे पट्टव जप्पन्” कह, आयुष्मान् उपघान भगवान् को उठार दे पढ़न भीर पाष भीबर ले बहो देवहित माझण का घर या बहो गये । आकर उपचाप एक ओर लड़े हो गये ।

देवहित माझण ने आयुष्मान् उपघान को उपचाप एक ओर लड़े देया । देखकर आयुष्मान् उपघान को गाथा में कहा—

उपचाप आप लड़े फिर मुझसे संपादी भीने

क्या चाहते क्या प्रीजते क्या मर्गने के लिये आये हैं ?

[उपघान—]

संसार के भईन, बुद्ध मुनि बल-रोग से पीड़ित है

यत्रि गरम पानी है तो माझण । मुनि के किये दो;

पूजनीयों में जो उच्च सरस्वर-पात्रों में जो सरस्वर के पात्र

तथा मान्रणीयों में जो आदरणीय हैं उन्हीं के किये मैं चाहता हूँ ॥

तब देवहित माझण ने गरम पानी का एक भार और बुद्ध की एक पीठकी नीकर से मँगवा आयुष्मान् उपघान को दे दिया ।

तब आयुष्मान् उपघान बहो भगवान् ले बहो गये । आकर, उन्होंने भगवान् को गरम पानी से बहका गरम पानी में कुछ बुद्ध बोझकर भगवान् को दिया ।

तब भगवान् की तकलीफ कुछ घट गई ।

तब देवहित माझण बहो भगवान् ले बहो आया । आकर भगवान् का सम्मोदक किया । क्या भगत भीर कुलक-शेन के मरुन पूछने के बाद एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ देवहित माझण ने भगवान् को गाथा में कहा—

हाथ लेनेवाला किसे दान दे ? किसको देने का महाच्छक होता है ?

किस ब्रह्म करनेवाले की कैसी इच्छिया सच्छक होती है ?

[भगवान्—]

पूर्व जन्म की बाघों को जियने क्या किया है

स्वर्ग भीर अपाष की बाघों को प्री समझता है

बिसनी ब्यधि क्षीण हो गई है,

परम ज्ञान का कभी मुनि ;

दान देनेवाला इन्हीं को दान दे,
इन्हीं को देने का महाफल होता है,
ऐसे यज्ञ करनेवाले की,
ऐसी ही दक्षिणा सफल होती है ॥

...। आज से जन्म भर के लिये आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें ।

४. महासाल सुत्त (७. २. ४)

ओं द्वारा निष्कासित पिता

श्रावस्ती में ।

तब, एक ब्राह्मण बड़ा आदमी गुदड़ी पहन जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर भगवान् का सम्मोदन किया । आवभगत और कुशल-क्षेम के प्रश्न पूछने के बाद एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठे उस ब्राह्मण बड़े आदमी को भगवान् ने कहा—ब्राह्मण ! इतनी गुदड़ी क्यों पहने हो ?

हे गौतम ! मेरे चार बेटे हैं । अपनी स्त्रियों की सलाह से उन्होंने मुझे घर से निकाल दिया है ।

तो, हे ब्राह्मण ! इन गाथाओं को तुम याद कर सभा खूब लग जाने पर अपने पुत्रों के वहाँ होते उठकर पढ़ना—

जिनके पैदा होने से मुझे बड़ा आनन्द हुआ था,
जिनका बना रहना मेरा बड़ा अभीष्ट था,
वे अपनी स्त्रियों की सलाह से,
हटा देते हैं, कुत्ता जैसे सूअर को ॥
ये नीच और खोटे हैं,
जो मुझे 'बाबू जी, बाबू जी,' कहकर पुकारते हैं,
बेटे नहीं, राकस हैं,
जो मुझे बुढ़ाई में छोड़ रहे हैं ॥
जैसे बेकार बुढ़े घोड़े को,
दाना मिलना बन्द हो जाता है,
वैसे ही बेटों का यह बूढ़ा बाप,
दूसरों के दरवाजे भीख मँग रहा है ॥
मेरा ढण्डा ही यह कहीं अच्छा है,
मगर ये नालायक बेटे नहीं,
जो भड़के बैल को भगा देता है,
और चण्ड कुत्तों को भी,
अँधेरे में पहले पहल यही चलता है,
गहने का भी थाह लगा देता है,
इसी ढण्डे के सहारे,
ठेस लगने पर भी गिरने से बच जाता हूँ ॥

तब वह ब्राह्मण बड़ा आदमी भगवान् के पास इन गाथाओं को सीख सभा खूब जम जाने पर अपने पुत्रों के वहाँ होते उठकर पढ़ने लगा—

बिजड़े पीता होने से मुझे पक्का भाग्य्य हुआ था

[पूर्ववत्]

इसी वक़्त के सहारे

ऐसे क्षण पर भी गिरने से बच जाता हूँ ।

तब उस ब्राह्मण को उसके पुत्रों ने घर के बाहर ले कर प्रत्येक ने बाल का जोड़ा मेंढ बढ़ाया ।

तब वह ब्राह्मण एक जोड़ा घान लेकर जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ उस ब्राह्मण ने भगवान् को कहा—हे गौतम ! इस ब्राह्मण आचार्य को आचार्य-
वृक्षिणा दिया करते हैं । आप गौतम इस आचार्य वृक्षिणा को स्वीकार करें ।

भगवान् ने अनुकम्पा कर स्वीकार किया ।

[पूर्ववत्] । आज से व्रत भर के दिने आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें ।

४ ५ मानस्यद् मुच (७ २ ५)

अभिमान न करे

भावस्ती में ।

उस समय अभिमान अकङ्क नाम का एक ब्राह्मण भावस्ती में वास करता था । वह न तो माता को प्रणम्य करता था न पिता को न आचार्य को और न बड़े माई को ।

उस समय भगवान् बड़ी भारी सभा के बीच प्रमोदप्रेष कर रहे थे ।

तब अभिमान-अकङ्क ब्राह्मण के मन में यह हुआ—यह समस्त गौतम बड़ी भारी सभा के बीच प्रमोदप्रेष कर रहे हैं । तो जहाँ समस्त गौतम हैं वहाँ मैं भी चूँ । यदि समस्त गौतम मुझसे कुछ पूछताछ करेंगे तो मैं भी उनसे कुछ बातें करूँगा । यदि समस्त गौतम मुझसे कुछ पूछताछ नहीं करेंगे तो मैं भी उनसे कुछ न बोलूँगा ।

तब अभिमान अकङ्क ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ गया । आकर चुपचाप एक ओर बसा हो गया ।

तब भगवान् ने उससे कुछ पूछताछ नहीं की ।

तब अभिमान अकङ्क ब्राह्मण “यह समस्त गौतम कुछ नहीं जानते हैं” सोच खीड़ जाने के दिने तैयार हुआ ।

तब भगवान् ने अभिमान-अकङ्क ब्राह्मण के चित्त में जो अपने चित्त से जानकर कहा—

ब्राह्मण ! अभिमान करना उचित नहीं

ब्राह्मण ! जिस उद्वेग से वहाँ जाये थे

उसे बीमा कह जाओ ॥

तब अभिमान-अकङ्क ब्राह्मण “असमस्त गौतम मेरे चित्त की बातों को जानते हैं आज भगवान् के पैरों पर पड़े गिर गया उसके चरणों को मुँह से चूमने लगा हाथ से पोंछने लगा और अपना नाम सुनाने लगा—हे गौतम ! मैं अभिमान अकङ्क हूँ । हे गौतम ! मैं अभिमान-अकङ्क हूँ ।

तब सभा में जाये सभी लोग आश्चर्य से चकित हो गये । आश्चर्य हीरे ! जर्मुण्ड हीरे ! वह अभिमान-अकङ्क ब्राह्मण न तो माता को प्रणम्य करता है न पिता को न आचार्य की ओर न बड़े माई को । तो समस्त गौतम के चरणों पर इतना गिर पड़ रहा है ।

तब, भगवान् ने अभिमान-अकड़ ब्राह्मण को यह कहा—ब्राह्मण ! बस करो, उठो, यदि मेरे प्रति तुम्हें श्रद्धा है तो अपने आसन पर बैठो ।

तब अभिमान अकड़ ब्राह्मण अपने आसन पर बैठकर भगवान् से यह बोला —

किनके साथ अभिमान न करे ?

किनके प्रति गौरव-भाव रखे ?

किनका सम्मान किया करे ?

किनकी पूजा करना अच्छा है ?

[भगवान्—]

माँ, बाप, और बड़े भाई,

और चौथा आचार्य, इनके प्रति अभिमान न करे,

उन्हीं के प्रति गौरव-भाव रखे,

उन्हीं का सम्मान किया करे,

उन्हीं की पूजा करना अच्छा है ।

अभिमान हटा, अकड़ छोड़ उन अनुत्तर,

अहंत्व, शान्त हुए, कृतकृत्य और अनाश्रव को प्रणाम करे ।

। आज से जन्म भर के लिये आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें ।

§ ६. पञ्चनिक सुत्त (७ २ ६)

झगड़ा न करे

श्रावस्ती में ।

उस समय झगड़ातू नाम का एक ब्राह्मण श्रावस्ती में वास करता था ।

तब झगड़ातू ब्राह्मण के मन में यह हुआ—जहाँ श्रमण गौतम हैं वहाँ मैं चल चलाँ । श्रमण गौतम जो कुछ कहेंगे मैं ठीक उसका उलटा ही कहूँगा ।

उस समय भगवान् खुली जगह में टहल रहे थे ।

तब झगड़ातू ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर भगवान् के पीछे-पीछे चलते हुये कहने लगा—श्रमण ! धर्म उपदेशों ।

[भगवान्—]

जिमका चित्त मैला है, झगड़ा के लिये जो तना है,

ऐसे झगड़ातू के साथ बात करना ठीक नहीं ।

जिसने विरोध-भाव और चित्त की उच्छृंखलता को दबा,

द्वेष को बिल्कुल छोड़ दिया है, उसी को कहना उचित है ॥

। आज से जन्म भर के लिये आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें ।

§ ७. नवकम्म सुत्त (७ २ ७)

जंगल कट चुका है

एक समय भगवान् कोशल के किसी जंगल में विहार करते थे ।

उस समय नवकार्मिक-भारद्वाज ब्राह्मण उस जंगल में लकड़ी चिरघा रहा था ।

नवकार्मिक-भारद्वाज आश्रम ने भगवान् को किसी शाख वृक्ष के नीचे आसन लगाये, शरीर सीधा किये स्मृतिमान् हो बैठे देखा ।

धृष्टकृ उसने सब में यह हुआ—मैं तो इस जंगल में अपना काम करवाये में लगा हूँ । यह भ्रमण गीतम क्या कराने में को है ?

तब नवकार्मिक भारद्वाज आश्रम जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर भगवान् से गाय में बोझ—

अपने किस काम में को हो व सिधु इस साक-वन में ?

जो इस जंगल में लगेके ही मुण से विहार करते हो ?

[भगवान्—]

जंगल से मेरा कुछ काम नहीं बसा है

मेरा जंगल कट-चूरकर साक हो गया

मैं इस वन में कुछ से कुछ परम पद पा,

जमस्तोप को छोड़कर बड़ेका रमता हूँ ॥

आज से जन्म भर के किये आप गीतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें ।

§ ८ कटुहार मुण (७ २ ८)

निर्जन वन में पास

एक समय भगवान् कौशल के किसी जंगल में विहार करते थे ।

उस समय किसी भारद्वाजगोत्र आश्रम के कुछ कटपुत्रों ने उसी जंगल में गये ।

आकर उन्होंने भगवान् को उस जंगल में स्मृतिमान् हो बैठे देखा । देखकर जहाँ भारद्वाज-गात्र आश्रम था वहाँ गये । आकर भारद्वाज से बोले 'अरे ! आप जानते हैं । कलाने जंगल में एक साधु स्मृतिमान् हो बैठा है ।

तब भारद्वाजगोत्र आश्रम उन लक्ष्यों के साथ जहाँ वह जंगल था वहाँ गया । उसने भी भगवान् को उस जंगल में स्मृतिमान् हो बैठे देखा । देखकर जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर भगवान् से गाय में बोझ—

घोर, भवाचक दुःख निर्जन आश्रम में पैद

मन्य अकल भ्रमण लगाय

मिथु ! क्या सुन्दर ध्यान लगाये बैठे हो ॥

न जहाँ गीत है न जहाँ पात्रा

एग्रे जंगल में लक्ष्मण बचपासी मुनि को देव

मुझे बड़ी दीरघी हो रही है

कि वह अकल जंगल में कैसे प्रसन्नता से रहता है ॥

मैं समझता हूँ कि लोकप्रियति के गात्र

अनुत्तर रत्न की कामना से

आप निर्जन वन में क्यों बरा रहे हैं

अकल प्राप्ति के किन्हीं वहाँ तप कर रहे हैं ॥

[भगवान्—]

जो कोई आकांक्षा या आनन्द उठाना है,
 नाना पदार्थों में सदा आसक्त,
 इच्छायें, जिनका मूल अज्ञान में है,
 सभी का मैंने निष्कुल त्याग कर दिया है,
 तृष्णा और इच्छाओं से रहित मैं अकेला,
 सभी धर्मों के तत्त्व को जाननेवाला,
 अनुत्तर और शिव दुष्टत्व को पा,
 हे ब्राह्मण ! एकान्त में मैं निर्भीक ध्यान करता हूँ ।

। आज से जन्म भर के लिये आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें ।

§ ९. मातृपोषक सुत्त (७. २. ९)

माता-पिता के पोषण में पुण्य

श्रावस्ती में ।

तब, मातृपोषक ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ मातृपोषक ब्राह्मण ने भगवान् को यह कहा—हे गौतम ! मैं धर्म-पूर्वक भिक्षाटन करता हूँ । धर्म-पूर्वक भिक्षाटन कर माता-पिता का पोषण करता हूँ । हे गौतम ! ऐसा करनेवाला मैं अच्छा करता हूँ या नहीं ?

ब्राह्मण ! अवश्य, ऐसा करनेवाले तुम अच्छा कर रहे हो । ब्राह्मण ! जो धर्म-पूर्वक भिक्षाटन करता है, धर्म-पूर्वक भिक्षाटन कर माता-पिता का पोषण करता है वह बहुत पुण्य कमाता है ।

जो मनुष्य माता या पिता को धर्म से पोसता है उससे पण्डित लोग उसकी प्रशंसा करते हैं, मरकर वह स्वर्ग में आनन्द करता है ।

। आज से जन्म भर के लिये आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें ।

§ १०. भिक्षुक सुत्त (७. २. १०)

भिक्षुक भिक्षु नहीं

श्रावस्ती में ।

तब भिक्षुक ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ भिक्षुक ब्राह्मण ने भगवान् को कहा—हे गौतम ! मैं भी भिक्षुक हूँ और आप भी भिक्षुक हैं । हम दोनों में फरक क्या है ?

[भगवान्—]

इसलिये कोई भिक्षु नहीं होता क्योंकि वह भीख माँगता है,

जब तक ढोपयुक्त है तब तक वह भिक्षु नहीं हो सकता ।

जो ससार के पुण्य और पाप ब्रह्माकर,

ज्ञानपूर्वक सच्चे ब्रह्मचर्य का पालन करता है,

वही यथार्थ में भिक्षु कहा जाता है ॥

। आज से जन्म भर के लिये आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें ।

§ ११ संगारव सुच (७ २ ११)

स्वाम से शुद्धि नहीं

आवस्ती में ।

उस समय संगारव धाम का एक माझण उदक-शुद्धि उदक से शुद्धि होना माननेवाला आवस्ती में रहता था । सॉस-सुबह उदक में ही पैदा रहता था ।

तब भावुप्पाय् आलम्ब सुबह में पहल भीर पाण्नीबर के भावकी में मिहारन के छिने पड़े । मिहारन से खीर भोजन कर खेत के बाढ़ जहाँ भगवान् ने यहाँ आये भीर भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ भावुप्पाय् आलम्ब ने भगवान् को यह कहा—मन्ते ! संगारव माझण सॉस-सुबह उदक ही में पैदा रहता है । मन्ते ! जमुम्मा करके भगवान् जहाँ संगारव का घर है वहाँ चले ।

भगवान् ने चुप रहकर स्वीकार कर लिया ।

तब भगवान् सुबह में पहल भीर पाण्नीबर के जहाँ संगारव का घर था वहाँ गये । जाकर बिछे आसन पर बैठ गये ।

तब संगारव माझण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर कुसक-प्रस पूजने के बाद एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ संगारव माझण को भगवान् ने कहा—माझण ! क्या सच में तुम उदक-शुद्धि हो उदक से शुद्धि होना जानते हो ? सॉस-सुबह उदक में ही फिटे रहते हो ?

हाँ गीतम ! ऐसी ही बात है ।

माझण ! तुम किस उद्देश्य से उदक-शुद्धि हो उदक से शुद्धि होना मानते हो, भीर सॉस-सुबह उदक में ही फिटे रहते हो ?

हे गीतम ! दिन भर में मुझसे जो कुछ पाप हो जाता है उसे सौंझ में बहाकर बहा देता हूँ । और रात भर में जो कुछ पाप हो जाता है उसे सुबह में बहाकर बहा देता हूँ । हे गीतम ! मैं इसी बड़े बड़े स्व से उदक-शुद्धि हो उदक से शुद्धि होना मानता हूँ और सॉस-सुबह उदक में पैदा रहता हूँ ।

[भगवान्—]

इ माझण ! धर्म जगज्जय है दीक उसमें उतरने का बाद है

विपकुल सब्ब सज्जनो सं प्रसाद,

मिसमें परम ज्ञानी स्वाम कर

पवित्र गार्होपात्य हो पार तर जाता है ॥

। आज से कम्य भर के किये आप गीतम मुझे अपना घरजागत अपासक स्वीकार करें ।

§ १२ खोमदुस्सक सुच (७ २ १२)

सन्त की पहचान

एक समय भगवान् ज्ञापय अवपद में खोमदुस्स नामक धाक्यों के कल्पे में बिहार करते थे ।

तब भगवान् सुबह में पहल भीर पाण्नीबर के खोमदुस्स कल्पे में मिहारन के छिने पड़े ।

उस समय खोमदुस्स कल्पे के रहनेवाले माझण पुरस्व किसी काम से समापुद में रुकते थे । निष्क्रिय पानी की परत रहा था ।

तब, भगवान् जहाँ वह सभा लगी थी वहाँ गये ।

खोमदुस्स कस्से के रहनेवाले ब्राह्मण गृहस्थों ने भगवान् को दूर ही से आते देखा । देखकर यह कहा—ये मथमुण्डे श्रमण सभा के नियमों को क्या जानेंगे ?

तब, भगवान् ने खोमदुस्स कस्से में रहनेवाले ब्राह्मण गृहस्थों को गाथा में कहा—

वह सभा सभा नहीं जहाँ सन्त नहीं,

वे सन्त सन्त नहीं जो धर्म की बात नहीं बतावे,

राग, द्वेष और मोह को छोड़,

धर्म को बखाननेवाले ही सन्त होते हैं ॥

• • । आज से जन्म भर के लिये आप गौतम हम लोगों को अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें ।

उपासक वर्ग समाप्त

ब्राह्मण-संयुक्त समाप्त ।

आठवाँ-परिच्छेद

८ वज्जीश-समुत्त

§ १ निःसुखन्तं मुच (८ १)

वज्जीश का, बड़-संकाय

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय आयुष्मान् वज्जीश अपने उपाध्याय आयुष्मान् निम्रोघ-कश्यप के साथ आलसी में अग्राष्टव शैत्य पर बिहार करते थे । उस समय आयुष्मान् वज्जीश जभी तुरत ही गये प्रयत्नित हुए थे बिहार की वैद्य-वैद्य करने के बिने छोड़ दिये गये थे ।

तब कुछ क्षियाँ अर्कृत हो उस आराम में वेपने के बिने आई । उन क्षियों को देखकर आयुष्मान् वज्जीश लुभा गये, बिच राग से पागल हो उठा ।

तब आयुष्मान् वज्जीश के मन में यह हुआ—मेरा बड़ा बकास हुआ काम नहीं, मेरा बड़ा बुझा हुआ हुआ नहीं—कि मैं लुभा गया और मेरा बिच राग से पागल हो उठा है । मुझे कौन ऐसा मिथेगा की मेरे इस मोह की दूर कर बिच में शाम्ति का दे ! तो मैं स्वयं ही अपने इस मोह को दूर कर बिच में शाम्ति ले लाऊँ ।

तब आयुष्मान् वज्जीश अपने स्वयं उस मोह की दूर कर बिच में शाम्ति के जाने, और उस समय उनसे मुँह से यह शायरी निकल पड़ी—

भर से बेबर हो निकल गये मेरे मन में
मे भुरे और काये बितर्क उठ रह हैं
श्रेष्ठजनों के पुत्र सहायमुचर शिखित रह-वराजमी
चारों ओर से हजारों बाय बरसाये
बदि इससे भी अधिक क्षियाँ जाये
तो मेरे मन की नहीं बिगा सखेंगी,
जब मैं जने में प्रतिष्ठित हो गया ॥
मैंने अपने कामों धूर्तकुलेपक मुद को रहते सुना है
कि मिर्चान के पावे का मार्ग क्या है,
मेरा मन अब नहीं बँध गया है ॥
इस प्रकार बिहार करते बदि पापी मार मेरे पास आयेगा
तो मैं ऐसा कहूँगा कि वह मेरे मार्ग को भी नहीं देख सकेगा ॥

§ २ अरति मुच (८ २)

राग छाने

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय आयुष्मान् वज्जीश अपने उपाध्याय आयुष्मान् निम्रोघ-कश्यप के साथ आलसी में अग्राष्टव शैत्य पर बिहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् निग्रोध-कल्प भिक्षाटन से लौट भोजन कर लेने के बाद विहार में पैठ जाया करते थे, और साँझ को या दूसरे दिन उसी समय निकला करते थे ।

उस समय आयुष्मान् वज्जीश को मोह चला आया था—राग से चित्त चञ्चल हो उठा था ।

तब आयुष्मान् वज्जीश के मन में यह हुआ— [पूर्ववत्] । तो मैं स्वयं ही अपने इस मोह को दूर कर चित्त में शान्ति ले आऊँ ।

तब आयुष्मान् वज्जीश अपने स्वयं उस मोह को दूर कर चित्त में शान्ति ले आये, और उस समय उनके मुँह से ये गाथायें निकल पड़ी—

(धर्माचरण में) असतोप, (कामोपभोग में) संतोष,

और सारे पाप वितर्कों को छोड़,

कहीं भी जगल उगने न दे,

जगल को साफ कर खुले में रहनेवाला भिक्षु ॥

जो पृथ्वी के ऊपर या आकाश में,

ससार के जितने रूप हैं,

सभी पुराने होते जाते हैं, अनित्य हैं,

ज्ञानी पुरुष इसे जानकर विचरते हैं ॥

सासारिक भोगों में लोग लुभाये हैं,

देखे, सुने, छूये और अनुभव किये धर्मों के प्रति,

स्थिर-चित्त जो इनके प्रति इच्छाओं को दबा,

उनमें लिप्त नहीं होता है—उसी को मुनि कहते हैं ॥

जो साठ मिथ्या धारणायें,

पृथक् जनों में लगी है,

उनमें जो कहीं नहीं पड़ता है,

जो दुष्ट बातें नहीं बोलता है, वही भिक्षु है ॥

पण्डित, बहुत काल से समाहित,

ढोंग न बनानेवाला, ज्ञानी, लोभ-रहित,

जिस मुनि ने शान्त-पद जान,

निर्वाण को प्राप्त कर लिया है, अपने समय की प्रतीक्षा कर रहा है ॥

§ ३. अतिमञ्जना सुत्त (८. ३)

अभिमान का त्याग

एक समय आयुष्मान् वज्जीश अपने उपाध्याय आयुष्मान् निग्रोध-कल्प के साथ आलवी में अगगालव चैत्य पर विहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् वज्जीश अपनी प्रतिभा के अभिमान से दूसरे अच्छे भिक्षुओं की निन्दा करते थे ।

तब आयुष्मान् वज्जीश के मन में यह हुआ, “मेरा बड़ा अलाभ हुआ, लाभ नहीं, मेरा बड़ा दुर्भाग्य हुआ, सुभाग्य नहीं, कि मैं अपनी प्रतिभा के अभिमान से दूसरे अच्छे भिक्षुओं की निन्दा करता हूँ ।”

तब स्वयं अपने चित्त में पश्चात्ताप उत्पन्न कर आयुष्मान् वज्जीश के मुँह से ये गाथायें निकल पड़ी—

हे गौतम के भावक ! अमिमान छोड़ो
 अमिमान के मार्ग से दूर रहो;
 अमिमान के हास्ते में भटककर
 बहुत दिनों तक पड़नापाय करता रहा ॥
 सारी जगत्ता अमन्य से भ्रष्ट है
 अमिमान करनेवाले नरक में गिरते हैं
 बहुत काक तक शोक किया करते हैं
 अमिमानों लोग नरक में उत्पन्न हो ॥
 भिक्षु कभी भी शोक नहीं करता है
 मार्ग को जिससे जीत लिया है सम्बन्ध प्रतिपन्न
 कीर्ति और सुख का अनुभव करता है
 यथार्थ में ही लोग उसे भगवान् मानते हैं ॥
 इसलिये मन के मीठ को दूर कर उत्साही बन
 बन्धनों को हटाकर विमुक्त,
 और अमिमान को बिप्लव बना
 शान्त हो ज्ञान-पूर्वक भक्त करता है ॥

§ ४ आनन्द मुक्त (८४)

कामराग से मुक्ति का उपाय

एक समय आयुष्मान् आनन्द ब्राह्मन्ती में मनाथ पिण्डिक के जेतवम घराम में बिहार
 करते थे ।

तब आयुष्मान् आनन्द सुबह में पहन और पात्रजीवर के आयुष्मान् यज्ञीश को पीछे किये
 मिहाराटन के किये ब्राह्मन्ती में पीछे ।

उस समय आयुष्मान् बहोस के चित्त में मोह हो गया था राग से बन्धन हो रहे थे ।

तब आयुष्मान् यज्ञीश आयुष्मान् आनन्द से गाथा में बोले—

कामराग से बन्धन रहा हूँ चित्त मेरा बन्धन जा रहा है

हे गौतमकुलोत्पन्न भिक्षु ! कृपा कर इसे शान्त करने का उपाय बताओ ।

[आयुष्मान् आनन्द—]

मन बहुत कामे से तुम्हारा चित्त बन्धन रहा है

राग उत्पन्न करनेवाले इस अकार्यज को छोड़ दो

अपने संस्कारों को पराका के ऐसा देखो दुःख और अनात्म के ऐसा

इस नई राग को छोड़ दो इससे बार-बार मत्त बन्धो ॥

चित्त में अहम् भावना कामों पञ्चम और समाधिरूप हो

तुम्हें कायगता स्थिति का अभ्यास होवे वैराग्य ब्रह्मज्ञान ॥

दुःख अविद्य और अज्ञान की भावना करो

अमिमान और अमन्य छोड़ दो

तब मन के प्रधान से शान्त हो बिचरोगे ॥

§ ५. सुभाषित सुत्त (८. ५)

सुभाषित के लक्षण

श्रावस्ती जेतवन में ।

घाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—हे भिक्षुओ !

“भगन्त !” कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! चार अङ्गों से युक्त होने पर वचन सुभाषित होता है, दुर्भाषित नहीं, विज्ञों में अनिन्य, निन्य नहीं । किन चार में ?

भिक्षुओ ! भिक्षु सुभाषित ही बोलता है, दुर्भाषित नहीं, धर्म ही बोलता है, अधर्म नहीं, प्रिय ही बोलता है, अप्रिय नहीं, सत्य ही बोलता है, असत्य नहीं । भिक्षुओ ! इन्हीं चार अङ्गों से युक्त वचन सुभाषित होता है, दुर्भाषित नहीं, विज्ञों में अनिन्य होता है, निन्य नहीं ।

भगवान् यह बोले । इतना कहकर उठ फिर भी बोले—

सन्तों ने सुभाषित को ही उत्तम कहा है,

दूसरे—धर्म कहे, अधर्म नहीं,

तीसरे—प्रिय कहे, अप्रिय नहीं,

चौथे—सत्य कहे, असत्य नहीं ॥

तब, आयुष्मान् वज्जीश आसन से उठ, उपगती को एक कन्धे पर सँभाल, भगवान् की ओर हाथ जोड़कर बोले—भगवान् ! मैं कुछ कहना चाहता हूँ । उद्ध ! मुझे कुछ कहने का अवकाश मिले ।

भगवान् बोले—वज्जीश ! कष्टों, अवकाश हैं ।

तब, आयुष्मान् वज्जीश ने भगवान् के सम्मुख अत्यन्त उपयुक्त गाथाओं में स्तुति की—

उसी वचन को बोले, जिससे अपने को अनुताप न हो,

और, दूसरों को भी कष्ट न हो, वही वचन सुभाषित है ॥

प्रिय वचन ही बोले, जो सभी को सुहाये,

जो दूसरों के दोष नहीं निकालता, वही प्रिय बोलता है ॥

सत्य ही सर्वोत्तम वचन है, यह सनातन धर्म है,

सत्य, अर्थ और धर्म में प्रतिष्ठित सज्जनों ने कहा है ॥

उद्ध जो वचन कहते हैं, क्षेम और निर्वाण की प्राप्ति के लिये,

दुःखों को अन्त करने के लिये, वही उत्तम वचन है ॥

§ ६. सारिपुत्र सुत्त (८. ६)

सारिपुत्र की स्तुति

एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र श्रावस्ती में अनाथ-पिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र ने भिक्षुओं को धर्मोपदेश कर दिखा दिया । उनके वचन सभ्य, साफ, निर्दोष और सार्थक थे । और भिक्षु लोग भी बड़े आदर से, मन लगाकर, ध्यानपूर्वक कान दिये सुन रहे थे ।

तब, आयुष्मान् वज्जीश के मन में यह हुआ—यह आयुष्मान् सारिपुत्र धर्मोपदेश । और, भिक्षु लोग भी सुन रहे हैं । तो क्यों न मैं आयुष्मान् सारिपुत्र के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं में उनकी स्तुति करूँ ।

तब आयुष्मान् यज्ञीश आसन से उठ उपरवी को एक कंधे पर सम्माक आयुष्मान् सारिपुत्र की ओर हाथ जोड़कर बोले—अबुस सारिपुत्र ! मैं कुछ कहना चाहता हूँ । अबुस सारिपुत्र ! मुझे कुछ कहने का अवकाश मिले ।

अबुस यज्ञीश ! अवकाश है कहें ।

तब आयुष्मान् यज्ञीश ने आयुष्मान् सारिपुत्र के सम्मुख उपयुक्त गायार्थों में उनकी स्तुति की—

शम्मीर प्रज्ञ मेधावी, अस्ते और दुरे मार्ग के पहचाननेवाले
सारिपुत्र महाप्रज्ञ मिश्रुओं में असींप्रवेश कर रहे हैं ।
संक्षेप से भी उपदेशते हैं उसका बिकार भी कह देते हैं
सारिका की बोली वीसा मधुर ठीकी बातें बता रहे हैं ।
उस देशका भी मधुर वाणी
आमन्ददायक अवधीय और सुन्दर है,
उद्ग्रन्थि और प्रमुदित हो मिश्रु लोग काम कामसे उसे सुन रहे हैं ।

४७ पवारणा सूच (८७)

प्रवारणा-कर्म

एक समय भगवान् पौष से केवल धर्षव मिश्रुओं के एक पद संघ के साथ आयस्ती में सुगार माठा के पूर्वोत्तरास प्रासाद में बिहार करते थे ।

उस समय पञ्चवशी के उपोसय पर प्रवारणा के किये सम्मिलित हुए मिश्रु-संघ के बीच कुछ मैदान में भगवान् बैठे थे ।

तब भगवान् ने मिश्रु-संघ को शान्त रूप मिश्रुओं को आमन्त्रित किया—मिश्रुओ ! मैं प्रवारण करता हूँ—तुमने शरीर या बचन के कोई दोष तो सुनने नहीं देखे हैं ?

भगवान् के ऐसा कहने पर आयुष्मान् सारिपुत्र अत्यन्त से उठ उपरवी को एक कंधे पर सम्माक भगवान् की ओर हाथ जोड़कर बोले—अन्ते ! इस छोटा से शरीर या बचन से कुछ तुराई कर भगवान् पर दोष नहीं बताया है । अन्ते ! भगवान् अनुत्पन्न मार्ग के उत्पन्न करनेवाले हैं वे कहे गये मार्ग के पतननेवाले हैं मार्ग की पहचाननेवाले हैं मार्ग पर चल चुके हैं । अन्ते ! इस समय आपके आवक से आपके अनुगमन करनेवाले हैं । अन्ते ! मैं भगवान् को प्रवृत्त करता हूँ—भगवान् ने हममें कोई शारीरिक या वाचसिक दोष तो नहीं देखा है ?

सारिपुत्र ! मैंने शरीर या बचन के दोष करते तुम्हें कभी नहीं पाया है । सारिपुत्र ! तुम परिहृत हो पुनर्वाच हो महाप्रज्ञावान् हो तुम्हारी प्रज्ञा प्रसन्न सर्वगामी तीक्ष्ण और अपराजित है । सारिपुत्र ! जैसे चक्रवर्ती राजा का जेय पुत्र पिता के प्रवर्तित चक्र का सम्यक् प्रवर्तन करता है वैसे ही तुम मेरे प्रवर्तित अनुत्तर परमवचन का सम्यक् प्रवर्तन करते हो ।

अन्ते ! यदि भगवान् हममें कोई शारीरिक या वाचसिक दोष नहीं पाते हैं तो भगवान् हम पौष से मिश्रुओं में भी कोई दोष नहीं पावेंगे ।

सारिपुत्र ! हम सब पौष से मिश्रुओं में भी कोई दोष नहीं पाते हैं । सारिपुत्र ! इन पौष से मिश्रुओं में भी साक मिश्रु अयिच साक मिश्रु पद्मिष्ठ साक मिश्रु होनी भाग से मिश्रु, और दूरे प्रज्ञा-विशुद्ध हैं ।

तब आयुष्मान् यज्ञीश आसन से उठ, उपरवी को एक कंधे पर सम्माक भगवान् की ओर हाथ जोड़कर बोल—भगवान् ! मैं कुछ कहना चाहता हूँ । उर । मुझे कुछ कहने का अवकाश मिले ।

भगवान् बोले—वह्नीश ! अवकाश है, कहो ।

तब आयुष्मान् वह्नीश ने भगवान् के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं में उनकी स्तुति की—

आज पञ्चदशी को त्रिशुद्धि के निमित्त,
पाँच सौ भिक्षु एकत्रित हुये हैं,
(दश) मानसिक बन्धनों के काटनेवाले,
निष्पाप, पुनर्जन्म से मुक्त ॥
जैसे चक्रवर्ती राजा अमात्यों के साथ,
चारों ओर घूम आता है,
समुद्र तरु पृथ्वी के चारों ओर,
वैसे ही, विजित-सग्राम, अनुत्तर नायक की,
उपासना उनके श्रावक-गण करते हैं,
त्रैविद्य, मृत्यु को जीतनेवाले ॥
सभी भगवान् के पुत्र हैं, इसमें कुछ अत्युक्ति नहीं है,
तृष्णारूपी शत्रु को काटनेवाले,
उन सूर्यवशोत्पन्न बुद्ध को नमस्कार हो ॥

§ ८. परोसहस्स सुत्त (८.८)

बुद्ध-स्तुति

एक समय भगवान् साढ़े बारह सौ भिक्षुओं के बड़े सघ के साथ श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

उस समय भगवान् ने निर्वाण-सम्पन्धी धर्मोपदेश कर भिक्षुओं को दिखा दिया । भिक्षु लोग भी बड़े आदर से मन लगाकर ध्यानपूर्वक कान दिये सुन रहे थे ।

तब आयुष्मान् वह्नीश के मन में यह हुआ—यह भिक्षु लोग भी कान दिये सुन रहे हैं । तो क्यों न मैं भगवान् के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं में उनकी स्तुति करूँ ।

तब आयुष्मान् वह्नीश आसन से उठ [पूर्ववत्] ।

तब आयुष्मान् वह्नीश ने भगवान् के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं में उनकी स्तुति की—

हजार से भी ज्यादा भिक्षु बुद्ध को घेरे हैं,
जो त्रिरज धर्म-उपदेश रहे हैं,
भय से शून्य निर्वाण के विषय में ॥
उस विमल धर्म को सुन रहे हैं,
जिसे सम्यक् सम्बुद्ध बतला रहे हैं,
मनुष्य के बीच बुद्ध बड़े शोभ रहे हैं ॥
भगवान् का नाम नाग है, ऋषियों में सातवाँ ऋषि हैं,
महाभेष-सा हो, श्रावको पर वर्षा कर रहे हैं ॥
दिन के विहार से निकल बुद्ध के दर्शन की इच्छा से,
हे महावीर ! मैं वह्नीश आपका श्रावक चरणों पर, प्रणाम करता हूँ ॥

वह्नीश ! तुमने क्या इन गाथाओं को पहले ही बना लिया था अथवा इसी क्षण सूझी हैं ?

❧ विषयी बुद्ध से लेकर सातवें ऋषि (= बुद्ध)—अटकथा ।

अन्ते ! मैंने हज गाथाओं को पढ़के ही नहीं समा किया था इसी क्षण सूखी हैं ।

तो बह्नीश ! और भी कुछ बड़े गाथाओं को शिष्टों तुमने पढ़के कमी नहीं रखा है ।

अन्ते ! बहुत अष्टम' कह, आयुष्मान् बर्हीस मगवान् को उत्तर दे पढ़के कमी नहीं रची गई
नई गाथाओं में मगवान् की स्तुति करने लगीः—

भार के कुमार्ग को भीत
मन की गौँठों को काटकर बिचरते हैं
बन्धन से मुक्त करनेवाक उन्हें देखो
स्वच्छन्द छोड़ों को (स्तुति प्रत्याग आदि जम्मास) बाँटते-बूटते ॥
बाह के निस्तार के किये
अनेक प्रकार से मार्ग को बताया
आपके उस अमृत-पद बताने पर
भरने के शानी अजैय हो गये ॥
पैदर प्रकास देनेवाके
उक्त से उक्त उद्देश्य को पार कर आपने देष्ट किया
बायकर और साक्षात्कार कर
सबसे पहले ज्ञान की बातें बताई ॥
इस प्रकार के धर्मोपदेश करने पर
भरने आपनेवाकों को प्रसाद कैसा !
इसकिये उक्त मगवान् के शासन में
सदा अममय हो नजरा से अम्मास करे ॥

§ ९ कोण्डव्य सुत (८ ९)

अम्मा-कोण्डव्य के गुण

एक समय मगवान् राजगृह में वेलेखन नखनक विवक्षय में पिहार करते थे ।

तब आयुष्मान् अम्मा-कोण्डव्य बहुत कष्ट के बाद वहाँ मगवान् थे वहाँ लगे । बाँकर
मगवान् के पैरों पर सिर टैक मगवान् के बरजों को मुख से चूमने लगे और हाथ से पीछने लगे । और
अपना नाम धुलाने लगे—मगवान् ! मैं कोण्डव्य हूँ । कुछ ! मैं कोण्डव्य हूँ ।

तब आयुष्मान् चह्नीश के मुख में यह हुआ—यह आयुष्मान् अम्मा-कोण्डव्य अपना
नाम सुना रहे हैं । तो मैं मगवान् के सम्मुख अम्मा-कोण्डव्य की उपयुक्त गाथाओं में प्रार्थना करूँ ।
[पूर्ववत्]

तब आयुष्मान् चह्नीश मगवान् के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं में आयुष्मान् अम्मा-कोण्डव्य
की प्रार्थना करने लगे—

कुछ के बताये शाह की जलनेवाके स्थितिर पदे उत्साही कोण्डव्य
धुलपूर्वक विहार करनेवाके परम शाह की पहुँचे हुये
कुछ के शासन में रह किसी याचक से जो कुछ प्राप्त किया जा सकता है
यह सभी आपको प्राप्त है आपको जो अममय हो अम्मास करते हैं
यदे प्रतापी प्रपिच ह्वरों के चित को भी जान जानी वाले
कुछ-आपक कोण्डव्य मगवान् के चरणों पर बन्दना कर रहे हैं ॥

§ १०. मोग्गल्लान सुत्त (८. १०)

महामौद्गल्यायन के गुण

एक समय भगवान् पाँच सौ केवल अर्हत् भिक्षुओं के एक बड़े सघ के साथ राजगृह में ऋषिगिरि के पास कालशिला पर विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने अपने चित्त से उनके चित्त को विमुक्त और उपाधिरहित हो गया जान लिया।

तब, आयुष्मान् वज्रीश के मन में यह हुआ—यह भगवान् पाँच सौ केवल अर्हत् भिक्षुओं के एक बड़े सघ के साथ राजगृह में ऋषिगिरि के पास कालशिला पर विहार कर रहे हैं। और, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने अपने चित्त से उनके चित्त को विमुक्त और उपाधिरहित हो गया जान लिया। तो, मैं भगवान् के सम्मुख आयुष्मान् महामौद्गल्यायन की उपयुक्त गाथाओं में प्रशंसा करूँ।

तब, आयुष्मान् वज्रीश भगवान् के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं में आयुष्मान् महामौद्गल्यायन की प्रशंसा करने लगे—

पहाड़ के किनारे बैठे हुये, दुःख के पार चले गये मुनि को,
श्रावक लोग घेरे हैं, जो त्रैविद्य और मृत्युञ्जय हैं ॥
महा ऋद्धि-शाली मौद्गल्यायन अपने चित्त से जान लेते हैं,
इन सभी के विमुक्त और उपाधिरहित हो गये चित्त को ॥
इस तरह सभी अंगों से अनेक प्रकार से सम्पन्न,
दुःखों के पार जानेवाले गौतम मुनि की सेवा करते हैं ॥

§ ११. गग्गरा सुत्त (८. ११)

बुद्ध-स्तुति

एक समय भगवान् चम्पा में गग्गरा पुष्करिणी के तीर पर—पाँच सौ भिक्षुओं के एक बड़े सघ के, सात सौ उपासकों के, सात सौ उपासिकाओं के, और कई हजार देवताओं के साथ—विहार करते थे। उनमें भगवान् अपनी कान्ति और यश से बहुत शोभ रहे थे।

तब, आयुष्मान् वज्रीश के मन में यह हुआ— उनमें भगवान् अपनी कान्ति और यश से बहुत शोभ रहे हैं। तो, मैं भगवान् के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं में उनकी स्तुति करूँ—

। तब, आयुष्मान् वज्रीश भगवान् के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं में उनकी स्तुति करने लगे—
मेघ-रहित आकाश में जैसे चाँद,
अपने निर्मल प्रकाश से शोभता है,
हे बुद्ध ! आप महामुनि भी वैसे ही,
अपने यश से सारे लोक में शोभ रहे हैं ॥

§ १२. वज्रीस सुत्त (८. १२)

वज्रीश के उद्दान

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आगम में विहार करते थे।

उस समय, आयुष्मान् वज्रीश अभी तुरत ही अर्हन्-पद पा विमुक्ति-मुख की प्राप्ति का अनुभव कर रहे थे। उस समय उनके मुख से ये गाथाएँ निकल पड़ी—

पहले केवल कविता करते विचरता रहा, गाँव में गाँव और नगर में नगर,

तब, सम्बुद्ध भगवान् का दर्शन हुआ, मन में बड़ी अज्ञा उत्पन्न हुई
 उनसे मुझे प्रमोदवत्त किया स्वर्ग्य आपतन और पातुओं के विषय में
 उनके धर्म को सुन मैं घर से बचर हो प्रदक्षित हो गया ।
 बहूतों की अर्थसिद्धि के लिए, मुनि में बुद्धत्व का काम किया
 मित्र और मित्रजियों के लिए, जो विषय को प्राप्त कर देख किये हैं ॥
 आपको मरा स्वागत हो, धुय के पास मुझे
 तीन विचार्य प्राप्त हुई हैं, बुद्ध का शासन सफल हुआ ॥
 पूर्वजन्मों की बात आगता हैं, विषय यन्त्र विष्णु हो गया है
 प्रेक्षित और कश्चित्ता हैं, दूसरों के विषय को आगता हैं ॥

यहीश संयुक्त समाप्त ॥

नवाँ परिच्छेद

९. वन-संयुक्त

§ १. विवेक सुत्त (९.१)

विवेक में लगना

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय कोई भिक्षु कोशल के एक जगल में विहार करता था ।

उस समय वह भिक्षु दिन के विहार के लिये गया बुरे ससारी वितर्कों को मन में ला रहा था ।

तब, उस वन में वास करनेवाला देवता उस भिक्षु पर अनुकम्पा कर, उसकी शुभ कामना से उसे होश में ले आने के लिये, जहाँ वह भिक्षु था वहाँ आया । आकर, भिक्षु से गाथाओं में बोला—

विवेक की कामना से वन में पड़े हो,
किन्तु तुम्हारा मन बाहर भाग रहा है,
दूसरों के प्रति अपनी इच्छा को व्याधो,
और, तब वीतराग होकर सुखी होवो ॥
स्मृतिमान् हो मन के मोह को छोड़ो,
सत्पुरुष बनो, जिसकी सभी बड़ाई करते हैं,
नीचे और बुरे,
काम-राग से तुम बहक मत जाओ ॥
पक्षी जैसे धूल पड़ जाने पर,
पाँखें फटफटाकर उसे उड़ा देता है,
वैसे ही, उत्साही और स्मृतिमान् भिक्षु,
मन के राग को फटफटाकर क्षाब्ध देता है ॥

तब, देवता के ऐसा कहने पर वह भिक्षु सम्भल कर होश में आ गया ।

§ २. उपट्ठान सुत्त (९.२)

उठो, सोना छोड़ो

एक समय कोई भिक्षु कोशल के एक जगल में विहार करता था ।

उस समय वह भिक्षु दिन के विहार के लिये गया सो रहा था ।

तब, उस वन में वास करनेवाला देवता उस भिक्षु पर अनुकम्पा कर, उसकी शुभ कामना से उसे होश में ले आने के लिये, जहाँ वह भिक्षु था वहाँ आया । आकर, भिक्षु से गाथाओं में बोला—

उठो भिक्षु ! क्या सोते हो ! तुम्हें सोने से क्या काम ?

तीर लगे छटपटाते हुये बैचैन आदमी को भला नींद कैसी ?

जिस भद्रा से घर स वेपर होकर प्रवर्जित हुये हो
उस भद्रा को बगामो जीव के वश में मत पड़ो ॥

[मिश्र—]

सांसारिक काम अभित्य और व्यग्र है जिनमें मूर्ख लुभाये रहते
को स्वच्छन्द और बन्धन से मुक्त है उस प्रवर्जित को वे क्यों सतावें ?
छन्द-राग कं वृष जाने से अविद्या के सर्वथा हट जाने से
जिसका ज्ञान झुझ हो गया है उस प्रवर्जित को वे क्यों सतावें ?
विद्या से अविद्या को हटा आधर्मों के क्षीण हो जाने से
को शोक और परेतापी स छूटा है उस प्रवर्जित को वे क्यों सतावें ?
को बीर्यवान् और प्रवृत्तात्मा है विरह हट पराक्रम करनेवाला है
निजान की चाह रखनेवाले उस प्रवर्जित को वे क्यों सतावें ?

§ ३ कस्तपगात्र सूच (९ ३)

बहेलिया को उपदेश

एक समय आयुप्मान् कादयपगोत्र कीशक के किसी वन-छाव में बिहार करते थे ।
उस समय आयुप्मान् कादयपगोत्र दिन के बिहार के छिये गये हुये एक बहेलिये को उपदेश
दे रहे थे ।

तब उस वन में वाम करनेवाला वैशता आयुप्मान् कादयपगोत्र से गाथाओं में बोला—

प्रजापति सूर्य सुरंग राक्ष पहाड़ में रहनेवाले बहेलिये की
मिथु ! बेचल्य उपदेश करते हुये आप मुझे मन्द माध्य होते हैं ॥
सुखता है किन्तु समझता नहीं ज्यों चीकता है किन्तु वैपता नहीं
धर्मोपदेश किन्तु जाने पर सूर्य अर्थ को नहीं वृत्ता ॥
कादयप ! यदि आप इस मसाक जी विद्यामें
तो वह रूपों को यही देण सकता है,
इस को ज्यों है नहीं है ॥

वैशता क प्रसा कहने पर आयुप्मान् कादयपगोत्र होश में आकर सँभल गये ।

§ ४ सम्बहुल सूच (९ ४)

मिथुओं का स्वच्छन्द विहार

एक समय कुछ मिथु कोणाल के किसी वन-छाव में बिहार करत थे ।
तब तीन महीना वर्षावाम बीत जाने पर व मिथु समत (स्वच्छिका) के लिये वन पड़े ।
तब उस वन में वाम करनेवाला वैशता उन मिथुओं का न देख विम्वर करना दुष्प्र उस समय
वे गाथाये बोला—

आज मुझे बहुत उदास-ता माध्यम है रहा है
इस जलैक आसनों की गाली देणकर
वे ज्यों ही वी बातें करदेवाण बनिहम
मात्रम के भावक वहाँ चल गये ?

उसके ऐसा कहने पर, एक दूसरे देवता ने उसे गाथा में उत्तर दिया—

मगध को गये, कोशल को गये,
और कितने वज्जियों के देश को गये,
छूटे मृग जैसे स्वच्छन्द विचरनेवाले,
बिना घरवाले भिक्षु लोग विहार करते हैं ॥

§ ५. आनन्द सुत्त (९. ५)

प्रमाद न करना

एक समय आयुष्मान् आनन्द कोशल के किसी वन-खण्ड में विहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् आनन्द को गृहस्थ लोग बड़े घेरे रहते थे ।

तब, उस वन में वास करनेवाला देवता आयुष्मान् आनन्द पर अनुकम्पा कर, उनकी शुभ कामना से उन्हें होश में ले आने के लिये, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ आया । आकर, आयुष्मान् आनन्द से गाथाओं में बोला —

इस जगल झाड़ में आकर,
हृदय में निर्वाण की आकांक्षा से,
हे गौतम श्रावक ! ध्यान करें, प्रमाद मत करें,
इस चहल-पहल से आपका का क्या होना है ?

देवता के ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनन्द होश में आकर सँभल गये ।

§ ६. अनुरुद्ध सुत्त (९. ६)

संस्कारों की अनित्यता

एक समय आयुष्मान् अनुरुद्ध कोशल के किसी वन-खण्ड में विहार करते थे ।

तब, त्रयस्त्रिंश लोक की जालिनी नामक एक देवता, जो आयुष्मान् अनुरुद्ध की पहले जन्म में भार्या थी, जहाँ आयुष्मान् अनुरुद्ध थे वहाँ आई । आकर आयुष्मान् अनुरुद्ध से गाथा में बोली —

उसका ज़रा रूयाल करें जहाँ आपने पहले वास किया था,
त्रयस्त्रिंश देव-लोक में, जहाँ सभी प्रकार के ऐश-आराम थे,
जहाँ आप सदा देवकन्याओं से घिरे रहकर शोभते थे ॥

[अनुरुद्ध—]

अपने ऐश-आराम में लगीं, उन देवकन्याओं को धिक्कार है,
उन जीवों को भी धिक्कार है, जो देवकन्याओं को पाने में लगे हैं ॥

[जालिनी—]

वे सुख को भला, क्या जानें, जिनने नन्दन-वन नहीं देखा ।
त्रयस्त्रिंश लोक के यशस्वी, नर और देवों का जो वास है ॥

[अनुरुद्ध—]

मूर्खें, क्या नहीं जानती है, कि अर्हतां ने क्या कहा है ?
सभी संस्कार अनित्य हैं, उत्पन्न और क्षीण होनेवाले,

उत्पन्न होकर बिरुद्ध हो जाते हैं उनका शास्त्र हो जाना ही सुप्त है ॥
फिर भी देह भरना नहीं है

हे आदिनि ! किसी भी देहछोक में
आवागमन का सिद्धिसिद्धा बन्द हो गया
पुनर्जन्म अब होने का नहीं ॥

§ ७ नागदत्त सूच (१७)

बेर तक गाँवों में खूना भण्डा नहीं

एक समय नागदत्त कोशाल के किसी बग-पगड में बिहार करते थे ।
उस समय आधुप्यान् नागदत्त उसके ही गाँव में पैठ जाते थे भार बड़ा दिन बिठाकर छीटते थे ।
तब उस बग में बास करनेवाका देवता आधुप्यान् नागदत्त पर अनुकम्पा कर, उनकी क्षुम-
कमया से उन्हें होश में के जाने के किये जहाँ आधुप्यान् नागदत्त थे वहाँ आया । आकर, आधुप्यान्
नागदत्त से गाथाओं में बोका—

नागदत्त ! तबक ही गाँव में पैठ
बहुत दिन बड़ जाने पर सीरते हो
गुरुप्यों से बहुत हिंसे-मिसे विचरते हो
बनके सुप्त-गुप्त में सुखी-कुली हाते हो ॥
बड़े प्रगल्भ नागदत्त को डराता हूँ
कुलों में बीजे हुये को
मत्त बकवान् मृत्युराज,
जन्तक के बस में पड़ जाता ॥

तब देवता के पैसा कहने पर आधुप्यान् नागदत्त सँमककर होक में आ गये ।

§ ८ कुलधरणी सूच (१८)

सह सेना उत्तम है

एक समय कोई मिथु कोशाल में किसी बग-पगड में बिहार करता था ।
उस समय वह मिथु किसी गृहस्थ-कुल में बहुत बेर तक बसा रहता था ।
तब उस बग में बास करनेवाका देवता उस मिथु पर अनुकम्पा कर उसकी क्षुम-कमया से
उसे होश में के जाने किये उस कुल की ओ कुल-गृहणी थी उसका रूप बर जहाँ वह मिथु था वहाँ
आया । आकर मिथु से गाथा में बोका—

बही के तीर पर, सराय में समा में सबको पर
योग आपस में बातें करते हैं—हमारे-तुम्हारे में क्या भेद है ?

[मिथु—]

बातें बहुत कैक गई हैं उपली को सहजी चाहिये
उससे कहावा नहीं पड़ेगा उससे कहवासी नहीं होगी ॥
को सम्पत् सुनकर पीक जाता है जंगल के मृग जैसे
वसे योग कष्ट-विच कहते हैं उसका मत नहीं पूरा होता ॥

§ ९. वज्जिपुत्त सुत्त (९ ९)

भिक्षु जीवन के सुख की स्मृति

एक समय कोई वज्जिपुत्त भिक्षु वैशाली के किसी वन खण्ड में विहार करता था ।

उस समय, वैशाली में सारी रात की जगोनी (एक पर्व) हो रही थी ।

तब, वह भिक्षु वैशाली में बाजे गाजे के शब्द को सुनकर पछताते हुये उस समय यह गाथा बोला—

हम लोग अपने अलग एकान्त जगल में पड़े हैं,
 वन में कटे हुये लकड़ी के कुन्दे की तरह,
 आज जैसी रात को भला,
 हम लोगों को छोड़ दूसरा कौन अभाग्य होगा ॥

तब, उस वन में वास करनेवाला देवता भिक्षु से गाथा में बोला —
 आप लोग अपने अलग एकान्त जगल में पड़े हैं,
 वन में कटे हुये लकड़ी के कुन्दे की तरह,
 आप को देख बहुता को ईर्ष्या होती है,
 स्वर्ग में जानेवालों को देख जैसे नरक में पड़े हुआ को ॥

तब, देवता के ऐसा कहने पर वह भिक्षु संभलकर होश में आ गया ।

§ १०. सज्झाय सुत्त (९ १०)

स्वाध्याय

एक समय कोई भिक्षु कोशल के एक वन-खण्ड में विहार करता था ।

उस समय वह भिक्षु—जो पहले स्वाध्याय करने में बड़ा वज्रा रहता था—उत्सुकता-रहित हो चुपचाप अलग रहा करता था ।

तब, उस वन में रहनेवाला देवता उस भिक्षु के धर्म-पठन को न सुन जहाँ वह भिक्षु था वहाँ आया, और गाथा में बोला —

भिक्षु ! क्यों आप उन धर्मपदों को,
 भिक्षुओं से मिलकर नहीं पढ़ा करते हैं ?
 धर्म को पढ़कर मन में सन्तोष होता है,
 बाहरी ससार में भी उसकी बड़ी बड़ाई होती है ॥

[भिक्षु—]

पहले धर्मपदों को पढ़ने की ओर मन बढ़ता था,
 जब तक वैराग्य नहीं हुआ,
 जब पूरा वैराग्य चला आया,
 तो सन्त लोग देखे सुने आदि पदार्थों को,
 जानकर त्याग कर देना कहते हैं ॥

§ ११. अयोनिस्स सुत्त (९ ११)

उचित विचार करना

एक समय कोई भिक्षु कोशल के किसी वन-खण्ड में विहार करता था ।

उस समय, दिन के विहार के लिये गये उस भिक्षु के मन में पाप-विचार उठने लगे, जैसे —
 काम-विचार, व्यापाद-विचार, विहिंसा-विचार ।

तब उस वन-खण्ड में रहनेवाला देवता उस मिथु पर अनुकम्पा कर उसकी छुमेच्छा से, उस को होस में ले आने के लिये जहाँ वह मिथु जा बहो गया । आकर मिथु से गाथाओं में बोला—

बड़ीक मग्न करने से आप जुरे बिचारों में पड़े हैं
इन जुरे बित्तों को छाड़ उचित बिचार मन में काबें ।
मुझ धर्म संघ में अज्ञा रख भीक का पाकन करते हुए
बड़े धानम्प जीर प्रीतिसुख का अकम्प काम करोगे
उस आबन्ध को पा बुझों का अन्ध कर दोगे ॥

देवता के पेया करने पर वह मिथु होस में आकर सँभल गया ।

§ १२ मज्झन्तिक सुच (९ १०)

जंगल में मंगल

एक समय कोई मिथु कोशाल के किसी वन-खण्ड में बिहार करता था ।

तब उस वन में बास करनेवाला देवता जहाँ वह मिथु जा बहो गया । आकर मिथु से यह गाथा बोला—

इस बीच हुएहरिये में जब पक्षी घोंसके में छिप गये हैं
सारा जंगल झोंब-झोंब कर रहा है सो मुझे डर सा लगता है ॥

[मिथु—]

इस बीच हुएहरिये में जब पक्षियाँ घोंसके में छिप गये हैं
सारा जंगल झोंब झोंब कर रहा है सो मुझे पक्षी प्रीति होती है ॥

§ १३ पाकतिन्द्रिय सुच (९ ११)

दुराचार के दुःपुण्य

एक समय कुछ मिथु कोशाल के किसी वन-खण्ड में बिहार करते थे । वे बड़े उद्धत उद्धत पाण्ड बड़बानी पूरी बातें करनेवाले मग्न असमग्र अमसाहित बिभ्रान्तचित्त और दुराचारी थे ।

तब उस वन में बास करनेवाला देवता उन मिथुओं पर अनुकम्पा कर उनकी छुमेच्छा से उन्ह हास में ले आने के लिये जहाँ वे मिथु थे बहो आया । आकर उन मिथुओं से गाथा में बोला—

[देवी १. ३. § १.]

§ १४ पटुमपुण्ण सुच (९ १४)

यिमा त्रिच पुण्य मूँघना भी खारी है

एक समय कोई मिथु कोशाल के किसी वन-खण्ड में बिहार करता था ।

उस समय वह मिथु मित्रादन से लड़ भीजन कर लेने के बाद पुण्डरीनी में पैदल एक वध जा गँव रहा था ।

तब उस वन में रहनेवाला देवता [दूरवर] मिथु से गाथा में बोला—

ओ इग बारिज पुण्य को खारी मे मूँघ रहे हो

मैं एक बहार की खीरी हूँ मैं बारिज ! आप मग्न कर रहे हैं ॥

दसवाँ परिच्छेद

१० यक्ष-सयुक्त

§ १ इन्द्रक सुच (१० १)

पैदाइश

एक समय भगवान् राजगृह में इन्द्रकूट पर्वत पर इन्द्रक वक्ष के भवन में बिहार करते थे ।
तब इन्द्रक वक्ष वहाँ भगवान् से वहाँ आया । आकर, भगवान् से गाथा में बोका—

रूप कीव नहीं है ऐसा तुझ कहते हैं

तो यह शरीर कैसे पाठा है ?

बह अस्वपिण्ड कहीं से आता है ?

यह शरीरिण में कैसे पक्ष आता है ?

[भगवान्—]

पहले कण्ठ होता है कण्ठ से अङ्गुष्ठ होता है

अङ्गुष्ठ से पेसी पैदा होता है पेसी फिर धब हो जाता है

धन से शृङ्गर केरा कोम कीर तब पैदा हो पाते हैं

जो कुछ लक्ष पाप या मोहन को माता जाती है

उसी से उसका पोषण होता है—माता की कोप में पक्ष हुए मनुष्य का व

§ २ सक सुच (१० २)

उपदेश वेना वग्धन नहीं

एक समय भगवान् राजगृह में शृङ्गकूट पर्वत पर बिहार करते थे ।

तब द्राक्ष नाम का एक वक्ष वहाँ भगवान् से वहाँ आया । आकर भगवान् से गाथा में बोका—

खिलकी समी गोंदें कर गई हैं मृदुलिमाक्ष कीर विमुक्त हुए,

जाय अमन को यह लज्ज नहीं कि दूसरी की उपदेश देते फिरें व

[भगवान्—]

सक ! किसी तरह भी किसी का संवास हो जाता है

तो आत्मी पुरुष के मन में उसके प्रति अनुकम्पा हो जाती है

प्रपन्न मन से जो दूसरे को उपदेश देता है

अमन वह वग्धन में नहीं पड़ता अपनी अनुकम्पा अपने में जो पैदा होती है व

§ ३ सुखिलोम सुच (१० ३)

सुखिलोम यक्ष के प्रदल

एक समय भगवान् गाथा में दक्षिणमण्ड पर सुखिलोम वक्ष के भवन में बिहार करते थे ।

उस समय दार भीर सुखिलोम नाम के दो वक्ष भगवान् के पास ही से गुजर रहे थे ।

तब, खर यक्ष सूचिलोम यक्ष से बोला—अरे ! यह श्रमण है !

श्रमण नहीं, नकली श्रमण है । तो, जानना चाहिये कि यह सचमुच मैं श्रमण है या ढोंगी है ।

तब, सूचिलोम यक्ष जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर, भगवान् से अपने शरीर को टकरा देना चाहा ।

भगवान् ने अपने शरीर को खींच लिया ।

तब, सूचिलोम यक्ष भगवान् से बोला—श्रमण ! मुझसे डर गये क्या ?

आवुस ! तुमसे मैं डरता नहीं, किन्तु तुम्हारा स्पर्श अच्छा नहीं ।

श्रमण ! मैं तुमसे प्रश्न पूछूँगा । यदि उनका उत्तर तुम नहीं दे सके तो तुम्हें बटहवाश कर दूँगा, तुम्हारी छाती को चीर दूँगा, या पैर पकड़कर गङ्गा के पार फेंक दूँगा ।

आवुस ! मैं सारे लोक में किसी को ऐसा नहीं देखता हूँ जो मुझे बटहवाश कर दे, मेरी छाती को चीर दे, या पैर पकड़कर मुझे गङ्गा के पार फेंक दे । किन्तु तौ भी, जो चाहे प्रश्न पूछ सकते हो ।

[यक्ष—]

राग और द्वेष कैसे पैदा होते हैं ?

उदासी, मन का लगना और भय से रोंगटे खड़ा हो जाना ।

इसका क्या कारण है ?

मन के वितर्क कहीं से उठकर खींच ले जाते,

जैसे कौये को पकड़कर लड़के लोग ?

[भगवान्—]

राग और द्वेष यहाँ से पैदा होते हैं,

उदासी, मन का लगना का कारण यही है,

मन के वितर्क यहीं से उठकर खींच ले जाते हैं,

जैसे कौये को पकड़कर लड़के लोग ॥

स्नेह में पड़कर अपने में पैदा होनेवाले,

जैसे वरगढ़ की शाखायें,

कामों में पसरकर फैली,

जगल में मालुवा लता के समान ॥

जो उसके उत्पत्ति-स्थान को जान लेते हैं,

वे उसका दमन करते हैं, हे यक्ष ! सुनो,

वे इस दुस्तर धारा को पार कर जाते हैं,

जिसे पहले नहीं तरा या उनका पुनर्जन्म नहीं होता ॥

§ ४. मणिभद्र सुत्त (१०. ४)

स्मृतिमान् का सदा कल्याण होता है

एक समय भगवान् मगध में मणिमालक चैत्य पर मणिभद्र यक्ष के भवन में विहार करते थे ।

तब, मणिभद्र यक्ष जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर, भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

स्मृतिमान् का सदा कल्याण होता है, स्मृतिमान् को सुख होता है,

वही श्रेष्ठ है जो स्मृतिमान् है, और, वही वैर से छूट जाता है ॥

[मगधान्—]

स्मृतिमान् क्य सदा कस्याण होता है स्मृतिमान् को सुक होता है
 बही भेष्ट है जो स्मृतिमान् है वह बैर स विष्णुछ हूह नहीं जाता ॥
 जिसका मन त्रिन-रात अहिमा में लगा रहता है
 सभी जीवों के प्रति जो सदा मैत्री-भावना करता रहता है
 उस किसी के साथ बैर नहीं रह जाता ॥

§ ५ सानु सुच (१० ५)

उपोसथ करनेवाले को यक्ष नहीं पीड़ित करते

एक समय मगधान् ध्यायस्ती में अनाद्यपिण्डिक के उत्तेजन कारण में बिहार करत थे ।
 उस समय किसी उपासिक का सानु नामक पुत्र यक्ष से पकड़ लिया गया था ।
 तब वह उपासिक रोती हुई उस समय यह गाथा बोली—

मैंने अर्हत्तों की पूजा की मैंने अर्हत्तों की बात सुनी
 वह मैं आज देखती हूँ—यक्ष लोग सानु पर सवार हैं ॥
 षड्गुप्ती पञ्चगुप्ती पक्ष की अष्टमी
 और प्रातिहार्य पक्ष को अष्टांग मत पाकरी हुई
 उपोसथ मत रखती हुई अर्हत्तों की बात सुननेवाली
 वह मैं आज देखती हूँ सानु पर यक्ष सवार हैं ॥

[यक्ष—]

षड्गुप्ती पञ्चगुप्ती पक्ष की अष्टमी
 और प्रातिहार्य पक्ष की अष्टांग मत पाकरी
 उपोसथ मत रखते, तथा महाचर्य पाकनेवालों के साथ
 यक्ष लोग छेड़-छाड़ नहीं करते
 अर्हन् लोग यही कहते हैं ॥
 प्रबुद्ध सानु को यक्षों की इस बात का वह जो
 पाप-कर्म मत करना प्रगट या छिपकर
 यदि पाप कर्म करोगे या करते हो
 तो तुम्हें हुन्य स जमी मुक्ति नहीं हो सगरी
 यदि किन्ता भी जाओ या नष्टो-करो ॥

[सानु—]

मैं ! पुत्र के मर जाने से मालाएँ रोती हैं
 अपना यदि जानें पुत्र का नहीं देख सकती हों
 मैं ! मुझे जीमि देखती हुई थी
 यथाकर मेरे लिये ही नहीं था ।

[माला—]

पुत्र के मर जाने से मालाएँ रोती हैं
 अपना यदि जानें पुत्र का नहीं देख सकती हों
 और उगड़े दिव भी मैं शोक कर नहीं आता है

पुत्र, उमके लिये भी रोती है,
जो मरकर फिर भी जी उठता है,
हे तान ! तुम एक विपत्ति से निकलकर दूसरी में पड़ना चाहते हो,
एक नरक से निकल कर दूसरे में गिरना चाहते हो,
आगे घड़ी, तुम्हारा कल्याण हो,
किसे हम कष्ट दें ?
जलते हुए से कुशलपूर्वक निकले हुये को,
क्या तुम फिर भी जला देना चाहते हो ?

§ ६. प्रियङ्कर सुत्त (१० ६)

पिशाच-योनि से मुक्ति के उपाय

एक समय आयुष्मान् अनुरुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् अनुरुद्ध रात के भिनसारे उठकर धर्मपदों को पढ़ रहे थे ।

तब, प्रियङ्कर माता यक्षिणी अपने पुत्र को यों ठोंक रही थी—

मत शोर मचाओ, हे प्रियङ्कर !
भिक्षु धर्मपदों को पढ़ रहा है,
यदि हम धर्मपदों को जानें
और आचरण करें तो हमारा हित होगा,
जीवों के प्रति मयम रखें,
जान-बूझकर झूठ मत बोलें,
और इस पिशाच-योनि से मुक्त हो जावें ॥

§ ७. पुनर्वसु सुत्त (१० ७)

धर्म सबसे प्रिय

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

उस समय भगवान् भिक्षुओं को निर्वाण सम्बन्धी धर्मोपदेश कर रहे थे । भिक्षु भी कान दिये सुन रहे थे ।

तब, पुनर्वसु-माता यक्षिणी अपने पुत्र को यों ठोंक रही थी—

उत्तरिके ! चुप रहो, पुनर्वसु ! चुप रहो,
कि मैं श्रेष्ठ गुरु भगवान् बुद्ध के धर्म को सुन सकूँ ॥
भगवान् सभी गाँठ से छूटनेवाले निर्वाण को कह रहे हैं,
इस धर्म में मेरी श्रद्धा बढ़ी बढ़ रही है ॥
ससार में अपना पुत्र प्यारा होता है, अपना पति प्यारा होता है,
मुझे इस धर्म की खोज उसमें भी बढ़कर प्यारी है ॥
कोई पुत्र, पति या प्रिय दुःखा से मुक्त नहीं कर सकता,
जैसे धर्म-श्रवण जीवों को दुःखों से मुक्त कर देता है ॥
दुःख से भरे ससार में, जरा और मरण से लगे,

बरा धार मरण से मुक्ति के क्षिप्त जिस धर्म का उदय हुआ है
उस धर्म को सुनना चाहता हूँ ! पुनर्वसु ! उप रहो ॥

[पुनर्वसु—]

मैं ! मैं कुछ न बोखूँगा उच्छरा भी उप है
तुम धर्म भव्य करो धर्म का सुवन्द्य सुख है
सर्वधर्म को जान दे मैं ! इस दुःख को दूर देंगे ॥
अन्धकार में पड़े वैद्यता और मनुष्यों में सुरक्ष के समान,
परमेश्वर भगवान् पुत्र खानी धर्मोपदेश करते हैं ॥

[माता—]

मेरी काँच स पैदा हुआ तुम पण्डित पुत्र बन्धु हो
मेरा पुत्र तुम के सुख धर्म पर भ्रष्टा रहता है ॥
पुनर्वसु ! सुखी रहो, आज मैं ऊपर उठ गई,
आर्य-सत्ता का दर्शन हो गया
उच्छरे ! तुम भी मेरी बात सुनो ॥

§ ८ सुदृष्ट सुष्ठ (१० ८)

अनाथपिण्डिक द्वारा पुत्र का प्रथम दर्शन

एक समय भगवान् राजगृह के दीर्घवन में विहार करते थे ।

उस समय अनाथपिण्डिक गृहपति किसी काम से राजगृह में जाया हुआ था ।

अनाथपिण्डिक गृहपति ने सुना कि संसार में कुछ उत्पन्न हुआ है । उसी समय वह भगवान् के दर्शन के किये स्थापित हो गया ।

तब अनाथपिण्डिक गृहपति के मन में ऐसा हुआ—आज जबकि भगवान् की देखने का अल्प समय नहीं है । कष्ट उचित समय पर उनके दर्शन की चर्खागा । कुछ को बाद करतै-करतै सो गया । सुबह हो गया समस्त रात में तीस बार उठ गया ।

तब अनाथपिण्डिक गृहपति जहाँ सिन्धु-द्वार (समझान का काठक) था वहाँ गया । भ्रमणियों ने द्वार प्योक्त दिया ।

तब अनाथपिण्डिक गृहपति के बगल से निकलने पर प्रकाश हुए गया और भिँसेरा छ गया । भय से वह स्तब्ध हो गया उसके हाँवने लगे हो गये । वहाँ से फिर कीद जाने की इच्छा होने लगी ।

तब इतिवत्त बह अग्रपक्ष रूप से ही शब्द सुनाने लगा ।

सी बोले सी हाथी सी बाणोंका रथ

मोती-माजिरव के पुच्छन पहने माल कम्पाये;

ये सभी तुम्हारे हूय एक बैग के शोकहर्षे हिस्से के भी बराबर नहीं हैं ॥

गृहपति ! जागे बढ़ो गृहपति ! जागे बढ़ो

तुम्हारा भागे बढ़ना ही अल्प है पीछे हटना नहीं ॥

तब अनाथपिण्डिक गृहपति के सामने से अल्पकर हुए गया और प्रकाश फैल गया । मारा भय शांत हो गया ।

द्विती बार भी

तीसरी बार भी अनाथपिण्डिक के सामने से प्रकाश हट गया और अन्धकार छा गया। भय से वह स्तम्भित हो गया, उसके रोंगटे खड़े हो गये। वहाँ से फिर लौट जाने की इच्छा होने लगी। तीसरी बार भी जीवक यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से ही शब्द सुनाने लगा।

[पूर्ववन]

तुम्हारा आगे बढ़ना ही अच्छा है, पीछे हटना नहीं ॥

तब, अनाथपिण्डिक गृहपति के सामने से अन्धकार हट गया और प्रकाश फैल गया। सारा भय 'शान्त' हो गया।

तब, अनाथपिण्डिक श्रुतिवन में जहाँ भगवान् थे वहाँ गया।

उस समय भगवान् रात के भिन्नमारे उठकर खुली जगह में टहल रहे थे।

भगवान् ने अनाथपिण्डिक गृहपति को दूर ही से आते देखा। देखकर, टहलने से रुक गये और बिछे आमन पर बैठ गये। बैठकर, भगवान् ने अनाथपिण्डिक गृहपति को यह कहा—सुदत्त ! यहाँ आओ।

अनाथपिण्डिक ने यह देख कि भगवान् मुझे नाम लेकर पुकार रहे हैं, खड़े उनके चरणों पर गिर यह कहा—भन्ते ! भगवान् ने तो सुगमपूर्वक साया ?

[भगवान्—]

महा ही सुख से सोता है, जो निष्पाप और विमुक्त है,
जो कामों में लिप्त नहीं होता, उपाधिरहित हो जा शान्त हो गया है,
सभी आसक्तियों को काट, हृदय के क्लेश को दबा,
शान्त हो गया सुख में सोता है, चित्त की शान्ति पाकर ॥

§ ९. सुक्का सुत्त (१० ९)

शुक्का के उपदेश की प्रशंसा

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दक-निवाप में विहार करते थे।

उस समय शुक्का भिक्षुणी बड़ी भारी सभा के बीच धर्मापदेश कर रही थी।

तब, एक यक्ष शुक्का भिक्षुणी के धर्मोपदेश में अत्यन्त स्तुष्ट हो मदक से मदक और चौराहा में चौराहा घूम-घूमकर यह गाथा बोल रहा था।

राजगृह के लोगो ! क्या कर रहे हो,
दारु पीकर मस्त बने जैसे ?
शुक्का भिक्षुणी के उपदेश नहीं सुनते,
जो अमृत-पद को बरपान रही है,
उस अप्रतिबन्धीय, बिना सेचे ओज से भरे,
(अमृत को) ज्ञानी लोग पीते हैं,
राही जैसे मेघ के जल को ॥

§ १०. सुक्का सुत्त (१० १०)

शुक्का की भोजन-दान की प्रशंसा

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दक-निवाप में विहार करते थे।

उस समय कोई उपासक शुक्का भिक्षुणी को भोजन दे रहा था।

तब गुफा मिथुनी पर अत्यन्त भद्रा रगनेवाला एक पक्ष सड़क से सड़क भार चीराहा में
चीराहा धूम धूम कर यह गाथा बाँक रहा था ।

बहुत भारी पुण्य कमाया
इस प्रज्ञावान् उपासक ने,
जो गुफा को मोझर दिया
उस का सारी प्रशियाँ से विमुक्त हो गई है ॥

§ ११ चीरा सुत्त (१० ११)

चीरा को चीयर-दाम की प्रज्ञासा

बेसुबब कमन्डमिबाप में विहार करत थे ।

उस समय कोई उपासक चीरा मिथुनी का भीतर दे रहा था । तब चीरा मिथुनी पर अत्यन्त
भद्रा रगनेवाला एक पक्ष सड़क से सड़क भार चीराहा से चीराहा धूम-धूम कर यह गाथा बाँक रहा था ।

बहुत भारी पुण्य कमाया
इस प्रज्ञावान् उपासक ने
जो चीरा को भीतर दिया
उस का सारी प्रशियाँ से विमुक्त हो गई है ॥

§ १२ आलस्यक सुत्त (१० १२)

आलस्यक-धम्म

पेसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् आलस्यी में आलस्यक पक्ष के भजन में विहार करते थे ।

तब आलस्यक पक्ष भगवान् से बोला—धम्म ! निकक था ।

“आहुस ! बहुत अच्छा” कह भगवान् निरुस गये ।

धम्म ! भीतर चले जाओ !

“आहुस ! बहुत अच्छा” कह भगवान् भीतर चल जाये ।

बूसरी बार भी ।

तीसरी बार भी ।

“आहुस ! बहुत अच्छा” कह भगवान् भीतर चले जाये ।

बीबी बार भी आलस्यक पक्ष बोला—धम्म ! निकक था ।

आहुस ! मैं नहीं निककता । तुम्हें जो करवा दी करी ।

धम्म ! मैं तुमसे प्रश्न पूछूँगा । यदि उत्तर नहीं दे सके तो तुम्हें बद्धबाध कर दूँगा छठी बार
दूँगा का दैर पकड़ कर शङ्खा के पार पेंक दूँगा ।

आहुस ! सारे कोक मैं मैं किसी को नहीं देखता जो तुम्हें बद्धबाध कर दे, मेरी छाती चीर दे,
या दैर पकड़कर मुझे शङ्खा के पार पेंक दे । किन्तु, तुम्हें जो पूछना है सब मैं पूछ सकते हो ।

[पक्ष—]

पुरुष का सर्वज्ञेय क्या कहा है ?

क्या चेतना हुआ सुख देता है ?

हस्तों में सबसे स्वादिष्ट क्या है ?

कैसा भीमा श्रेष्ठ कहा जाता है ?

[भगवान्—]

श्रद्धा पुरुष का सर्वश्रेष्ठ धन है,
घटोग हुआ धर्म सुग्न देता है,
सत्य रसों में सग्नने स्वादिष्ट है,
प्रजा-पूर्वक जीना श्रेष्ठ कहा जाता है ॥

[यश्च—]

घाढ़ को कैसे पार कर जाता है ?
समुद्र को कैसे तर जाता है ?
कैसे दुःखों का अन्त कर देता है ?
कैसे परिशुद्ध हो जाता है ?

[भगवान्—]

श्रद्धा से घाढ़ को पार कर जाता है,
अप्रमाद से समुद्र को तर जाता है,
वीर्य से दुःख का अन्त कर देता है,
प्रजा से परिशुद्ध हो जाता है ॥

[यश्च—]

कैसे प्रजा का लाभ करता है ?
धन को कैसे कम लेता है ?
कैसे कीर्ति प्राप्त करता है ?
मित्रों को कैसे अपना लेता है ?
इस लोक से परलोक जाकर,
कैसे शोक नहीं करता ?

[भगवान्—]

निर्वाण की प्राप्ति के लिये अर्हत् और धर्म पर श्रद्धा रख,
अप्रमत्त और विचक्षण पुरुष उनकी शुश्रूषा कर प्रजा लाभ करता है ।
अनुकूल काम करनेवाला, परिश्रमी, उत्साही धन कमाता है,
सत्य से कीर्ति प्राप्त करता है, ठेकर मित्रों को अपना लेता है,
ऐसे ही इस लोक से परलोक जाकर शोक नहीं करता ॥
जिम श्रद्धालु गृहस्थ के ये चारों धर्म होते हैं,
सत्य, दम, दृति और त्याग वही परलोक जाकर शोक नहीं करता ॥
हाँ, तुम जाकर दूसरे श्रमण और ब्राह्मणों को भी पूछो,
कि क्या सत्य, दम, त्याग और क्षान्ति से बढ़कर कुछ और भी है ?

[यश्च—]

अब भला, दूसरे श्रमण ब्राह्मणों को क्यों पूछूँ !
आज हमने जान लिया, कि पारलौकिक परमार्थ क्या है,
मेरे कल्याण के लिये ही बुद्ध आलवी में पधारें,
आज हमने जान लिया कि किसको देने का महाफल होता है ॥
सो मैं गाँव से गाँव, और शहर से शहर विचरूँगा,
बुद्ध और उनके धर्म के महत्त्व को नमस्कार करते ॥

इन्द्रक वर्ग समाप्त

यश्च सयुत्त समाप्त

ग्यारहवाँ परिच्छेद

११ शक्र-संयुत

पहला भाग

प्रथम धर्म

वेद्यासुर-संग्राम परिश्रम की प्रशंसा

§ १ सुवीर सुत (११ १ १)

जसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् आबन्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवम आश्रम में बिहार करते थे ।

वहाँ भगवान् ने मिथुओं को आमन्त्रित किया—हे मिथुओ !

‘भद्रम् !’ कहकर मिथुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—मिथुओ ! पूर्वकाल में असुरों ने वनों पर चढ़ाई की । तब देवेन्द्र शक्र ने सुवीर देवपुत्र को आमन्त्रित किया—तात ! वे असुर वनों पर चढ़ाई कर रहे हैं । तात सुवीर ! जाओ उनका सामना करो । मिथुओ ! तब ‘भद्रम् ! बहुत अच्छा’ कह सुवीर देवपुत्र ने शक्र को उत्तर दे गच्छत किये रहा ।

मिथुओ ! तूम्हरी बार भी

मिथुओ ! तीसरी बार भी देवेन्द्र शक्र ने सुवीर देवपुत्र को । सुवीर देवपुत्र गच्छत किये रहा ।

मिथुओ ! देवेन्द्र शक्र सुवीर देवपुत्र का गाथा मैं बोला—

बिना अनुष्ठान भार परिश्रम किये जहाँ सुख की प्राप्ति हो जाती है
सुवीर ! तुम वहीं चले जाओ सुख भी वहीं ले चलो ॥

[सुवीर—]

आत्मसी कादिक त्रियम कुछ भी नहीं किया जाता

सुख सुख है शक्र ! सभी कामों में सकल हाथ का कर दो ॥

[‘नम—’]

जहाँ आत्मसी कादिक अचल सुख पाता है

सुवीर ! तुम वहीं चले जाओ सुख भी वहीं ले चलो ॥

[सुवीर—]

है देवदेव शक्र ! कर्म छाड़ त्रिय सुख का पा

शोक भीर परेशानी सब दूर छोड़ देना कर दो ॥

[शक्र]—

यदि कर्म का छोड़कर कोई कभी नहीं जीता है,
तो निर्वाण ही का मार्ग है, सुवीर ! तुम वहाँ जाओ,
मुझे भी वहाँ ले चलो ॥

भिक्षुओ ! वह देवेन्द्र शक्र अपन पुण्य के प्रताप से त्रयस्त्रिंश देवों पर ऐश्वर्य पा राज्य करते हुये उत्साह और वीर्य का प्रगंभक हैं । भिक्षुओ ! तुम भी, ऐसे स्वाग्नात धर्म-विनय में प्रवृजित हो उत्साह-पूर्वक बड़े माहम से परिश्रम करो अग्राह की प्राप्ति के लिये, नहीं पहुँचे स्थान पर पहुँचने के लिये, नहीं साक्षात्कार किये का साक्षात्कार करने के लिये, इसी में तुम्हारी शोभा है ।

२. सुसीम सुत्त (११ १ २)

परिश्रम की प्रशंसा

श्रावस्ती जेतवन में ।

वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—हे भिक्षुओ !

“मदन्त !” कहकर भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले —भिक्षुओ ! पूर्वकाल में अमुरों ने देवों पर चढ़ाई की । तब, देवेन्द्र शक्र ने सुसीम देवपुत्र को आमन्त्रित किया [शेष पूर्ववत्]

§ ३ ध्वजग सुत्त (११ १ ३)

देवासुर-संग्राम, धिरत्न का महात्म्य

श्रावस्ती जेतवन में ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! पूर्वकाल में एक बार देवासुर-संग्राम छिड़ गया था ।

भिक्षुओ ! तब, देवेन्द्र शक्र ने त्रयस्त्रिंश लोक के देवों को आमन्त्रित किया—हे मारिपो ! यदि रण-क्षेत्र में आप लोगों को डर लगने लगे, आप मन्मिमत हो जायें, आपके रोंगटे खड़े हो जायें, तो उस समय में ध्वजाग्र का अवलोकन करें । मेरे ध्वजाग्र का अवलोकन करते ही आपका सारा भय जाता रहेगा । यदि मेरे ध्वजाग्र को नहीं देख सकें तो देवराज प्रजापति के ध्वजाग्र का अवलोकन करें ।

यदि देवराज प्रजापति के ध्वजाग्र को नहीं देख सकें तो देवराज वरुण के ध्वजाग्र को ।

देवराज ईशान के ध्वजाग्र का अवलोकन करें । इनके ध्वजाग्र का अवलोकन करते ही आपका सारा भय जाता रहेगा ।

भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक्र के, देवराज प्रजापति, वरुण, या ईशान के ध्वजाग्र का अवलोकन करने से कितनों का भय जा भी सकता था और कितनों का नहीं भी जा सकता था ।

तो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि देवेन्द्र शक्र अवीतराग, अवीतद्वेष, अवीतमोह, भीरु, मन्मिमत हो जानेवाला, घबड़ाकर भाग जानेवाला था ।

भिक्षुओ ! किन्तु, मैं तुम से कहता हूँ । भिक्षुओ ! यदि वन में गये, श्रृङ्गागार में पड़े, या वृक्ष-मूल के नीचे बैठे तुम्हें भय लगे, तो उस समय मेरा स्मरण करो—वैसे भगवान् अर्हंत, सम्यक्, सम्बुद्ध, विद्या और चरण से सम्पन्न, सुगति को प्राप्त, लोकाधिप, अनुत्तर, पुरुषों को दमन करने में सारथी के तुल्य, देवताओं और मनुष्यों में बुद्ध, भगवान् हैं ।

भिक्षुओ ! मेरा स्मरण करते ही तुम्हारा सारा भय चला जायगा ।

यदि मरा नहीं तो धर्म का स्मरण करो—मगवान् का धर्म स्वात्पात (= बन्धी तरह बंधित)
मोक्षिक (= देवता ही देवता फल देनेवाला) अक्राहिम् (= बिना देवी के मण्डल होनेवाला) किसी
की भी बाँध में पारा उतरनेवाला निर्बाल ठक से जानेवाला धीर बिजों के द्वारा अपने भीतर ही भीतर
जाना जाने पाया है ।

मिथुभो ! धर्म का स्मरण करते ही तुम्हारा मारा भय बह्य जायगा ।

यदि धर्म का नहीं तो मंत्र का स्मरण करो—मगवान् का आचक्र-मंत्र सुप्रतिपन्न (= अच्छे मार्ग
पर आकर) इ अमुप्रतिपन्न (= नीचे मार्ग पर आकर) है ज्ञान के मार्ग पर आकर है उचित दण से
मारा पर आकर है जो यह पुण्य का बार जोड़ा आठ पुण्य है^१ । यही मगवान् का आचक्र-मंत्र विमन्त्रण
करके योग्य है मन्त्र करने के योग्य है दान देने के योग्य है प्रणाम करने के योग्य है संसार का
अनुत्तर पुण्य-क्षेत्र है ।

मिथुभो ! मंत्र का स्मरण करते ही तुम्हारा मारा भय बह्य जायगा ।

मा क्या ? मिथुभो ! क्योंकि तयागत अहंत् सम्पद् सम्पुद् बीतराग बीतद्वेष बीतमोह
अमय धीर रह है ।

मगवान् ने यह कहा । यह ब्यक्त कुछ ने फिर भी कहा—

अरण्य में या वृक्ष के नीचे हे मिथुभो ! या धूम्रागार में
सम्पुद् का स्मरण करो तुम्हारा भय नहीं रहन पायगा ॥

मोक्षोद्गत तरोत्तम पुद् का यदि स्मरण न करो

ता मोक्षदायक सुदेशित धर्म का स्मरण करो ॥

माक्षदायक सुदेशित धर्म का यदि स्मरण न करो

ता अनुत्तर पुण्य-क्षेत्र मंत्र का स्मरण करो ॥

मिथुभो ! इस प्रकार पुद् धर्म का मंत्र के स्मरण से

भय क्षमिष्ठ हो जाता या रोमाञ्च सभी जाता जायगा ॥

३ ४ वेपथिलि मुक्त (११ १ ५)

क्षमा धीर मीक्षम्य की महिमा

धायम्ना जतयत्त मे ।

मगवान् बाले—मिथुभो ! पुत्रकाम में देवानुर मंगलम ठिक् गया था ।

तब अमुनेन्द्र वेपथिलि ने अमुरों का आमन्त्रित किया—मारियो ! यदि इस देवानुर-मंगलम में
अमुरों का जीत भार देवों की दार हा जाय तो देवन्द्र दाह को हाथ पैर धीर बॉय बन्धनों से बाँधकर
अमुरगुर में मेर बाय ल आया ।

मिथुभो ! देवन्द्र दाह ने भी जयजित लोक के देवों को आमन्त्रित किया—मारियो ! यदि इस
देवानुर-मंगलम में देवा की जीत और अमुरों की दार हा जाय तो अमुनेन्द्र वेपथिलि को बाँध बन्धनों
से बाँधकर गुप्तकों लमा में मेर बाय ल आया ।

मिथुभो ! इस मंगलम में देवों की जीत और अमुरों की दार हुई ।

मिथुभो ! तब देवों ने अमुनेन्द्र वेपथिलि का नाम में पावर्षी बन्धन दाह गुप्तमा लमा में
देवन्द्र दाह के पाय ले आया ।

मिथुभो ! वेपथिलि अमुनेन्द्र दाह में पावर्षी बन्धन ने बंध रह देवन्द्र दाह की गुप्तमा-अम्य
में देव ल रं र बहो न बिकल्प अम्य रं र बन्धनों से गान्धितो देवा था ।

तब मिथुभो ! मान्दित मंगलम ने देवन्द्र दाह का लमा में कहा—

१ देवन्द्र दाह ने अमुरों का आमन्त्रित किया—मारियो ! यदि इस देवानुर-मंगलम में
अमुरों की जीत भार देवों की दार हा जाय तो देवन्द्र दाह को हाथ पैर धीर बॉय बन्धनों से बाँधकर
अमुरगुर में मेर बाय ल आया ।

हे शक्र ! क्या आपको डर लगता है ?
 क्या अपने को कमजोर देखकर सह रहे हैं ?
 अपने सामने ही वेपचित्ति के,
 इन कड़े-कड़े शब्दों को सुनकर भी ?

[शक्र—]

न भय से और न कमजोरी से, मैं वेपचित्ति की बातें सह रहा हूँ,
 मेरे जैसा कोई बिना ऐसे मूर्ख से क्या मुँह लगाते जाय !

[मातलि—]

मूर्ख और भी बढ़ जाते हैं, यदि उन्हें क्या देनेवाला कोई नहीं होता है,
 इसलिये, अच्छी तरह दण्ड दे, धीरे मूर्ख को रोक दे ॥

[शक्र—]

मूर्ख को रोकने का मैं यही सबसे अच्छा उपाय समझता हूँ,
 जो दूसरे को गुस्साया जान, स्मृतिमान् रह शान्त रहे ॥

[मातलि—]

हे वासव ! आपका यह सह लेना मैं बुरा समझता हूँ,
 क्योंकि, मूर्ख इसमें समझने लगा जायगा,
 कि मेरे भय ही से यह सह रहे हैं,
 मूर्ख और भी चढ़ता जाता है,
 जैसे बैल भाग जानेवाले पर ॥

[शक्र—]

उसकी इच्छा, यदि वह यह समझे या नहीं,
 कि मैं उससे डरकर उसकी बातें सह रहा हूँ,
 अपने को उचित मार्ग पर रखना ही परमार्थ है,
 क्षमा कर देने से बढ़कर कोई दूसरा गुण नहीं ॥
 जो अपने बली होकर दुर्बल की बातें सहता है,
 उसी को सर्वोच्च क्षान्ति कहने हैं,
 दुर्बल तो सदा ही सहता रहता है ॥
 वह बली निर्बल कहा जाता है,
 जिसका बल मूर्खों का बल है,
 धर्मात्मा के बल की निन्दा करनेवाला कोई नहीं है ॥
 जो क्रुद्ध के प्रति क्रुद्ध होता है, वह उसकी बुराई है,
 क्रुद्ध के प्रति क्रोध न करनेवाला, दुर्जेय सम्राट् जीत लेता है ॥
 दोनों का हित करता है, अपना भी और पराये का भी,
 दूसरे को जो क्रुद्ध जान, सावधान हो शान्त रहता है ॥
 अपने और पराये दोनों का इलाज करनेवाले उसे,
 धर्म न जाननेवाले पुरुष 'मूर्ख' समझते हैं ॥

भिक्षुओ ! वह देवेन्द्र शक्र अपने पुण्य के प्रताप से त्रयस्त्रिंश पर ऐश्वर्य पा, राज्य करते हुये क्षान्ति और सौजन्य का प्रशंसक है । भिक्षुओ ! तुम भी ऐसे स्वाध्यात धर्म-विनय में प्रव्रजित हो क्षमा और सौजन्य का अभ्यास करते शोभो ।

६५ सुभाषित जय मुक्त (११ १ ५)

सुभाषित

आयस्तां में ।

मिथुभी ! पूर्ण काक में एक बार इवासुर-संग्राम छिड़ गया था ।

तब असुरेन्द्र वेपथिस्त्रि ने देवेन्द्र शाक को यह कहा—हे देवेन्द्र ! छुम बचन बोझनेवाले की ही जीत हा ।

हाँ वेपथिस्त्रि ! छुम बचन बोझनेवाक की ही जीत हो ।

मिथुभी ! तब देवीं नार असुरों ने मध्यस्थ जुने—यही सुभाषित या सुभाषित का फैसला करेंगे ।

मिथुभी ! तब असुरेन्द्र वेपथिस्त्रि ने देवेन्द्र शाक का यह कहा—हे देवेन्द्र ! कोई गाथा कहें ।

मिथुभी ! उसक ऐसा कहने पर देवेन्द्र शाक ने असुरेन्द्र वेपथिस्त्रि को यह कहा—ह वेपथिस्त्रि ! आप ही यह देख हैं आप ही पहले कोई गाथा कह ।

मिथुभी ! इस पर असुरेन्द्र वेपथिस्त्रि यह गाथा बाल्म—

मूर्ख भीत भी यह बात दे यदि उन्हें दया देनेवाला कोई नहीं होता ह
इममिने अच्छी तरह दृष्ट ह धीर मूर्ख को रोक द ॥

मिथुभी ! असुरेन्द्र-वेपथिस्त्रि के यह गाथा कहन पर असुरों ने उसका अनुमादन किया; किन्तु यह सब चुपचाप रहे ।

मिथुभी ! तब असुरेन्द्र वेपथिस्त्रि ने देवेन्द्र शाक का यह कहा—हे देवेन्द्र ! अब आप कोई गाथा कहें ।

मिथुभी ! उसक ऐसा कहने पर देवेन्द्र शाक यह गाथा बोला—

मूर्ख को रोकने का मैं यही सबसे अच्छा उपाय समझता हूँ,
ओ मूर्ख को गुस्साया जान सावधानी से सावध रहे ॥

मिथुभी ! देवेन्द्र शाक यह गाथा कहने पर देवीं ने उसका अनुमादन किया; किन्तु यह सब चुपचाप रहे ।

मिथुभी ! तब देवेन्द्र शाक ने असुरेन्द्र वेपथिस्त्रि को यह कहा—वेपथिस्त्रि ! आप कोई गाथा कहें ।

[वेपथिस्त्रि—]

हे बाल्म ! आपका यह लज्जा मैं पुरा समझता हूँ,
क्योंकि मूर्ख इमम समझन लग जायगा
कि मरे मर ही त यह यह रहे हैं,
मूर्ख भीत भी चला जाता है
ईम बेल भाग जानेवाले पर ॥

मिथुभी ! असुरेन्द्र वेपथिस्त्रि क यह गाथा कहन पर असुरों ने उसका अनुमादन किया; किन्तु यह सब चुप रहे ।

मिथुभी ! तब असुरेन्द्र वेपथिस्त्रि ने देवेन्द्र शाक का यह कहा—हे देवेन्द्र ! अब आप कोई गाथा कहें ।

मिथुभी ! उसक ऐसा कहन पर देवेन्द्र शाक ने इन गाथाओं यह कहा—

उमकी इच्छा, यदि वह यह समझे या नहीं,

[देखो पूर्व सूत्र]

भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक्र के गाथायें कहने पर देवों ने उनका अनुमोदन किया, किन्तु, सब असुर चुपचाप रहे ।

भिक्षुओ ! तब, देवों और असुरों के मध्यस्थ ने यह फैसला दिया—

वेपचित्ति असुरेन्द्र ने जो गाथायें कही हैं, सो धर-पकड़ और मार की बातें हैं, झगड़ा और तकरार बढ़ानेवाली हैं ।

और, देवेन्द्र शक्र ने जो गाथायें कही हैं, सो धर-पकड़ और मार की बातें नहीं हैं, झगड़ा और तकरार बढ़ानेवाली नहीं हैं ।

देवेन्द्र शक्र की सुभाषित से जीत हुई ।

भिक्षुओ ! इस तरह, देवेन्द्र शक्र की सुभाषित से जीत हुई थी ।

§ ६. कुलावक सुत्त (११ १. ६)

धर्म से शक्र की विजय

श्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! पूर्वकाल में एक बार देवासुर-संग्राम छिड़ गया था ।

भिक्षुओ ! उस संग्राम में असुरों की जीत और देवों की हार हुई थी ।

भिक्षुओ ! हार खाकर, देव उत्तर की ओर भाग चले और असुरों ने उनका पीछा किया ।

भिक्षुओ ! तब, देवेन्द्र शक्र मातलि-संग्राहक से गाथा में बोला—

हे मातलि ! सेमर वृक्ष में लगे घोंसले,

रथ के धुरे से कहीं नुच न जायँ,

असुरों के हाथ पड़कर भले ही प्राण चले जायँ,

किन्तु, इन पक्षियों के घोंसले नुच जाने न पावें ॥

भिक्षुओ ! “जैसी आज्ञा” कह मातलि ने शक्र को उत्तर दे हजार सीखे हुये घोड़ेवाले रथ को लौटाया ।

भिक्षुओ ! तब, असुरों के मन में यह हुआ—भरे ! देवेन्द्र शक्र का रथ लौट रहा है । मालूम होता है कि देव असुरों से फिर भी युद्ध करना चाहते हैं । अतः दबकर वे असुरपुर में पैठ गये ।

भिक्षुओ ! इस तरह, देवेन्द्र शक्र की धर्म से जीत हुई थी ।

§ ७. न दुर्विमुत्त (११ १ ७)

धोखा देना महापाप है

श्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! पूर्वकाल, एकान्त में ध्यान करते समय देवेन्द्र शक्र के मन में यह वितर्क उठा—जो मेरे शत्रु हैं उन्हें भी मुझे धोखा देना नहीं चाहिये ।

भिक्षुओ ! तब, असुरेन्द्र वेपचित्ति देवेन्द्र शक्र के वितर्क को अपने चित्त से जान, जहाँ देवेन्द्र शक्र था वहाँ आया ।

भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक्र ने असुरेन्द्र वेपचित्ति को दूर ही से आते देखा । देखकर, असुरेन्द्र वेपचित्ति से कहा—वेपचित्ति ! ठहरो, तुम गिरफ्तार हो गये ।

मारिप ! आपके चित्त में जो भयभीत था उसे मत छोड़ें ।

येपचित्ति ! चापरा कमी देने का सौगन्ध खा जा ।

[येपचित्ति—]

जो कुछ चाहते स पाप छगता है
जो सन्तों की मित्र करने से पाप छगता है,
मित्र से ज्ञाह करने का जो पाप है
अकृतज्ञता से जो पाप छगता है
उसे बही पाप कमे
हे सुजा के पति ! जो तुम्हें छोका है ॥

४ ८ विरोचन असुरिन्द सुच (११ १ ८)

सफ़ल होने तक परिश्रम करना

आवस्ती में ।

बस समस्त भगवान् द्विज के विहार के लिए बड़े स्थान कर रहे थे ।

तब वैशेष्णु सक्त भीर असुरेष्णु वैरोचन वहाँ भगवान् से वहाँ जाये । आकर एक-एक क्रिया
से कमी लगे हो गये ।

तब असुरेष्णु वैरोचन भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

पुरुष तब तक परिश्रम करता जाय
जब तक उद्देश्य सफ़ल न हो जाय
सफ़ल होने से ही उद्देश्य का महत्त्व है
वैरोचन ऐसा कहता है ॥

[शक्त—]

पुरुष तब तक परिश्रम करता जाय
जब तक उद्देश्य सफ़ल न हो जाय
सफ़ल होने से ही उद्देश्य का महत्त्व है
शक्ति से बढ़कर दूसरी कोई शक्ति नहीं है

[वैरोचन—]

सभी जीव के कुछ न कुछ अर्थ हैं
वहाँ-वहाँ अपनी शक्ति-भार,
अत्यावश्यक भोजन तो सभी प्राणियों का है
सफ़ल होने से ही उद्देश्य का महत्त्व है
वैरोचन ऐसा कहता है ॥

[शक्त—]

सभी जीव के कुछ न कुछ अर्थ हैं
वहाँ-वहाँ अपनी शक्ति भर
अत्यावश्यक भोजन तो सभी प्राणियों का है
सफ़ल होने से ही उद्देश्य का महत्त्व है
शक्ति से बढ़कर दूसरी कोई शक्ति नहीं है

§ ९. आरञ्जकइसि सुत्त (११.१.९)

शील की सुगन्ध

श्रावस्ती में

भिक्षुओ ! पूर्वकाल में कुछ शीलवन्त और सुधार्मिक ऋपि वन-प्रदेश में पर्ण-कुटी बनाकर रहते थे ।

भिक्षुओ ! तब, देवेन्द्र शक्र और असुरेन्द्र वेपचित्ति दोनों जहाँ वे शीलवन्त और सुधार्मिक ऋपि थे वहाँ गये ।

भिक्षुओ ! तब, असुरेन्द्र वेपचित्ति बड़े लम्बे जूते पहने, तलवार लटकाये, ऊपर छत्र डुलवाते, अग्र-द्वार से आश्रम में पैठ उन शीलवन्त और सुधार्मिक ऋपियों का अनादर करते हुये पार हो गया ।

भिक्षुओ ! और, देवेन्द्र शक्र जूते उतार, तलवार दूसरों को दे, छत्र रखवा, द्वार से आश्रम में पैठ उन शीलवन्त और सुधार्मिक ऋपियों के सम्मुख सम्मान-पूर्वक हाथ जोड़कर खड़ा हो गया ।

भिक्षुओ ! तब, उन शीलवन्त और सुधार्मिक ऋपियों ने देवेन्द्र शक्र को गाथा में कहा—

चिरकाल से व्रत पालने वाले ऋपियों की गन्ध,

शरीर से निकलकर हवा के साथ जाती है,

हे सहस्रनेत्र ! यहाँ से हट जा,

हे देवराज ! ऋपियों की गन्ध बुरी होती है ॥

[शक्र—]

चिरकाल से व्रत पालनेवाले ऋपियों की गन्ध,

शरीर से निकलकर हवा के साथ भले ही जाय,

शिर पर धारण किये सुगन्धित फूलों की माला की तरह,

भन्ते ! इस गन्ध की हमको चाह बनी रहती है,

देवों को यह गन्ध कभी अखर नहीं सकती है ॥

§ १०. समुद्रकइसि सुत्त (११ १ १०)

जैसी करनी वैसी भरनी

श्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! पूर्वकाल में कुछ शीलवन्त और सुधार्मिक ऋपि समुद्र-तट पर पर्ण-कुटी बनाकर रहते थे ।

भिक्षुओ ! उस समय देवासुर-संग्राम छिड़ा हुआ था ।

भिक्षुओ ! तब, उन शीलवन्त और सुधार्मिक ऋपियों के मन में यह हुआ—देव धार्मिक हैं, असुर अधार्मिक हैं । असुरों से हम लोगों को भी भय हो सकता है । तो, हम लोग असुरेन्द्र सम्भर के पास चलकर अभयपर माँग ले ।

भिक्षुओ ! तब, वे ऋपि—जैसे कोई बलवान् पुरुष समेटी बाँह को पसार दे और पसारी बाँह को समेट ले वैसे—समुद्र के तट उन पर्ण-कुटी में अन्तर्धान हो असुरेन्द्र सम्भर के सामने प्रकट हुये ।

भिक्षुओ ! तब, उन ऋपियों ने असुरेन्द्र सम्भर को गाथा में कहा—

ऋपि लोग सम्भर के पास आये हैं, अभय दक्षिणा का याचन करते हैं,

जैसी इच्छा वैसा दो, अभय या भय ॥

[सम्बर—]

अपियों को अमय नहीं है जिस तुष्टों की संवा शक किया करता है
अमय हर मोंगेबाके व्याप लोगों को मैं मय ही देता हूँ ॥

[अपि—]

अमय हर मोंगेबाके हमको मय ही दे रहे हो
तुम्हारे हम दिये को हम स्वीकार करते हैं तुम्हारा मय कभी न मिट ॥
जैसा बीज रोपता है वैसा ही फल पाता है
पुण्य करनेवालों का कल्याण और पाप करनेवालों का अकल्याण होता है
जैसा बीज बो रहे हो फल भी वैसा ही पाओगे ॥

मिक्षुजी ! तब वे शीकबन्त और सुधामिक अपि असुरेन्द्र सम्बर को शाप दे—जैसे कोई
बकबाज पुरुष —असुरेन्द्र सम्बर के सम्मुख अन्तर्धान हो समुद्र के तट पर पर्जन्य-पुटियों में प्रकट हुये ।
मिक्षुजी ! इन अपियों के साथ से असुरेन्द्र सम्बर रात में तीन बार चीक-बीककर उठता है ।

प्रथम वर्ग समाप्त

—

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

§ १. पठम व्रत सुत्त (११ २ १)

शक्र के सात व्रत, सत्पुरुष

श्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक्र अपने मनुष्य-जन्म में सात व्रतों का पालन किया करता था, जिनके पालन करने के कारण शक्र इस इन्द्र-पद पर आरूढ़ हुआ है ।

कौन से सात व्रत ?

(१) जीवन-पर्यन्त माता-पिता का पोषण करूँगा, (२) जीवन-पर्यन्त कुल के जेठों का सम्मान करूँगा, (३) जीवन-पर्यन्त मधुर भाषण करूँगा, (४) जीवन-पर्यन्त कभी किसी की चुगली नहीं करूँगा, (५) जीवन-पर्यन्त सकीर्णता और कजूसी से रहित हो गृहस्थ-धर्मका पालन करूँगा, त्याग-शील, खुले हाथोंवाला, दान-रत, दूसरों की माँगें पूरी करनेवाला, और वाँट-चूटकर भोग करने वाला होऊँगा ।

(६) जीवन-पर्यन्त सत्यवादी रहूँगा, और (७) जीवन-पर्यन्त क्रोध नहीं करूँगा । यदि कभी क्रोध उत्पन्न हो गया तो उसे शीघ्र ही दबा दूँगा ।

भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक्र अपने मनुष्य-जन्म में इन्हीं सात व्रतों का पालन किया करता था, जिनके पालन करने के कारण वह इस इन्द्र-पद पर आरूढ़ हुआ है ।

माता-पिता का जो पोषण करता है, कुल के जेठों का जो आदर करता है,
जो मधुर और नम्र भाषण करता है, जो चुगली नहीं खाता,
जो कजूसी से रहित होता है, सत्यवक्ता, क्रोध को दबाता है,
अश्लिश लोक के देव, उसी को सत्पुरुष कहते हैं ॥

§ २. दुतिय व्रत सुत्त (११ २.२)

इन्द्र के सात नाम और उसके व्रत

श्रावस्ती जेतवन में ।

वहाँ, भगवान् भिक्षुओं से बोले — भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक्र अपने पहले मनुष्य-जन्म में मघ नामक एक माणवक था । इसी से उसका नाम मघवा पड़ा ।

भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक्र अपने पहले मनुष्य जन्म में पुर (= शहर)-पुर में दान देता था । इसी से उसका नाम पुरिन्द पड़ा ।

भिक्षुओ ! सत्कार-पूर्वक दान दिया करता था । इसी से उसका नाम शक्र पड़ा ।

भिक्षुओ ! आवास का दान दिया था । इसी से उसका नाम वासव पड़ा ।

भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक्र सहस्र व्रतों के सुदृढ़ को एक बार ही सोच लेता है । इसी से उसका नाम सहस्राक्ष पड़ा ।

[सम्बर—]

अपियों को नमच नहीं है जिन दुष्टों की सेवा हाक किया करता है
अमय वर माँगनेवाले माप कोनों को मैं मय ही देता हूँ ॥

[अपि—]

अमय-वर माँगनेवाले हमको मय ही दे रहे हो
तुम्हारे हम दिने को हम स्वीकार करते हैं तुम्हारा मय कभी न मिटे ॥
जसा बीज रापता है बीसा ही फल पाता है
पुण्य करनेवालों का कल्याण और पाप करनेवालों का अकल्याण होता है
जैसा बीज बो रहा है फल भी वैसा ही पावोगे ॥

मित्रजी ! तब वे शीलवन्त और सुशामिक अपि असुरेन्द्र सम्बर की राप दे—जसे कोई
बलवान् पुरुष —असुरेन्द्र सम्बर के सम्मुख अन्तर्भाव हो समुद्र के तट पर पर्ण-कुटियों में प्रकट हुये ।

मित्रजी ! उन अपियों के साथ से असुरेन्द्र सम्बर रात में तीन बार बीक बीककर उठता है ।

प्रथम वर्ग समाप्त

भिक्षुओ ! त्रयस्त्रिंश लोक के देवों को समझाते हुए देवेन्द्र शक्र यह गाथाये बोला—
 बुद्ध मे जिसकी श्रद्धा अचल और सुप्रतिष्ठित है,
 जिमके शील अच्छे है, पण्डित लोगों से प्रशंसित ॥
 सब मे जिसे श्रद्धा है, जिमकी ममत्र सीधी है,
 वह दरिद्र नहीं कहा जा सकता, उमी का जीवन सार्थक है ॥
 इसलिए श्रद्धा-शील, प्रसाद और धर्मदर्शन मे,
 पण्डित लग जावे, बुद्धों के उपदेश का स्मरण करते ॥

§ ५. रामणैयक सुत्त (११. २ ५)

रमणीय स्थान

श्रावस्ती जेतवन मे ।

तब, देवेन्द्र शक्र जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया ।

एक ओर खड़ा हो, देवेन्द्र शक्र भगवान् से बोला—भन्ते ! कौन जगह रमणीय है ?

[भगवान्—]

आराम-चैत्य वन-चैत्य सुनिमित्त पुष्करिणी,
 मनुष्य की रमणीयता के सोहवाँ भाग भी नहीं हैं ॥
 गाँव में या जगल में, यदि नीची जगह में या समतल पर,
 जहाँ अर्हत् विहार करते हैं वही रमणीय जगह है ॥

§ ६. यजमान सुत्त (११ २ ६)

सांघिक दान का महात्म्य

एक समय भगवान् राजगृह मे गृच्छकूट पर्वत पर विहार करते थे ।

तब, देवेन्द्र शक्र जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया ।

एक ओर खड़ा हो देवेन्द्र शक्र भगवान् से गाथा मे बोला—

जो मनुष्य यज्ञ करते हैं,
 पुण्य की अपेक्षा रखने वाले,
 औपाधिक पुण्य करने वालों का,
 दिया हुआ कैसे महाफलप्रद होता है ?

[भगवान्—]

चार मार्ग-प्राप्त* और चार फल-प्राप्त†
 यही ऋजुभूत सब है, प्रज्ञा, शील और समाधि से युक्त ॥
 जो मनुष्य यज्ञ करते हैं,
 जो पुण्य की अपेक्षा रखने वाले हैं,

* सोतापत्ति-मार्ग, सकृदागामी मार्ग, अनागामी-मार्ग, अर्हत्-मार्ग ।

† सोतापत्ति-फल, सकृदागामी फल, अनागामी फल, अर्हत्-फल ।

मिथुनो ! देवेश्वर शाक को पहले सुजा नाम की मयूरकम्पा भाषा थी। इसी से उसका नाम सुजम्पति पड़ा।

मिथुना ! देवेश्वर शक प्रयक्षित देवकोक का ऐश्वर्य पा राग्य करता रहा। इसी से उसका नाम देवेश्वर पड़ा।

[शेष सात ज्यों का वर्णन पूर्व-सूत्र के समान]

§ ३ ततिय घट सुत्त (११ २ ३)

इन्द्र के माम और घट

देमा मैंने सुना।

एक समय भगवान् पैशासी में महायन की कूटागारशाला में बिहार करते थे।

तब महालि छिच्छन्नी वहाँ भगवान् ने वहाँ भाषा और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ महालि छिच्छन्नी भगवान् से बोला—भगन्ते ! भगवान् ने देवेश्वर शाक को देखा है ?

हाँ महालि ! मैंने देवेश्वर शाक को देखा है।

भगन्ते ! जबकि वह कोई दूसरा शाक का बैरा बनाकर भाषा होगा। भगन्ते ! देवेश्वर शाक को कोई नहीं देख सकता है।

महालि ! मैं शाक को जानता हूँ, और उन घमों को भी जानता हूँ जिनके पाठ्य करने से वह इन्द्र-पदपर भास्य हुआ है।

[शाक के भिन्न नामों का वर्णन § २ के समान; और सात ज्यों का वर्णन § १ समान]

§ ४ दलित् सुत्त (११ २ ४)

पुत्र मक्त वरिष्ठ महर्षि

एक समय भगवान् राजगृह के वेत्तुवत्त कच्छन्पनिवाप में बिहार करते थे।

वहाँ भगवान् ने मिथुनो को आमन्त्रित किया “हे मिथुनो !

“मदन्त ! कहकर मिथुना न भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—मिथुनो ! पूर्वकाल में इसी राजगृह में एक नीच कुल का बुद्धिवा वरिष्ठ पुत्र प्राप्त करता था। उसे बुद्ध के उपदिष्ट धर्म-बिम्ब में बड़ी अच्छा हो गई। उसने सीक विद्या त्याग कर प्रज्ञा का अभ्यास किया। इसके फलस्वरूप शरीर छोड़ कर मर जाने के बाद वह अवस्थित देवकोक में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त हुआ। वह दूसरे देवा से वर्ष और पक्ष में बना रहता था।

मिथुनो ! उस से प्रयत्नित के देव मरते थे विगतते थे और उसकी छिछी उछाले थे। क्या आश्चर्य है ! क्या अद्भुत है ! वह देवपुत्र अपने मनुष्य-जन्म में एक नीच कुल का बुद्धिवा वरिष्ठ पुत्र था। वह शरीर छोड़कर मर जाने के बाद अवस्थित देवकोक में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त हुआ। वह दूसरे देवों से वर्ष और पक्ष में बना बना रहता है।

मिथुनो ! तब देवेश्वर शक ने प्रयक्षित कोक के देवों को आमन्त्रित किया—मारियो ! आप हम देवपुत्र से मत्त रहें। अपने मनुष्य जन्म में इस देवपुत्र को बुद्ध के उपदिष्ट धर्म-बिम्ब में बड़ी अच्छा हो गई थी। उसने सीक विद्या त्याग कर प्रज्ञा का अभ्यास किया। इसी के फलस्वरूप शरीर छोड़कर मर जाने के बाद वह अवस्थित देवकोक में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त हुआ। वह दूसरे देवों से वर्ष और पक्ष में बना बना रहता है।

[शक्र—]

मुझे त्रेविद्य लोग नमस्कार करते हैं, और मसार के सभी राजे,
 बार, उतने बड़े प्रतापी, चारों महाराज भी ॥
 मैं उन शीलमयनों को जो चिरकाल में समाहित हैं,
 जो शीघ्र में प्रवर्जित हो चुके हैं, नमस्कार करता हूँ,
 जो ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कर रहे हैं ॥
 जो पुण्यात्मा गृहस्थ हैं, शीलवन्त उपासक लोग,
 धर्म से अपनी स्त्री को पोसते हैं, हे मातलि ! मैं उन्हें नमस्कार करना हूँ ॥

[मातलि—]

लोक में वे बड़े महान् हैं, शक्र ! जिन्हें आप नमस्कार करते हैं,
 मैं भी उन्हें नमस्कार करूँगा, वासव ! आप जिन्हें नमस्कार करते हैं ।

मधवा ऐसा कह कर,
 देवराज सुजम्पति,
 सभी ओर नमस्कार कर,
 वह प्रसन्न रथ पर सवार हुआ ॥

§ ९. दुतिय सकनमस्सना सुत्त (११ २. ९)

सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को नमस्कार

आवस्ती जेतवन में ।

• [पूर्ववत्]

हे भिक्षुओ ! तब, देवेन्द्र शक्र वैजयन्त प्रायाद में उतरते हुए हाथ जोड़कर भगवान् को
 नमस्कार कर रहा था ।

भिक्षुओ ! तब, मातलि-संग्राहक देवेन्द्र शक्र से गाथा में बोला—

जिस आपको हे वासव ! देव और मनुष्य नमस्कार करते हैं,
 भला, ऐसा वह कौन जीव है, हे शक्र ! जिसे आप नमस्कार करते हैं ?

[शक्र—]

वे अभी सम्यक् मन्त्रुद्ध, देवताओं के साथ इस लोक में,
 अनोम नामक जो बुद्ध हैं, मातलि ! उन्हीं को नमस्कार करता हूँ ॥
 जिनका राग, द्वेष, और अविद्या मिट चुकी है,
 जो क्षीणाश्रव अर्हत् हैं, हे मातलि ! उन्हीं को नमस्कार करता हूँ ॥
 जिनने रागद्वेष को दबा, अविद्या को हटा दिया है,
 जो अप्रमत्त शैक्ष्य हैं, सावधानी से अभ्यास कर रहे हैं,
 हे मातलि ! मैं उन्हीं को नमस्कार कर रहा हूँ ॥

[मातलि—]

लोक में वे बड़े महान् हैं, शक्र ! जिन्हें आप नमस्कार करते हैं,
 मैं भी उन्हें नमस्कार करूँगा, वासव ! आप जिन्हें नमस्कार करते हैं ॥

उन भीषाधिक गुण्य करने वालों की
संघ के लिए दिव गये दान का महाफल होता है ॥

§ ७ वन्दना सुक्त (११ २ ७)

बुद्ध वन्दना का श्रंग

भावस्ती जंतवन में

उस समय भगवान् दिन के बिहार के क्षिप्र समाधि लगाये बैठे थे ।

तब दशेन्द्र शाक और सहस्रपति मन्त्रा वहाँ भगवान् से वहाँ आय । आकर, एक-एक किराह से
क्या लगे हो गये ।

तब दशेन्द्र शाक भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

हे बीर बिक्षित्संग्राम ! उठें

आपका मार उतर चुका है आप पर काई अज नहीं

इस क्षण में विचरन करें

आपका शिर विष्णुस निर्मल है

जैसे पूर्णिमा की रात को चाँद ॥

दशेन्द्र ! बुद्ध की वन्दना इस प्रकार नहीं की जाती है । दशेन्द्र ! बुद्ध की वन्दना पंम करनी
चाहिये ।

हे बीर बिक्षित्संग्राम ! उठें

परम-गुह, अल-मुक्त ! कोर में विचरें

भगवान् धर्म का उपदेश करें

समग्रमेवात्स मी मिलेंगे ॥

§ ८ पठम सक्कमनस्सना सुक्त (११ २ ८)

शीलयान् मिथु और गृहस्थों को नमस्कार

भावस्ती जवन में ।

भगवान् यह आज्ञा—मिथुभो ! पृथक्क में दशेन्द्र शाक ने मातलि-संग्राहक का आमन्त्रित
किया । मन्त्र मातलि ! इन्कार मिलाव कुछ पादों से जोत में रख को तैयार करो । बर्गित की सैर करने
के लिये निद्रकता चाहता हूँ ।

‘महाराज ! र्जना अज्ञात’ यह मातलि संग्राहक ने दशेन्द्र शाक को उत्तर दे रख को तैयार
कर सूचना दी—सावि ! रख तैयार है अब आप जो चाहें ।

मिथुभो ! तब दशेन्द्र शाक धीजयस्त प्रामाद से उत्तरन हुये इन्ध जाकर सभी दिशाओं को
प्रणाम करने लगा ।

मिथुभो ! तब मातलि-संग्राहक दशेन्द्र शाक से गाथा में बोला—

आपका वैदित लोग नमस्कार करत है और संसार के सभी राजें

उत्तमे बड़ प्रतापी चारों महाराज भी

प्रता लगा बड़ बीज उठत है

है दाह ! त्रिध आप नमस्कार कर रह है ॥

तीसरा भाग

तृतीय वर्ग

शक्र-पञ्चक

§ १. ज्ञत्वा सुत्त (११. ३. १)

क्रोध को नष्ट करने में सुख

श्रावस्ती जेतवन में ।

तब, देवेन्द्र शक्र जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया ।

एक ओर खड़ा हो, देवेन्द्र शक्र भगवान् से गाथा में बोला—

क्या नष्ट कर सुख में मोता है, क्या नष्ट कर शोक नहीं करता ?

किस एक धर्म का बंध करना गाँतम को रचता है ?

[भगवान्—]

क्रोध को नष्ट कर सुख में मोता है, क्रोध को नष्ट कर शोक नहीं करता,

हे वासव ! पट्टले सीठा लगने वाले विष के मूल क्रोध का,

बंध करना पण्डितों से प्रशंसित है, उन्मी को नष्ट कर शोक नहीं करता ॥

§ २. दुण्वणिण्य सुत्त (११. ३. २)

क्रोध न करने का गुण

श्रावस्ती जेतवन में ।

• भगवान् बोले—भिक्षुओ ! पूर्वकाल में कोई यौना वदरूप यक्ष देवेन्द्र शक्र के आसन पर बैठा । भिक्षुओ ! उसमें त्रयस्त्रिंश लोक के देव कूढ़ते थे, झिझकते थे, और उसकी खिल्ली उड़ाते थे—आश्चर्य है ! अद्भुत है ॥ कि यह यौना वदरूप यक्ष देवेन्द्र शक्र के आसन पर बैठा है ।

भिक्षुओ ! जैसे जैसे त्रयस्त्रिंश लोक के देव कूढ़ते गये, वैसे वैसे वह यक्ष अभिरूप=दर्शनीय=सुन्दर होता गया ।

भिक्षुओ ! तब, त्रयस्त्रिंश लोक के देव जहाँ देवेन्द्र शक्र था वहाँ आये, और यह बोले—

मारिप ! यह कोई दूसरा यौना वदरूप यक्ष आप के आसन पर बैठा है । मारिप ! सो उससे त्रयस्त्रिंश लोक के देव कूढ़ते, झिझकते हैं, और उसकी खिल्ली उड़ाते हैं—आश्चर्य है ! अद्भुत है ॥ कि यह यौना वदरूप यक्ष देवेन्द्र शक्र के आसन पर बैठा है । मारिप ! जैसे-जैसे त्रयस्त्रिंश लोक के देव कूढ़ते हैं, वैसे-वैसे वह यक्ष अभिरूप=दर्शनीय=सुन्दर होता जाता है ।

मारिप ! तो क्या यह कोई क्रोध-भक्ष यक्ष है ?

भिक्षुओ ! तब, देवेन्द्र शक्र जहाँ वह क्रोध भक्ष यक्ष था वहाँ गया । जाकर, उसने उपरनी को

महारा देसा कह कर
 देवराज सुजयति
 भगवान् को ममस्कार कर
 वह प्रमुख रथ पर सवार हुआ ॥

§ १० तृतीय सफ्नमम्मना सुत्त (११ २ १०)

मिथु-संघ को ममस्कार

भाषस्ती जंतवन में ।

भगवान् बोले— ।

मिथुको ! तब देवन्त्र सत्त्व विजयन्त प्रासाद से उतरने हुये हाथ जोड़कर मिथु-संघ को नमस्कार करता था ।

मिथुको ! तब मानसि संग्राहक देवन्त्र सत्त्व से गाथा में बाका—

उच्छ्रित आपकी पत्नी लोग ममस्कार करत
 गान्धे शरीर धारण करने बाके प पुण्य
 कुलप में जो हुये रहते हैं ।
 मृग्य और व्यास से जो परस्मान रहते हैं ॥
 इ वासव ! उन बेघर बाकों में क्या गुण देखते हैं ?
 अपिपों के आचार कहे आपकी बात में सुनींगा ॥

[शक्र—]

हे मातङ्गि ! इसीकिये मैं इन बेघर बाकों की ईर्ष्या करता हूँ ।

जिस गाँव को वे छोड़ते हैं बिना किसी अप्रत्या के बल देते हैं
 कोठी में वे कुछ जमा नहीं करते न हॉकी में भीर न तीका में
 बसनों से सवार किये गये को पाते हैं वे झुगुठ इसी से गुजारा करत हैं
 अच्छी बातों की सम्मन्ना करने बाके वे धीर गुण साम्य रहन वाले ॥
 वनों को असुरों से विरोध है मातङ्गि ! मनुष्यों (को भी विरोध है)
 किन्तु, प विरोध करने बाकों में भी विरोध नहीं करते
 हिंसा छोड़ शांत रहते हैं केने बाक संसार में बिना कुछ किये
 है मातङ्गि ! मैं उन्हीं को ममस्कार करता हूँ ॥

[सौम पूर्ववत्]

द्वितीय वर्ग समाप्त

१ माता की कोल में जो बल महीने पौ रहते हैं—अश्रुका ।

२ पिहपस्ति—क्या गुण देख कर श्रद्धा करते हैं ।

लिपा । तब, वह भिक्षु दूसरे भिक्षु के पास अपना अपराध स्वीकार कर क्षमा माँगने गया । किन्तु, वह भिक्षु क्षमा नहीं करता था ।

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ भाये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा—

भन्ते ! दो भिक्षुओं में कुछ अनगन... ।

भिक्षुओं । दो प्रकार के सूर्य होते हैं । (१) जो अपने अपराध को अपराध के तौर पर नहीं देखता है, और (२) जो दूसरे को अपराध स्वीकार कर लेने पर क्षमा नहीं कर देता है । भिक्षुओं । यही दो प्रकार के सूर्य होते हैं ।

भिक्षुओं । दो प्रकार के पण्डित होते हैं । (१) जो अपने अपराध को अपराध के तौर पर देख लेता है, (२) जो दूसरे को अपराध स्वीकार कर लेने पर क्षमा कर देता है । भिक्षुओं । यही दो प्रकार के पण्डित होते हैं ।

भिक्षुओं । पूर्वकाल में देवेन्द्र शक्र ने त्रयस्त्रिंश लोक के दो देवों का निपटारा करते हुए यह गाथा कहा था—

क्रोध तुम्हारे अपने वश में होवे,
नुमगरी मितार्ह में कोई ब्रटा लगाने न पावे,
जो निन्दा करने के योग्य नहीं उसकी निन्दा मत करो,
आपस की जुगली मत खाओ,
क्रोध नीच पुरुष को,
पर्वत के ऐसा चूर-चूर कर देता है ॥

§ ५. अक्रोधन सुत्त (११. ३ ५)

क्रोध का त्याग

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

भगवान् बोले—भिक्षुओं । पूर्वकाल में देवेन्द्र शक्र ने सुधर्मा सभा में दो त्रयस्त्रिंश देवों के कलह का निपटारा करते हुए यह गाथा कहा था—

तुम्हें क्रोध दबा मत दे,
क्रोध करनेवाले पर क्रोध मत करो,
अक्रोध और अविहिंसा,
पण्डित पुरुषों में सदा बसती है,
क्रोध नीच पुरुष को,
पर्वत के ऐसा चूर-चूर कर देता है ॥

शक्र-पञ्चक समाप्त

सगाथा वर्ग समाप्त ।

एक कण्ठ पर सैमाऊ दक्षिण जातु को टुप्पी पर डेक प्रोथ मझ पक्ष की ओर हाथ जोड़कर तीन बार अपना नाम सुनाया —

मारिष । मैं दवेन्द्र शाक हूँ ।

मिशुभो ! दवेन्द्र शाक जैसे-जैसे अपना नाम सुनाता गया जैसे-जैसे वह पक्ष अधिकधिक बरूप भार बना जाता गया । बीना और बढ़कर हो चली अन्तर्धान हो गया ।

मिशुभी ! तब दवेन्द्र शाक अपने अवन पर बँड जपछिंग के देवों को शांति करते हुए यह गाया बोला—

मरा बिना बकरी बचका नहीं जाता है
 और मैं पक्षर मैं बढ़क नहीं जाता हूँ ।
 मर जाय किये बहुत समाना बीत गया
 मुझमें भय जाय रह नहीं गया ॥
 म जाय करना भार न छोड़ बचन कहता हूँ
 मर न अवन गुल की गाता फिरता हूँ
 मैं अपने का समय में रगता हूँ
 अपना परमाव देखते हुए ॥

४ ३ माया सुप्त (११ ३ ३)

सम्परी माया

आपस्ती म ।

अगवान् बाल—मिशुभा ! एकराक मैं एक बार असुरग्न योयसिनि रोग-ग्रस्त बना बीमार हो गया था ।

मिशुभा ! तब दवेन्द्र शाक जहाँ असुरग्न योयसिनि था वहाँ उसकी ओर एकर लेव गया ।

मिशुभी ! असुरग्न योयसिनि ने दवेन्द्र शाक का दूर ही से अपने देखा । देखकर देवेन्द्र शाक ने बोला—
 दवेन्द्र ! मरी हत्या करे ।

योयसिनि ! मुझे मरुवरी माया (अज्ञान) कहो ।

म रिष ! तू मैं असुरों से ममाद कर हूँ ।

मिशुभी ! तब असुरग्न योयसिनि असुरों से ममाद करने लगा—मारिषो ! क्या मैं दवेन्द्र शाक को मरुवरी माया बता हूँ ?

नहीं मारिष ! तब दवेन्द्र शाक का मरुवरी माया मत बतावे ।

मिशुभी ! तब असुरग्न योयसिनि देवेन्द्र शाक से गाया मैं बोला—

हैं अपना पक्ष दवेन्द्र, मुझपरति ।

माया (अज्ञान) करने से ओर तक मिलता है

मिहरी बने एक मरुवरी के पया ॥

४ ४ अणय गुल (११ ३ ४)

अणय गुल और शमा

आपस्ती म ।

तब अणय दो मिशुभी मैं कुछ अवन हो गया था । उसी एक मिशु ने अपना अणय अणय

दूसरा खण्ड

निदान वर्ग

दुसरा खण्ड

निदाल वर्ग

पहला परिच्छेद

१२. अभिसमय-संयुक्त

पहला भाग

बुद्ध वर्ग

§ १. देसना सुत्त (१२. १. १)

प्रतीत्य समुत्पाद

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—हे भिक्षुओ !

“भदन्त !” कह कर भिक्षुओ ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! प्रतीत्य समुत्पाद का उपदेश करूँगा । उसे सुनो, अच्छी तरह मन में लाओ, मैं कहता हूँ ।

“मन्ते ! बहुत अच्छा” कह, भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! प्रतीत्यसमुत्पाद क्या है ? भिक्षुओ ! अधिद्या के होने से संस्कार होते हैं । संस्कारों के होने से विज्ञान होता है । विज्ञान के होने से नामरूप होते हैं । नामरूप के होने से पदायतन होता है । पदायतन के होने से स्पर्श होता है । स्पर्श के होने से वेदना होती है । वेदना के होने से तृष्णा होती है । तृष्णा के होने से उपादान होता है । उपादान के होने से भव होता है । भव के होने से जाति होती है । जाति के होने से जरा, मरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, वेचैनी और परेशानी होती है । इस तरह, सारे दुःख-समूह का समुदय होता है । भिक्षुओ ! इसी को प्रतीत्य समुत्पाद कहते हैं ।

उस अधिद्या के विलकुल हट और रुक जाने से संस्कार होने नहीं पाते । संस्कारों के रुक जाने से विज्ञान होने नहीं पाता । विज्ञान के रुक जाने से नामरूप होने नहीं पाते । नामरूप के रुक जाने से पदायतन होने नहीं पाता । पदायतन के रुक जाने से स्पर्श होने नहीं पाता । स्पर्श के रुक जाने से वेदना नहीं होती । वेदना के रुक जाने से तृष्णा होने नहीं पाती । तृष्णा के रुक जाने से उपादान होने नहीं पाता । उपादान के रुक जाने से भव होने नहीं पाता । भव के रुक जाने से जाति होने नहीं पाती । जाति के रुक जाने से न जरा, न मरण, न शोक, न रोना-पीटना, न दुःख, न वेचैनी और न तो परेशानी होती है । इस तरह, यह सारा दुःख-समूह रुक जाता है ।

भगवान् यह बोले । सतुष्ट होकर भिक्षुओ ने भगवान् के कहे का अभिनन्दन किया ।

§ २. विभङ्ग सुत्त (१२. १. २)

प्रतीत्य-समुत्पाद की व्याख्या

श्रावस्ती में ।

• भगवान् बोले—भिक्षुओ ! प्रतीत्य-समुत्पाद का विभाग करके उपदेश करूँगा । उसे सुनो, अच्छी तरह मन में लाओ, मैं कहता हूँ ।

“मन्ते ! बहुत अच्छा” कह मिश्रुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—मिश्रुओ ! प्रतीत्य समुत्पाद क्या है ? मिश्रुओ ! अविद्या के होने से संस्कार होते हैं । [पृथक्] इस तरह सारे कृत्त समूह का समुदय होता है ।

मिश्रुओ ! और जरा मरण क्या है ? जो उम-उम जीवों के उम-उम यात्रियों में बड़ा हो जाना पुरमिया हो जाना घूर्तों का टूट जाना बाह्य सम्पद हो जाना क्षुरियों पड़ जाना उमर का कात्मा और इन्द्रियों का सिधिक हो जाना है; इसी को कहते हैं ‘जरा’ ।

जो उम-उम जीवों के उम-उम योगियों से सिसक पड़ना डपक पड़ना कट जाना अन्तर्धान हो जाना सूखु मरण कज्ञा कर जाना रुग्णों का छिन्न-भिन्न हो जाना शोक को धीरे देना है; इसी को कहते हैं ‘मरण’ । ऐसी यह है जरा और ऐसा यह है मरण । मिश्रुओ ! इसी को जरामरण कहते हैं ।

मिश्रुओ ! जाति क्या है ? जो उम-उम जीवों के उम उम योगियों में जन्म लेना पैदा हो जाना बका भाना भाकर मगद हो जाना रुग्णों का प्रादुर्भाव अपवर्तनों का प्रतिष्ठान करना है; मिश्रुओ ! इसी को कहते हैं जाति ।

मिश्रुओ ! मय क्या है ? मिश्रुओ ! मय तीन प्रकार के होते हैं । (१) काम मय (काम-लोक में बना रहना) (२) रूप मय (रूप-लोक में बना रहना) और (३) मरूप-मय (मरूप-लोक में बना रहना) । मिश्रुओ ! इसी को कहते हैं ‘मय’ ।

मिश्रुओ ! उपादान क्या है ? उपादान चार प्रकार के हैं । (१) काम-उपादान, (२) (मिथ्या) उहि-उपादान (३) सत्कवच-उपादान और (४) आत्मबाह्य उपादान । मिश्रुओ ! इसी को कहते हैं उपादान ।

मिश्रुओ ! गृह्य क्या है ? मिश्रुओ ! गृह्य छः प्रकार की हैं । (१) कर्म-गृह्य (२) शस्त्र-गृह्य (३) गन्ध-गृह्य (४) रस-गृह्य (५) स्पर्श-गृह्य और (६) धर्म-गृह्य । मिश्रुओ ! इसी को कहते हैं ‘गृह्य’ ।

मिश्रुओ ! वेदना क्या है ? मिश्रुओ ! वेदना छः प्रकार की हैं । (१) जन्तु के संस्पर्श से होवेवाकी वेदना (२) श्रोत्र के संस्पर्श से होवेवाकी वेदना (३) प्राण के संस्पर्श से होवेवाकी वेदना (४) विद्वान् के संस्पर्श से होवेवाकी वेदना (५) कथा के संस्पर्श से होवेवाकी वेदना और (६) मन के संस्पर्श से होवेवाकी वेदना । मिश्रुओ ! इसी को कहते हैं ‘वेदना’ ।

मिश्रुओ ! स्पर्श क्या है ? मिश्रुओ ! स्पर्श छः प्रकार के हैं । (१) जन्तु-संस्पर्श (२) श्रोत्र-संस्पर्श (३) प्राण-संस्पर्श (४) विद्वान्-संस्पर्श (५) कथा-संस्पर्श और (६) मन-संस्पर्श । मिश्रुओ ! इसी को कहते हैं ‘स्पर्श’ ।

मिश्रुओ ! पञ्चायतन क्या है ? () जन्तु-अयतन (२) श्रोत्र-अयतन (३) प्राण-अयतन (४) विद्वान्-अयतन (५) कथा-अयतन और (६) मन-अयतन । मिश्रुओ ! इसी को कहते हैं ‘पञ्चायतन’ ।

मिश्रुओ ! नामरूप क्या है ? वेदना संज्ञा अथवा स्पर्श और मन में कुछ ध्याना । इसे ‘नाम’ कहते हैं । चार महायुगों की केन्द्र को रूप होते हैं इसे ‘रूप’ कहते हैं । इस तरह यह नाम रूपा और यह रूप रूपा । मिश्रुओ ! इसी को कहते हैं नामरूप ।

मिश्रुओ ! विज्ञान क्या है ? मिश्रुओ ! विज्ञान छः प्रकार के होते हैं । (१) जन्तु-विज्ञान (२) श्रोत्र-विज्ञान (३) प्राण-विज्ञान (४) विद्वान्-विज्ञान (५) कथा-विज्ञान और (६) मनोविज्ञान । मिश्रुओ ! इसी को कहते हैं विज्ञान ।

मिश्रुओ ! संस्कार क्या है ? मिश्रुओ ! संस्कार तीन प्रकार के हैं । (१) काम-संस्कार (२) बाह्य-संस्कार (३) चित्त-संस्कार । मिश्रुओ ! इसी को कहते हैं ‘संस्कार’ ।

मिश्रुओ ! अपिद्या क्या है ? मिश्रुओ ! जो कृत्त को नहीं जानता है जो कृत्त-मनुष्य को नहीं

जानता है, जो दुःख-निरोध का नहीं जानता है, और जो दुःख निरोध-गामिनी प्रतिपदा को नहीं जानता है । भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं “अविद्या” ।

भिक्षुओ ! इसी अविद्या के होने से संस्कार होते हैं ।

[पूर्ववत्] । इस तरह सारे दुःख समूह का समुदय होता है ।

उस अविद्या के विलकुल हट और रुक जाने से संस्कार होने नहीं पाते । [पूर्ववत्] इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है ।

§ ३. पटिपदा सुत्त (१२. १. ३)

मिथ्या-मार्ग और सत्य-मार्ग

श्रावस्ती में ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! मिथ्या-मार्ग क्या है और सत्य-मार्ग क्या है इसका मैं उपदेश करूँगा । उसे सुनो, अच्छी तरह मन में लाओ, मैं कहता हूँ ।

“भन्ते ! बहुत अच्छा” कह, भिक्षुओ ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—

भिक्षुओ ! मिथ्या-मार्ग क्या है ? भिक्षुओ ! अविद्या के होने से संस्कार होते हैं । इस प्रकार, सारे दुःख-समूह का समुदय होता है । भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं ‘मिथ्या-मार्ग’ ।

भिक्षुओ ! सत्य-मार्ग क्या है ? उस अविद्या के विलकुल हट और रुक जाने से संस्कार होने नहीं पाते । इस प्रकार, सारा दुःख-समूह रुक जाता है । भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं ‘सत्य-मार्ग’ ।

§ ४. विपस्सी सुत्त (१२. १. ४)

विपश्यी बुद्ध को प्रतीत्य समुत्पाद का ज्ञान

क

श्रावस्ती में ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध भगवान् विपस्सी को बुद्धत्व लाभ करने के पहले, बोधिसत्त्व रहते हुये मन में यह हुआ—हाय ! यह लोक कैसे घोर दुःख में पड़ा है ॥ पैदा होता है, बूढ़ा होता है, मर जाता है, मर कर फिर जन्म ले लेता है । और, जरामरण के इस दुःख का छुटकारा नहीं जानता है । अहो ! कब मैं जरामरण के इस दुःख का छुटकारा जान लूँगा ?

भिक्षुओ ! तब बोधिसत्त्व विपस्सी के मन में यह हुआ—किसके होने से जरामरण होता है, जरामरण का हेतु क्या है ?

भिक्षुओ ! तब, बोधिसत्त्व विपस्सी को अच्छी तरह चिन्तन करने पर प्रज्ञा का उदय हो गया । जाति के होने से जरामरण होता है, जाति ही जरामरण का हेतु है ।

भिक्षुओ ! तब, बोधिसत्त्व विपस्सी के मन में यह हुआ—किसके होने से जाति होती है, जाति का हेतु क्या है ? भिक्षुओ ! तब, बोधिसत्त्व विपस्सी को अच्छी तरह चिन्तन करने पर प्रज्ञा का उदय हो गया । भव के होने से जाति होती है, भव ही जाति का हेतु है ।

किसके होने से भव होता है, भव का हेतु क्या है ? उपादान के होने से भव होता है, उपादान भव का हेतु है ।

किसक होनेसे उपादान होता है उपादान का हेतु क्या है ? मृज्जा के होनेसे उपादान होता है मृज्जा ही उपादानका हेतु है ।

— किमके हानेस मृज्जा होती है मृज्जा का हेतु क्या है ? वेदनाके हानेसे मृज्जा होती है वेदना ही मृज्जा का हेतु है ।

किमक होनेसे वेदना होती है वेदनाका हेतु क्या है ? स्पर्शके होनेसे वेदना होती है स्पर्श ही वेदनाका हेतु है ।

— किसक हानेस स्पर्श होता है स्पर्शका हेतु क्या है ? पदायतनके होनेसे स्पर्श होता है पदायतन ही स्पर्शका हेतु है ।

किमक हानेस पदायतन होता है पदायतनका हेतु क्या है ? नामरूपके होनेसे पदायतन होता है, नामरूप ही पदायतन का हेतु है ।

किमक हानेस नामरूप होता है नामरूप का हेतु क्या है ? विज्ञानके होनेसे नामरूप होता है विज्ञान ही नामरूपका हेतु है ।

किमक हानेसे विज्ञान होता है विज्ञान का हेतु क्या है ? संस्कारों के होनेसे विज्ञान होता है संस्कार ही विज्ञान का हेतु है ।

किमके हानेसे संस्कार हाने हैं संस्कारों का हेतु क्या है ? अभिधा के होनेसे संस्कार होते हैं अभिधा ही संस्कार का हेतु है ।

‘हम तरह अभिधाक हानेस संस्कार हाने हैं । संस्कारोंके हानेस विज्ञान है । हम प्रकार गारे शुभ-समूह का समुत्पन्न होता है ।

मिथुजा । ‘समुत्पन्न समुत्पन्न —जसा बाधिसार विपस्सी का पहल कभी नहीं सुन गये जमी में बहुत उद्वेग हो गया ज्ञान उद्वेग हो गया प्रज्ञा उद्वेग हो गई विद्या उद्वेग हो गई, आलोच उद्वेग हो गया ।

सु

मिथुजा । तब बाधिसार विपस्सी के मत में यह हुआ—किमक नहीं हाने से आरामन नहीं होता है किमके तब जाने स आरामन तब जाता है ।

मिथुजा । तब बाधिसार विपस्सी का कष्टी तरह विस्तार करत पर प्रज्ञा का उद्वेग हो गया । ज्ञान के नहीं हाने से आरामन नहीं होता है ज्ञान के तब जाने से आरामन तब जाता है ।

[प्रतिज्ञास बना से पुरवन्]

मिथुजा । तब बाधिसार विपस्सी का कष्टी तरह विस्तार करने पर प्रज्ञा का उद्वेग हो गया । अभिधा के नहीं हाने से संस्कार नहीं होते हैं अभिधा के तब जाने से संस्कार तब जाने हैं ।

सा कष्टी के तब जाने से संस्कार तब जाने हैं । संस्कारों के तब जाने से विज्ञान तब जाता है ।

हम प्रकार गारा शुभ-समूह तब जाता है ।

मिथुजा । ‘तब जाना तब जाना —जसा बाधिसार विपस्सी का पहल कभी नहीं सुने गये जमी में बहुत उद्वेग हो गया ज्ञान उद्वेग हो गया प्रज्ञा उद्वेग हो गई विद्या उद्वेग हो गई आलोच उद्वेग हो गया ।

जली मुझे व गन्ध केगा ही मज्जन् केगा बाहिन् ।

> ५ मिथी गुण (१३ १ १)

मिथी गुण का प्रतीक समुत्पन्न का ज्ञान

मिथुजा । ‘जरी कष्टक लखुद लखुद मिथी ही पुरवन् लखुद लखुद के पुरवन् [पुरवन्]

§ ६. वेस्सभू सुत्त (१२. १ ६)

वैश्वभू बुद्ध को प्रतीत्य समुत्पाद का ज्ञान

भिक्षुओं ! भगवान् वेस्सभू थे ।

§ ७-९. सुत्त-त्तय (१२. १ ७-९)

तीन बुद्धों को प्रतीत्य समुत्पाद का ज्ञान

भिक्षुओं ! भगवान् ककुमन्ध, कोणागमन, कटथ्यप को बुद्धत्व लाभ करने के पदार्थ ।

§ १०. गीतम सुत्त (१२. १. १०)

प्रतीत्य समुत्पाद-ज्ञान

क

भिक्षुओं ! मेरे बुद्धत्व-लाभ करने के पाले, घोंघिसम्य रहते हुये, मन में यह हुआ [पूर्ववत्]

भिक्षुओं ! 'समुदय, समुदय'—ऐसा मुझे पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में चक्षु उत्पन्न हो गया, ज्ञान उत्पन्न हो गया प्रज्ञा उत्पन्न हो गई, विज्ञा उत्पन्न हो गई, आलोक उत्पन्न हो गया ।

ख

[..प्रतिलोम-वशा]

भिक्षुओं ! 'रुक जाना, रुक जाना'—ऐसा मुझे पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में आलोक उत्पन्न हो गया ।

बुद्ध-वर्ग समाप्त ।

दूसरा भाग

आहार वर्ग

§ १ आहार सुत्त (१० ० १)

प्राणियों के आहार और उनकी उत्पत्ति

ऐसा मीने सुना ।

एक समय मगधान् भावसी में अनाथपिण्डिक क जेतवन भारम में बिहार करते ब ।

मगधान् बोले—मिथुओ ! जन्मे प्राणियों की स्थिति क किने वा जन्म केने बाकों के अनुग्रह के किने बार आहार के हैं ।

बीज से बार ? (१) और बाका—स्पृक वा सूक्ष्म (२) स्पर्श (३) मन की चेतना (= Volition) और (४) विज्ञान । मिथुओ ! जन्मे प्राणियों की स्थिति क किने, वा जन्म केने बाकों के अनुग्रह के किने बही बार आहार हैं ।

मिथुओ ! इन बार आहारों का निदान क्या है = समुदय क्या है = ब कैसे पैदा होते हैं = जन्म प्रसव क्या है ?

इन बार आहारों का निदान नृप्या है समुदय नृप्य है । वे नृप्या से पैदा होते हैं । जन्म प्रसव नृप्या है ।

मिथुओ ! नृप्या का निदान क्या है ? समुदय क्या है ? वह कैसे पैदा होती है ? उसका प्रसव क्या है ? नृप्या का निदान वेदना है समुदय वेदना है । वह वेदना सं पैदा होती है । उसका प्रसव वेदना है ।

वेदना का निदान स्पर्श है ।

स्पर्श का निदान वषापतन है ।

वषापतन का निदान तामरूप है ।

तामरूप का निदान विज्ञान है ।

विज्ञान का निदान संस्कार है ।

संस्कारों का निदान जनिघा है ।

मिथुओ ! इस तरह जनिघा के होने से संस्कार होते हैं । संस्कारों के होने से विज्ञान होता है ।

इस तरह भारे हुक्क-समूह का समुदय होता है ।

उस जनिघा के बिष्कुल इह और एक जाने से संस्कार एक करते हैं । इस तरह सारा हुक्क समूह एक आता है ।

§ २ पद्मगुन सुत्त (१२ ० ०)

बार आहार और उनकी उत्पत्तियाँ

ध्यात्वाती में ।

..मगधान् बोले—मिथुओ ! जन्मे प्राणियों की स्थिति के किने वा जन्म केने बाकों के किने बार आहार हैं ।

● उनके देह से अपना नाम आहरण करते हैं इतकिने वे आहार कहे जाते हैं—अनुग्रहा ।

[पूर्ववत्]

भिक्षुओं ! यहाँ चार आहार हैं ।

ऐसा कहने पर आयुष्मान् मोलिय-फगुन भगवान् में बोले—भन्ते ! विज्ञान-आहार का कौन आहार करता है ?

भगवान् बोले—ऐसा पूछना ही गलत है । मैं यह नहीं कहता कि कोई आहार करता है । यदि मैं ऐसा कहता कि कोई आहार करता है तो अलवत्ता यह प्रश्न पूछा जा सकता था कि—भन्ते ! कौन आहार करता है ? किन्तु, मैं तो ऐसा नहीं कहता । मेरे ऐसा नही कहने पर, तुम यदि पूछते कि—भन्ते ! इस विज्ञान-आहार में क्या होता है ?—तो हाँ, ठीक प्रश्न होता ।

और, तब उसका उपयुक्त उत्तर होता—

विज्ञान-आहार आगे पुनर्जन्म होने का हेतु है । उसके होने से पड़ावतन होता है । पड़ावतन के होने से स्पर्श होता है ।

भन्ते ! कौन स्पर्श करता है ?

भगवान् बोले—ऐसा पूछना ही गलत है । मैं यह नहीं कहता कि कोई स्पर्श करता है । यदि मैं ऐसा कहता कि कोई स्पर्श करता है तो अलवत्ता यह प्रश्न पूछा जा सकता था कि—भन्ते ! कौन स्पर्श करता है ? किन्तु, मैं तो ऐसा नहीं कहता । मेरे ऐसा कहने पर, तुम यदि पूछते कि—भन्ते ! क्या होने से स्पर्श होता है ?—तो हाँ, ठीक प्रश्न होता ।

और, तब उसका उपयुक्त उत्तर होता—पड़ावतन के होने से स्पर्श होता है । स्पर्श के होने से वेदना होती है ।

भन्ते ! कौन वेदना का अनुभव करता है ?

भगवान् बोले—ऐसा पूछना ही गलत है । मैं यह नहीं कहता कि कोई वेदना का अनुभव करता है । यदि मैं ऐसा कहता कि कोई वेदना का अनुभव करता है तो अलवत्ता यह प्रश्न पूछा जा सकता था कि—भन्ते ! कौन वेदना का अनुभव करता है ? किन्तु, मैं तो ऐसा कहता ही नहीं । मेरे ऐसा नहीं कहने पर, तुम यदि पूछते कि—भन्ते ! किसके होने से वेदना होती है ?—तो हाँ, ठीक प्रश्न होता ।

और, तब उसका उपयुक्त उत्तर होता—स्पर्श के होने से वेदना होती है । वेदना के होने से तृष्णा होती है ।

भन्ते ! कौन तृष्णा करता है ?

भगवान् बोले—ऐसा पूछना ही गलत है । मैं यह नहीं कहता कि कोई तृष्णा करता है । यदि मैं ऐसा कहता कि कोई तृष्णा करता है तो अलवत्ता यह प्रश्न पूछा जा सकता था कि—भन्ते ! कौन तृष्णा करता है ? किन्तु मैं तो ऐसा नहीं कहता । मेरे ऐसा नहीं कहने पर, तुम यदि पूछते कि—भन्ते ! किमके होने से तृष्णा होती है ?—तो हाँ, ठीक प्रश्न होता ।

और, तब उसका उपयुक्त उत्तर होता—वेदाना के होने से तृष्णा होती है । तृष्णा के होने से उपादान होता है ।

भन्ते ! कौन उपादान (= किमी वस्तु को पाने या छोड़ने के लिये उत्साह) करता है ?

भगवान् बोले—यह पूछना ही गलत है । तृष्णा के होने से उपादान होता है । उपादान के होने से भव होता है ।

इस तरह, सारे दुःख-समूह का समुदय होता है ।

हे फगुन ! इन छ स्पर्शयित्तों के बिच्छुल रुक जाने से स्पर्श होने नहीं पाता । स्पर्श के रुक जाने से वेदना नहीं होती । वेदना के रुक जाने से तृष्णा नहीं होती । तृष्णा के रुक जाने से उपादान

नहीं होता । उपादान के टुक जाने से भव नहीं होता । भव के टुक जाने से जन्म नहीं होता । जन्म के टुक जाने से जरामरण शोक रोमा-पीडना, दुःख वेदनी परेशानी सभी टुक जाने हैं ।

इस तरह सारा दुःख-समूह टुक जाता है ।

§ ३ पठम समणमाझण सुत्त (१० २ १)

यथार्थ नाम के अधिकारी भ्रमण-प्राप्त्यण

भावस्ती में ।

मगवान् पाँके—मिद्धुओ ! जो भ्रमण या प्राज्ञण जरामरण को नहीं जानते जरामरण के हेतु का नहीं जानते जरामरण का टुक जाना नहीं जानते जरामरण के रोकने का मार्ग नहीं जानते; जाति ; भव ; उपादान ; तुप्पा ; वेदना ; स्पर्श ; पञ्चायतन ; नामकम्प ; विज्ञान ; संस्कार के रोकने का मार्ग नहीं जानते हैं—वह भ्रमण या प्राज्ञण यथार्थ में अपने नाम के अधिकारी नहीं हैं । न तो वे अणुप्माण् भ्रमण या प्राज्ञण के परमार्थ को अपने सामने जाकर, साक्षात् कर या प्राप्त कर बिहार करते हैं ।

मिद्धुओ ! जो भ्रमण या प्राज्ञण जरामरण को जानते हैं संस्कार के रोकने का मार्ग जानते हैं—वह भ्रमण या प्राज्ञण यथार्थ में अपने नाम के अधिकारी हैं । वे अणुप्माण् भ्रमण-भाव या प्राज्ञण-भाव को प्राप्त कर बिहार करते हैं ।

§ ४ दुत्तिय समणमाझण सुत्त (१२ ० ४)

परमार्थ को जानकार भ्रमण-प्राप्त्यण

भावस्ती में ।

मिद्धुओ ! जो भ्रमण या प्राज्ञण इन चर्मों को नहीं जानते हैं इन चर्मों के हेतु को नहीं जानते हैं इन चर्मों का टुक जाना नहीं जानते हैं इन चर्मों के रोकने के मार्ग को नहीं जानते हैं वे किन चर्मों के रोकने के मार्ग को नहीं जानते हैं ?

जरामरण को नहीं जानते हैं जरामरण के हेतु को नहीं जानते हैं जरामरण का टुक जाना नहीं जानते हैं जरामरण के रोकने के मार्ग को नहीं जानते हैं । जाति—; भव ; उपादान ; तुप्पा ; वेदना ; स्पर्श ; पञ्चायतन ; नामकम्प ; विज्ञान ; संस्कार को नहीं जानते हैं संस्कार के हेतु को नहीं जानते हैं संस्कार का टुक जाना नहीं जानते हैं संस्कार के रोकने के मार्ग को नहीं जानते हैं ।

मिद्धुओ ! न तो वह भ्रमणों में असम्यक् है और न प्राज्ञणों में प्राज्ञणत्व, न तो वे अणुप्माण् भ्रमण या प्राज्ञण के परमार्थ को अपने सामने जाकर साक्षात् कर या प्राप्त कर बिहार करते हैं ।

मिद्धुओ ! जो भ्रमण या प्राज्ञण इन चर्मों के रोकने के मार्ग को जानते हैं वे किन चर्मों के रोकने के मार्ग को जानते हैं ?

जरामरण ; जाति ; भव ; उपादान ; तुप्पा ; वेदना ; स्पर्श ; पञ्चायतन ; नामकम्प ; विज्ञान ; संस्कार के रोकने के मार्ग को जानते हैं ।

मिद्धुओ ! यथार्थता इन भ्रमणों में असम्यक् है, और प्राज्ञणों में प्राज्ञणत्व, वे अणुप्माण् भ्रमण या प्राज्ञण के परमार्थ को अपने सामने जाकर साक्षात् कर और प्राप्त कर बिहार करते हैं ।

§ ५ कव्वाणगोच सुत्त (१० २ ५)

सम्यक् दृष्टि की व्याख्या

भावस्ती में ।

तब अणुप्माण् कव्वाणगोच नहीं भगवन् वे नहीं जाते और मगवान् वा अभिवादन कर दूक और बैठ गये ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् कात्यायनगोत्र भगवान् से बोले—भन्ते ! जो लोग 'सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-दृष्टि' कहा करते हैं वह 'सम्यक्-दृष्टि' है क्या ?

कात्यायन ! संसार के लोग दो अविद्याओं में पड़े हैं—(१) अस्तित्व की अविद्या में, और (२) नास्तित्व की अविद्या में ।

कात्यायन ! लोक के समुदय का यथार्थ-ज्ञान प्राप्त करने से लोक में जो नास्तित्व-बुद्धि है वह मिट जाती है । कात्यायन ! लोक में जो अस्तित्व-बुद्धि है वह मिट जाती है ।

कात्यायन ! यह संसार तृष्णा, आसक्ति और ममत्व के मोह में बेतरह जकड़ा है । सो, (आर्य-श्रावक) उस तृष्णा, आसक्ति, मन के लगाने, ममत्व और मोह में नहीं पड़ता है, आत्म-भाव में नहीं बँधता है । जो उत्पन्न होता है दुःख ही उत्पन्न होता है, जो रुक जाता है वह दुःख ही रुक जाता है । न मन में कोई कांक्षा रहता है, और न कोई संशय । उसे अपने भीतर ही ज्ञान उत्पन्न हो जाता है । कात्यायन ! इसी को सम्यक्-दृष्टि कहते हैं ।

कात्यायन ! 'सभी कुछ विद्यमान है' यह एक अन्त है, 'सभी कुछ शून्य है' यह दूसरा अन्त है । कात्यायन ! बुद्ध इन दो अन्तों को छोड़ सत्य को मध्यम प्रकार से बताते हैं ।

अविद्या के होने से संस्कार होते हैं । इस तरह, सारे दुःख-समूह का समुदय होता है ।

उसी अविद्या के बिल्कुल हट और रुक जाने से संस्कार होने नहीं पाते । इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है ।

§ ६. धम्मकथिक सुत्त (१२. २. ६)

धर्मापदेशक के गुण

श्रावस्ती में ।

तब, कोई भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला—भन्ते ! लोग 'धर्मकथिक, धर्मकथिक' कहा करते हैं । सो 'धर्मकथिक' के क्या गुण हैं ?

भिक्षु ! जो जरामरण के निर्वेद=विराग=निरोध का उपदेश करता है वही अलवत्ता धर्मकथिक कहा जा सकता है ।

भिक्षु ! जो जरामरण के निर्वेद=विराग=निरोध के लिये प्रतिपन्न है वही अलवत्ता 'धर्मानुधर्म-प्रतिपन्न' कहा जा सकता है ।

भिक्षु ! जो जरामरण के निर्वेद=विराग=निरोध हो जाने से विमुक्त हो गया है, वह अलवत्ता देखते ही देखते निर्वाण पा लेनेवाला भिक्षु कहा जा सकता है ।

भिक्षु ! जो जाति , भव , उपादान , तृष्णा , वेदना , स्पर्श , पञ्चायतन , नाम-रूप , विज्ञान , संस्कार ; अविद्या के निर्वेद=विराग=निरोध का उपदेश करता है वही अलवत्ता धर्मकथिक कहा जा सकता है ।

भिक्षु ! जो अविद्या के निर्वेद=विराग=निरोध के लिये प्रतिपन्न है वही अलवत्ता 'धर्मानुधर्म-प्रतिपन्न' कहा जा सकता है ।

भिक्षु ! जो जरामरण के निर्वेद=विराग=निरोध हो जाने से विमुक्त हो गया है, वही अलवत्ता देखते ही देखते निर्वाण पा लेने वाला भिक्षु कहा जा सकता है ।

ई ७ अचेल सुत्त (१२ २ ७)

प्रतीत्य समुत्पाद, भवेत्त काश्यप की प्रमन्या

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह के घेरुयन कलन्दक निवाप में बिहार करते थे ।

क

तब भगवान् सुबह में पहन और पापसीवर के राजगृह में मिछादन के क्रिये पैरे ।

जंगा साधु काश्यप ने भगवान् को दूर ही से भाते देखा । देखकर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया और भगवान् का सम्मोदन किया, तथा आचमगत और कुसकक्षेम के प्रह्न वृत्त कर एक ओर खड़ा हो गया ।

एक ओर खड़ा हो जंगा साधु काश्यप भगवान् से बोला—आप गीतम से मैं एक प्रह्न पुष्पा चाहता हूँ; क्या आप उसे सुन कर उत्तर देने को तैयार हैं ?

काश्यप ! यह प्रह्न पुष्प का उचित उत्तर नहीं है; जमी नगर में मिछादन के क्रिये पैरा हूँ ।

पूसरी बार भी ।

दूसरी बार भी ।

काश्यप ! जमी नगर में मिछादन के क्रिये पैरा हूँ ।

इस पर जंगा साधु काश्यप भगवान् से बोला—आप गीतम से मैं कोई बड़ी बात नहीं पुष्पा चाहता हूँ ।

काश्यप ! वो पुष्पों का पुष्पा चाहते हो ।

ख

हे गीतम ! क्या तुम्हें अपना स्वर्ण किया हुआ होता है ?

काश्यप ! ऐसी बात नहीं है ।

हे गीतम ! तो क्या तुम्हें पराबे का किया होता है ?

काश्यप ! ऐसी बात नहीं है ।

हे गीतम ! तो क्या तुम्हें अपने स्वर्ण और पराबे के भी करने स होता है ?

काश्यप ! ऐसी बात नहीं है ।

हे गीतम ! यदि तुम्हें अपने स्वर्ण और पराबे के भी करने स नहीं होता है तो क्या अस्मरम ही जन्मसाप् पश्य अया है ?

काश्यप ! ऐसी बात नहीं है ।

हे गीतम ! तो क्या तुम्हें ई ही नहीं ?

नहीं काश्यप ! तुम्हें है ।

तो पछा चकटा है कि आप गीतम तुम्हें को जानते समझते नहीं हैं ।

काश्यप ! ऐसी बात नहीं है कि मैं तुम्हें को जानता समझता नहीं हूँ । काश्यप ! मैं तुम्हें को सम्मत्ता जानता और समझता हूँ ।

* सर्वकथ = बीच का अपना रक्क किया हुआ ।

“हे गोतम ! क्या दुःख अपना स्वयं किया होता है ?” पूछे जाने पर आप कहते हैं, “काश्यप ! ऐसी बात नहीं है ।”

आप कहते हैं, काश्यप ! मैं दुःख को मत्स्यत जानता और समापता हूँ ।

भगवान् मुझे बतायें कि दुःख क्या है, भगवान् मुझे उपदेश करें कि दुःख क्या है ?

काश्यप ! ‘जो करता है वही भोगता है’ ख्याल कर, यदि कहा जाय कि दुःख अपना स्वयं किया होता है तो श्राश्यत-घाट हो जाता है ।

काश्यप ! दूसरा करना है और दूसरा भोगता है’ ख्याल कर, यदि यस्मा के फेर में पड़ा हुआ मनुष्य कहे कि दुःख पराये का किया होता है तो उच्छेद-घाट हो जाता है ।

काव्यायन ! बुद्ध इन दो अन्तों को छोड़ मत्स्य को मध्यम प्रकार से बताते हैं । अविद्या के होने से संस्कार होते हैं...। इस तरह, सारे दुःख-समूह का समुदय होता है ।

उसी अविद्या के बिल्कुल हट और रुक जाने से संस्कार होने नहीं पाते .। इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है ।

ग

भगवान् के ऐसा कहने पर नंगा साधु काश्यप भगवान् से बोला—धन्य है ! भन्ते, आप धन्य हैं ॥ जैसे उलटे को खलट दे .वैसे भगवान् ने अनेक प्रकार से धर्म का उपदेश किया । मैं भगवान् की शरण जाता हूँ, धर्म की और भिक्षुत्व की । भन्ते ! मैं भगवान् के पास प्रव्रज्या पाऊँ, और उपसम्पदा पाऊँ ।

काश्यप ! जो दूसरे मत के साधु इस धर्मविनय में प्रव्रज्या और उपसम्पदा चाहते हैं उन्हें चार मास का परिवास लेना पड़ता है । इस चार मास के परिवास बीतने पर यदि भिक्षुओं को रुचता है तो उसे प्रव्रज्या और उपसम्पदा देकर भिक्षु बना देते हैं । किन्तु, हमें व्यक्ति की विभिन्नता मालूम है ।

भन्ते ! यदि, जो दूसरे मत के साधु इस धर्मविनय में प्रव्रज्या और उपसम्पदा चाहते हैं उन्हें चार मास का परिवास लेना पड़ता है, इस चार मास के परिवास बीतने पर यदि भिक्षुओं को रुचता है तो उसे प्रव्रज्या और उपसम्पदा देकर भिक्षु बनाते हैं,—तो मैं चार साल का परिवास लेता हूँ, चार साल के परिवास बीतने पर यदि भिक्षुओं को रुचे तो मुझे प्रव्रज्या और उपसम्पदा देकर भिक्षु बना लें ।

नंगा साधु काश्यप ने भगवान् के पास प्रव्रज्या पायी, और उपसम्पदा पायी ।

घ

उपसम्पदा पाने के कुछ ही समय बाद आयुष्मान् काश्यप अकेला, एकान्त में अप्रमत्त, आतापी (=क्लेशों को तपाने वाला) और प्रहितात्म हो विहार करते हुये शीघ्र ही उस अनुत्तर ब्रह्मचर्य के परम फल को इसी जन्म में स्वयं जान, साक्षात् कर, और प्राप्त कर विहार करने लगे जिसके लिये कुलपुत्र श्रद्धा-पूर्वक घर से वेधर हो प्रव्रजित हो जाते हैं । जाति क्षीण हो गई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, अब और कुछ करना याकी नहीं है—ऐसा जान लिया ।

आयुष्मान् काश्यप अर्हत्ता में एक हुये ।

* परिवास—इस अवधि में प्रव्रज्या-प्रार्थी को सेवा-टहल करते हुये भिक्षुओं के साथ रहना होता है । जब भिक्षु उसकी दृढता, आचरण, व्यवहार आदि से सतुष्ट हो जाते हैं तो उसे प्रव्रजित करते हैं ।

§ ८ तिम्बदक सुप्त (१२. २. ८)

सुप्त दुःख के कारण

आवस्ती में ।

तब तिम्बदक परिमात्रक वहाँ भगवान् से वहाँ आया । आकर भगवान् का सम्मोहन किया और आबसगत तथा कुसकथेम के प्रश्न पूछने के बाद एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ कर तिम्बदक परिमात्रक भगवान् से बोला—

हे गौतम ! क्या सुख-दुःख अपने आप हो जाता है ?

भगवान् बोले—तिम्बदक ! ऐसी बात नहीं है ।

हे गौतम ! तो क्या सुख-दुःख किसी दूसरे के करने से होता है ?

भगवान् बोले—तिम्बदक ! ऐसी बात नहीं है ।

हे गौतम ! तो क्या सुख-दुःख अपने आप ही हो जाता है और दूसरे के करने से भी होता है ?

भगवान् बोले—तिम्बदक ! ऐसी बात नहीं है ।

हे गौतम ! तो क्या सुख-दुःख न अपने आप और न दूसरे के करने से किन्तु अकारण ही इच्छा हो जाता है ?

भगवान् बोले—तिम्बदक ! ऐसी बात नहीं है ।

हे गौतम ! तो क्या सुख-दुःख ही ही नहीं ?

तिम्बदक ! ऐसी बात नहीं है कि सुख-दुःख नहीं है, सुख-दुःख तो है ही ।

तो पता चला है कि आप गौतम सुख-दुःख को जानते दूसरे नहीं हैं ।

तिम्बदक ! ऐसी बात नहीं है कि मैं सुख-दुःख को नहीं जानता दूसरा । तिम्बदक ! मैं सुख-दुःख को सत्यता जानता दूसरा हूँ ।

तो हे गौतम ! मुझे बताओ कि सुख-दुःख क्या है । हे गौतम ! मुझे सुख-दुःख का ब्यवहार करें ।

तिम्बदक ! 'बो बेदना है वही (सुख-दुःख की) अनुभूति कराने वाला है' समझ कर तुमने कहा कि सुख-दुःख अपने आप हो जाता है । मैं ऐसा नहीं बताता ।

तिम्बदक ! 'बेदना दूसरी ही है और (सुख-दुःख की) अनुभूति कराने वाला दूसरा ही' समझ कर तुमने कहा कि सुख-दुःख दूसरे का किया होता है । मैं ऐसा भी नहीं बताता ।

तिम्बदक ! बुद्ध इन दो कथों को छोड़ मज्झम रीति से सत्य का ब्यवहार करते हैं ।

बहिषा के होने से संस्कार होते । इस तरह सारे दुःख-समूह का समुत्पन्न होता है ।

इसी बहिषा के विच्छेद हट और ब्रह्म के सारे दुःख-समूह एक जाता है ।

हे गौतम ! आज से जन्म भर मुझे अपना धरमगत उपासक स्वीकार करें ।

§ ९ पारुपण्डित सुप्त (१२. २. ९)

मूर्ख और पण्डित में अन्तर

आवस्ती में ।

मिथुनो ! बहिषा में जब दुःखा बढ़ते रहने से ही मूर्ख नहीं का बोझ बढ़ा रहता है । और वह बोझ बाहर और भीतर से वाग्म-कर्म (वर्ण्य कर्म) ही है । तो दो-दो (व्यभिचर और उपासक विपक्ष)

● सर्वकर्त = सर्व बेदना ही सुख-दुःख की अनुभूति का कारण होता ।

के होने से स्पर्श होता है। यह छ आयतन हैं जिनमें स्पर्श कर मूर्ख सुख-दुःख का अनुभव करता है। अथवा, इन (छ आयतनों) में किसी एक से।

भिक्षुओ ! अविद्या में पड़, तृष्णा बढ़ते रहने से ही पण्डित जनों का भी चोला खड़ा रहता है। और, यह चोला बाहर और भीतर से नाम-रूप (=पञ्च स्कन्ध) ही है। सो, दो दो के होने से स्पर्श होता है। यह छः आयतन हैं जिनसे स्पर्श कर मूर्ख सुख-दुःख का अनुभव करता है। अथवा, इनमें किसी एक से।

भिक्षुओ ! तब, मूर्ख और पण्डित में क्या अन्तर=भेद होता है ?

भन्ते ! भगवान् ही धर्म के गुरु, नायक और उपदेष्टा हैं। भन्ते ! अच्छा होता कि भगवान् ही इस प्रश्न को खुलासा करते। भगवान् से सुन कर भिक्षु धारण करेंगे।

तो, भिक्षुओ ! सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ, मैं कहता हूँ।

“भन्ते ! बहुत अच्छा” कह भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! जिस अविद्या और तृष्णा के हेतु मूर्ख जनों का चोला खड़ा रहता है, वह अविद्या और तृष्णा उनकी क्षीण हुई नहीं होती है। सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि दुःख का विल्कुल क्षय कर देने के लिये मूर्ख ने ब्रह्मचर्य नहीं पाला। इसलिये मूर्ख एक चोला छोड़कर दूसरा धरता है। इस तरह चोला धरते रह, यह जाति, जरामरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, बेचैनी, परेशानी से नहीं छूटता है। दुःख से नहीं छूटता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

भिक्षुओ ! जिस अविद्या और तृष्णा के हेतु पण्डित जनों का चोला खड़ा रहता है, वह अविद्या और तृष्णा उनकी क्षीण हो गई होती है। सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि दुःख का विल्कुल क्षय कर देने के लिये पण्डित ने ब्रह्मचर्य का पालन किया है। इसलिये, पण्डित एक चोला छोड़ कर दूसरा नहीं धरता इस तरह फिर चोला न धर, वह जाति, जरामरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, बेचैनी, परेशानी से छूट जाता है। दुःख से छूट जाता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

भिक्षुओ ! यही ब्रह्मचर्य पालन न करने और करने का अन्तर=भेद मूर्ख और पण्डित में होता है।

§ १०. पञ्चय सुत्त (१२ २. १०)

प्रतीत्य समुत्पाद की व्याख्या

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! मैं प्रतीत्य समुत्पाद और प्रतीत्य समुत्पन्न धर्मों का उपदेश करूँगा। उसे सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ, मैं कहता हूँ।

“भन्ते ! बहुत अच्छा” कह, भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! प्रतीत्य समुत्पाद क्या है ? भिक्षुओ ! बुद्ध अवतार लें या नहीं, (यह तो सर्वदा सत्य रहता है कि) जनमने पर बड़ा होता है और मर जाता है (=जाति के प्रत्यय से जरामरण होता है)। प्रकृति का यह नियम है कि एक धर्म के होने से दूसरा होता है, उसे बुद्ध भली भाँति वृक्षते और जानते हैं। उसे भली भाँति वृक्ष और जानकर बताते हैं = उपदेश करते हैं = बताते हैं = सिद्ध करते हैं = खोल देते हैं = विभाग कर देते हैं = साफ करते हैं, और कहते हैं—

देखो ! भिक्षुओ ! जाति के होने से जरामरण होता है। भव के होने से जाति होती है। उपादान के होने से भव होता है। तृष्णा के होने से उपादान होता है। वेदना के होने से तृष्णा होती है। स्पर्श के होने से वेदना होती है। पञ्चायतन के होने से स्पर्श होता है। नामरूप के होने से पञ्चायतन होता है। विज्ञान के होने से नामरूप होता है। सस्कारों के होने से विज्ञान होता है। अविद्या के होने से सस्कार होते हैं।—बुद्ध का अवतार हो या नहीं यह नियम सदा बना रहता है।

§ ८ तिम्वरुह सुच (१२ २ ८)

सुख-दुःख के कारण

भावस्ती में ।

तब तिम्वरुह परित्राजक बहो भगवान् ने बहो जाया । बाकर, भगवान् का सम्मोदन किया और भावभगत तथा कुसुमधेम के ग्रहण पूछने के बाद एक और बैठ गया ।

एक और बैठ कर तिम्वरुह परित्राजक भगवान् से बोला—

हे गौतम ! क्या सुख-दुःख अपने आप हो जाता है ?

भगवान् बोले—तिम्वरुह ! ऐसी बात नहीं है ।

हे गौतम ! तो क्या सुख-दुःख किसी दूसरे के करने से होता है ?

भगवान् बोले—तिम्वरुह ! ऐसी बात नहीं है ।

हे गौतम ! तो क्या सुख-दुःख अपने आप भी हो जाता है और दूसरे के करने से भी होता है ?

भगवान् बोले—तिम्वरुह ऐसी बात नहीं है ।

हे गौतम ! तो क्या सुख-दुःख न अपने आप और न दूसरे के करने से किन्तु अकारण ही इतर हो जाता है ?

भगवान् बोले—तिम्वरुह ! ऐसी बात नहीं है ।

हे गौतम ! तो क्या सुख-दुःख है ही नहीं ?

तिम्वरुह ! ऐसी बात नहीं है कि सुख-दुःख नहीं है सुख-दुःख तो है ही ।

तो पता चला है कि आप गौतम सुख-दुःख को धारते बूझते नहीं हैं ।

तिम्वरुह ! ऐसी बात नहीं है कि मैं सुख-दुःख को नहीं जानता बूझता । तिम्वरुह ! मैं सुख-दुःख को सधता जानता बूझता हूँ ।

तो हे गौतम ! मुझे बताइ कि सुख-दुःख क्या है । हे पातम ! मुझे सुख-दुःख का उपदेश करें ।

तिम्वरुह ! 'जो वेदना है वही (सुख-दुःख की) अनुभूति कराने वाला है' समझ कर तुमने कहा कि सुख-दुःख अपने आप हो जाता है । मैं ऐसा नहीं बताता ।

तिम्वरुह ! 'वेदना दूसरी ही है और (सुख-दुःख की) अनुभूति कराने वाला दूसरा ही' समझ कर तुमने कहा कि सुख-दुःख दूसरे का किया होता है । मैं ऐसा भी नहीं बताता ।

तिम्वरुह ! तुम इन ही ज्यों की ओर मग्न रीति से सब का उपदेश करते हैं ।

अधिका के होने से संस्कार होते । इस तरह सारे सुख-समूह का समुदय होता है ।

जसी अधिका के विस्तृत हुए और एक जाने से सारा सुख-समूह बन जाता है ।

हे गौतम ! आज से जन्म भर मुझे अपना तरंगगत उपसक स्वीकार करें ।

§ ९ पारुपण्डित सुच (१२ २ ९)

मूर्ख और पण्डित में अन्तर

भावस्ती में ।

मिष्टको ! अधिका में वह पुष्पा बजाते रहते थे ही मूर्ख ज्यों का धोका कहा रहता है । और, वह जोका बाहर और भीतर से नाम-कर्म (अर्थ-कर्म) ही है । सो हो-नी (अधिका और असक विषय)

* सत्यस = स्वयं वेदना ही सुख-दुःख की अनुभूति का कारण होना ।

के होने से स्पर्श होता है। यह छ आयतन हैं जिनमें स्पर्श कर मूर्ख सुख-दुःख का अनुभव करता है। अथवा, इन (छ आयतनों) में किसी एक से।

भिक्षुओ ! अविद्या में पट, तृष्णा बढ़ाते रहने से ही पण्डित जनों का भी चोला खटा रहता है। और, यह चोला बाहर और भीतर से नाम-रूप (=पञ्च स्कन्ध) ही है। सो, दो दो के होने से स्पर्श होता है। यह छः आयतन हैं जिनसे स्पर्श कर मूर्ख सुख-दुःख का अनुभव करता है। अथवा, इनमें किसी एक से।

भिक्षुओ ! तब, मूर्ख और पण्डित में क्या अन्तर=भेद होता है ?

भन्ते ! भगवान् ही धर्म के गुरु, नायक और उपदेष्टा हैं। भन्ते ! अच्छा होता कि भगवान् ही इस प्रश्न को खुलासा करते। भगवान् से सुन कर भिक्षु धारण करेंगे।

तो, भिक्षुओ ! सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ, मैं कहता हूँ।

“भन्ते ! बहुत अच्छा” कह भिक्षुओ ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! जिस अविद्या और तृष्णा के हेतु मूर्ख जनों का चोला खटा रहता है, वह अविद्या और तृष्णा उनकी क्षीण हुई नहीं होती है। सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि दुःख का बिल्कुल क्षय कर देने के लिये मूर्ख ने ब्रह्मचर्य नहीं पाला। इसलिये मूर्ख एक चोला छोड़कर दूसरा धरता है। इस तरह चोला धरते रह, यह जाति, जरामरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, वैचैनी, परेशानी से नहीं छूटता है। दुःख से नहीं छूटता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

भिक्षुओ ! जिस अविद्या और तृष्णा के हेतु पण्डित जनों का चोला खटा रहता है, वह अविद्या और तृष्णा उनकी क्षीण हो गई होती है। सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि दुःख का बिल्कुल क्षय कर देने के लिये पण्डित ने ब्रह्मचर्य का पालन किया है। इसलिये, पण्डित एक चोला छोड़ कर दूसरा नहीं धरता इस तरह फिर चोला न धर, वह जाति, जरामरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, वैचैनी, परेशानी से छूट जाता है। दुःख से छूट जाता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

भिक्षुओ ! यही ब्रह्मचर्य पालन न करने और करने का अन्तर=भेद मूर्ख और पण्डित में होता है।

§ १०. पञ्चय सुत्त (१२ २. १०)

प्रतीत्य समुत्पाद की व्याख्या

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! मैं प्रतीत्य समुत्पाद और प्रतीत्य समुत्पन्न धर्मों का उपदेश करूँगा। उसे सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ, मैं कहता हूँ।

“भन्ते ! बहुत अच्छा” कह, भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! प्रतीत्य समुत्पाद क्या है ? भिक्षुओ ! बुद्ध अवतार लें या नहीं, (यह तो सर्वथा सत्य रहता है कि) जनमने पर बढ़ा होता है और मर जाता है (=जाति के प्रत्यय से जरामरण होता है)। प्रकृति का यह नियम है कि एक धर्म के होने से दूसरा होता है, उसे बुद्ध भली भाँति वृक्षते और जानते हैं। उसे भली भाँति वृक्ष और जानकर बताते हैं = उपदेश करते हैं = बताते हैं = सिद्ध करते हैं = खोल देते हैं = विभाग कर देते हैं = साफ करते हैं, और कहते हैं—

देखो ! भिक्षुओ ! जाति के होने से जरामरण होता है। भव के होने से जाति होती है। उपादान के होने से भव होता है। तृष्णा के होने से उपादान होता है। वेदना के होने से तृष्णा होती है। स्पर्श के होने से वेदना होती है। पञ्चायतन के होने से स्पर्श होता है। नामरूप के होने से पञ्चायतन होता है। विज्ञान के होने से नामरूप होता है। संस्कारों के होने से विज्ञान होता है। अविद्या के होने से संस्कार होते हैं।—बुद्ध का अवतार हो या नहीं यह नियम सदा बना रहता है।

प्रकृति का यह नियम है कि जर्म के होने से बूतरा होता है, बसे बुद्ध मकी मौति बूझते और जानते हैं। मकी मौति बूझ और कायकर बताते हैं = उपदेश करते हैं और कहते हैं—

देखो ! मित्रुओ ! अविद्या के होने से संस्कार होते हैं। मित्रुओ ! इसकी सारी सत्यता इसी हेतु—नियम पर निर्भर है।

मित्रुओ ! प्रतीत्य समुत्पन्न धर्म क्या हैं ? मित्रुओ ! जरामरण भगिण्य है संस्कृत है प्रतीत्य समुत्पन्न है क्षय होनेवाला है व्यय होनेवाला है छोड़ दिया जा सकता है रोक दिया जा सकता है।

मित्रुओ ! जाति ! मज ! उपादान ! लुप्पा ! वेदना ! रपर्सा ! पद्मापतन ! साम-कप ! विश्राम ! संस्कार ! अविद्या जगित्य है संस्कृत है प्रतीत्य समुत्पन्न है क्षय होने वाली है व्यय होने वाली है छोड़ दी जा सकती है रोक दी जा सकती है। मित्रुओ ! इन्हीं को प्रतीत्य समुत्पन्न धर्म कहते हैं।

मित्रुओ ! आर्यब्राह्म को यह प्रतीत्य समुत्पाद का नियम और प्रतीत्य समुत्पन्न धर्म अच्छी तरह समझ कर स्पष्टता साक्षात् कर किए गये होते हैं।

यह पूर्वोक्त की सिध्दादिति में नहीं रहता है कि—मैं भूतकाक में था मैं भूतकाक में नहीं था भूतकाक में क्या था भूतकाक में मैं कैसा था भूतकाक में मैं क्या होकर क्या हो गया था ?

यह अपरास्त की सिध्दादिति में भी नहीं रहता है कि—मैं भविष्य में होऊँगा मैं भविष्य में नहीं होऊँगा भविष्य में क्या होऊँगा भविष्य में कैसा होऊँगा भविष्य में क्या होकर क्या हो जाऊँगा।

यह मत्सुत्पन्न (वर्तमान काक) को लेकर भी अपने भीतर संशय नहीं करता—मैं हूँ, मैं नहीं हूँ, मैं क्या हूँ, मैं कैसा हूँ, मेरा जीव कहाँसे आया है आर कहाँ जायगा।

तो क्यों ? मित्रुओ ! क्योंकि आर्यब्राह्म को यह प्रतीत्य समुत्पाद और प्रतीत्य समुत्पन्न धर्म अच्छी तरह समझ कर स्पष्टता साक्षात् कर किये गये होते हैं।

आहार-वर्ग समाप्त।

तीसरा भाग

दशबल-वर्ग

§ १. पठम दसबल सुत्त (१२. ३. १)

बुद्ध सर्वोत्तम कहलाने के अधिकारी

श्रावस्ती मे ।

भिक्षुओ ! बुद्ध दशबल और चार वैशारद्य से युक्त हो सर्वोत्तम कहलाने के अधिकारी हैं । सभा में सिंह-नाद करते हैं, ब्रह्मचक्रको प्रवर्तित करते हैं ।

यह रूप है, यह रूप का उगना है, यह रूप का लय हो जाना है । यह वेदना है । यह सज्ञा है । यह संस्कार है । यह विज्ञान है, यह विज्ञान का उगना है, यह विज्ञान का लय हो जाना है ।

सो, एक के होने से दूसरा होता है, एक के उगने से दूसरा उग खड़ा होता है । एक के नहीं होने से दूसरा नहीं होता है, एक के रुक जाने से दूसरा रुक जाता है ।

जो अविद्या के होने से संस्कार होते हैं । इस तरह सारे दुःख-समूह का समुदय हो जाता है ।

उसी अविद्या के बिल्कुल हट और रुक जाने से **। इस तरह, सारा दुःख समूह रुक जाता है ।

§ २. दुतिय दसबल सुत्त (१२. ३. २)

प्रव्रज्या की सफलता के लिए उद्योग

श्रावस्ती मे ।

भिक्षुओ ! बुद्ध दशबल और चार वैशारद्य से युक्त हो [ऊपर वाले सूत्र की पुनरावृत्ति] इस तरह, सारा दुःख समूह रुक जाता है ।

भिक्षुओ ! मैंने धर्म को साफ साफ कह दिया है=समझा दिया है=खोल दिया है=प्रकाशित कर दिया है=लपेटन काट दिया है ।

भिक्षुओ ! ऐसे धर्म में श्रद्धा से प्रव्रजित हुये कुलपुत्र का वीर्य करना सफल होता है ।—चाम, नाब्दी, और हड्डियाँ ही भले शरीर मे रह जायँ, मांस और लोहित भले ही सूख जायँ—किन्तु, जो पुरुष के उत्साह, पुरुष के वीर्य और पुरुष के पराक्रम से पाया जा सकता है उसे बिना प्राप्त किये उद्योग से मुँह नहीं मोड़ूँगा ।

भिक्षुओ ! काहिल पुरुष पाप-धर्मों में पढ़कर दुःख पूर्ण जीता है, महान् परमार्थ से हाथ धो बैठता है । भिक्षुओ ! और, वीर्यवान् पुरुष पाप-धर्मों से बचा रह, आनन्द-पूर्वक विहार करता है, महान् परमार्थ को पूरा कर लेता है ।

भिक्षुओ ! हीन से अग्र की प्राप्ति नहीं होती, अग्र से ही अग्र की प्राप्ति होती है । भिक्षुओ ! ब्रह्मचर्य पालन करने की श्रद्धा लाओ, सामने बुद्ध मौजूद हैं । इसलिये, हे भिक्षुओ ! वीर्य करो, अप्राप्त की प्राप्ति के लिये, नहीं पहुँचे हुये स्थान पर पहुँचने के लिये, कभी देखी नहीं गई चीज़ को साक्षात् करने के लिये ।

इस तरह तुम्हारी प्रशम्भा खाकी नहीं जायगी, बल्कि सफ़ल भीर सिद्ध होगी। जिनका दान किया भीतर विच्छिन्न सदासाधक गन्धप्रत्यय भोग करोगे उन्हें बड़ा पुण्य प्राप्त होगा।

मिथुभो ! तुम्हें इसी तरह सीखना चाहिये। मिथुभो ! अपने हित को ध्यान में रखते हुए साधन-धाम हो बर्णन करो। दूसरों के हित को भी ध्यान में रखते हुए साधनधाम हो उद्योग करो।

§ ३ उपनिषद् सुष (१२. ३. ३)

आश्रय इयं, प्रतीत्य स्मृत्पाव

श्रापस्ती में।

मिथुभो ! मैं जानते भीर देखते हुए ही आश्रयों के शत्रु करण का उपवेश करता हूँ, बिना जाने धार देते नहीं।

मिथुभो ! क्या काम भीर देखकर आश्रयों का शत्रु होता है ? यह कप है यह कप का उपवास है यह कप का शत्रु हो जाना है। यह वेदना संज्ञा संस्कार । यह विज्ञान है यह विज्ञान का शत्रु होता है यह विज्ञान का शत्रु हो जाना है। मिथुभो ! इसे ही काम भीर देखकर आश्रयों का शत्रु होता है।

मिथुभो ! शत्रु होने पर जो शत्रु होने का ज्ञान होता है उस भी मैं सहैतुक बताता हूँ, अहैतुक नहीं।

मिथुभो ! शत्रु होने के ज्ञान का हेतु क्या है ? विमुक्ति ही हेतु है—ऐसा कहना चाहिये।

मिथुभो ! विमुक्ति को भी मैं सहैतुक बताता हूँ, अहैतुक नहीं।

मिथुभो ! विमुक्ति का हेतु क्या है ? वैराग्य ही है—ऐसा कहना चाहिये। मिथुभो ! वैराग्य को भी मैं सहैतुक बताता हूँ, अहैतुक नहीं।

मिथुभो ! वैराग्य का हेतु क्या है ? संसार की तुराद्यों को देख उससे भय करना (= विमिश्र) हेतु है—ऐसा कहना चाहिये। मिथुभो ! मैं इस भय करने को भी सहैतुक बताता हूँ, अहैतुक नहीं।

मिथुभो ! इस भय करने का हेतु क्या है ? उसका हेतु पारार्थज्ञानदर्शन है—ऐसा कहना चाहिये। मिथुभो ! पारार्थज्ञानदर्शन को भी मैं सहैतुक बताता हूँ, अहैतुक नहीं।

मिथुभो ! पारार्थज्ञानदर्शन का हेतु क्या है ? उसका हेतु समाधि है—ऐसा कहना चाहिये।

मिथुभो ! समाधि का भी मैं सहैतुक बताता हूँ, अहैतुक नहीं।

मिथुभो ! समाधि का हेतु क्या है ? उसका हेतु सुख है—ऐसा कहना चाहिये। मिथुभो ! सुख को भी मैं सहैतुक बताता हूँ, अहैतुक नहीं।

मिथुभो ! सुख का हेतु क्या है ? उसका हेतु शान्ति (अप्रधमि) है—ऐसा कहना चाहिये।

मिथुभो ! शान्ति का भी मैं सहैतुक बताता हूँ, अहैतुक नहीं।

मिथुभो ! शान्ति का हेतु क्या है ? उसका हेतु प्रीति है—ऐसा कहना चाहिये। मिथुभो ! प्रीति का भी मैं सहैतुक बताता हूँ, अहैतुक नहीं।

मिथुभो ! प्रीति का हेतु क्या है ? उसका हेतु प्रमोद है—ऐसा कहना चाहिये। मिथुभो ! प्रमोद को भी मैं सहैतुक बताता हूँ, अहैतुक नहीं।

मिथुभो ! प्रमोद का हेतु क्या है ? उसका हेतु धन्य है—ऐसा कहना चाहिये। मिथुभो ! धन्य का भी मैं सहैतुक बताता हूँ, अहैतुक नहीं।

मिथुभो ! धन्य का हेतु क्या है ? उसका हेतु पुण्य है—ऐसा कहना चाहिये। मिथुभो ! पुण्य को भी मैं सहैतुक बताता हूँ, अहैतुक नहीं।

भिक्षुओ ! दुःख का हेतु क्या है ? उसका हेतु जाति है—ऐसा कहना चाहिये । भिक्षुओ ! जाति को भी मैं सहेतुक बताता हूँ अहेतुक नहीं ।

भिक्षुओ ! जाति का हेतु ' भव ' है ।

भिक्षुओ ! भव का हेतु ' उपादान ' है ।

भिक्षुओ ! उपादान का हेतु ' तृष्णा ' है ।

भिक्षुओ ! तृष्णा का हेतु ' वेदना ' है ।

भिक्षुओ ! वेदना का हेतु ' स्पर्श ' है ।

भिक्षुओ ! स्पर्श का हेतु ' पञ्चायतन ' है ।

भिक्षुओ ! पञ्चायतन का हेतु ' नामरूप ' है ।

भिक्षुओ ! नामरूप का हेतु ' विज्ञान ' है ।

भिक्षुओ ! विज्ञान का हेतु ' संस्कार ' है ।

भिक्षुओ ! संस्कार का हेतु ' अविद्या ' है ।

भिक्षुओ ! इस तरह अविद्या के होने से संस्कार, संस्कार के होने से विज्ञान, नामरूप, पञ्चायतन, स्पर्श, वेदना, ' तृष्णा, उपादान, ' भव, जाति, ' दुःख, दुःख के होने से श्रद्धा, प्रमोद, प्रीति, प्रश्रद्धि, ' सुख, समाधि, ' यथार्थ ज्ञान-दर्शन, ससार-भीति, ' वैराग्य, ' वैराग्य से विमुक्ति होती है, विमुक्ति से आश्रवों के क्षय होने का ज्ञान हो जाता है ।

भिक्षुओ ! जैसे पहाड़ के ऊपर मूसलधार वृष्टि होने से, जल नीचे की ओर बह कर गर्वत, कन्दरा प्रदर, शाखा सभी को भर देता है । इन्हे भर जाने से नाले बह निकलते हैं । नालों के भर जाने से ढोड़ियाँ भर जाती हैं । ढोड़ियों के भर जाने से, छोटी-छोटी नदियाँ भर जाती हैं । छोटी-छोटी नदियों के भर जाने से बड़ी-बड़ी नदियाँ भर जाती हैं । बड़ी-बड़ी नदियों के भर जाने से समुद्र सागर भी भर जाते हैं ।

भिक्षुओ ! इसी तरह, अविद्या के होने से संस्कार, संस्कार के होने से विज्ञान, नामरूप, पञ्चायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, ' उपादान, ' भव, जाति, दुःख, - श्रद्धा, प्रमोद, ' प्रीति, प्रश्रद्धि, सुख, समाधि, ' यथार्थ ज्ञान-दर्शन, ' ससार-भीति, वैराग्य, वैराग्य के होने से विमुक्ति और विमुक्ति के होने से क्षय होने का ज्ञान ।

§ ४. अञ्जतिस्थित्य सुत्त (१२ ३ ४)

दुःख प्रतीत्य समुत्पन्न है

राजगृह के वेलुवन में ।

तब, आयुष्मान् सारिपुत्र सुबह में पहन और पात्रचीवर ले भिक्षाटन के लिये राजगृह में पड़े ।

तब, आयुष्मान् सारिपुत्र के मन में ऐसा हुआ—अभी राजगृह में भिक्षाटन करने के लिये कुछ सवेरा है, तो मैं चलों जहाँ अन्य तैथिक परिव्राजकों का आराम है ।

तब, आयुष्मान् सारिपुत्र जहाँ अन्य तैथिक परिव्राजकों का आराम था वहाँ गये, जाकर उनका सम्मोदन किया और कुशल क्षेम के प्रश्न पूछने के बाद पुरु और बैठ गये ।

एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् सारिपुत्र को वे अन्य तैथिक परिव्राजक बोले—आबुस सारिपुत्र ! कुछ श्रमण और ब्राह्मण कर्मवादी हैं जो दुःख को अपना स्वयं किया हुआ बताते हैं । आबुस सारिपुत्र ! ऐसे भी कुछ श्रमण और ब्राह्मण कर्मवादी हैं जो दुःख को दूसरे का किया हुआ बताते हैं । आबुस सारिपुत्र ! ऐसे भी कुछ श्रमण और ब्राह्मण कर्मवादी हैं जो दुःख को अपना मय किया हुआ और दूसरे का भी किया हुआ बताते हैं ।

इस तरह तुम्हारी प्रकृति काही नहीं जायगी वहिक सफल और सिद्ध होगी । जिसका ज्ञान किन्ना भीतर, पिच्छपाठ श्रमनाशन ध्यानप्रत्यक्ष भोग करोगे उन्हें क्या दुःख प्राप्त होगा ।

मिथुनो ! तुम्हें इसी तरह सीखना चाहिये । मिथुनो ! अपने हित को ध्याम में रखते हुये साधना हो उद्योग करो । दूसरों के हित को भी ध्याम में रखते हुये साधना हो उद्योग करो ।

३ उपनिषा सुच (१२ ३ ३)

आश्रय क्षय प्रतीत्य समुत्पाद

आवस्ती में ।

मिथुनो ! मैं जानते भीर एकते हुये ही आश्रयों के क्षय करने का उपदेश करता हूँ, बिना जाने अगर देखे नहीं ।

मिथुनो ! क्या ज्ञान और देखकर आश्रयों का क्षय होता है ? यह कथ है, यह कथ का उगमा है यह कथ का कथ हो जाना है । यह वेदना संज्ञा संस्कार । यह विश्राम है यह विश्राम का उगमा है यह विश्राम का कथ हो जाना है । मिथुनो ! इसे ही ज्ञान और देखकर आश्रयों का क्षय होता है ।

मिथुनो ! क्षय होने पर जो क्षय होने का ज्ञान होता है उसे भी मैं सहैतुक बताता हूँ, अहैतुक नहीं ।

मिथुनो ! क्षय होने के ज्ञान का हेतु क्या है ? बिमुक्ति ही हेतु है—ऐसा कहना चाहिये ।

मिथुनो ! बिमुक्ति को भी मैं सहैतुक बताता हूँ, अहैतुक नहीं ।

मिथुनो ! बिमुक्ति का हेतु क्या है ? वरात्य हेतु है—ऐसा कहना चाहिये । मिथुनो ! वरात्य को भी मैं सहैतुक बताता हूँ, अहैतुक नहीं ।

मिथुनो ! वरात्य का हेतु क्या है ? संसार की घ्राह्यों को हेतु उससे मय करवा (अविम्विदा) हेतु है—ऐसा कहना चाहिये । मिथुनो ! मैं इस मय करने को भी सहैतुक बताता हूँ, अहैतुक नहीं ।

मिथुनो ! इस मय करने का हेतु क्या है ? उसका हेतु पार्यायज्ञानदर्शन है—ऐसा कहना चाहिये ।

मिथुनो ! पार्यायज्ञानदर्शन को भी मैं सहैतुक बताता हूँ, अहैतुक नहीं ।

मिथुनो ! पार्यायज्ञानदर्शन का हेतु क्या है ? उसका हेतु समाधि है—ऐसा कहना चाहिये ।

मिथुनो ! समाधि को भी मैं सहैतुक बताता हूँ, अहैतुक नहीं ।

मिथुनो ! समाधि का हेतु क्या है ? उसका हेतु मुग है—ऐसा कहना चाहिये । मिथुनो ! मुग को भी मैं सहैतुक बताता हूँ, अहैतुक नहीं ।

मिथुनो ! मुग का हेतु क्या है ? उमका हेतु शान्ति (अप्रवृत्ति) है—ऐसा कहना चाहिये ।

मिथुनो ! शान्ति का भी मैं सहैतुक बताता हूँ, अहैतुक नहीं ।

मिथुनो ! शान्ति का हेतु क्या है ? उमका हेतु मोति है—ऐसा कहना चाहिये । मिथुनो ! मोति को भी मैं सहैतुक बताता हूँ, अहैतुक नहीं ।

मिथुनो ! मोति का हेतु क्या है ? उमका हेतु प्रसीद है—ऐसा कहना चाहिये । मिथुनो ! प्रसीद को भी मैं सहैतुक बताता हूँ, अहैतुक नहीं ।

मिथुनो ! प्रसीद का हेतु क्या है ? उमका हेतु अदा है—ऐसा कहना चाहिये । मिथुनो ! अदा को भी मैं सहैतुक बताता हूँ, अहैतुक नहीं ।

मिथुनो ! अदा का हेतु क्या है ? उमका हेतु दुःख है—ऐसा कहना चाहिये । मिथुनो ! दुःख को भी मैं सहैतुक बताता हूँ, अहैतुक नहीं ।

आनन्द ! एक ओर बैठने पर अन्य तैथिक परिचाजकों ने सुनने पूछा . . . ।

...[वही प्रश्नोत्तर जो आयुष्मान् सारिपुत्र के माथ कहा गया है ।]

भन्ते, आश्चर्य है ! अद्भुत है ॥ कि एक ही पद से सारा अर्थ कह दिया गया । भन्ते ! यदि यही अर्थ विन्मार से कहा जाना तो पड़ा गम्भीर होता, देखने में अव्यन्त गहरा मालूम पड़ता । तो, आनन्द ! तुम हमें क्यों ।

ग

भन्ते ! यदि मुझमें कोई पूछे—आयुस आनन्द ! जरामरण का निदान क्या है, यमुदय क्या है, उत्पत्ति क्या है, उद्गम क्या है ?—तो मैं ऐसा उत्तर दूँ—आयुस ! जरामरण का निदान जाति है, यमुदय जाति है, उत्पत्ति जाति है, उद्गम जाति है । भन्ते ! ऐसे पूछे जाने से मैं ऐसा ही उत्तर दूँ ।

...जाति का निदान भव है * ।

* भव का निदान उपादान है * ।

उपादान का निदान तृष्णा है * ।

तृष्णा का निदान वेदना है * ।

...वेदना का निदान स्पर्श है * ।

भन्ते ! यदि मुझमें कोई पूछे—आयुस आनन्द ! स्पर्श का निदान क्या है ?—तो मैं ऐसा उत्तर दूँ—आयुस ! स्पर्श का निदान पदायतन है । आयुस ! इन्हीं छ स्पर्शायतनों के दिल्बुल रुक जाने से स्पर्श का होना रुक जाता है । स्पर्श के रुक जाने से वेदना नहीं होती । वेदना के रुक जाने से तृष्णा नहीं होती । तृष्णा के रुक जाने से उपादान नहीं होता । उपादान के रुक जाने से भव नहीं होता । भव के रुक जाने से जाति नहीं होती । जाति के रुक जाने से जरा, मरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, वेचैनी, परेशानी सभी रुक जाते हैं । इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है । भन्ते ! ऐसे पूछे जाने से मैं ऐसा ही उत्तर दूँ ।

§ ५. भूमिज सुत्त (१२ ३ ५)

सुख-दुःख सहेतुक है

आवस्ती मे ।

क

तब, आयुष्मान् भूमिज सध्या समय ध्यान में उठ, जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ गये, और 'कुशलश्रेम के प्रश्न पूछकर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् भूमिज आयुष्मान् सारिपुत्र से बोले—आयुस सारिपुत्र ! कुछ श्रमण और ब्राह्मण कर्मवादी हैं जो सुख-दुःख को अपना स्वयं किया हुआ मानते हैं । जो सुख-दुःख को दूसरे का किया हुआ मानते हैं । * जो सुख-दुःख को अपना स्वयं किया हुआ और दूसरे का किया हुआ मानते हैं । जो सुख-दुःख को अकारण हठात् उत्पन्न हो गया मानते हैं ।

आयुस सारिपुत्र ! इस विषय में भगवान् का क्या कहना है ? क्या कह कर हम भगवान् के सिद्धान्त को यथार्थतः बता सकते हैं, जिससे हम भगवान् के सिद्धान्त में कुछ उलटा-पुलटा न कर दें, उनके धर्म के अनुकूल कहें, और, जिसके कहने से कोई सहधार्मिक वातचीत में निन्द्य-स्थान को न प्राप्त हो जाय ।

आहुस सारिपुत्र ! और एस भी मिलने भ्रमण और माझण कर्मबादी है जो हुल को न अपना स्वर्य किया हुआ और न दूसरे का किया हुआ किन्तु अकारण हठात् हो गया बताते हैं ।

आहुस सारिपुत्र ! इन विषय में भ्रमण गातम का क्या कहना है ? क्या कह कर हम भ्रमण गातम के सिद्धान्त को यथार्थतः बता सकते हैं जिससे भ्रमण-गातम के सिद्धान्त में हम उल्टा-पुल्टा न कर दें, उनके धर्म के अनुकूल कहें, और जिसके कहने में कोई सहधार्मिक निन्द-स्थान को न प्राप्त हो जाय ।

आहुस ! भगवान् ने दुष्ट को प्रतीत्यसमुत्पन्न बताया है । किसके प्रत्यय से (= होने से) ? स्पर्श के प्रत्यय से । ऐसा ही कह कर आप भगवान् के सिद्धान्त को यथार्थतः बता सकते हैं जिससे भगवान् के सिद्धान्त में आप उल्टा-पुल्टा न कर दें, उनके धर्म के अनुकूल कहें ।

आहुस ! जो कर्मबादी भ्रमण या माझण हुल को अपना स्वर्य किया हुआ बताते हैं वह भी स्पर्श के प्रत्यय ही से होता है । जो कर्मबादी भ्रमण या माझण हुल को अपना स्वर्य किया हुआ और दूसरे का भी किया हुआ बताते हैं वह भी स्पर्श के प्रत्यय ही से होता है । जो कर्मबादी भ्रमण या माझण हुल को न अपना स्वर्य किया हुआ और न दूसरे का किया हुआ किन्तु अकारण हठात् हो गया बताते हैं वह भी स्पर्श के प्रत्यय ही से होता है ।

आहुस ! जो कर्मबादी भ्रमण या माझण हुल को अपना स्वर्य किया हुआ बताते हैं वे बिना स्पर्श के ही कुछ अनुभव कर लें—ऐसा सम्भव नहीं । जो भ्रमण या माझण हुल को अकारण हठात् हो गया बताते हैं वे भी बिना स्पर्श के ही कुछ अनुभव कर लें—ऐसा सम्भव नहीं ।

ख

आहुप्मान् आनम् ने अन्य तैत्तिक परिभाषकों के साथ आहुप्मान् सारिपुत्र को कथा-संक्षेप करते सुना ।

तब आहुप्मान् आनम् मिश्राटव से काद मोख कर लने पर वहाँ भगवान् से वहाँ गये और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ आहुप्मान् आनम् ने भगवान् को अन्य तैत्तिक परिभाषकों के साथ आहुप्मान् सारिपुत्र का जो कुछ कथा-संक्षेप हुआ था उसे ज्यों का त्यों कह सुनाया ।

ठीक है आनम् ! सारिपुत्र ने ठीक ही समझाया है । मैंने हुल को प्रतीत्यसमुत्पन्न (हेतु के होने से उत्पन्न होनेवाला) बताया है । किसके प्रतीत्य से (= होने से) ? स्पर्श के प्रत्यय से । ऐसा ही कहकर कोई भी मरे उपदेश को यथार्थतः बता सकता है ऐसा कहनेवाला मरे सिद्धान्त में कुछ उल्टा-पुल्टा नहीं करता है । ऐसा कहनेवाला कोई सहधार्मिक बलवीत में निन्द-स्थान को नहीं प्राप्त करता है ।

आनम् ! जो कर्मबादी भ्रमण या माझण हुल को बताते हैं वह भी स्पर्श के प्रत्यय ही से होता है ।

आनम् ! जो कर्मबादी भ्रमण या माझण हुल का बताते हैं वे बिना स्पर्श के ही कुछ अनुभव कर लें ऐसा सम्भव नहीं ।

आनम् ! एक समय मैं इसी राजगृह के धनुष्यन कथम्बकनिवाप में बिहार कर रहा था । आनम् ! तब मैं सुषभ में पहल और पात्रवीर के मिश्राटव के भिण राजगृह में पैदा । आनम् ! तब मेरे मन में वह हुआ—जसी राजगृह में मिश्राटव करने के लिए गया सवेरा है, ता मैं वहाँ अन्य तैत्तिक परिभाषकों का आराम है वहाँ चली ।

आनम् ! तब मैं वहाँ अन्य तैत्तिक परिभाषकों का आराम था वहाँ गया और वक्का सम्मोदन किया, तथा कुशल धेम के प्रथ वृत्ते के बाद एक ओर बैठ गया ।

आनन्द ! एक ओर बैठने पर अन्य तैथिक परिव्राजकों ने मुझसे पूछा।

• [वही प्रश्नोत्तर जो आयुष्मान् सारिपुत्र के साथ कहा गया है ।]

भन्ते, आश्चर्य है ! अद्भुत है ! कि एक ही पद से सारा अर्थ कह दिया गया । भन्ते ! यदि यही अर्थ विस्तार से कहा जाता तो बड़ा गम्भीर होता, देखने में अत्यन्त गहरा मालूम पड़ता ।
तो, आनन्द ! तुम इसे कहो ।

ग

भन्ते ! यदि मुझसे कोई पूछे—आयुस आनन्द ! जरामरण का निदान क्या है, समुदय क्या है, उत्पत्ति क्या है, उद्गम क्या है ?—तो मैं ऐसा उत्तर दूँ—आयुस ! जरामरण का निदान जाति है, समुदय जाति है, उत्पत्ति जाति है, उद्गम जाति है । भन्ते ! ऐसे पूछे जाने से मैं ऐसा ही उत्तर दूँ ।

• • जाति का निदान भव है • • ।

• भव का निदान उपादान है ।

• उपादान का निदान तृष्णा है • • ।

तृष्णा का निदान वेदना है ।

• वेदना का निदान स्पर्श है • ।

भन्ते ! यदि मुझ से कोई पूछे—आयुस आनन्द ! स्पर्श का निदान क्या है • • ?—तो मैं ऐसा उत्तर दूँ—आयुस ! स्पर्श का निदान पड़ावतन है । आयुस ! इन्हीं छः स्पर्शायतनों के बिल्कुल रुक जाने से स्पर्श का होना रुक जाता है । स्पर्श के रुक जाने से वेदना नहीं होती । वेदना के रुक जाने से तृष्णा नहीं होती । तृष्णा के रुक जाने से उपादान नहीं होता । उपादान के रुक जाने से भव नहीं होता । भव के रुक जाने से जाति नहीं होती । जाति के रुक जाने से जरा, मरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, वैचैनी, परेशानी सभी रुक जाते हैं । इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है । भन्ते ! ऐसे पूछे जाने से मैं ऐसा ही उत्तर दूँ ।

§ ५. भूमिज सुत्त (१२ ३ ५)

सुख-दुःख सहेतुक है

श्रावस्ती में ।

क

तब, आयुष्मान् भूमिज सध्या समय ध्यान में बैठ, जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ गये, और 'कुशलक्षेम के प्रश्न पूछकर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् भूमिज आयुष्मान् सारिपुत्र से बोले—आयुस सारिपुत्र ! कुछ श्रमण और ब्राह्मण कर्मवादी हैं जो सुख-दुःख को अपना स्वयं किया हुआ मानते हैं । • जो सुख-दुःख को दूसरे का किया हुआ मानते हैं । • जो सुख-दुःख को अपना स्वयं किया हुआ और दूसरे का किया हुआ मानते हैं । • जो सुख-दुःख को अकारण हटान् उत्पन्न हो गया मानते हैं ।

आयुस सारिपुत्र ! इस विषय में भगवान् का क्या कहना है ? क्या कह कर हम भगवान् के सिद्धान्त को यथार्थतया बता सकते हैं, जिसे हम भगवान् के सिद्धान्त में कुछ उलटा-पुलटा न कर दें, उनके वर्म के अनुकूल कहें, और, जिसके कहने से कोई सहधार्मिक ब्रातचीत में निश्चिन्त-स्थान को न प्राप्त हो जाय ।

आहुत । भगवान् मैं सुख-मुक्त को प्रतीत्यसमुत्पन्न बताया है । किमर्थे प्रतीत्य से ? स्वर्ग के प्रतीत्य से । ऐसा ही कहने वाला भगवान् के सिद्धान्त को पथार्थता बताता है ।

आहुत । जो कर्मकारी भ्रमण या माह्यन सुख-मुक्त को 'अकारण इदम् उत्पन्न हो गया मानते हैं वह भी स्वर्ग के होने ही से होता है ।

वे बिना स्वर्ग के ही कुछ अनुभव कर लें—ऐसा सम्भव नहीं ।

स्व

आहुतम् । आनन्द ने आहुतम् भूमिज के माथ आहुतम् सारिपुत्र के कथासंस्कार को सुना । तब आहुतम् आनन्द वहाँ भगवान् से वहाँ गये और भगवान् का अभिवादन करके एक और बैठ गये । एक और बैठ आहुतम् आनन्द ने भगवान् का आहुतम् भूमिज के माथ आहुतम् सारिपुत्र का जा कथामंस्कार कृष्ण या समी त्यों का त्यों कह सुनाया ।

ठीक है आनन्द । सारिपुत्र ने कहा ठीक समझाया । आनन्द ! मैंने सुख-मुक्त को प्रतीत्यसमुत्पन्न बताया है । किमर्थे प्रतीत्य से ? स्वर्ग के प्रतीत्य से । ऐसा कहने वाला मेरे सिद्धान्त को पथार्थता बताता है ।

आनन्द ! जो कर्मकारी भ्रमण या माह्यन सुख-मुक्त को 'अकारण इदम् उत्पन्न हो गया मानते हैं वह भी स्वर्ग के होने ही से होता है ।

वे बिना स्वर्ग के ही कुछ अनुभव कर लें—ऐसा सम्भव नहीं ।

आनन्द ! सारी स काई कर्म करण पर कर्म की चेतना (will) के हेतु स अपने में सुख-मुक्त उत्पन्न होता है । आनन्द ! कोई वचन बोधन पर चारुचेतना के हेतु स अपने में सुख-मुक्त उत्पन्न होता है । आनन्द ! मन स कुछ चित्त के करण पर मनश्चेतना के हेतु स अपने में सुख-मुक्त उत्पन्न होता है ।

आनन्द ! चाहे अविद्या के कारण जो स्वर्ग कावर्मस्कार इच्छा करता है उसके प्राप्य से उसे अपने में सुख-मुक्त उत्पन्न होता है । आनन्द ! चाहे जो दूसरे ही कावर्मस्कार इच्छा करते हैं उसके प्राप्य स भी उस अपने में सुख-मुक्त उत्पन्न होता है । आनन्द ! चाहे काम बुद्धि या कावर्मस्कार इच्छा करता है उसके प्राप्य स उस अपने में सुख-मुक्त उत्पन्न होता है । आनन्द ! चाहे विना काम बुद्धि या कावर्मस्कार इच्छा करता है उसके प्राप्य स उसे अपने में सुख-मुक्त उत्पन्न होता है ।

आनन्द ! चाहे स्वर्ग जो कावर्मस्कार इच्छा करता है उसके प्राप्य स उस अपने में सुख-मुक्त उत्पन्न होता है ।

आनन्द ! चाहे स्वर्ग जो कावर्मस्कार ।

आनन्द ! इन पाँचों में अविद्या तर्फी हुई है । अविद्या के विद्युत्तर और एक काम से वह कर्म नहीं होता है जिसमें उस सुख-मुक्त उत्पन्न हो । वह वचन वह मन के चित्त नहीं होते हैं जिसमें उसे सुख-मुक्त उत्पन्न हो ।

उसी वह छद्म ही नहीं रहता है अपार ही नहीं रहता है आनन्द नहीं रहता हेतु नहीं रहता जिसके प्राप्य स उस अपने में सुख-मुक्त उत्पन्न हो ।

५ ६ उपपन्न गुण (१० २ ६)

गुण समुत्पन्न है

धापामी में ।

तब आहुतम् उपपन्न जो भगवान् से वहाँ कार्य और भगवान् का अभिवादन करके एक और बैठ गये । एक और बैठ आहुतम् उपपन्न भगवान् से बोले—

भन्ते ! कितने ध्रमण या ब्राह्मण हैं जो दुःख को स्वय अपना किया हुआ बताते हैं । ** दूसरे का किया • । स्वय अपना किया हुआ भी और दूसरे का किया भी***।***न स्वय अपना किया हुआ और न दूसरे का किया हुआ, किन्तु अकारण हठात् उत्पन्न **।

भन्ते ! इस विषय में भगवान् का क्या कहना है ?

उपवान ! मैंने दुःख को प्रतीत्यसमुत्पन्न बताया है । किसके प्रत्ययसे ? स्पर्शके प्रत्ययसे ।***

उपवान ! जो दुःख को***अकारण हठात् उत्पन्न हुआ मानते हैं, वह भी स्पर्श के होने से ही होता है ।

उपवान !***वे बिना स्पर्श के ही कुछ अनुभव कर लें—ऐसा सम्भव नहीं ।

§ ७. पच्चय सुत्त (१२. ३. ७)

कार्य-कारणका सिद्धान्त

श्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! अविद्याके होनेसे सस्कार होते हैं ।***। इस तरह, मारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है ।

भिक्षुओ ! जरामरण क्या है ? जो उन उन जीवोंके उन उन योनियोंमें बड़ा हो जाना, पुरनिया हो जाना, दंतोंका टूट जाना, बाल मफेद हो जाना, झुर्रियाँ पड़ जानी, उमरका खातमा और इन्द्रियोंका शिथिल हो जाना, इसीको कहते हैं जरा । जो उन उन जीवोंके उन उन योनियोंमें रिससक पड़ना, टपक पड़ना, कट जाना, अन्तर्धान हो जाना, मृत्यु, मरण, कज़ा कर जाना, स्कन्धोंका छिन्न भिन्न हो जाना, चोलाको छोड़ देना है । इसीको कहते हैं मरण । ऐसी यह जरा और ऐसा यह मरण । भिक्षुओ ! इसीको कहते हैं जरामरण ।

जाति के समुदयसे जरामरणका समुदय होता है । जातिके निरोधसे जरामरणका निरोध होता है । यही आर्य-अष्टाङ्गिक-मार्ग जरामरणके निरोधका उपाय है । आर्य-अष्टाङ्गिक मार्ग है—(१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक् सकल्प, (३) सम्यक् वाक्, (४) सम्यक् कर्मान्त, (५) सम्यक् आजीव, (६) सम्यक् व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति, (८) सम्यक् समाधि ।

भिक्षुओ ! जाति, भव, उपादान, तृष्णा, वेदना, स्पर्श, पड़ावतन, नामरूप, विज्ञान, सस्कार क्या है ?
[देखो—पहला भाग § २ (२)]

अविद्या के समुदय से सस्कार का समुदय होता है । अविद्या के निरोध से सस्कार का निरोध होता है । यही आर्य-अष्टाङ्गिक-मार्ग सस्कार के निरोध करने का उपाय है ।

भिक्षुओ ! जो आर्यश्रावक इस प्रत्यय को जानता है, प्रत्यय के समुदय को जानता है, प्रत्यय के निरोध को जानता है, प्रत्यय की निरोधगामिनी प्रतिपदा को जानता है—वही आर्य-श्रावक दृष्टिसम्पन्न कहा जाता है, दर्शनसम्पन्न भी, सद्धर्म को प्राप्त भी, सद्धर्म को देखने वाला भी, शैक्ष्य-ज्ञान से युक्त भी, शैक्ष्य-विद्या से युक्त भी, धर्म के स्रोत में आ गया भी, निर्वेधिकप्रज्ञ भी, अमृत के द्वार पर पहुँच कर खड़ा हुआ भी ।

§ ८. भिक्षु सुत्त (१२. ३. ८)

कार्य-कारणका सिद्धान्त

श्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! यहाँ, भिक्षु जरामरण को जानता है । जरामरण के समुदय को जानता है, जरामरण के निरोध को जानता है । जरामरण की निरोध-गामिनी-प्रतिपदा को जानता है ।

जाति को जानता है । मय को जानता है । उपादान को जानता है***। नृणा को जानता है । वेदमा को जानता है । स्वर्ग को जानता है । पद्मावतन को जानता है । नामरूप को जानता है । विज्ञान को जानता है । संस्कार को जानता है** ।

मिथुनी ! जरागरण क्या है ? [ऊपर के सूत्र पढ़ा]

§ ९ पठम समणब्राह्मण सूच (१० ३ ९)

परमार्थज्ञाता भमण-ब्राह्मण

भाषसी मे ।

क

मिथुनी ! जो भमण वा ब्राह्मण जरागरण जाति मय उपादान नृणा वेदमा स्वर्ग पद्मावतन नामरूप विज्ञान संस्कार को नहीं जानते हैं संस्कार के समुदय को नहीं जानते हैं संस्कार के निरोध को नहीं जानते हैं संस्कार की निरोधगमिनी प्रतिपदा को नहीं जानते हैं—इन भमणों की न तो भमणों में गिनती होती है और न ब्राह्मणों की ब्राह्मणों में । वे आयुष्मान् इसी जन्म में भमण वा ब्राह्मण के परमार्थ को स्वर्ग जान साध्यात् कर और प्राप्त कर बिहार नहीं करते ।

मिथुनी ! जो भमण वा ब्राह्मण जरागरण संस्कार की निरोधगमिनी प्रतिपदा को जानते हैं—इन्हीं भमणों की ब्रह्मणों में गिनती होती है और ब्राह्मणों की ब्राह्मणों में । वे आयुष्मान् इसी जन्म में भमण वा ब्राह्मण के परमार्थ को स्वर्ग जान साध्यात् कर और प्राप्त कर बिहार करते हैं ।

§ १० दुतिय समणब्राह्मण सूच (१ ३ १०)

संस्कार-पारंगत भमण ब्राह्मण

भाषसी मे ।

मिथुनी ! जो भमण वा ब्राह्मण जरागरण जाति संस्कार को नहीं जानते हैं समुदय को नहीं जानते हैं निरोध को नहीं जानते हैं निरोधगमिनी प्रतिपदा को नहीं जानते हैं—वे जरागरण संस्कारों को पार कर जैसा ऐसा सम्मन नहीं ।

मिथुनी ! जो भमण वा ब्राह्मण जरागरण संस्कार को जानते हैं समुदय को जानते हैं निरोध को जानते हैं निरोधगमिनी प्रतिपदा को जानते हैं—वे जरागरण संस्कारों को पार कर जैसा—वेमा हो सकना है ।

दशम्य पय समाप्त

चौथा भाग

कलार क्षत्रिय वर्ग

§ १. भृतमिदं सुत (१२ ४ १)

यथार्थ ज्ञान

प्रेमा मेनें सुता ।

एक समय भगवान् धावस्ती में अनाथापिण्डिक के जेतवन आराममें विहार करते थे ।

क

यहो, भगवान् ने आयुष्मान् सारिपुत्र को आमन्त्रित किया—सारिपुत्र ! अजित के प्रश्न पूछनेमें यह कहा गया था—

जिन्होंने धर्म जान लिया है, जो इस शासन में सीमने योग्य है,

उनके ज्ञान और आचार कहें, हैं मारिप ! मैं पूछता हूँ ॥

मारिपुत्र ! इस मक्षेप से कहे गये का कैसे विस्तार से अर्थ समझना चाहिये ?

इस पर आयुष्मान् सारिपुत्र चुप रहे ।

दूसरी बार भी ।

तीसरी बार भी आयुष्मान् सारिपुत्र चुप रहे ।

ख

सारिपुत्र ! यह हो गया, तुम देखो । सारिपुत्र ! यह धीत गया, तुम देखो ।

भन्ते ! यह हो गया, इसे यथार्थतः सम्यक् प्रज्ञा से देखता ह । यह हो गया—इसे यथार्थतः सम्यक् प्रज्ञा से देखकर, उसके निर्वेद = विराग = निरोध के लिये यत्नवान् होता है । उसे आहार के हेतु से होते सम्यक् प्रज्ञा से देखता है । इसे आहार के हेतु से होते सम्यक् प्रज्ञा से यथार्थतः देख, आहार के सम्भव के निर्वेद = विराग = निरोध के लिये यत्नवान् होता है । उसके आहार के निरोध से जो हो गया है उसका भी निरोध होना यथार्थतः सम्यक् प्रज्ञा से जान निरोध धर्म के निर्वेद = विराग = निरोध = अनुपादान से विमुक्त हो जाता है । भन्ते ! धर्म इसी तरह जाना जाता है ।

भन्ते ! अजित के प्रश्न पूछने में जो यह कहा गया था—

जिन्होंने धर्म ॥

उस मक्षेप से कहे गये का मैं ऐसे ही विस्तार से अर्थ समझता हूँ ।

ग

ठीक है, सारिपुत्र, ठीक है ॥ निर्वेद=विराग=निरोध=अनुपादान से विमुक्त हो जाता है ।

[ऊपर जो कहा गया है उसी की पुनरुक्ति]

आति को जानता है । मद्य को जानता है । उपादान को जानता है— । नृप्य को जानता है । वेदना को जानता है । स्पर्श को जानता है । पद्मापतन को जानता है । नामक्य को जानता है । विशाग को जानता है । संस्कार को जानता है ।

मिथुनी ! अरामरथ क्या है ? [ऊपर क सूत्र पेशा]

§ ९ पठम समणब्राह्मण सुत्त (१० ३ ९)

परमार्थज्ञाता भमण-ब्राह्मण

आपत्ती में ।

क

मिथुनी ! जो भमण या ब्राह्मण अरामरथ आति मद्य उपादान नृप्य वेदना स्पर्श पद्मापतन नामक्य विशाग संस्कार को नहीं जानते हैं संस्कार के समुद्भूत को नहीं जानते हैं संस्कार के निराध को नहीं जानते हैं संस्कार की निरोधगामिनी प्रतिपदा को नहीं जानते हैं—इन भमणों की न तो भमणों में गिनती होती है और न ब्राह्मणों की ब्राह्मणों में । वे आयुष्मान् इसी जन्म में भमण या ब्राह्मण के परमार्थ को स्वयं ज्ञान साध्यात् कर और प्राप्त कर बिहार नहीं करते ।

मिथुनी ! जो भमण या ब्राह्मण अरामरथ संस्कार की निरोधगामिनी प्रतिपदा को जानते हैं—इन्हीं भमणों की भमणों में गिनती होती है और ब्राह्मणों की ब्राह्मणों में । वे आयुष्मान् इसी जन्म में भमण या ब्राह्मण के परमार्थ को स्वयं ज्ञान साध्यात् कर और प्राप्त कर बिहार करते हैं ।

§ १० दुतिय समणब्राह्मण सुत्त (१० ३ १०)

संस्कार-पारंगत भमण ब्राह्मण

आपत्ती में ।

मिथुनी ! जो भमण या ब्राह्मण अरामरथ आति संस्कार को नहीं जानते हैं समुद्भूत को नहीं जानते हैं निरोध को नहीं जानते हैं निरोधगामिनी प्रतिपदा को नहीं जानते हैं—वे अरामरथ संस्कारों की पार कर लेंगे ऐसा सम्भव नहीं ।

मिथुनी ! जो भमण या ब्राह्मण अरामरथ संस्कार को जानते हैं समुद्भूत को जानते हैं निरोध को जानते हैं निरोधगामिनी प्रतिपदा को जानते हैं—वे अरामरथ संस्कारों की पार कर लेंगे—ऐसा हो सकता है ।

दशवस धरा समता

मैंने जान लिया कि—जाति क्षीण हो गई, प्रत्यर्च्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, अब और कुछ चाकी नहीं बचा ।

सारिपुत्र ! यदि तुमसे कोई ऐसा पूछे—आयुस सारिपुत्र ! जातिका क्या निदान है,=क्या उत्पत्ति है,=क्या प्रभव है ?—तो तुम क्या उत्तर दोगे ?

भन्ते ! यदि मुझे कोई ऐसा पूछे तो मैं यह उत्तर दूँ—आयुस ! जातिका निदान भव है ।

***भवका निदान उपादान है ।

***उपादानका निदान तृष्णा है ।

तृष्णाका निदान वेदना है ।

सारिपुत्र ! यदि तुमसे कोई ऐसा पूछे—आयुस सारिपुत्र ! क्या जान और देख लेने से आपको किसी वेदनाके प्रति आसक्ति नहीं होती है ?—तो तुम क्या उत्तर दोगे ?

भन्ते ! यदि मुझे कोई ऐसा पूछे तो मैं यह उत्तर दूँ—आयुस ! वेदनायें तीन हैं । कौन सी तीन ? (१) सुखा वेदना, (२) दुःखा वेदना, (३) अदुःख-सुखा वेदना । आयुस ! यह तीनों वेदनायें अनित्य हैं । “जो अनित्य है वह दुःख है” जान, किसी वेदना के प्रति मुझे आसक्ति नहीं होती है ।

ठीक कहा है, सारिपुत्र, ठीक कहा है ! इसे सक्षेप में यों भी कहा जा सकता है—जितने अनुभव (=वेदना) हैं, सभी दुःख ही हैं ।

सारिपुत्र ! यदि तुम से कोई पूछे—किस विमोक्ष के आधार पर आपने दूसरों को कहा कि जाति क्षीण हो गई , ऐसा मैंने जान लिया ?—तो तुम क्या उत्तर दोगे ?

भन्ते ! यदि मुझे कोई ऐसा पूछे तो मैं यह उत्तर दूँ—आयुस ! भीतर की गाँठों से मैं छूट गया, सारे उपादान क्षीण हो गये, मैं ऐसा स्मृतिमान् होकर विहार करता हूँ कि आश्रव आने नहीं पाते और अपना भी निरादर नहीं होता ।

ठीक कहा है, सारिपुत्र, ठीक कहा है ! इसे सक्षेप में यों भी कहा जा सकता है—श्रमणो ने जिन आश्रवों का निर्देश किया है उनमें मुझे सदेह बना नहीं है, वे मेरे में प्रहीण हो चुके, मुझे विचिकित्सा भी नहीं रही ।

यह कह, भगवान् आसन से उठ विहार में पैठ गये ।

ग

भगवान् के जाने के बाद ही आयुप्मान् सारिपुत्र ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—

आयुसो ! भगवान् ने जो मुझे पहला प्रश्न पूछा था वह मुझे विदित नहीं था, इसीलिये कुछ श्रैथिल्य हुआ । जब भगवान् ने मेरे पहले प्रश्न का अनुमोदन कर दिया, तब मेरे मन में हुआ—

यदि भगवान् मुझे भिन्न-भिन्न शब्दों में भिन्न-भिन्न प्रकार में दिन भर इसी विषय में पूछते रहे तो मैं दिन भर भिन्न-भिन्न शब्दों में भिन्न-भिन्न प्रकार से उन्हें सतोषजनक उत्तर देता रहूँ ।

यदि भगवान् “रातभर, रात दिन, दो रात दिन, तीन, चार, पाँच, छ , सात रात दिन इसी विषयमें पूछते रहें तो मैं “उत्तर देता रहूँ ।

घ

तब, भिक्षु कलारक्षत्रिय आसनसे उठ, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, और भगवान् का अभिवादन कर एक एक ओर बैठ गया ।

४२ कलार सुप्त (१० ४ २)

प्रतीय समुत्पात् सारिपुत्र का सिद्धान्त

धायन्ती में ।

क

तब मिश्र कलारसत्रिय वहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र से वहाँ आया । आकर आयुष्मान् सारिपुत्र का सम्मोहन किया, तथा कुसुम-शेख के प्रसन्न पृष्ठ पर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ मिश्र कलारसत्रिय आयुष्मान् सारिपुत्र से बोला—

आयुस सारिपुत्र ! मिश्र मोक्षिपकगुण बीजर छोड़ गृहस्थ हो गया है । उस आयुष्मान् ने इस धर्मविनय में आस्था नहीं पाया ।

क्या आप आयुष्मान् सारिपुत्र ने इस धर्मविनय में आस्था पाया है ।

आयुस ! इसमें मुझे कुछ संदेह नहीं है ।

आयुस ! धर्मिष्यकम् में ।

आयुस ! इसकी मुझ विधिचिन्ता नहीं है ।

तब, मिश्र कलारसत्रिय आसन से उठ वहाँ भगवान् से वहाँ गया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ मिश्र कलारसत्रिय भगवान् से बोला “भन्ते ! सारिपुत्र ने जान किया है कि जाति क्षीण हो गई, मद्यार्च्य पूरा हो गया जो करना था सो कर लिया अब और कुछ बाकी नहीं बचा है—ऐसा मैं जानता हूँ ।”

तब भगवान् ने किसी मिश्र को आमन्त्रित किया—हे मिश्र ! मुझे आकर सारिपुत्र को कहे कि कुछ तुम्हें बुझा रहे हैं ।

भन्ते ! बहुत अच्छा’ कह वह मिश्र भगवान् को उत्तर दे वहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र से वहाँ गया और बोला—आयुस सारिपुत्र ! आपको कुछ बुझा रहे हैं ।

“आयुस ! बहुत अच्छा” कह, आयुष्मान् सारिपुत्र उस मिश्र को उत्तर दे वहाँ भगवान् से वहाँ गया और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गये ।

ख

एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् सारिपुत्र को भगवान् ने कहा—सारिपुत्र ! क्या तुमने सबकुछ जानकर ऐसा कहा है कि मैं जानता हूँ कि जाति क्षीण हो गई, मद्यार्च्य पूरा हो गया ?

भन्ते ! मैंने इन बातोंको इस तरह नहीं कहा है ।

सारिपुत्र ! जिस किसी तरहकी बुझपुत्र दूसरेको कहे किन्तु कहा हुआ तो कहा हुआ ही हुआ ।

भन्ते ! अभी तो मैं कहता हूँ कि मैंने इन बातोंको इस तरह नहीं कहा है ।

सारिपुत्र ! यदि तुमस कोई पड़े—आयुस सारिपुत्र ! क्या आप और देवदत्त अपने दूसरोंको कहा कि “जाति क्षीण हो गई, मद्यार्च्य पूरा हो गया जो करना था सो कर लिया अब और कुछ बाकी नहीं बचा है—ऐसा मैंने जान किया है ?”—तो तुम क्या उत्तर दोगे ?

भन्ते ! यदि मुझे कोई ऐसा पड़े तो मैं यह उत्तर दूँ—आयुस ! जिस विद्वान् (= वेद) ने जाति होती है उस विद्वान् का ही आपसे मैंने जान किया कि उसका भी क्षय हो गया । वह जानकर

मैंने जान लिया कि—जाति क्षीण हो गई, प्रलययुग पूरा हो गया, जो करना था मैं कर लिया, अब और कुछ बाकी नहीं बचा ।

सारिपुत्र ! यदि तुमने कोई ऐसा पूछे—आयुष्य सारिपुत्र ! जाति का क्या निदान है, क्या उत्पत्ति है, क्या प्रलय है ?—तो तुम क्या उत्तर दोगे ?

भन्ते ! यदि मुझे कोई ऐसा पूछे तो मैं यह उत्तर दूँ—आयुष्य ! जातिका निदान भय है ।

***भयका निदान उपादान है ।

***उपादानका निदान मृणा है ।

मृणाका निदान वेदना है ।

सारिपुत्र ! यदि तुमसे कोई ऐसा पूछे—आयुष्य सारिपुत्र ! क्या जान और देय लेने से आपको किसी वेदनाके प्रति आसक्ति नहीं होती है ?—तो तुम क्या उत्तर दोगे ?

भन्ते ! यदि मुझे कोई ऐसा पूछे तो मैं यह उत्तर दूँ—आयुष्य ! वेदनायें तीन हैं । कौन सी तीन ? (१) सुखा वेदना, (२) दुःखा वेदना, (३) अदुःखसुखा वेदना । आयुष्य ! यह तीनों वेदनायें अनित्य हैं । “जो अनित्य है वह दुःख है” जान, किसी वेदना के प्रति मुझे आसक्ति नहीं होती है ।

ठीक कहा है, सारिपुत्र, ठीक कहा है ! इसे संक्षेप में यों भी कहा जा सकता है—जितने अनुभव (=वेदना) हैं, सभी दुःख हैं ।

सारिपुत्र ! यदि तुम से कोई पूछे—किस विमोक्ष के आधार पर आपने दूसरों को कहा कि जाति क्षीण हो गई , ऐसा मैंने जान लिया ?—तो तुम क्या उत्तर दोगे ?

भन्ते ! यदि मुझे कोई ऐसा पूछे तो मैं यह उत्तर दूँ—आयुष्य ! भीतर की गाँठों से मैं छूट गया, सारे उपादान क्षीण हो गये, मैं ऐसा स्मृतिमान् होकर विहार करता हूँ कि आश्रय आने नहीं पाते और अपना भी निरादर नहीं होता ।

ठीक कहा है, सारिपुत्र, ठीक कहा है ! इसे संक्षेप में यों भी कहा जा सकता है—भ्रमणों ने जिन आश्रयों का निर्दश किया है उनमें मुझे सदेह बना नहीं है, वे मेरे में प्रहीण हो चुके, मुझे त्रिचिकित्सा भी नहीं रही ।

यह कह, भगवान् आसन से उठ विहार में बैठ गये ।

ग

भगवान् के जाने के बाद ही आयुष्मान् सारिपुत्र ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—

आयुष्यो ! भगवान् ने जो मुझे पहला प्रश्न पूछा था वह मुझे विदित नहीं था, इसीलिये कुछ क्षीणत्व हुआ । जब भगवान् ने मेरे पहले प्रश्न का अनुमोदन कर दिया, तब मेरे मन में हुआ—

यदि भगवान् मुझे भिन्न-भिन्न शब्दों में भिन्न-भिन्न प्रकार से दिन भर इसी विषय में पूछते रहें तो मैं दिन भर भिन्न-भिन्न शब्दों में भिन्न-भिन्न प्रकार से उन्हें सतोषजनक उत्तर देता रहूँ ।

यदि भगवान् “रातभर, रात दिन, दो रात दिन, तीन, चार, पाँच, छ, सात, रात दिन इसी विषयमें पूछते रहें तो मैं” उत्तर देता रहूँ ।

घ

तब, भिक्षु कलारक्षत्रिय आसनसे उठ, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, और भगवान् का अभिवादन कर एक एक ओर बैठ गया ।

एक और बैठ कछारक्षमिय मिथु भगवान्से बोला—भन्ते ! आमुष्मात् सारियुअ ने सिद्धबाप किया है कि आनुतो ! यदि भगवान् सात रातदिन इसी विषयमें पछते रहें तो मैं "उत्तर देता रहूँ।

हे मिथु ! सारियुअने (प्रतीत्य समुत्पाद्) बर्मको पूरा-पूरा समझ किया है। यदि मैं सात रात दिव भी "इसी विषयमें पछता रहूँ तो यह "उत्तर देता रहेगा।

§ ३ पठम आप्पचत्थु सुत्त (१२ ४ ३)

ज्ञानके विषय

आवस्ती में।

मिथु ७१ । मैं ४४ ज्ञानके विषयोंका उपदेश करूँगा। उसे सुनी अच्छी तरह मन लगाओ मैं कहता हूँ।

"भन्ते ! वहुत अच्छा" कह मिथुमोंने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—मिथुजी ! ज्ञानके ४४ विषय कौनसे हैं ?

अरामरमज्झ ज्ञान अरामरमके समुद्भवका ज्ञान अरामरमके निरोधका ज्ञान अरामरमकी विरोध गामिनी प्रतिपदा का ज्ञान।

५—८ आतिअ ।

९—१२ मज ।

१३—१५ उपादाव ।

१७—१९ मूल्हा ।

२१—२४ वेदवा ।

२५—२८ एवर्ध ।

२९—३२ पद्दावतण ।

३३—३६ जामकम् ।

३७—४ विज्ञाव ।

४१ संस्कार का ज्ञान ४२ संस्कार के समुद्भव का ज्ञान ४३ संस्कार के निरोध का ज्ञान और ४४ संस्कार की निरोधगामिनी प्रतिपदा का ज्ञान।

मिथुजी ! यही ४४ ज्ञान के विषय कहे जाते हैं।

मिथुजी ! अरामरम क्या है ? [देखो बुद्धचर्या पहला भाग § २ (१)]

मिथुजी ! आति के समुद्भव से अरामरम का समुद्भव होता है; आति के निरोध से अरामरम का निरोध होता है। अरामरम की निरोधगामिनी प्रतिपदा यही अष्टांगिक मार्ग है जो कि (१) सम्मक् एधि, (२) सम्मक् सक्कय (३) सम्मक् वाक (४) सम्मक् कर्माण्ठ (५) सम्मक् जाजीव (६) सम्मक् व्याधाम (७) सम्मक् स्थिति (८) सम्मक् समाधि।

मिथुजी ! जो कार्य कावक हूय तरह अरामरम को जान लेता है अरामरम के समुद्भव को जान लेता है अरामरम के निरोध को जान लेता है अरामरम की निरोधगामिनी प्रतिपदा को जान लेता है; यही जलका बर्म-ज्ञान है। जो हूय बर्म को देख लेता है जान लेता है पहुँच चुकता है प्राप्त कर लेता है बर्मावस्था अवगाहन कर लेता है वही धर्मात्त धीर अवागत में लैगुत्त प्रदत्त करता है।

अनील कय में त्रिण अमल का आह्वय ने अरामरम को जाना है करने इसी तरह जाना है अता में कह रहा हूँ।

अविण्य में जो अमल का आह्वय अरामरम को "अर्धो ने इसी तरह जानो अर्ध में कह रहा हूँ। यह वरमरा का ज्ञान है।

भिक्षुओ ! जिन आर्य ध्रावकों को (१) धर्म का ज्ञान, और (२) परम्परा का ज्ञान परिशुद्ध हो जाता है, वे आर्य ध्रावक दृष्टि-सम्पन्न कहे जाते हैं, दर्शन सम्पन्न, धर्म में पहुँचे हुये, धर्मदृष्टा, शैक्ष्य ज्ञान से युक्त, शैक्ष्य विद्या से युक्त, धर्म-स्रोतापन्न, आर्य निर्वेधिकप्रज्ञ, और अमृत के द्वार पर पहुँच कर खड़े होने वाले कहे जाते हैं ।

भिक्षुओ ! जाति . , भव .., उपादान , तृष्णा . . , वेदना .., स्पर्श . , पद्मायतन .., नाम-रूप... , विज्ञान . , संस्कार . ।

§ ४. दुतिय जाणवत्थु सुत्त (१२ ४. ४)

ज्ञान के विषय

ध्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! मैं ७७ ज्ञान के विषयों का उपदेश करूँगा । उसे सुनो...

भिक्षुओ ! ७७ ज्ञान के विषय कौन से हैं ?

(१) जाति के प्रत्यय से जरामरण होने का ज्ञान, (२) जाति के नहीं होने से जरामरण के नहीं होने का ज्ञान, (३) अतीत काल में भी जाति के प्रत्यय से जरामरण हुआ करता था इसका ज्ञान, (४) अतीत काल में भी जाति के नहीं होने से जरामरण नहीं होता था इसका ज्ञान, ५-६ भविष्य में भी, ... और (७) जिन धर्मों की स्थिति का ज्ञान है वे भी क्षय होने वाले, व्यय होने वाले, छूटने वाले और रुक जाने वाले हैं—इसका ज्ञान ।

२ भव के प्रत्यय से जाति होने का ज्ञान ।

३. उपादान के प्रत्यय से भव ।

४. तृष्णा के प्रत्यय से उपादान ।

५. वेदना के प्रत्यय से तृष्णा ।

६. स्पर्श के प्रत्यय से वेदना ।

७ पद्मायतन के प्रत्यय से स्पर्श...

८ नामरूप के प्रत्यय से पद्मायतन ।

९ विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप ।

१० संस्कार के प्रत्यय से विज्ञान ।

११ अविद्या के प्रत्यय से संस्कारों के होने का ज्ञान...

भिक्षुओ ! यही ७७ ज्ञान के विषय कहे गये हैं ।

§ ५. पठम अविज्जा पच्चया सुत्त (१२ ४ ५)

अविद्या ही दुःखों का मूल है

ध्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! अविद्या के प्रत्यय (=होने) से संस्कार होते हैं । संस्कारों के प्रत्यय से विज्ञान होता है... इस तरह, सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है ।

ऐसा कहने पर एक भिक्षु ने भगवान् को यह कहा—

भन्ते ! जरामरण क्या है, और जरामरण किसको होता है ?

भगवान् बोले—ऐसा पूछना ही गलत है । भिक्षु ! जो ऐसा कहे कि “जरामरण क्या है, और जरामरण किसको होता है”, अथवा जो ऐसा कहे कि “जरामरण दूसरी ही चीज है, और दूसरे ही को वह

जरामरण होता है। तो इन दोनों का अर्थ एक है, केवल शब्द ही भिन्न हैं। मिश्र ! जो जीव है वही सरीर है, या जीव दूसरा है और सरीर दूसरा—ऐसी दृष्टि रखनेवाले का महाब्रह्मपास संपर्क नहीं हो सकता है। मिश्र ! इन दोनों अर्थों को छोड़ कुछ मध्य से धर्म का उपदेश करते हैं कि जाति के प्रत्यय से जरामरण होता है।

मन्वे ! जाति क्या है और किसकी जाति होती है ?

भगवान् बोले—यमा पूजना ही गत्य है। [कैसा कपूर कहा गया है] मिश्र ! इन दोनों अर्थों को छोड़ कुछ मध्य से धर्म का उपदेश करते हैं कि भव के प्रत्यय से जाति होती है।

उपादान के प्रत्यय से मय ।

गुण्या के प्रत्यय से उपादान ।

वेदना के प्रत्यय से गुण्या ।

स्पर्श के प्रत्यय से वेदना ।

पञ्चावतन के प्रत्यय से स्पर्श ।

*नामरूप के प्रत्यय से पञ्चावतन ।

*विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप ।

*संस्कारों के प्रत्यय से विज्ञान ।

*अविद्या के प्रत्यय से संस्कार ।

मिश्र ! इसी अविद्या से पिच्छुक हृद और एक जाये से जो कुछ भी गड़बड़ी और उलझी पड़ती है कि—जरामरण क्या है और जरामरण होता है किसकी, जबका जरामरण दूसरी चीज है और किसी दूसरे को जरामरण होता है, जबका जो जीव है वही सरीर है और जीव दूसरा है और सरीर दूसरा—सभी हृद जाती है निर्मूल हो जाती है फिर भी उगमै व्यापक नहीं रहती है।

जाति संस्कार सभी हृद जाती है ।

४ ६ दुविध अविज्ञान पक्षया सुप्त (१२ ४ ६)

अविद्या ही दुस्त्रों का मूल है

आपत्ती में ।

मिश्र ! अविद्या के प्रत्यय से संस्कार होते हैं । इस तरह सारा दुःख-समूह उद बन जाता है ।

मिश्र ! यदि कोई पूछे कि जरामरण क्या है और जरामरण होता है किसकी है । भगवान् यह कि जरामरण कुछ दूसरी ही चीज है और किसी दूसरे ही चीज को जरामरण होता है, तो मिश्र ! दोनों का एक ही अर्थ है ।

मिश्र ! जो जीव है वही सरीर है, जबका जीव दूसरा है और सरीर दूसरा—ऐसी सिध्दांति होने से महाब्रह्म पास नहीं हो सकता है ।

मिश्र ! इन दोनों अर्थों को छोड़ कुछ मध्य से धर्म का उपदेश करते हैं ।

मिश्र ! यदि कोई पूछे कि जाति क्या है ।

*मय क्या है ।

*उपादान क्या है ।

*गुण्या क्या है ।

*वेदना क्या है ।

*स्पर्श क्या है ।

• पदायतन क्या है • ।

• नामरूप क्या है • ।

• विज्ञान क्या है • ।

• सम्कार क्या है • । भिक्षुओ ! इन दोनों शक्तियों को छोड़ कुछ मध्य में धर्म का उपदेश करते हैं, कि, अविद्या के प्रत्यय में मस्सर होते हैं ।

भिक्षुओ ! उसी अविद्या के विफल हट और रुक जाने से जो कुछ सदयर्दी और उलटी पलटी है, कि—जरामरण क्या है, और जरामरण होता है जिसको, भयवा, जरामरण दूसरी चीज है • --यमी हट जाती है ।

जाति...सम्कार' यमी हट जाती है ।

§ ७. न तुम्ह सुत्त (१२. ४. ७)

शरीर अपना नहीं

ध्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! यह काया न तुम्हारी अपनी है, और न दूसरे किसी की । भिक्षुओ ! यह पूर्व कर्मों के फलस्वरूप, चेतना और वेदना से युक्त, प्रत्ययों के होने से उत्पन्न है ।

भिक्षुओ ! आर्यध्रावक इसे सीधे प्रतीत्यसमुत्पाद का ही टीक से मनन करता है ।

इस तरह, इसके होने से यह होता है, इसके उत्पाद से यह उत्पन्न हो जाता है । इसके नहीं होने से यह नहीं होता है, इसके निरोध से यह निरुद्ध हो जाता है ।

अविद्या के प्रत्यय में सम्कार ।

उसी अविद्या के विष्कूल हट और रुक जाने से ।

§ ८. पटम चेतना सुत्त (१२. ४. ८)

चेतना और सकल्प के अभाव में मुक्ति

ध्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! जो चेतना करता है, किसी काम को करने का सकल्प करता है, किसी काम में लग जाता है, वह विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आलम्बन होता है । विज्ञान के बने रहने से, बढ़ते रहने से, भविष्य में बार-बार जन्म लेता है । भविष्य में बार-बार जन्म लेने से जरामरण, शोक बना रहता है । इस तरह, सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है ।

भिक्षुओ ! जो चेतना नहीं करता है, सकल्प नहीं करता है, किन्तु काम में लग जाता है, वह भी विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आलम्बन होता है । विज्ञान के बने रहने, बढ़ते रहने से, भविष्य में बार-बार जन्म लेता है । भविष्य में बार बार जन्म लेने से जरामरण शोक बना रहता है । इस तरह, सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है ।

भिक्षुओ ! जो चेतना नहीं करता है, संकल्प नहीं करता है, और न किसी काम में लगता है, वह विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आलम्बन नहीं होता है । विज्ञान के बने नहीं रहने से, बढ़ते नहीं रहने से भविष्य में बार-बार जन्म नहीं लेता है । भविष्य में जन्म नहीं होने से जरामरण, शोक से छूट जाता है । इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है ।

§ ९ द्वितीय चेतना सुप्त (१२ ४ ९)

चेतना भीर संकल्प के अभाव में मुक्ति

भावस्ती में ।

मिथुओ ! जो चेतना करता है संकल्प करता है किसी काम में क्या जाता है, वह विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आकम्बल होता है । आकम्बल होने से विज्ञान जमा रहता है । विज्ञान के जमे रहने कारण वढ़ते रहने से नाम-रूप उगते रहते हैं ।

नाम रूप के होने से पदावतन होता है । पदावतन के होने से स्पर्श होता है । वेदना । तृष्णा । उपादान । मय । साति । अरामरण ।

मिथुओ ! जो चेतना नहीं करता है संकल्प नहीं करता है किन्तु काम में क्या रहता है वह विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आकम्बल होता है । आकम्बल होने से विज्ञान जमा रहता है । विज्ञान के जमे रहने और वढ़ते रहने से नाम-रूप उगते रहते हैं ।

अरामरण सारा दुःख-समूह उठ जाता होता है ।

मिथुओ ! जो चेतना नहीं करता संकल्प नहीं करता और न उसमें क्या रहता है वह विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आकम्बल नहीं होता है । आकम्बल नहीं होने से विज्ञान सहाया नहीं पाता । विज्ञान के सहारा न पाने से नाम रूप नहीं उगते ।

नाम-रूप के एक जाने से पदावतन नहीं होता । इस तरह सारा दुःख-समूह एक जाता है ।

§ १० तृतीय चेतना सुप्त (१२ ४ १०)

चेतना भीर संकल्प के अभाव में मुक्ति

भावस्ती में ।

मिथुओ ! जो चेतना करता है संकल्प करता है किसी काम में क्या जाता है वह विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आकम्बल होता है । आकम्बल होने से विज्ञान जमा रहता है ।

विज्ञान के जमे रहने और वढ़ने से लुकाव (=गति) होता है । लुकाव होने से अभिव्य में गति होती है । अभिव्य में गति होने से मरणा-जीवा होता है । मरणा-जीवा होने से जाति अरामरण । इस तरह सारा दुःख-समूह उठ जाता होता है ।

मिथुओ ! जो चेतना नहीं करता संकल्प नहीं करता किन्तु किसी काम में क्या रहता है वह भी विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आकम्बल होता है । इस तरह सारा दुःख-समूह उठ जाता होता है ।

मिथुओ ! जो चेतना नहीं करता संकल्प नहीं करता काम में नहीं क्या रहता वह विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आकम्बल नहीं होता है । आकम्बल नहीं होने से विज्ञान जमा नहीं रहता है और वढ़ने नहीं पाता ।

विज्ञान के न जमे रहने और न वढ़ते रहने से लुकाव (=गति) नहीं होता है । लुकाव नहीं होने से अभिव्य में गति भी नहीं होती । गति नहीं होने से जीवा-मरणा नहीं होता । सारा दुःख-समूह एक जाता है ।

कछारत अभिव्य वर्ग समाप्त ।

पाँचवाँ भाग

गृहपति वर्ग

§ १. पठम पञ्चवेरभय सुत्त (१२. ५. १)

पाँच वैर-भय की शान्ति

श्रावस्ती मे ।

क

तत्र, अनाथपिण्डिक गृहपति जहाँ भगवान् ये वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठे हुए अनाथपिण्डिक गृहपति से भगवान् बोले—गृहपति ! जब आर्य श्रावक के पाँच वैर-भय शान्त हो जाते हैं, चार स्रोतापत्ति के अगों से युक्त हो जाता है, आर्य ज्ञान प्रज्ञा से अच्छी तरह देख और समझ लिया गया होता है, तो वह यदि चाहे तो अपने को ऐसा कह सकता है—मेरा निरय क्षीण हो गया, मेरी तिरश्चीन-योनि क्षीण हो गई, मेरी प्रेत-योनि क्षीण हो गई, मेरा अपाय और दुर्गति में पड़ना क्षीण हो गया । मैं स्रोतापन्न हो गया हूँ, मैं मार्ग से च्युत नहीं हो सकता, परम ज्ञान को प्राप्त कर लेना मेरा निश्चय है ।

कौन से पाँच वैर भय-शान्त हो जाते हैं ?

गृहपति ! जो प्राणी-हिंसा है, प्राणी-हिंसा करने से जो इसी जन्म में, या दूसरे जन्म में भय और वैर बढ़ाता है, चित्त में दुःख और दौर्मनस्य भी बढ़ाता है, सो भय और वैर प्राणी-हिंसा से विरत रहने वाले को शान्त हो जाते हैं ।

गृहपति ! सो भय और वैर चोरी करने से विरत रहने वाले को शान्त हो जाता है ।

गृहपति ! सो भय और वैर मिथ्याचार , मृपा भाषण , नशीली वस्तुओं के सेवन करने से विरत रहने वाले को शान्त हो जाता है ।

यही पाँच वैर-भय शान्त हो जाते हैं ।

ख

किन चार स्रोतापत्ति के अगों से युक्त होता है ?

गृहपति ! जो आर्य-श्रावक बुद्ध के प्रति अचल श्रद्धालु होता है—वे भगवान् अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, विद्याचरण से सम्पन्न, सुगति को पाये, लोकधिद्, अनुत्तर, पुरुषों को दमन करने वाले, देवता और मनुष्यों को राह दिखाने वाले भगवान् बुद्ध ।

गृहपति ! जो आर्य-श्रावक धर्म के प्रति अचल श्रद्धालु होता है—भगवान् का धर्म स्वाख्यात है, सादृष्टिक है, (=इसी जन्म में फल देने वाला है), अकालिक (=बिना देरी के फल देने वाला है), लोगों को बुला बुला कर दिखाया जानेवाला है (=एहिपरिसक), निर्वाण तक ले जाने वाला है, विज्ञों के द्वारा अपने भीतर ही (=प्रत्यात्म) अनुभव किया जानेवाला है ।

गृहपति ! जो आर्य-आवक संघ के प्रति अच्छा भव्वात्त होता है—भगवान् का आवक संघ सुमार्ग पर आरुह्य है सीधे मार्ग पर आरुह्य है शान्त मार्ग पर आरुह्य है अच्छी तरह स मार्ग पर आरुह्य है । जो यह पुण्यों का चार बोधा आठ जाने, पही भगवान् का आवक-संघ है । पही आवक-संघ निर्ममित्र करण के योग्य है सत्कार करने के योग्य है दान देने के योग्य है प्रणाम करने के योग्य है लोक का अनुत्तर पुण्य क्षेत्र है ।

सुन्दर स्त्रीयों से युक्त होता है; अत्यन्त अछिद्र भयम् निर्दोष सुख दुःख विज्ञों से प्रशंसित समाधि के अनुकूल स्त्रीयों से ।

इन चार आतापति के अर्थों से युक्त होता है ।

प्रज्ञा से अच्छी तरह देखा और जाना इसका आर्य ज्ञान क्या है ?

गृहपति ! आर्य-आवक प्रतीत्यसमुत्पाद् की ही ढीक से भावना करता है । इसके होने से यह होता है इस तरह सारा दुःख-समुत्पाद्य रुक जाता है ।

पही प्रज्ञा से अच्छी तरह देखा और जाना इसका आर्य ज्ञान होता है ।

§ २ द्वितीय पञ्चवेरमय सुत्त (१२. ५. २)

पाँच वैर मय की शान्ति

आवस्ती में ।

तब कुछ मिश्रु वहाँ भगवान् ने वहाँ ।

भगवान् बोले— [ऊपर बाक सूत्र के समान ही] ।

§ ३ दुक्ख सुत्त (१२. ५. ३)

दुःख और वसका छय

आवस्ती में ।

मिश्रुओ ! मैं दुःख के समुत्पाद्य और कय हो जाने के विषय में उपदेस करूँगा । उसे सुनो ।

क

मिश्रुओ ! दुःख का समुत्पाद्य क्या है ?

चक्षु और कर्णों के होने से चक्षु-विज्ञान पैदा होता है । तीनों का मिश्रण स्पर्श है । स्पर्श के होने से वेदना । मिश्रुओ ! इसी तरह दुःख का समुत्पाद्य होता है ।

ओष्ठ और शब्दों के होने से । प्राण और गन्धों के होने से । विज्ञा और रसों के होने से । क्यथा और गृह्यणों के होने से— ।

मन और चमों के होने से मनोविज्ञान पैदा होता है । तीनों का मिश्रण त्पर्स है । त्पर्स के होने से वेदना होती है— । मिश्रुओ ! वही दुःख का समुत्पाद्य है ।

ख

मिश्रुओ ! दुःख का कय हो जाना (अवसर्गमा) क्या है ?

चक्षु और कर्णों के होने से चक्षु-विज्ञान पैदा होता है । तीनों का मिश्रण स्पर्श है । स्पर्श के होने से वेदना होती है । वेदना के होने से तृष्णा होती है ।

उसी तृष्णा को बिल्कुल हटा और रोक देने से उपादान नहीं होता । उपादान के रुक जाने से भव नहीं होता । '। इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है ।

भिक्षुओ ! यही दुःख का लय हो जाना है ।

श्रोत्र और शब्द ' मन और धर्मों के होने से ' । इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है । ' .

§ ४. लोक सुत्त (१२. ५ ४)

लोक की उत्पत्ति और लय

श्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! लोक के समुदय और लय हो जाने के विषय में उपदेश करूँगा । ..

क

भिक्षुओ ! लोक का समुदय क्या है ?

चक्षु और रूपों के होने से [पूर्ववत्] भिक्षुओ ! यही लोक का समुदय है ।

ख

भिक्षुओ ! यही लोक का लय हो जाना है ।

§ ५. जातिका सुत्त (१२. ५. ५)

कार्य-कारण का सिद्धान्त

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् जातिक में गिञ्जकावसथ में विहार कर रहे थे ।

क

तब, एकान्त में ध्यान करते हुये भगवान् ने इस प्रकार धर्म का उपदेश दिया—

चक्षु और रूपों के होने से चक्षुविज्ञान पैदा होता है । तीनों का मिलना स्पर्श है । स्पर्श के होने से वेदना होती है । वेदना के होने से तृष्णा होती है ' । इस तरह सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है ।

श्रोत्र और शब्दों के होने से ' , मन और धर्मों के होने से ।

चक्षु और रूपों के होने से चक्षुविज्ञान पैदा होता है । तीनों का मिलना स्पर्श है । स्पर्श के होने से वेदना होती है । वेदना के होने से तृष्णा होती है ।

उसी तृष्णा के बिल्कुल हट और रुक जाने से उपादान नहीं होता । उपादान के रुक जाने से भव नहीं होता । ' इस तरह सारा दुःख-समूह रुक जाता है ।

श्रोत्र और शब्दों के होने से , भव और धर्मों के होने से ।

ख

उस समय कोई भिक्षु भगवान् के पास खड़ा होकर सुन रहा था ।

भगवान् ने इसे पास में रखा हो सुनते होगा । देखकर उस भिक्षु को कहा—भिक्षु ! तुमने मुला बिम प्रसार मैंने धर्म का कहा ?

भिक्षु ! जी हाँ ।

भिक्षु ! हमी प्रसार धर्म का सीनो । भिक्षु ! हमी प्रसार धर्म को पूरा करो । भिक्षु ! हमी प्रसार यह धर्म भर्षवान् हाता है । प्रसारधर्म-नाम का यह मूल-उपदेश है ।

३ ६ अञ्जतर सुत्त (१० ५ ६)

मध्यम भाग का उपदेश

आपत्ती में ।

तब कोई ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर कुशल शर्म के प्रश्न पूछने के बाद एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ कर वह ब्राह्मण भगवान् से बोला—हे गौतम ! क्या जो करता है वही भागता है ?

ब्राह्मण ! ऐसा कहना कि जो करता है वही भागता है एक भ्रम है ।

हे गौतम ! क्या करता है कोई दूसरा और भागता है कोई दूसरा ?

हे ब्राह्मण ! ऐसा कहना कि “कहता है कोई दूसरा और भागता है कोई दूसरा” दूसरा भ्रम है ।

ब्राह्मण ! हम जाना भ्रमों का कारण कुछ मध्यम से धर्म का उपदेश करता है ।

अबिया क हान से संस्कार हान है ।

उसी अबिया क विपुल हार और एक काम से” ।

जसा कहने पर वह ब्राह्मण भगवान् से बोला—“ मुझ भगवा शरणागत उपामक शरीकार करें ।

३ ७ जानुम्मोणि सुत्त (१० ५ ७)

मध्यम भाग का उपदेश

आपत्ती में ।

तब जानुधालि ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और कुशल शर्म के प्रश्न पूछ कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ जानुधालि ब्राह्मण भगवान् से बोला—हे गौतम ! क्या सभी कुछ है ?

हे ब्राह्मण ! ऐसा कहना कि “सभी कुछ है” एक भ्रम है ।

हे गौतम ! क्या सभी कुछ नहीं है ?

हे ब्राह्मण ! ऐसा कहना कि, “सभी कुछ नहीं है” दूसरा भ्रम है । ब्राह्मण ! हम दोनो भ्रमों

का कारण कुछ मध्यम भर्षा से [उपर के मूल प्रश्न]

३ ८ सावापण सुत्त (१० ५ ८)

शौचिक भागों का प्रमाण

आपत्ती में ।

तब सावापणिक ब्राह्मण एक ओर बैठ भगवान् से बोला—हे गौतम ! क्या सभी कुछ है ?

हे ब्राह्मण ! ऐसा कहना कि “सभी कुछ है” एक भ्रम है ।

हे गौतम ! क्या सभी कुछ नहीं है ?

हे ब्राह्मण ! ऐसा कहना कि “सभी कुछ नहीं है” दूसरा भ्रम है ।

हे गौतम ! क्या सभी कुछ एकत्व (=अद्वैत) है ?

हे ब्राह्मण ! ऐसा कहना कि “सभी कुछ एकत्व ही है” तीसरी लौकिक बात है ।

हे गौतम ! क्या सभी कुछ नाना है ?

हे गौतम ! “सभी कुछ नाना है” ऐसा कहना चौथी लौकिक बात है । ब्राह्मण ! इन अन्तों को छोड़ बुद्ध मध्यम से” ।

§ ९. पठम अरियसावक सुत्त (१२ ५. ९)

आर्यश्रावक को प्रतीत्यसमुत्पाद में सन्देह नहीं

श्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! पण्डित आर्यश्रावक को ऐसा संदेह नहीं होता—पता नहीं कि क्या होने से क्या होता है ? किसके उत्पन्न होने से क्या उत्पन्न होता है ? किसके होने से सस्कार होते हैं ? “किसके होने से जरामरण होता है ?

भिक्षुओ ! पण्डित आर्यश्रावक को यह ज्ञान तो प्राप्त ही होता है—इसके होने से यह होता है... जाति के होने से जरामरण होता है । वह जानता है कि लोक का समुदय इस प्रकार होता है ।

भिक्षुओ ! पण्डित आर्यश्रावक को ऐसा संदेह नहीं होता—पता नहीं, किसके रुक जाने से क्या नहीं होता ? “किसके रुक जाने से जरामरण नहीं होता ?

भिक्षुओ ! पण्डित आर्यश्रावक को तो यह प्रतीत्य समुत्पाद का ज्ञान प्राप्त ही होता है—इसके रुक जाने से यह नहीं होता “जाति के रुक जाने से जरामरण नहीं होता है । वह जानता है कि लोक का निरोध इस प्रकार है ।

भिक्षुओ ! क्योंकि वह लोक के समुदय और निरुद्ध होने को यथार्थत जानता है, इसीलिये आर्यश्रावक दृष्टिसम्पन्न कहा जाता है ।

§ १० दुतिय अरियसावक सुत्त (१२ ५. १०)

आर्यश्रावक को प्रतीत्यसमुत्पाद में सन्देह नहीं

[ऊपर वाले सूत्र के समान ही]

गृहपति वर्ग समाप्त ।

छठौँ भाग

वृत्त वर्ग

§ १ परिधिमा सुच (१२ ६ १)

सयरा: सुख-रूप के लिए प्रतीत्यसमुत्पाद का मनन

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् आपस्ती में अनाद्यपिण्डिक के जन्मनाश्रम में विहार करते थे ।

वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ !

मन्त्र ! कहकर भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! सर्वज्ञा: रूप के रूप के किये विचार करते हुए भिक्षु कैसे विचार कर ?

मन्त्रे ! धर्म के आधार नायक तथा सविद्याता भगवान् ही हैं । मध्य होता कि भगवान् ही इस कहे हुए का रूप बताते । भगवान् स सुन कर भिक्षु धारण करेंगे ।

तो भिक्षुओ ! सुनो अच्छी तरह मन लगाओ मैं कहता हूँ ।

“मन्त्रे ! यदुत ब्रह्मा कह भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! भिक्षु विचार करते हुए विचार करता है—ओ ज्ञानमय हृत्वादि अनेक प्रकार से वाता रूप लोक में उत्पन्न होते हैं उनका विज्ञान क्या है समुत्पन्न क्या है उत्पत्ति क्या है प्रसन्न क्या है ? किन्हे होने से ज्ञानमय होता है ? किन्हे नहीं होने से ज्ञानमय नहीं होता है ?

विचार करते हुए यद ह्य प्रकार जान भेदा है—ओ ज्ञानमय हृत्वादि अनेक प्रकार से वाता रूप लोक में उत्पन्न होती हैं उनका विज्ञान ज्ञाति है । ज्ञाति के होने से ज्ञानमय होता है । ज्ञाति के नहीं होने से ज्ञानमय नहीं होता है ।

यह ज्ञानमय को जान भेदा है ज्ञानमय के समुत्पन्न विरोध “प्रतिपदा को जान भेदा है । यह ह्य प्रकार धर्म के सर्वे माग पर आकर हो जाता है ।

भिक्षुओ ! यह भिक्षु मया सुन-रूप के किये ज्ञानमय के विरोध के किये प्रतिपन्न होता है ।

इसके बाद भी भिक्षुएँ करत हुए विचार करता है—अथ क्यात्तु लुप्त येत्ता “, तथा “यदावन्त” नामक विज्ञान संस्कार का विज्ञान क्या है “?

यह विचार करते हुए यह जान भेदा है संस्कार का विज्ञान अविद्या है “। अविद्या के होने से संस्कार होते हैं । अविद्या के नहीं होने से संस्कार नहीं होते हैं ।

यह संस्कारों का जान भेदा है समुत्पन्न विरोध “प्रतिपदा को जान भेदा है । ह्य प्रकार यह धर्म के सर्वे मार्ग पर आकर होता है “।

भिक्षुओ ! अविद्या में यदा दृष्टा पुन पुन-रूप करता है; तब पुन का विज्ञान उसे बताता है । अनुत्पन्न (अ वाच) धर्म करता है तब अनुत्पन्न का विज्ञान बताता है । यह अचक्ष-धर्म (अभावा) करता है तब अचक्ष-धर्म का विज्ञान उसे बताता है ।

क बार भजन लभ्यते भानव (भयन वाम) नहीं जानते हैं ।

भिक्षुओ ! जय भिक्षु की अधिष्ठा प्रणीत हो जाती है और विद्या उत्पन्न होती है, तो वह न तो पुण्य—कर्म करता है न पाप-कर्म, और न अवल-कर्म (कोई भी संस्कार नहीं होने देता है) । कोई भी संस्कार न करते, कोई चेतना न करते, लोक में कहीं भी आसक्त नहीं होता है । मर्त्या अनासक्त होने से उसे कहीं गम नहीं होता, वह अपने भीतर ही निर्वाण पा लेता है । जाति क्षीण हो गई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, अब और कुछ चाकी नहीं है—ऐसा जान लेता है ।

यदि उसे सुख-वेदना का अनुभव होता है तो जानता है कि यह अनित्य है, चाहने योग्य नहीं है, स्वाद लेने योग्य नहीं है । यदि उसे दुःख वेदना, अदुःख असुख वेदना तो जानता है कि यह अनित्य है... ।

यदि उसे सुख-वेदना, दुःख वेदना, या अदुःख-असुख वेदना होती है तो उसमें वह आसक्त नहीं होता ।

जब वह ऐसा अनुभव करता है कि काया का या जीवन का अन्त हो रहा है तो वह उस बात से सचेत रहता है । शरीर छूटने और जीवन का अन्त हो जाने पर सारी वेदनायें यही शान्त, बेकार और टूटी हो जायेंगी । शरीर छूट जाते हैं—ऐसा जानता है ।

भिक्षुओ ! जैसे, कुम्हार के भाँवा में निकालकर गरम चूर्तन कोई ऊपर रख दे तो उसकी सारी गर्मी निकल जाती है और चूर्तन ठंडा हो जाता है, वैसे ही शरीर छूट जाते हैं—ऐसा जानता है ।

भिक्षुओ ! तो क्या क्षीणाश्रय भिक्षु पुण्य, अपुण्य या अवल संस्कार इकट्ठा करेगा ?

नहीं भन्ते !

सर्वश संस्कारों के न होने से, संस्कारों का निरोध हो जाने से, उसे विज्ञान होगा ?

नहीं भन्ते !

सर्वश जाति के न होने से, जाति का निरोध हो जाने से, उसे जरामरण होगा ?

नहीं भन्ते !

ठीक है, भिक्षुओ, ठीक है ! ऐसी ही बात है, अन्यथा नहीं । भिक्षुओ ! इस पर श्रद्धा करो, मन्देह छोड़ो, काक्षा और विचिकित्सा को हटाओ । यही दुःखों का अन्त है ।

§ २. उपादान सुत्त (१२. ६. २)

सासारिक आकर्षणों में बुराई देखने से दुःख का नाश

श्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! संसार के आकर्षक धर्मों में आसक्त होने से तृष्णा बढ़ती है । तृष्णा के होने से उपादान होता है ।^{१०} इस तरह, सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है ।

भिक्षुओ ! आग की भारी ढेर में दस, बीस, तीस, या चालीस भार लकड़ियाँ भी देकर कोई जलावे । कोई पुरुष रह रह कर यदि उसमें सूखी घाम डालता रहे, गोंचटे डालता रहे, लकड़ियाँ डालता रहे, तो सभी जल जाती हैं । भिक्षुओ ! इसी तरह, कोई महा अग्निस्कन्ध आहार पकते रहने के कारण बराबर जलता रहेगा ।

भिक्षुओ ! ठीक उसी तरह, संसार के आकर्षक धर्मों में आसक्त होने से तृष्णा बढ़ती है । तृष्णा के होने से उपादान होता है । इस तरह, सारा दुःख समूह उठ खड़ा होता है ।

भिक्षुओ ! संसार के आकर्षक धर्मों में बुराई ही बुराई देखने से तृष्णा रुक जाती है । तृष्णा रुक जाने से उपादान रुक जाता है । इस तरह, सारा दुःखसमूह रुक जाता है ।

भिक्षुओ ! यदि कोई पुरुष रह-रह कर उस अग्नि स्कन्ध में सूखी घासें न डाले, गोंचटे न

बाके ककचिर्को न बाके, तो वह भूमिरूप्य पहले के आहार समाप्त हो जाने और न पाने के कारण कुछ कर ईजा हो जायगा ।

मिथुभी ! वसी प्रकार संसार के आकर्षक धर्मों में जुराई ही जुराई देखने से सारा दुःख समूह दफ जायता है ।

§ ३ पठम सञ्जोजन सुच (१२. १. ३)

आस्वाद्य-रूपाग से तृष्णा का नाश

भावस्ती में ।

बन्धन में बाँधनेवाले धर्मों में आस्वाद्य केते हुए बिहार करने से तृष्णा बढ़ती है । तृष्णा के होने से अपादान होता है । 'इस तरह सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है ।

मिथुभी ! तेक और बची के होने से (एक प्रतीत्य से) तेक प्रदीप जलता रहता है, उस प्रदीप में कोई पुष्प रह रह कर तेक डाकता जाव और बची उसकाता जाव तो वह आहार पाते रहने से बहुत कम तक जलता रहेगा ।

मिथुभी ! वैसे ही बन्धन में बाँधने वाले धर्मों में आस्वाद्य केते हुये बिहार करने से तृष्णा बढ़ती है । तृष्णा के होने से अपादान होता है । 'इस तरह सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है ।

---मिथुभी ! उस प्रदीप में कोई पुष्प रह रह कर न तो तेक बाके और न बची उसकावे तो वह प्रदीप पहले के सभी आहार समाप्त हो जाने पर नवे न पाने के कारण कुछ जायगा ।

मिथुभी ! वैसे ही बन्धन में बाँधने वाले धर्मों में जुराई ही जुराई देखते हुये बिहार करने से तृष्णा बढ़ी बढ़ती है । इस तरह सारा दुःख-समूह दफ जायता है ।

§ ४ दुविय सञ्जोजन सुच (१२. १. ४)

आस्वाद्य-रूपाग से तृष्णा का नाश

भावस्ती में ।

मिथुभी ! तेक और बची के होने से तेक-प्रदीप जलता रहता है । कोई पुष्प उस प्रदीप में रह रह कर तेक डाकता जाव और बची उसकाता जाव तो वह आहार पाते रहने से बहुत कम तक जलता रहेगा ।

[ऊपर के सूत्र जैसा]

§ ५ पठम महावृत्त सुच (१२. १. ५)

तृष्णा महावृत्त है

भावस्ती में

मिथुभी ! संसार के आकर्षक धर्मों में आसक्त होने से तृष्णा बढ़ती है । तृष्णा के होने से अपादान ।

मिथुभी ! कोई महावृत्त हो । उसके को मूक नीचे वा अंगक बाक केके हों, सभी ऊपर उस भेकते हों । इस तरह वह महावृत्त आहार पाते रहने के कारण बिरकाक तक रह सकता है ।

मिथुभी ! वैसे ही संसार के आकर्षक धर्मों में -

मिथुभी ! कोई महावृत्त हो । वह कोई पुष्प कुआक और डोहरी ऊँकर जावे । वह उस वृत्त के मूक को काटे, मूक को काट कर उसके नीचे सुगं औध दे और वृत्त के सभी मूकसोई को काट कर मिचक दे । वह वृत्त को काट कर डकड़े-डकड़े कर दे । फिर डकड़ों को भी नीर बाके । नीर कर छोटी बीकी

निकाल दे। चैली को धूप और हवा में सुगन्ध कर जला दे। जला कर कोयला बना दे। कोयले और राख को या तो हवा में उड़ा दे या नदी की धार में बहा दे। भिक्षुओ! इस तरह वह महावृक्ष उन्मूल हो जाय, उसका फिर प्ररोह नहीं हो।

भिक्षुओ! वैसे ही, समार के आकर्षक धर्मों में केवल बुराई देखने से तृष्णा रुक जाती है। तृष्णा के रुक जाने से उपादान नहीं होता है। इस तरह सारा दुःख समूह रुक जाता है।

§ ६. दुतिय महारुक्ख सुत्त (१२. ६. ६)

तृष्णा महावृक्ष है

श्रावस्ती में।

...[ऊपर के सूत्र जैसा]

§ ७. तरुण सुत्त (१२. ६. ७)

तृष्णा तरुणवृक्ष के समान है

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ! बन्धन में ढालने वाले धर्मों में आस्वाद देखते हुये विहार करने से तृष्णा बढ़ती है। तृष्णा के होने से उपादान होता है।...

भिक्षुओ! कोई तरुणवृक्ष हो। कोई पुरुष समय समय पर उसके थाल को फुलका बनाता रहे, माद देता रहे, और पानी पटाता रहे। भिक्षुओ! इस प्रकार वह वृक्ष आहार पाकर फुलगे, बढ़े और खूब फैल जाय।

भिक्षुओ! वैसे ही, आस्वाद देखते हुये विहार करने से तृष्णा बढ़ती है...

भिक्षुओ! कोई तरुणवृक्ष हो। तब, कोई पुरुष कुदाल और टोकरी लेकर आवे।

भिक्षुओ! वैसे ही, बन्धन में ढालनेवाले धर्मों में बुराई ही बुराई देखते हुये विहार करने से तृष्णा नहीं बढ़ती। तृष्णा के रुक जाने से उपादान नहीं होता। इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

§ ८. नामरूप सुत्त (१२. ६. ८)

सांसारिक आस्वाद-दर्शन से नामरूप की उत्पत्ति

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ! बन्धन में ढालने वाले धर्मों में आस्वाद देखते हुये विहार करने से नाम-रूप उठते हैं।

[महावृक्ष की उपमा देकर ऊपर वाले सूत्र के समान]

§ ९. विज्ञाण सुत्त (१२. ६. ९)

सांसारिक आस्वाद-दर्शन से विज्ञान की उत्पत्ति

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ! बन्धन में ढालने वाले धर्मों में आस्वाद देखते हुये विहार करने से विज्ञान उठता है।

[ऊपर वाले सूत्र के समान]

बाड़े कफ़िर्पों न बाड़े तो वह अविस्मर्य पहले के आहार समाप्त हो जाने और नये न पाने के कारण बुझ कर ठंडा हो जायगा ।

मिथुनो ! उसी प्रकार, संसार के आकर्षक धर्मों में घुराई ही घुराई देखने से 'सारा दुःख समूह रुक जाता है ।

§ ३ पठम सम्भोजन सुच (१२ ६ ३)

आस्ताद-न्याग से तृप्ता का माध

भावस्ती में ।

बन्धन में बाँधनेवाले धर्मों में आस्ताद केते हुए विहार करने से तृप्ता बहती है । तृप्ता के होने से उपादान होता है । 'इस तरह सारा दुःख-समूह रुक ज़का होता है ।

मिथुनो ! तेम और बची के होने से (एक प्रतीत्य से) तेक प्रतीप बहता रहता है ; उस प्रतीप में कोई पुरुष रह रह कर तेक बहता जाय और बची उसकता जाय तो वह आहार पात रहने से बहुत काक तक बहता रहेगा ।

मिथुनो ! वैसे ही बन्धन में बाँधने वाले धर्मों में आस्ताद केते हुए विहार करने से तृप्ता बहती है । तृप्ता के होने से उपादान होता है । 'इस तरह सारा दुःख-समूह रुक ज़का होता है ।

-- मिथुनो ! उस प्रतीप में कोई पुरुष रह रह कर न तो तेक बाँधे और न बची उसकने तो वह प्रतीप पहले के समी आहार समाप्त हो जाने पर नये न पाने के कारण बुझ जायगा ।

मिथुनो ! वैसे ही बन्धन में बाँधने वाले धर्मों में घुराई ही घुराई देखते हुए विहार करने से तृप्ता नहीं बहती है । इस तरह सारा दुःख-समूह रुक जाता है ।

§ ४ दुतिय सम्भोजन सुच (१२ ६ ४)

आस्ताद-न्याग से तृप्ता का माध

भावस्ती में ।

मिथुनो ! तेक और बची के होने से तेक-प्रतीप बहता रहता है । कोई पुरुष उस प्रतीप में रह रह कर तेक बहता जाय और बची उसकता जाय तो वह आहार पात रहने से बहुत काक तक बहता रहेगा ।

[ऊपर के सूच मैना]

§ ५ पठम महावृत्त सुच (१२ ६ ५)

तृप्ता महावृत्त है

भावस्ती में

मिथुनो ! संसार के आकर्षक धर्मों में आसक्त होने से तृप्ता बहती है । तृप्ता के होने से उपादान" ।

मिथुनो ! कोई महावृत्त हो । उसके को मूक नीचे का जगक जगक फेके हों, समी ऊपर रस भेकते हों । इस तरह वह महावृत्त आहार पात रहने के कारण बिरकाक तक रह सकता है ।

मिथुनो ! वैसे ही संसार के आकर्षक धर्मों में --

मिथुनो ! कोई महावृत्त हो । तप कोई पुरुष क़द्राक और दीकरी केकर जाने । वह उस वृत्त के मूक की कने, मूक को काद कर उसके नीचे सुराग कीद है और वृत्त के समी मूकसीई की काद कर बिरकाक है । वह वृत्त की काद कर हुकने-हुकने कर है । फिर हुकनों को भी और कने । और कर, कोई वीकी

निकाल दे। चैली को धूप और हवा में सुगन्ध कर जला दे। जला कर कोयला बना दे। कोयले और राख को या तो हवा में उड़ा दे या नदी की धार में गिरा दे। भिक्षुओ! इस तरह वह महावृक्ष उन्मूल हो जाय, उसका फिर प्ररोह नहीं हो।

भिक्षुओ! वैसे ही, संसार के आकर्षक धर्मों में केवल बुराई देखने से तृष्णा रुक जाती है। तृष्णा के रुक जाने से उपादान नहीं होता है।*** इस तरह सारा दुःख समूह रुक जाता है।

§ ६. दुतिय महावृक्ष सुत्त (१२. ६. ६)

तृष्णा महावृक्ष है

श्रावस्ती में।

***[ऊपर के सूत्र जैसा]

§ ७. तरुण सुत्त (१२. ६. ७)

तृष्णा तरुणवृक्ष के समान है

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ! बन्धन में ढालने वाले धर्मों में आस्वाद देखते हुये विहार करने से तृष्णा बढ़ती है। तृष्णा के होने से उपादान होता है।***

भिक्षुओ! कोई तरुणवृक्ष हो। कोई पुरुष समय समय पर उसके गाल को फुलका बनाता रहे, माद देता रहे, और पानी पटाता रहे। भिक्षुओ! इस प्रकार वह वृक्ष आहार पाकर फुलगे, बढ़े और खूब फैल जाय।

भिक्षुओ! वैसे ही,***आस्वाद देखते हुये विहार करने से तृष्णा बढ़ती है***।

भिक्षुओ! कोई तरुणवृक्ष हो। तब, कोई पुरुष कुदाल और टोकरी लेकर आवे।

भिक्षुओ! वैसे ही, बन्धन में ढालनेवाले धर्मों में बुराई ही बुराई देखते हुये विहार करने से तृष्णा नहीं बढ़ती। तृष्णा के रुक जाने से उपादान नहीं होता। इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

§ ८. नामरूप सुत्त (१२. ६. ८)

सांसारिक आस्वाद-दर्शन से नामरूप की उत्पत्ति

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ! बन्धन में ढालने वाले धर्मों में आस्वाद देखते हुये विहार करने से नाम-रूप उठते हैं।

[महावृक्ष की उपमा देकर ऊपर वाले सूत्र के समान]

§ ९. विज्ञानाण सुत्त (१२. ६. ९)

सांसारिक आस्वाद-दर्शन से विज्ञान की उत्पत्ति

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ! बन्धन में ढालने वाले धर्मों में आस्वाद देखते हुये विहार करने से विज्ञान उठता है।

[ऊपर वाले सूत्र के समान]

§ १० निदान सुत्त (१२ द १०)

प्रतीत्यसमुत्पाद की गम्भीरता

एक समय भगवान् कुट्ट-जलपद में कम्मासद्म्म नामक कुइलों के कस्ते में बिहार करते थे ।

तब जायुष्माग् आत्मन्द् बहों भगवान् से बहों गये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बढ गये ।

एक ओर बैठ जायुष्माग् आत्मन्द् भगवान् से बोले :—भन्ते ! आश्चर्य है अद्भुत है ! भन्ते ! प्रतीत्यसमुत्पाद कितना गम्भीर है ! देखने में कितना गूढ़ साधस होता है ! किन्तु, मुझे यह बिस्फुक् साफ साधस होता है ।

आत्मन्द् ! ऐसा मत कहो ऐसा मत कहो । यह प्रतीत्यसमुत्पाद बड़ा गम्भीर और गूढ़ है ! आत्मन्द् ! इसी जर्म को ठीक-ठीक नहीं जानने और समझने के कारण वह भ्रमा ठकसाई हुई प्रागे की गुण्ठी जैसी गाँठ और बन्बनों वाली सूँझ की झाड़ी जैसी हो जपाप में पद दुर्गति को प्राप्त होती है; संसार से छूटने नहीं पाती है ।

आत्मन्द् ! संसार के आकर्षक जर्मों में भासक होने से मृणा बढ़ती है । [महावृक्ष की उपमा पूर्ववत्]

पूक्षवर्ग समाप्त

सातवाँ भाग

महा वर्ग

§ १. पठम अस्सुतवा सुत्त (१२ ७ १)

चित्त वन्दर जैसा है

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

भिक्षुओ ! अज्ञ पृथक्जन भी अपने इस चातुर्महाभूतिक शरीर से ऊब जाय, विरक्त हो जाय, और छूटने की इच्छा करे ।

सो क्यों ? क्योंकि, इस चातुर्महाभूतिक शरीर में घटना, बढ़ना, लेना और फेंक देना सभी अपनी आँखा से देखता है । इसके कारण, अज्ञ पृथक्जन भी अपने इस चातुर्महाभूतिक शरीर से ऊब जाय, विरक्त हो जाय, छूटने की इच्छा करे ।

भिक्षुओ ! किन्तु, यह जो चित्त=मन=विज्ञान है उससे पृथक्जन अज्ञ नहीं ऊब जाता, विरक्त होता, ओर छूटने की इच्छा करता ।

सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि चिरकाल से अज्ञ पृथक्जन, “यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है” के अज्ञान और समत्व में पड़ा रहा है ।

भिक्षुओ ! अच्छा होता कि अज्ञ पृथक्जन इस शरीर को, न कि चित्त को आत्मा कह कर मानता ।

मो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि यह चातुर्महाभूतिक शरीर एक वर्ष भी, दो वर्ष भी, सौ वर्ष भी, और अधिक भी ठहरा हुआ देखा जाता है । भिक्षुओ ! किन्तु, यह चित्त=मन=विज्ञान रात दिन दूसरा ही दूसरा उत्पन्न होता और निरुद्ध होता रहता है ।

भिक्षुओ ! जैसे जगल में घूमते हुये बानर एक डाल पकड़ता है, उसे छोड़कर दूसरी डाल पर उछल जाता है—वैसे ही यह चित्त=मन=विज्ञान रात दिन ।

भिक्षुओ ! यहाँ, ज्ञानी आर्यश्रावक प्रतीत्यसमुत्पाद का ही ठीक से मनन करता है । इसके होने से यह होता है । इसके नहीं होने से यह नहीं होता है । इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है ।

भिक्षुओ ! इसे देख, ज्ञानी आर्यश्रावक रूप से भी विरक्त रहता है, वेदना से भी विरक्त रहता है, सज्ञा, सस्का, विज्ञान । इस वैराग्य में वह मुक्त हो जाता है । जाति क्षीण हो गई, ऐसा जान लेता है ।

§ २. दुनिय अस्सुतवा सुत्त (१२ ७. २)

पञ्चस्कन्ध के वैराग्य से मुक्ति

श्रावस्ती में ।

[ऊपर के सूत्र जैसा]

भिक्षुओ ! यहाँ, ज्ञानी आर्यश्रावक प्रतीत्यसमुत्पाद का ही ठीक से मनन करता है । इसके होने से यह होता है, इसके नहीं होने से यह नहीं होता है । इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है ।

मित्रभा ! मुखवेदनीय स्पर्श के हाने से सुप्तावेदना पैदा होती है । उसी मुखवेदनीय स्पर्श के निरोध से 'बह सुप्तावेदना निद्रा और शान्त हो जाती है ।

मित्रभा ! मुखवेदनीय स्पर्श के होने से ; अनुपमुखवेदनीय स्पर्श क होनेसे वह वेदना निद्रा और शान्त हो जाती है ।

मित्रभा ! दो कर्कशियों में राग जाने से गर्मी पैदा होती है और भाग निद्रा जाती है । उन दो कर्कशियों के अलग-अलग कर देने से वह गर्मी और भाग पुनः उत्पन्न हो जाती है ।

मित्रभा ! वैसे ही सुप्तावेदनीय स्पर्श के हाने से सुप्तावेदना पैदा होती है । उसी मुखवेदनीय स्पर्श के निरोध से 'बह सुप्तावेदना निद्रा और शान्त हो जाता है ।

मित्रभा ! मुखवेदनीय स्पर्श के हाने से ; अनुपमुखवेदनीय स्पर्श के होने से ।

मित्रभा ! इसे देख जाना कार्यभाषक स्पर्शों से भी बिरह रहता है वेदना संज्ञा विनाश । इस कारण से वह मुक्त हो जाता है । अति क्षीय हो गई पृथक् जाय जाता है ।

§ ३ पुच्छमसंयुक्त (१७३)

चार प्रकार के आहार

आयस्ती में ।

मित्रभा ! उपलब्ध पुच्छ प्राणी की स्थिति के लिए, तथा उपलब्ध हानेवालों के अनुग्रह के लिए चार आहार हैं । कौन सा चार ? (१) स्तूक या सूक्ष्म और क रूप में । (२) स्पर्श । (३) मन की संवेगता । (४) विज्ञान ।

मित्रभा ! और के रूप का आहार किस प्रकार का समझना चाहिये ?

मित्रभा ! दो पति पत्नी कुछ पापेय लेकर आन्तर के किसी भाग में पड़ जायें । उनके साथ अपना एक प्यारा कावस पुत्र हो । तब उनका पापय और-सीरे समाप्त हो जाय, पास में कुछ न बचे और आन्तर पुनः ठीक हो पायी बचा रहे ।

मित्रभा ! तब उन पति पत्नी के मन में यह हो—हम लोगों का पापेय समाप्त हो गया पास में कुछ नहीं बचा है । ता' इस योग्य भवने दूकल्पन प्यारे कावस पुत्र को मार डूकने-डूकने और बाँटी बाँटी कर डग गाने हुए पाकी आन्तर को न करें । लोगों के सीमों ही मर न जायें ।

मित्रभा ! तब वे अपने दूकल्पन प्यारे कावस पुत्र को मार डूकने डूकने और बाँटी बाँटी कर उस गाने हुए पाकी आन्तर को न करें । व पुत्र-योग गायें और और पति पति कर विनाश भी करें—हा पुत्र ! हा पुत्र !

मित्रभा ! ता पुत्र बचा समझन हो बचा व इस तरह मर मरान और विनाश के निम्ने आहार करने हैं ?

नहीं जन्मे ।

मित्रभा ! ऐसा ही और के रूप का आहार समझना चाहिये । जन्मा समझन न जायें आन्तरों के भाग का वहचान लगता है । बीच काव-गुण के भाग व। पहचान जन न उनमें निच वह चरण नहीं रहता है जिस चरण में बँधकर वह फिर जन्म प्रदान करे ।

मित्रभा ! स्पर्श के आहार को कैसा समझना चाहिये ?

मित्रभा ! बँध जाती हुई कोई गाव किसी भाग के सहारे लगकर खड़ी हो, भीत में रहने बाध बाधे नहीं पाते । वह किसी दूध के सहारे लगकर खड़ी हो, दूध में रहने बाध बाधे नहीं पाते । बाँटी में खड़ी हो । अन्तर में खड़ी हो । मित्रभा ! वह गाव खड़ी खड़ी खड़ा खड़ी हो नहीं खड़ी के कोड़े बंधे व हैं । मित्रभा ! स्पर्श के आहार को भी इसी प्रकार का समझना चाहिये ।

भिक्षुओ ! स्पर्श के आहार को इस प्रकार समझ लेने से तीनों वेदनायें जान ली जाती हैं । तीनों वेदनाओं को जान लेने से आर्यश्रावक को फिर और कुट करना याकी नहीं बचना है—ऐसा मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! मन की सचेतना के आहार को ऐसा समझना चाहिये ?

भिक्षुओ ! किसी पोरसे भर गट्टे में लपट और सूँवा से रहित लहलहाती टुटे आग भरी हो । तब, कोई पुरुष आये जो जीने की कामना रखता हो, मरना नहीं चाहता हो, सुख पाना चाहता हो, दुःख से दूर रहना चाहता हो । उसे वो घलघात आगमी एक एक घाँट पकड़ कर उस गट्टे में डाल दें । भिक्षुओ ! तो, उस पुरुष की चेतना, प्रार्थना और प्रणिधि यहाँ से उठने के लिये ही होंगी ।

तो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि वह जानता है कि इस आग में गिर कर मैं मर जाऊँगा, या मरने के समान दुःख उठाऊँगा । भिक्षुओ ! मन की सचेतना के आहार को ऐसा ही समझना चाहिये—मैं ऐसा कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! विज्ञान के आहार को ऐसा समझना चाहिये ?

भिक्षुओ ! किसी चोर अपराधी को लोग पकड़ कर राजा के पास ले जायें, और कहे—देव ! यह आप का चोर अपराधी है, इसे जैसी इच्छा हो उण्ड दें । तब, राजा यह कहे—जाओ, इसे पूर्वाह्न समय एक सौ भालों से भोंक दो । उसे लोग पूर्वाह्न समय भोंक दें ।

तब, राजा मध्याह्न समय यह कहे—उस पुरुष की क्या हालत है ?

देव ! वह वैसा ही जीवित है ।

तब, राजा फिर कहे—जाओ, उसे मध्याह्न समय भी सौ भाले भोंक दो । लोग भोंक दें ।

तब, राजा साय को कहे—उस पुरुष की क्या हालत है ?

उसे साय में भी लोग सौ भाले भोंक दें ।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, दिन भर में तीन सौ भालों से चुभ कर उस दुःख और वेचनी होगी या नहीं ?

भन्ते ! एक ही भाला से चुभ कर तो बड़ा दुःख होता है, तीन सौ की तो बात क्या ?

भिक्षुओ ! विज्ञान के आहार को ऐसा ही समझना चाहिये ।

भिक्षुओ ! विज्ञान को इस प्रकार जन, नामरूप को पहचान लेता है । नामरूप को पहचान आर्य श्रावक को फिर और कुट करना याकी नहीं रहता—मैं ऐसा करता हूँ ।

§ ४. अतिथिराग सुत्त (१२ ७ ४)

चार प्रकार के आहार

श्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! उदरग्र हुये प्राणी की स्थिति के लिये, तथा उत्पन्न होने वालों के अनुग्रह के लिये चार आहार हैं । कौन से चार ? (१) स्थूल या सूक्ष्म कौर के रूप में । (२) स्पर्श । (३) मन की सचेतना । (४) विज्ञान ।

भिक्षुओ ! कौर के रूप के आहार में यदि राग होता है, सुख का आस्वाद होता है, तृष्णा होती है, तो विज्ञान जमता और बढ़ता है ।

जहाँ विज्ञान जमता और बढ़ता है वहाँ नामरूप उठता है । जहाँ नामरूप उठता है वहाँ संस्कारों की वृद्धि होती है । जहाँ संस्कारों की वृद्धि होती है वहाँ पुनर्जन्म होता है । जहाँ पुनर्जन्म होता है वहाँ जाति, जरा, मरण होते हैं । भिक्षुओ ! जहाँ जाति, जरा, मरण होते हैं वहाँ शोक, भय, और उपायास (=परेशानी) होते हैं—ऐसा मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! स्पर्श , मन की चेतना , विज्ञान के आहार में यदि रोग होता है ।

मिथुनो ! कोई रंगरेख या चित्रकार रंग या लाखा या इकरी या लीक या मंसीठ के होने से बचती तरह साफ और चिड़ना किन् फसक पर, या मिति पर या कपड़े के टुकड़े पर सभी भोगों से मुक्त की या पुरप का स्रप उतार दे ।

मिथुन ! कम ही और के रूप में आहार में यदि राग होता है । मुक्त का आस्वाद होता है बहो शोक भय और उपायाम होते हैं ।

मिथुनो ! भयं... ; मन की संवेतना ; विज्ञान के आहार में यदि राग होता है ।

मिथुनो ! और के रूप के आहार में यदि राग नहीं होता है मुक्त का आस्वाद नहीं होता है मृत्पा नहीं होती है, तो विज्ञान नहीं समन पाता ।

अहाँ विज्ञान समता और बढ़ता नहीं है बहो नामरूप नहीं बढ़ता । बहो नामरूप नहीं बढ़ता है बहो संस्कारों की बृद्धि नहीं होती है । बहो शोक भय और उपायाम नहीं होते हैं—ऐसा मैं कहता हूँ ।

मिथुनो ! स्वयं ; मन की संवेतना ; विज्ञान के आहार में यदि राग नहीं होता है— तो बहो शोक नहीं होते ।

मिथुनो ! कोई बृटगार या बृटगारशाका हो । उसके ठहर ब्रह्म और पूर्व में लिखिनीं मगी हो । तो सूर्य के उगने पर किरणें उसमें प्रवेश कर कहीं पहुँगी ?

मन्ते ! पश्चिम बाकी दीबाक पर ।

मिथुनो ! यदि पश्चिम में कोई दीबाक न हो तो ?

मन्ते ! ता अमीन पर ।

मिथुनो ! यदि अमीन नहीं हो तो कहीं पहुँगी ?

मन्ते ! अन्त पर ।

मिथुनो ! यदि अन्त भी नहीं हो तो कहीं पहुँगी ?

मन्ते ! कहीं नहीं पहुँगी ।

मिथुन ! बैसे ही और के रूप के स्वयं... मन की संवेतना विज्ञान के आहार में यदि राग नहीं आस्वाद नहीं मृत्पा नहीं तो विज्ञान समता और बढ़ता नहीं है । ...बहो शोक भय और उपायाम नहीं होते हैं—ऐसा मैं कहता हूँ ।

§ ५ नगर मुक्त (१० ७ ५)

माय भट्टादिक माय मायीन मुक्त माग है

आपत्ती में ।

मिथुनो ! मुक्त का प्राप्त करने के बहो बोधिमत्प रहने में मन में ऐसा दुःख—आव । वह शोक जारी बिना में होता है । समता है मुद्रा है मरता है बहो मरकर बहो पैदा होता है । और आत्मन्य के मुक्त में बैसे मुद्राका होगा नहीं जानता है । इय आत्मन्य के मुक्त में मुक्ति का लाभ कब होगा ?

मिथुनो ! जब भी मन में यह दुःख—किन्तु होने में आत्मन्य होता है आत्मन्य का प्रत्यक्ष होता है ?

मिथुनो ! इन पर उचित मनन करने में मुझे ज्ञान का उद्भव हो गया—जति के होने में आत्मन्य होता है ; जति ही आत्मन्य का प्रत्यक्ष है ।

...अव... ; ब्रह्म... ; मुक्त... ; वेद... ; एत... ; ब्रह्म... ; आत्मन्य ।

मिथुनो ! इन पर उचित मनन करने में मुझे ज्ञान का उद्भव हो गया—विज्ञान के होने में आत्मन्य होता है विज्ञान ही आत्मन्य का प्रत्यक्ष है ।

भिक्षुओ ! तब, मेरे मन में हुआ—किमके होने से विज्ञान होता है, विज्ञान का प्रत्यय क्या है ?

भिक्षुओ ! इस पर उचित मनन करने से मुझे ज्ञान का उदय हो गया—नामरूप के होने से विज्ञान होता है, नामरूप ही विज्ञान का प्रत्यय है ।

भिक्षुओ ! तब मेरे मन में यह हुआ—नामरूप से यह विज्ञान लोट जाता है, आगे नहीं बढ़ता ।
इतने से जनमता है, उड़ाता है । जो नामरूप के प्रत्यय से विज्ञान होता है, विज्ञान के प्रत्यय से नाम-
रूप होता है । नामरूप के प्रत्यय से पदायतन होता है । पदायतन के प्रत्यय से स्पर्श । इस तरह, मारा
दुःख-समूह उठ खड़ा होता है ।

भिक्षुओ ! “उठ खड़ा होता है” (=समुदय) = ऐसा पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में चक्षु उत्पन्न हुआ, ज्ञान पैदा हुआ, प्रजा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ ।

भिक्षुओ ! तब, मेरे मन में यह हुआ—किमके नहीं होने से जरामरण नहीं होता है, किमका निरोध होने से जरामरण का निरोध होता है ।

भिक्षुओ ! इस पर उचित मनन करने से मुझे ज्ञान का उदय हो गया—जाति के नहीं होने से जरामरण नहीं होता है । जाति का निरोध होने से जरामरण का निरोध होता है ।

अब , उपादान , तृणा , वेदना स्पर्श , पदायतन , नामरूप , क्रिया निरोध होने से नामरूप का निरोध होता है ?

भिक्षुओ ! इस पर उचित मनन करने से मुझे ज्ञान का उदय हो गया—विज्ञान के नहीं होने से नामरूप नहीं होता है, विज्ञान का निरोध होने से नामरूप का निरोध होता है ।

किमके नहीं होने से विज्ञान नहीं होता, किमका निरोध होने से विज्ञान का निरोध हो जाता है ?

नामरूप के नहीं होने से विज्ञान नहीं होता है, नाम-रूप का निरोध होने से विज्ञान का निरोध हो जाता है ।

भिक्षुओ ! तब मेरे मन में यह हुआ—मैंने मार्ग का ज्ञान प्राप्त कर लिया, नाम-रूप के निरोध से विज्ञान का निरोध होता है । विज्ञान के निरोध से नाम-रूप का निरोध होता है । नाम-रूप के निरोध से पदायतन का निरोध होता है । पदायतन के निरोध से स्पर्श का निरोध होता है । इस तरह, मारे दुःख-समूह का निरोध हो जाता है ।

भिक्षुओ ! “निरोध, निरोध” ऐसा पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में चक्षु उत्पन्न हुआ, ज्ञान पैदा हुआ ।

भिक्षुओ ! कोई पुरुष जगल में घूमते हुये एक पुराना मार्ग देखे, पूर्वकाल के लोगों का बनाया, पूर्वकाल के लोगों का इस्तेमाल किया । वह पुरुष उस मार्ग को पकड़ कर आगे जाय, और एक पुराने राजधानी नगर को देखे, जहाँ पूर्वकाल में लोग रहा करते थे, जो आराम, घाटिका, पुष्करिणी, और सुन्दर चहार-दिवाली से युक्त हो ।

भिक्षुओ ! तब, वह पुरुष राजा या राजमन्त्री को जाकर कह दे—भन्ते ! जानते हैं, मैंने जगल में घूमते । भन्ते ! अच्छा होता कि उस नगर को फिर बसावें ।

भिक्षुओ ! तब, राजा या राजमन्त्री उस नगर को फिर भी बनावे । वह नगर कुछ काल के बाद बड़ा गुलजार, समृद्ध, और उन्नतिशील हो जाय ।

भिक्षुओ ! वैसे ही, मैंने पुराना मार्ग देख लिया है, जिस मार्ग पर पूर्व के सम्यक् समुद्ध चले चुके हैं ।

भिक्षुओ ! पूर्व के सम्यक्-समुद्धों से चला गया वह पुराना मार्ग क्या है ? यही आर्य-अष्टांगिक मार्ग, जो सम्यक् दृष्टि, सम्यक् समाधि ।

उस मार्ग पर मैंने चला । उस मार्ग पर चलकर मैंने जरामरण को जान लिया, जरामरण के

समुद्र का ज्ञान लिया, जलमरण के निरोध को ज्ञान लिया घलमरण की निरोधगामिनी प्रतिपदा का ज्ञान लिया ।

उस मार्ग पर मैंने चला । उस मार्ग पर चक्कर मैंने आति भव " उपपादन मृत्वा" ब्रह्मा न्याय गदावतन सामान्य विज्ञान संस्कार ।

उस जल मैंने मिथुनों का मिथुनियों का उपपादों का और उपपादों का उपपादों का मिथुनों की मनुष्य के इतना समझ भार उकलिसील है बिचारित है बहुत जनों से भर गया है मनुष्यों और देवताओं में सभी प्रकार से प्रकाशित है ।

३६ मम्मसन सुत (१- ७ ६)

उपायमिष ममन

येना मैंने सुना ।

एक समय भगवान् बुद्धजसपद् में कम्मामममम सामक कुदमों के कथ में बिहार करते थे ।

भगवान् बाले—मिथुनों ! तुम अपने भीतर ही भीतर लूब केरम केरों ।

येना कदमे पर कोई मिथु मगवान् से वाला—ममो ! मैं अपने भीतर ही भीतर लूब केरम केरता हूँ ।

मिथु ! कहा ता गरी तुम अपने भीतर ही भीतर केरम केरने दा ।

मिथु मे कथमपा किन्तु उमके बलबाले से भगवान् का पिल संसुद नहीं हुआ ।

तब आहुज्जान् भालम्भ भगवान् से बाले—ह भगवान् ! जप पद ममम है—भगवान् इमका उपदेश करें कि अपने भीतर ही भीतर कथ केरम केरता हूँ । भगवान् मे सुनकर मिथु पारम करेंगे । ता कथम्भ ! सुना जपकी तरह मम लगाओ मैं कदता हूँ ।

“ममने ! बहुत जपदा कद मिथुनों के भगवान् का उपर दिया ।

भगवान् बाले—मिथुनों ! जप भीतर ही भीतर मिथु लूब केरम केरता हूँ—यह जो जलमरण इच्छाई जमक प्रकार के वाला बुद्ध लोक में पैदा होते हैं उनका बिदान क्या है ? उपपत्ति क्या है ? प्रमथ क्या है ? किमक होने से जलमरण होता है ? किमके नहीं होने से जलमरण नहीं होता है ?

जमा केरम हूद कद ज्ञान होता है— “यद बुद्ध उपपत्ति के बिदान से दाते हैं । उपपत्ति के होने से जलमरण होता है ; उपपत्ति के नहीं होने से जलमरण नहीं होता है । वह जलमरण को ज्ञान होता है ।

मगुद्व विरोध भार “विपदा का ज्ञान होता है । हम ताद कद जम के मरने मार्ग का ज्ञान होता है ।

मिथुनों ! कद मिथु लूबता ममक बुद्धिपद के बिद्व लूब जलमरण के विरोध के बिद्व जलमरण कहा जाता है ।

हमके बाद् भी अपने भीतर ही भीतर केरम केरता हूँ—उपाधि (जपम कथम) का बिदान क्या है— ?

उपाधि का बिदान मृत्त्यु है । । कद उपपत्ति को ज्ञान होता है ।

मिथुनों ! हमके बाद् भी अपने भीतर ही भीतर केरम केरता हूँ—यद लूबता जलमरण होता हूँ मैंने जलमरण होता है म कदों जम जाता है ?

ममने मैंने हूद कद ज्ञान होता है—जम के बिद्व के लूबता भी लूबता है बिद्व के हारी में लूबता जलमरण होता है, और जलमरण के जम के है । म क है लूब के बिद्व लूबता भी लूबता है ; हारी में लूबता जलमरण होता है और जम जाता है ।

ममने मैंने जम— जम मिथु लूबता जम के बिद्व लूबता भी लूबता है हारी में लूबता जलमरण होता है और जम जाता है ।

भिक्षुओ ! अतीत काल में जिन श्रमण या ब्राह्मणों ने लोक के सुन्दर और लुभावने विषयों को निव्य, सुख, आत्मा, आरोग्य और धैर्य के ऐसा देखा, उनमें तृष्णा को बढ़ाया ।

जिनने तृष्णा को बढ़ाया उनमें उपाधि को बढ़ाया । जिनने उपाधि को बढ़ाया उनमें दुःख को बढ़ाया । जिनने दुःख को बढ़ाया वे जाति जराभरण, शोक से मुक्त नहीं हुए । दुःख से मुक्त नहीं हुए—ऐसा मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! भविष्य काल में जो श्रमण या ब्राह्मण ।

भिक्षुओ ! वर्तमान काल में जो श्रमण या ब्राह्मण ।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पीने का कटोरा हो, जो रंग, गन्ध और रस से युक्त हो, किन्तु उसमें विष लगा हो । तब, कोई घाम में गर्माया, घमाया, थका, मँढ़ा प्यासा पुरुष आवे । उस पुरुष को कोई कहे—हे पुरुष ! यह तुम्हारे लिए पीने का कटोरा है, जो रंग, गन्ध और रस से युक्त है, किन्तु इसमें विष लगा है । यदि चाहो तो पी सकते हो । पीने से यह रंग, गन्ध और स्वाद में बढ़ा अच्छा लगेगा । पीने के बाद उसके कारण या तो मर जाओगे या मरने के समान दुःख भोगोगे । वह पुरुष सहसा बिना कुछ विचार किये उस कटोरे को पी ले, अपने को नहीं रोके । वह उसके कारण मर जाय या मरने के समान दुःख पावे ।

भिक्षुओ ! वैसे ही, अतीत काल में जिन श्रमण या ब्राह्मणों ने लोक के सुन्दर और लुभावने... । दुःख से मुक्त नहीं हुए—ऐसा मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! भविष्य काल , वर्तमान काल में...

भिक्षुओ ! अतीतकाल में जिन श्रमण या ब्राह्मणों ने लोक के सुन्दर और लुभावने विषयों को अनित्य, दुःख, अनात्म, रोग, और भय के ऐसा देखा, उनमें तृष्णा को छोड़ दिया ।

जिनने तृष्णा को छोड़ दिया उनमें उपाधि को छोड़ दिया । जिनने उपाधि को छोड़ दिया उनमें दुःख को छोड़ दिया । जिनने दुःख को छोड़ दिया वे जाति, जराभरण, शोक से मुक्त हो गये । वे दुःख से छूट गये—ऐसा मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! भविष्य में , वर्तमान काल में... । वे दुःख से छूट गये—ऐसा मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! जैसे । यदि चाहो तो पी सकते हो । पीने से यह रंग, गन्ध और स्वाद में बढ़ा अच्छा लगेगा । पीने के बाद उसके कारण या तो मर जाओगे या मरने के समान दुःख भोगोगे ।

भिक्षुओ ! तब, उस पुरुष के मन में यह हो—मैं इस प्यास को सुरा से, पानी से, ढही-मट्टा से, लस्सी से, या जीरा के पानी से मिटा सकता हूँ । इस प्यास को मैं न पीऊँ जो बहुत काल तक मेरे अहित और दुःख के लिए हो । वह समस्त वृक्षकर उम्र कटोरे को छोड़ दे, न पीये । इससे वह न तो मरे और न मरने के समान दुःख पावे ।

भिक्षुओ ! वैसे ही, अतीत काल में जिन श्रमण या ब्राह्मणों ने लोक के सुन्दर और लुभावने विषयों को अनित्य, दुःख, अनात्म, रोग और भय के ऐसा देखा, उनमें तृष्णा को छोड़ दिया ।

वे दुःख से छूट गये—ऐसा मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! भविष्य में , वर्तमान काल में... । वे दुःख से छूट जाते हैं—ऐसा मैं कहता हूँ ।

§ ७. नलकलाप सुत्त (१२. ७. ७)

जराभरण की उत्पत्ति का नियम

एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र और आयुष्मान् महाकोट्टित वाराणसी के समीप ऋषिपत्तन मृगदाय में विहार करते थे ।

तब आयुष्मान् महाकोटित सौंस का प्यास स उठ बहो आयुष्मान् सारिपुत्र ये बहो गये भीर
कुराक क्षम के प्रभ पृष्ठकर मुक ओर पर गये ।

एक बार यह आयुष्मान् महाकोटित आयुष्मान् सारिपुत्र स पाछ—आयुस सारिपुत्र ! क्या
अकारण अपना स्वयं किया हुआ है या दूसरे का किया हुआ है या अपना स्वयं भी और दूसरे का
भी किया हुआ है या न अपना स्वयं सार न दूसरे का किया हुआ किन्तु अकारण हुआ उत्पन्न हो
गया है ?

=आयुस कोटित ! हममें एक भी ठीक नहीं ।

=आयुस सारिपुत्र ! क्या जाति सब उपादान मृत्ता वेदना " स्वर्श
पद्मावतन नामरूप अपना स्वयं किया हुआ है या अकारण हुआ उत्पन्न हो गया है ?

आयुस कोटित ! हममें एक भी ठीक नहीं । किन्तु, विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप होता है ।

आयुस सारिपुत्र ! क्या विज्ञान अपना स्वयं किया हुआ है या अकारण उत्पन्न हुआ है ?

आयुस कोटित ! हममें एक भी ठीक नहीं, किन्तु नामरूप के प्रत्यय से विज्ञान होता है ।

तो हम आयुष्मान् सारिपुत्र के बड़े का अब हम प्रकार जानें—नामरूप और विज्ञान न तो अपना
स्वयं किया हुआ है न अकारण हुआ उत्पन्न हुआ है, किन्तु विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप और नाम
रूप के प्रत्यय से विज्ञान होता है ।

आयुस सारिपुत्र ! हमका भय यों ही न समझना चाहिये ?

तो आयुस ! मैं एक उपादा देकर समझाता हूँ, उपादा से कितने बिज प्रकृत बड़े हुए का भय सब
समझ कर दें ।

आयुस ! जम दा बलकजप (= बरबड़ के बोझ) एक दूसरे के सहार लगाकर लगे हों, जैसे ही
नामरूप के प्रत्यय से विज्ञान और विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप होता है । नामरूप के प्रत्यय से पद्मावतन
होता है । इस तरह सारा दुःख-समूह उठ पड़ा होता है ।

आयुस ! जैम उन हो बलकजपों में एक का लीज लेने से दूसरा गिर पड़ता है, जैसे ही नामरूप
के निरोध से विज्ञान का निरोध और विज्ञान के निरोध से नामरूप का निरोध होता है । नामरूप के
निरोध से पद्मावतन का निरोध होता है । पद्मावतन के निरोध से स्वर्श का निरोध होता है । इस
तरह सारे दुःख-समूह का निरोध हो जाता है ।

आयुस सारिपुत्र ! आभय है अनुसुत है । आप ने हम इनका अच्छा समझाया ! आप के बड़े
हुन का हम उ तम प्रकार से अनुमान करते हैं ।

जी मिथु जलामय के निर्वेद वैराग्य और निराप के निज परमादेश करता है बड़ा अकबला
परमैकपिक कहा जा सकता है । आ मिथु जलामय के निर्वेद वैराग्य और निराप के निज प्रतिष्ठ होता
है वही अकबला परमानुसमे प्रतिष्ठ कहा जा सकता है । आ मिथु जलामय के निर्वेद वैराग्य निरीप
अनुपादान से विमुक्त हो जाता है वही अकबला एहकर्मनिर्वाण प्राप्त कहा जा सकता है ।

जानि सब उपादान मृत्ता वेदना स्वर्श पद्मावतन नामरूप
विज्ञान संस्कार । आ मिथु बविद्या के निर्वेद वैराग्य निरीप अनुपादान से विमुक्त हो जाता
है वही अकबला एहकर्मनिर्वाण प्राप्त कहा जा सकता है ।

३८ योगम्भी मुप (१० उ. ८)

मय का निराप ही निराप

जब जब आयुष्मान् मुनिष्ठ आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् सारिपुत्र
काशावती के सारिपुत्राय मे विराज जाने थे ।

क

तब, आयुष्मान् सविट् आयुष्मान् मूलिल से बोले—आयुस मूलिल ! श्रद्धा को छोड़, रूचि को छोड़, अनुश्रव को छोड़, आकारपरिवर्तक को छोड़, दृष्टिनिष्ठान क्षान्ति को छोड़, आयुष्मान् मूलिल को क्या अपने भीतर ही ऐसा ज्ञान हो गया है कि जाति के प्रत्यय में जरामरण होता है ?

आयुस सविट् ! श्रद्धा को छोड़ , मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ कि जाति के प्रत्यय में जरामरण होता है ।

आयुस मूलिल ! श्रद्धा को छोड़ , आयुष्मान् मूलिल को क्या अपने भीतर ही ऐसा ज्ञान हो गया है कि भव के प्रत्यय से जाति होती है ?

कि उपादान के प्रत्यय से भव होता है ? ...

कि तृष्णा के प्रत्यय से उपादान होता है ?

• कि वेदना के प्रत्यय से तृष्णा होती है ?

कि स्पर्श के प्रत्यय से वेदना होती है ? •

कि पदायतन के प्रत्यय से स्पर्श होता है ? •

कि नामरूप के प्रत्यय से पदायतन होता है ? ...

कि विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप होता है ?

कि संस्कारों के प्रत्यय से विज्ञान होता है ?

...कि अविद्या के प्रत्यय से संस्कार होते हैं ?

आयुस सविट् ! श्रद्धा को छोड़ ... , मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ कि अविद्या के प्रत्यय से संस्कार होते हैं ।

आयुस मूलिल ! श्रद्धा को छोड़ , आयुष्मान् मूलिल को क्या अपने भीतर ऐसा ज्ञान हो गया है कि जाति का निरोध होने में जरामरण का निरोध होता है ।

आयुस सविट् ! श्रद्धा को छोड़ * , मैं यह जानता और देखता हूँ कि जाति का निरोध होने से जरामरण का निरोध होता है ?

• भव के निरोध से जाति का निरोध । [प्रतिलोम वश से] अविद्या के निरोध से संस्कारों का निरोध होता है ।

आयुस मूलिल ! श्रद्धा को छोड़ , आयुष्मान् मूलिल को क्या अपने भीतर ऐसा ज्ञान हो गया है कि भव का निरोध होना ही निर्वाण है ?

आयुस सविट् ! श्रद्धा को छोड़ , मैं यह जानता और देखता हूँ कि भव का निरोध होना ही निर्वाण है ?

तो आयुष्मान् मूलिल क्षीणाश्रव अर्हन् है ।

इस पर आयुष्मान् मूलिल चुप रहे ।

ख

तब, आयुष्मान् नारद आयुष्मान् सविट् से बोले—आयुस सविट् ! अच्छा होता कि मुझे भी वह प्रश्न पूछा जाता । मुझसे वह प्रश्न पूछें । मैं आप को इस प्रश्न का उत्तर दूँगा ।

मैं आयुष्मान् नारद को भी वह प्रश्न पूछता हूँ । आयुष्मान् नारद मुझे इस प्रश्न का उत्तर दें ।

[पूर्ववत्]

आकुप्प सबिह ! भइा को छोड़" मैं यह जानता हूँ और दूरता हूँ कि भय का निरोध होना ही निर्वाण है ।

तो आपुप्पान् नारद क्षीणाग्रह भईत हैं ।

आकुप्प ! मैंने इस पदार्थ-ज्ञान को पा लिया है कि भय का निरोध होना ही निर्वाण है किन्तु मैं क्षीणाग्रह भईत नहीं हूँ ।

आकुप्प ! जैसे किसी काम्यार मार्ग में एक कुँआ हा । वहाँ न डार हो न बाकरी । तब कोई घाम में गर्माया धमाया पका-भौंहा प्यासा पुरुष गाव । वह उस कुँआ में झाँके । 'पानी है' ऐसा वह जाने किन्तु वहाँ तक पहुँचने में असमर्थ हो ।

आकुप्प ! वन ही मैंने इस पदार्थ-ज्ञान का पा लिया है कि भय का निरोध होना ही निर्वाण है किन्तु मैं क्षीणाग्रह भईत नहीं हूँ ।

ग

ऐसा कहने पर आपुप्पान् आनम् आपुप्पान् सयिह से बोले—आकुप्प सबिह ! ऐसा कह कर आप आपुप्पान् नारद का क्या कहना चाहत हैं ?

आकुप्प आनम् ! मैं आपुप्पान् नारद को बुद्ध और ब्रह्माण छोड़ कर कुछ दूसरा कहना नहीं चाहता हूँ ।

§ ९ उपमन्ति सुत्त (१० ७ ५)

अरामरण का इटना

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् आवस्सी में अनाद्यपिण्डिक के आराम जंतघन में बिहार करते थे ।

भगवान् बोले—मिष्ठुओ ! महासमुद्र बहकर महानदियों को बहा देता है । महानदियाँ बहकर छोटी-छोटी नदियाँ (= साखा नदियाँ) को बहा देती हैं । बड़ी बड़ी नदियों को बहा देती हैं । "" छोटी-छोटी नदियों को बहा देती हैं ।

मिष्ठुओ ! इसी तरह अविद्या बहकर संस्कारों को बहा देती है । संस्कार बहकर विज्ञान को बहा देते हैं । "" अविद्या बहकर अरामरण को बहा देती है ।

मिष्ठुओ ! महासमुद्र के कौट जाने पर महा नदियाँ कौट जाती हैं ।

मिष्ठुओ ! इसी तरह अविद्या के इट जाने से संस्कार इट जाते हैं । संस्कारों के इट जाने से विज्ञान इट जाता है । अविद्या के इट जाने से अरामरण इट जाता है ।

§ १० सुसीम सुत्त (१२ ७ १०)

धर्म-स्वभाव-ज्ञान के पद्मान् निर्माण का ज्ञान

अनिरयता और की तरह साधु हो तुम्हें मांगता है

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह के पनुयन ककन्दक-निवाप में बिहार करते थे ।

क

उस समय भगवान् का बहा संस्कार = गुरुकार = सम्भाव = पूज्य = जादर हो रहा था । उन्हें भीबर पिण्डपाठ शयनासय गहनपान्ध अपम्य परिष्कार प्राप्त हो रहा था ।

भिक्षुसंघ का भी 'नरा मन्कार' ।

किन्तु, अन्य तैर्गिकों का मन्कार ' नहीं होता था । उन्हें चीवर "प्राप्त नहीं होते थे ।

ख

उस समय सुसीम परिव्राजक परिव्राजकों की एक बड़ी मण्डली के साथ राजगृह में ठहरा हुआ था ।

तब, सुसीम परिव्राजक की मण्डली ने सुसीम परिव्राजक को कहा — मित्र सुसीम ! सुनै, आप श्रमण गौतम के पास दीक्षा ले लें । श्रमण गौतम से धर्म सीख कर आपें और हम लोगों को कहे । आप से धर्म सीखकर हम लोग गृहस्थों को उपदेश देंगे । इस तरह, हम लोगों का भी मन्कार ' होगा, और हम भी चीवर प्राप्त करेंगे ।

"मित्र ! बहुत अच्छा" कह, सुसीम परिव्राजक अपनी मण्डली को उत्तर दे, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ गया, और कुशल-क्षेम के प्रश्न पूछकर एक ओर बैठ गया ।

ग

एक ओर बैठ, सुसीम परिव्राजक आयुष्मान् आनन्द से बोला—आयुस आनन्द ! मैं इस धर्म-विनय में ब्रह्मचर्य पालन करना चाहता हूँ ।

तब, आयुष्मान् आनन्द सुसीम परिव्राजक को ले जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् आनन्द भगवान् से बोले — सुसीम परिव्राजक मुझसे कहता है कि आयुस आनन्द ! मैं इस धर्मविनय में ब्रह्मचर्य पालन करना चाहता हूँ ।

आनन्द ! तो सुसीम को प्रव्रजित करो ।

सुसीम परिव्राजक ने भगवान् के पास प्रव्रज्या और उपसम्पदा पाई ।

उस समय कुछ भिक्षुओं ने भगवान् के पास ऐसा स्वीकार कर लिया था—जाति क्षीण हो गई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, अब और कुछ नहीं बचा, ऐसा जान लिया ।

घ

आयुष्मान् सुसीम ने इसे सुना कि कुछ भिक्षुओं ने भगवान् के पास ऐसा स्वीकार कर लिया है ।

तब, आयुष्मान् सुसीम जहाँ वे भिक्षु थे वहाँ गये, और कुशल-क्षेम के प्रश्न पूछकर और बैठ गये ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् सुसीम उन भिक्षुओं से बोले — क्या यह सच्ची बात है कि आयुष्मान् ने भगवान् के पास ऐसा स्वीकार कर लिया है ?

हाँ, आयुस !

आयुष्मानो ने यह जानते और देखते हुये क्या अनेक प्रकार की ऋद्धियों को प्राप्त कर लिया है ? एक होकर भी बहुत हो जाते हैं ? बहुत होकर भी एक हो जाते हैं ? क्या आप प्रगट होते और छप्त हो जाते हैं ? क्या आप दीवाल, हाता, पहाड़ के आर-पार बिना लगे बन्ने चले जा सकते हैं, जैसे आकाश में ? पृथ्वी में भी क्या आप द्रुवक्रियाँ लगा सकते हैं जैसे पानी में ? जल के तल पर भी क्या आप चल सकते हैं, जैसे पृथ्वी के ऊपर ? आकाश में भी क्या आप पलथी लगाकर रह सकते हैं, जैसे पक्षी ? चाँद सूरज जैसे तेजवान् को भी क्या आप हाथ से छू सकते हैं ? ब्रह्मलोक तक भी क्या आप अपने शरीर से वश में कर सकते हैं ?

आबुस, नहीं।

आप आयुष्मान् ऐसा जानते और देखते हुये क्या दिव्य अद्वैतिक विस्तृत भोगधातु से दिव्य और मानुष तथा वृक्ष और मिश्र के क्षम्यों को सुन सकते हैं ?

आबुस ! नहीं सुन सकते हैं।

आप आयुष्मान् ऐसा जानते और देखते हुये क्या दूसरे जीवों और पुरुषों के चित्त को अपने चित्त से जान लेते हैं ? सराग चित्त को सराग चित्त है ऐसा जान लेते हैं ? वीतराग चित्त को वीतराग चित्त है, ऐसा जान लेते हैं ? होय "मोह बास चित्त को—बैसा जान लेते हैं ? संक्षिप्त 'विसिप्त', महात्, 'अमहात्' सोत्तर अतुत्तर समाहित 'अमसाहित' विमुक्त, 'अविमुक्त' चित्त को बैसा-बैसा जान लेते हैं ?

आबुस नहीं।

आप आयुष्मान् ऐसा जानते और देखते हुये क्या अनेक प्रकार के अपने पूर्व जन्म की बातों को स्मरण करते हैं—जस एक जन्म भी दो जन्म भी पॉष दस—बीस पचास सी हजार 'काज' । अनेक संवर्त कपर भी अनेक बिबर्त कपर भी अनेक संवर्तबिबर्त कपर भी। वहाँ बा, इस नाम का इस गोन का इस बर्ग का इस आहार का ऐसा सुखदुःख भोगने बाका इतनी आयु बाका। सो वहाँ से मर कर वहाँ उत्पन्न हुआ। वहाँ भी इस नाम का—या। सो वहाँ से मर कर वहाँ उत्पन्न हुआ—इस प्रकार कहा आप आकर और ठोहर के साथ अनेक प्रकार के अपने पूर्व जन्म की बातों को स्मरण करते हैं।

आबुस नहीं।

आप आयुष्मान् ऐसा जानते और देखते हुये क्या दिव्य अद्वैतिक विस्तृत चक्षु से सबों को—मरते जन्मते हीन प्रणीत सुन्दर कुक्ष अज्जी गति को प्राप्त दुर्गति को प्राप्त अपने कर्म के अनुसार अवस्था को पाये—देखते हैं ? वे जीव शरीर बचन और मन से दुराचार करने बाछे हैं। कार्य पुरुषों को मिथ्या करये बाछे हैं मिथ्या दृष्टि बाछे हैं मिथ्या दृष्टि में पड़ कर व्याचरण करने बाछे हैं—जो मरने के बाद नरक में उत्पन्न हो कर दुर्गति को प्राप्त होंगे ? वे जीव शरीर बचन और मन से सदाचार करने बाछे हैं जो मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो कर सुगति को प्राप्त होंगे ? इस प्रकार कहा जीवों को मरते जन्मते हीन प्रणीत सुन्दर कुक्ष अज्जी गति को प्राप्त दुर्गति को प्राप्त अपने कर्म के अनुसार अवस्था को पाये—देखते हैं ?

आबुस नहीं।

आप आयुष्मान् ऐसा जानते और देखते हुये क्या उस शान्त विमोक्ष रूप के परे अक्षय जो है उन्हें शरीर से स्वर्ग करत बिहार करते हैं ?

आबुस नहीं।

क्या आयुष्मानों का स्वीकार करना ठीक होते हुये जी आप ने इन (अद्वैतिक) ज्यों को नहीं पाया है ?

नहीं आबुस यह नहीं है।

तो कैसे वह सम्भव है।

आबुस सुधीम ! इस लोग प्रज्ञा-विमुक्त हैं।

आयुष्मानों के इस संक्षेप से कहे गये का इस विचार से अर्थ नहीं समझते हैं। हृषा कर के आप लोग ऐसा कहें कि आयुष्मानों के इस संक्षेप से कहे गये का इन विस्तार से अर्थ जान लें।

आबुस सुधीम ! आप जान लें वाँ न जान लें, किन्तु इस लोग प्रज्ञाविमुक्त हैं।

हु

तब, आयुष्मान् सुखीम आत्मन से उठ जाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ, आयुष्मान् सुखीम ने उन भिक्षुओं के साथ जो कथा-संलाप हुआ था सभी भगवान् को कह सुनाया ।

सुखीम ! पहले धर्म के स्वभाव का ज्ञान होता है, पीछे निर्वाण का ज्ञान ।

भगवान् के इस मन्त्र से कहे गये या हम विन्दार से अर्थ नहीं समझते हैं । कृपा कर भगवान् ऐसा कहें कि भगवान् के इस मन्त्र से कहे गये का हम विन्दार से अर्थ जान लें ।

सुखीम ! तुम जानो या न जानो, किन्तु पहले धर्म के स्वभाव का ज्ञान होता है, पीछे निर्वाण का ज्ञान । सुखीम ! तो क्या समझते हो रूप नित्य है अथवा अनित्य ?

भन्ते ! अनित्य है ।

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?

भन्ते ! दुःख है ।

जो अनित्य, दुःख, त्रिपरिणामधर्मा है उसे क्या ऐसा समझना ठीक है—यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है ?

नहीं भन्ते !

वेदना नित्य है या अनित्य ?

सज्ञा नित्य है या अनित्य ?

संस्कार नित्य है या अनित्य ?

विज्ञान नित्य है या अनित्य ?

जो अनित्य, दुःख, त्रिपरिणामधर्मा है उसे क्या ऐसा समझना ठीक है—यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है ?

नहीं भन्ते !

सुखीम ! तो, जो कुछ अतीत, अनागत - या वर्तमान् के रूप है—आध्यात्म या वाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, हीन या प्रणीत, द्रव्य या निरुद्रव्य—सभी न मेरे हैं, न हम हैं, और न हमारे आत्मा हैं ।

सुखीम ! जो कुछ अतीत अनागत या वर्तमान के वेदना, सज्ञा, संस्कार, विज्ञान हैं सभी न मेरे हैं, न हम हैं, और न हमारे आत्मा हैं । इस बात का यथार्थ रूप में अच्छी तरह साक्षात्कार कर लेना चाहिये ।

सुखीम ! ऐसा देखते हुये ज्ञानी आर्यश्रावक का चित्त रूप से हट जाता है, वेदना से हट जाता है, सज्ञा से हट जाता है, विज्ञान से हट जाता है । चित्त के हट जाने पर वैराग्य उत्पन्न होता है । वैराग्य से विमुक्त हो जाता है । विमुक्त हो जाने पर विमुक्त हो गया ऐसा ज्ञान होता है । जाति क्षीण हुई, ब्रह्म चर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, अब और कुछ बाकी नहीं बचा—ऐसा ज्ञान होता है ।

सुखीम ! तुम देखते हो कि जाति के प्रत्यय से जरामरण होता है ?

हाँ भन्ते !

सुखीम ! तुम देखते हो कि भव के प्रत्यय से जाति होती है ?

हाँ भन्ते !

सुखीम ! तुम देखते हो अविद्या के प्रत्यय से संस्कार होते हैं ?

हाँ भन्ते !

सुखीम ! देखते हो कि जाति का निरोध होने से जरामरण का निरोध होता है ?

हैं मन्त !

सुसीम ! देखते हो कि भविष्य का निरोध होने से मस्कारों का निरोध हो जाता है ।

हैं मन्ते !

सुसीम ! क्या तुमने ऐसा आशय व्यक्त करते हुए अनेक प्रकार की कदियों को प्राप्त कर लिया है ? कि एक हो कर बहुत हो जाना [जिन्हें सुसीम ने अब मिश्रणों से पूछा था]

नहीं मन्त !

सुसीम ! ऐसा कहना भी और इस बर्णों को न पा केना सौ—सुसीम ! बहरी हमने किया है ।

च

तब, आपुष्पात् सुसीम भगवान् के चरणों पर शिर से प्रणाम करके बोले—आज मूढ़ अज्ञानक के ऐसा मुष्ट से अपराध हो गया कि मैंने ऐसे धर्म-विषय में चोर के ऐसा प्रवर्तित हुआ । मन्त ! भगवान् के पास मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूँ; जो भगवान् मुझे क्षमा कर दें । भविष्य में ऐसा नहीं करूँगा ।

सुसीम ! तुमने ठीक में बड़ा अपराध किया है ।

सुसीम ! जैसे लोग किसी चोर या दरोही को पकड़ कर राजा के पास के जायें और कहें—देख ! यह आपका चोर दरोही है, आप क्षमा चाहें इसे कुछ दें । तब राजा कहे—आजो इसके हाथों को पीछे करके रस्मी से बन्ध कर बाँध दो माया मूढ़ हो विज्ञान और होकर पीछे इस एक राखी से बुरी राखी और एक बीरादे में बुरी बीरादे के बने हुए दक्षिण के फाटक से निकाल कर नगर के दक्षिण ओर हमका सिर झट हो । इस लोग जैसे ही ले जाकर उसका मिर कर दें ।

सुसीम ! तो क्या समझते हो उस पुरुष को उसमें कुछ वैषम्य होगी या नहीं ?

मन्ते ! अवश्य होगी ।

सुसीम ! उस पुरुष को दुष्ट हो या नहीं हो किन्तु जो चोर की तरह इस धर्म-विषय में प्रवर्तित बात है उन्हें अधिकाधिक दुष्ट भोगना होता है । वह तरक में पड़ता है ।

सुसीम ! जो तुम अपने अपराध का अपराध समझा स्वीकार कर रहे हो इसलिये हम क्षमा कर रहे हैं । सुसीम ! आप-विषय में हमकी हृदि ही है जो अपने अपराध का बर्णानुक्रम प्राप्त कर लेता है और भविष्य में न करने का संकल्प कर लेता है ।

महापद्म समाप्त

आठवाँ भाग

श्रमण-ब्राह्मण वर्ग

§ १. पञ्चय सुत्त (१२. ८. १)

परमार्थज्ञाता श्रमण-ब्राह्मण

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

“ भगवान् बोले—भिक्षुओं ! जो श्रमण या ब्राह्मण जरासरण को नहीं जानते हैं, जरासरण के समुदय को नहीं जानते हैं, जरासरण के निरोध को नहीं जानते हैं, जरासरण की निरोधगामिनी प्रतिपदा को नहीं जानते हैं, उन श्रमणों में न तो श्रामण्य है और ब्राह्मणों में ब्राह्मण्य । वे आयुष्मान् श्रमण या ब्राह्मण के परमार्थ को इसी जन्म में स्वयं जान, याक्षान् कर, और प्राप्त कर विहार नहीं करते हैं ।

भिक्षुओं ! जो श्रमण या ब्राह्मण जरासरण को जानते हैं, उन्हीं श्रमणों में श्रामण्य और ब्राह्मणों में ब्राह्मण्य है । वे आयुष्मान् श्रमण या ब्राह्मण के परमार्थ को इसी जन्म में स्वयं जान कर विहार करते हैं ।

§ २-१०. पञ्चय सुत्त (१२. ८. २-१०)

परमार्थज्ञाता श्रमण-ब्राह्मण

श्रावस्ती ' जेतवन ' में ।

जाति को नहीं जानता है ।

भव को नहीं जानता है ।

उपादान को नहीं जानता है ।

तृष्णा को नहीं जानता है ।

वेदना को नहीं जानता है ।

स्पर्श को नहीं जानता है ।

पञ्चायतन को नहीं जानता है ।

नामरूप को नहीं जानता है ।

विज्ञान को नहीं जानता है ।

§ ११. पञ्चय सुत्त (१२. ८. ११)

परमार्थज्ञाता श्रमण-ब्राह्मण

संस्कार को नहीं जानता है ।

श्रमण ब्राह्मण वर्ग समाप्त ।

नवाँ भाग

अन्तर पेय्याल

§ १ सरथा सुच (१० ९ १)

यथार्थज्ञान के लिए बुद्ध की खोज

मिथुना ! ज़रामरन का न जानते हुए, न देखते हुए, ज़रामरन क यथार्थ ज्ञान के लिए बुद्ध की खोज करनी चाहिये । समुद्रय निरोध भीर प्रतिपदा क यथार्थ ज्ञान के लिए बुद्ध की खोज करनी चाहिये । यह पहला सूचान्त है ।

सभी में इसी मूर्ति समझ सता चाहिये ।

मिथुनी ! जाति को न जानते हुए ।

मिथुनी ! भव कपादान दुष्पा बेवना स्वर्ग पद्मापतन नामरूप विज्ञान संस्कार को न जानते हुए बुद्ध की खोज करनी चाहिये ।

§ २ सिक्खा सुच (१० ९ २)

यथार्थज्ञान क लिए शिक्षा सेना

मिथुनी ! ज़रामरन को न जानते हुए ज़रामरन क यथार्थज्ञान के लिये शिक्षा सेनी चाहिये ।

[कपर क सूत्र के समान ही । "बुद्ध की खोज करनी चाहिये" के स्थान पर "शिक्षा करनी चाहिये"]

§ ३ योग सुच (१२ ९ ३)

यथार्थज्ञान के लिए यागफरना

भाग करवा चाहिये ।

§ ४ छन्द सुच (१० ९ ४)

यथार्थज्ञान के लिए छन्द करना

छन्द करना चाहिये ।

§ ५ उस्सोन्दि सुच (१० ९ ५)

यथार्थज्ञान के लिए उस्ताद करना

उस्ताद करना चाहिये ।

§ ६ अप्पटिवानिय सुच (१२ ९ ६)

यथार्थज्ञान क लिए पीछ न मीटना

...पीछे न मीटना चाहिये ।

§ ७ आतप्प सुच (१० ९ ७)

यथार्थज्ञान क लिए उपाग करना

...उपाग करना चाहिये ।

§ ८. विरिय सुत्त (१२. ९. ८)

यथार्थ ज्ञान के लिए वीर्य करना

.. वीर्य करना चाहिये ।

§ ९. सातच्च सुत्त (१२. ९. ९)

यथार्थ ज्ञान के लिए सतत परिश्रम करना

अध्यवसाय करना चाहिये ।

§ १०. सति सुत्त (१२. ९. १०)

यथार्थ ज्ञान के लिए स्मृति करना

.. स्मृति करनी चाहिये ।

§ ११. सम्पज्झ सुत्त (१२. ९. ११)

यथार्थ ज्ञान के लिए संप्रज्ञ रहना

संप्रज्ञ रहना चाहिये ।

§ १२. अप्रमाद सुत्त (१२. ९. १२)

यथार्थ ज्ञान के लिए अप्रमादी होना

अप्रमाद करना चाहिये ।

अन्तर पेण्यालं वर्ग समाप्त ।

नवौं भाग

अन्तर पेद्याल

§ १ सत्या सुच (१२ ९ १)

यथार्थज्ञान के लिए बुद्ध को खोज

मिथुना ! ब्रह्मरूप को न जानते हुए, न वेष्टित हुए, ब्रह्मरूप न खोज करनी चाहिये । समुद्रप निरोध धर प्रतिपदा के यथार्थ ज्ञान चाहिये । यह पहचान सुझाव है ।

समी में इसी भाँति समझ लेना चाहिये ।

मिथुना ! जाति को न जानते हुए ।

मिथुना ! सब उपादान पूर्ण बना विज्ञान संस्कार को न जानते हुए बुद्ध की खोज करनी

§ २ सिद्धा सुच (

यथार्थज्ञान के लिए :

मिथुना ! ब्रह्मरूप को न जानते हुए ब्रह्म

[ऊपर के सूच के समाप्त ही ।

कनी चाहिये]

§ ३ योग

यथार्थज्ञान

योग करना चाहिये ।

§ ४ र

यग

छन्द करना चाहिये ।

§ ५

उपसाह करना था

§

पठित न होकर

‘‘मिक्षुओ । जैसे, जहाँ महानदियों का संगम होता है—जैसे गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभू, मही नदियों का—वहाँ से कोई पुरुष दो या तीन बूँद पानी निकाल ले ।

मिक्षुओ ! तो क्या समझते हो [ऊपर के सूत्र जैसा]

§ ४. सम्भेज्जउदक सुत्त (१२. १०. ४)

महानदियों के संगम से तुलना

आवस्ती जेतवन ‘‘ में ।

मिक्षुओ ! जैसे, जहाँ महानदियों का संगम होता है.. वहाँ का जल सूख कर खतम हो जाय, केवल कुछ बूँद बच जायें ।

मिक्षुओ ! तो क्या समझते हो.. ।

§ ५. पठवी सुत्त (१२. १०. ५)

पृथ्वी से तुलना

आवस्ती जेतवन ‘‘ में ।

मिक्षुओ ! कोई पुरुष वैर के बराबर पृथ्वी पर सात गोलियाँ फेंक दे । तो कौन बचा है, वैर के बराबर सात गोलियाँ या महापृथ्वी ‘‘ ?

[पूर्ववत्]

§ ६. पठवी सुत्त (१२. १०. ६)

पृथ्वी से तुलना

आवस्ती जेतवन में ।

मिक्षुओ ! जैसे महापृथ्वी नष्ट हो जाय, खतम हो जाय, वैर के बराबर सात गोलियों को छोड़कर ।

§ ७. समुद सुत्त (१२ १० ७)

समुद्र से तुलना

आवस्ती जेतवन ‘‘ में ।

मिक्षुओ ! जैसे, कोई पुरुष महासमुद्र से दो या तीन पानी के बूँद निकाल ले . ।

§ ८. समुद सुत्त (१२. १०. ८)

समुद्र से तुलना

आवस्ती जेतवन में ।

मिक्षुओ ! जैसे, महासमुद्र सूख कर खतम हो जाय, दो या तीन पानी के बूँद छोड़कर । मिक्षुओ ! तो क्या समझते हो ।

§ ९. पञ्चत सुत्त (१२. १०. ९)

पर्वत की उपमा

आवस्ती जेतवन में ।

दशवौं भाग अभिसमय वर्ग

§ १ नखसिख सुप्त (१० १० १)

ओतापत्र के दुःख अत्यस्य है

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय मगधार् आधस्ती में अनाद्यपिण्डिक के जेतवन आराम में बिहार करत थे ।

तब मगधार् ने अपने बल के ऊपर एक पाछ का कल रख मिथुओं को आमन्त्रित किया—
मिथुओ ! क्या समझते हो कीम बड़ा है यह पाछ का छोटा कण जिससे मैंने अपने भक्त पर रख दिया है या महापृथ्वी ?

मन्ते ! महापृथ्वी ही बहुत बड़ी है; मगधार् ने जिस पाछ-कण को अपने लज पर रख दिया है वह तो बड़ा अद्भुत है । यह महापृथ्वी का काकणों भाग भी नहीं है ।

मिथुओ ! जैसे ही दक्षिसायक शानी आर्यमाचक का वह गुण बड़ा है जो क्षीम हो गया = कड़ गया; जो बड़ा है वह तो अत्यन्त अल्पमात्र है । पूर्वे के क्षीम हो गये=कट गये उस गुण स्कन्ध के सामने वह बड़ा हुआ गुण जो अधिक से अधिक सात अंशों तक रह सकता है साक्षरों भाग भी नहीं है ।

मिथुओ ! धर्म का शान हो जाता इतना बड़ा परमार्थ का है; धर्म बहुत का प्रतिकाम इतना बड़ा परमार्थ का है ।

§ २ पोकखरणी सुप्त (१२ १० २)

ओतापत्र के दुःख अत्यस्य है

आधस्ती "जेतवन" में ।

मिथुओ ! पचास योजन ऊंची पचास योजन चौड़ी और पचास योजन गहरी पानी से ऊपारन मरी कोई पुष्करिणी हो कि जिसके किनारे बैठ कर बीया भी पानी पी सकता हो । तब कोई पुष्प उस पुष्करिणी से ऊपार से कुछ पानी निकाल दे ।

मिथुओ ! तो क्या समझते हो ऊपार में आने ककडन में अधिक पानी है वा पुष्करिणी में ?

मन्ते ! ऊपार में आने ककडन से पुष्करिणी का पानी अत्यन्त अधिक है; वह तो असंख्य काकणों भाग भी नहीं खरता है ।

मिथुओ ! जैसे ही दक्षिसायक शानी आर्यमाचक [ऊपर के सूत्र के पूरा हो]

§ ३ सम्मेज्जतदक सुप्त (१२ १० ३)

महावर्षों के संगम से तुच्छता

आधस्ती "जेतवन" में ।

दूसरा परिच्छेद

१३. धातु-संयुक्त

पहला भाग

नानात्व वर्ग

(आध्यात्म पञ्चक)

§ १. धातु सुत्त (१३ १. १)

धातु की विभिन्नता

श्रावस्ती जेतवन में ।

भिक्षुओ ! धातु के नानात्व पर उपदेश करूँगा । उसे सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ, मैं कहता हूँ ।
“भन्ते ! बहुत अच्छा” कह, भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! धातु का नानात्व क्या है ?

चक्षुधातु, रूपधातु, चक्षुर्विज्ञान धातु । श्रोत्रधातु, शब्दधातु, श्रोत्रविज्ञान धातु । घ्राणधातु, गन्धधातु, घ्राणविज्ञान धातु । जिह्वा धातु, रसधातु, जिह्वाविज्ञानधातु । कायधातु, स्पर्शधातु, काय-विज्ञानधातु । मनोधातु, मनोविज्ञानधातु ।

भिक्षुओ ! इसी को धातुनानात्व कहते हैं ।

§ २. सम्पर्कसुत्त (१३ १ २)

स्पर्श की विभिन्नता

श्रावस्ती जेतवन में ।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व के होने से स्पर्शनानात्व होता है ।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व क्या है ?

चक्षुधातु, श्रोत्रधातु, घ्राणधातु ।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व के होने से स्पर्शनानात्व कैसे उत्पन्न होता है ?

भिक्षुओ ! चक्षुधातु के होने से चक्षुसस्पर्श उत्पन्न होता है । श्रोत्रसस्पर्श उत्पन्न होता है ।
घ्राणसस्पर्श उत्पन्न होता है । • • जिह्वासस्पर्श उत्पन्न होता है । • कायसस्पर्श उत्पन्न होता है । • • मन-सस्पर्श उत्पन्न होता है ।

भिक्षुओ ! इस प्रकार, धातुनानात्व के होने से स्पर्शनानात्व उत्पन्न होता है ।

§ ३. नो चेत्तं सुत्त (१३ १ ३)

धातु विभिन्नता से स्पर्श विभिन्नता

श्रावस्ती जेतवन में ।

मिथुओ ! जैसे, कोई पुरुष पर्वतराज हिमालय से मात सरसों के बराबर कंकड़ ले ले। मिथुओ ! तो क्या समझते हो ?”।

§ १० पञ्चत सुत्त (१० १० १०)

पर्यंत की उपमा

आपस्ती जेतयन में।

मिथुओ ! जैसे पर्वतराज हिमालय नष्ट हो जाय जलम हो जाय मात सरसों के बराबर कंकड़ छँदकर। मिथुओ ! तो क्या समझते हो ?

§ ११ पञ्चत सुत्त (१० १० ११)

पर्यंत की उपमा

आपस्ती जेतयन में।

मिथुओ ! जैसे पर्वतराज सुमेरु से कोई पुरुष मात भूँग के बराबर कंकड़ कँक दे। मिथुओ ! तो क्या समझते हो ? पर्वतराज सुमेरु बचा होगा या वे मात भूँग के बराबर कंकड़ ?

अर्थ ! पर्वतराज सुमेरु ही उन मात भूँग के बराबर कंकड़ों से बचा होगा। वे तो इसका' स्थावर भाग नहीं हो सकते।

मिथुओ ! बसे ही रहिमन्त्र ज्ञानी आर्य आचरु का पद दुल्ल बचा है जो क्षीय हो गया—बढ़ गया, जो बचा है वह तो अस्थायी अपरमात्र है। पूर्व के क्षीय हो गये—बढ़ गये उस दुल्ल स्थिति के सामने बढ़ बचा हुआ दुल्ल जो अधिक से अधिक मात ज्यों तक रह सकता है—स्थायी भाग भी नहीं है।

अभिमतमय संयुक्त समाप्त

भिक्षुओ ! ध्रोत्रधातु मनोधातु ।

भिक्षुओ ! इसी तरह, धातुनानात्व के होने से स्पर्शनानात्व उत्पन्न होता है; स्पर्शनानात्व के होने से वेदनानानात्व उत्पन्न होता है । वेदनानानात्व के होने से स्पर्शनानात्व उत्पन्न नहीं होता है, स्पर्शनानात्व के होने से धातुनानात्व नहीं होता है ।

(बाह्य पञ्चक)

§ ६. धातु सुत्त (१३. १. ६)

धातु की विभिन्नता

आवस्ती^{*} जेतवन मे ।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व के विषय में उपदेश करूँगा । उसे सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ, मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व क्या है ? रूपधातु, शब्दधातु, गन्धधातु, रसधातु, स्पर्शधातु और धर्मधातु ।

भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं धातुनानात्व ।

§ ७. सञ्ज्ञा सुत्त (१३. १. ७)

संज्ञा की विभिन्नता

आवस्ती^{*} जेतवन मे ।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व के होने से संज्ञानानात्व उत्पन्न होता है । संज्ञानानात्व के होने से सकल्पनानात्व उत्पन्न होता है । सकल्पनानात्व के होने से छन्दनानात्व उत्पन्न होता है । छन्दनानात्व के होने से हृदय में तरह-तरह की[॥] लगन पैदा होती है । तरह-तरह की लगन पैदा होने से (उसकी पूर्ति के लिये) तरह-तरह के यत्न होते हैं ।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व क्या है ? रूपधातु धर्मधातु ।

भिक्षुओ ! कैसे तरह-तरह की लगन पैदा होने से (उसकी पूर्ति के लिये) तरह-तरह के यत्न होते हैं ?

भिक्षुओ ! रूपधातु के होने से रूपसञ्ज्ञा उत्पन्न होती है । रूपसञ्ज्ञा के होने से रूपसकल्प उत्पन्न होता है । रूप में तरह-तरह की लगन पैदा होने से (उसकी पूर्ति के लिये) तरह-तरह के यत्न होते हैं ?

धर्मधातु के होने से ।

भिक्षुओ ! इसी तरह, धातुनानात्व के होने से संज्ञानानात्व होता है ।

§ ८. नो चेत् सुत्त (१३. १. ८)

धातु की विभिन्नता से संज्ञा की विभिन्नता

आवस्ती जेतवन मे ।

* तरह-तरह के यत्न होने से तरह-तरह की लगन पैदा नहीं होती है । तरह-तरह की लगन

॥ परिलाहनानत्त=किसी चीज के पाने के लिये हृदय में एक लगन ।

मिथुनी ! घातुनामात्र के होने से स्पर्शनामात्र उत्पन्न होता है; वह नहीं कि स्पर्शनामात्र के होने से घातुनामात्र उत्पन्न हो ।

मिथुनी ! घातुनामात्र क्या है ? अमुघातु मनीषातु । मिथुनी ! इसी का कहते हैं घातुनामात्र ।

मिथुनी ! घातुनामात्र के होने से स्पर्शनामात्र कैसे होता है; और वह नहीं कि स्पर्शनामात्र के होने से घातुनामात्र हो ?

मिथुनी ! अमुघातु के होन से अमुसंस्पर्श उत्पन्न होता है । अमुसंस्पर्श के होने से अमुघातु उत्पन्न नहीं होता । । मनीषातु के संस्पर्श होने से मनीसंस्पर्श उत्पन्न होता है; मनीसंस्पर्श के होने से मनीषातु उत्पन्न नहीं होता ।

मिथुनी ! इसी प्रकार, घातुनामात्र के होने से स्पर्शनामात्र उत्पन्न होता है; स्पर्शनामात्र के होने से घातुनामात्र नहीं होता है ।

§ ४ पठम वेदना मुत्त (१३ १ ४)

वेदना की विभिन्नता

भाष्यज्ञी जेतवन मे ।

मिथुनी ! घातुनामात्र के होने से स्पर्शनामात्र उत्पन्न होता है । स्पर्शनामात्र के होने से वेदना नामात्र उत्पन्न होता है ।

मिथुनी ! घातुनामात्र क्या है ? अमुघातु मनीषातु ।

मिथुनी ! घातुनामात्र के होने से स्पर्शनामात्र कैसे उत्पन्न होता है और स्पर्शनामात्र के होने से वेदनामात्र कैसे उत्पन्न होता है ?

मिथुनी ! अमुघातु के होने से अमुसंस्पर्श उत्पन्न होता है । अमुसंस्पर्श के होने से अमुसंस्पर्श वेदना उत्पन्न होती है । । मनीषातु के होने से मनीसंस्पर्श उत्पन्न होता है । मनीसंस्पर्श के होने से मनीसंस्पर्श वेदना उत्पन्न होती है ।

मिथुनी ! इसी तरह घातुनामात्र के होने से स्पर्शनामात्र उत्पन्न होता है । स्पर्शनामात्र के होने से वेदनामात्र उत्पन्न होता है ।

§ ५ दुतिय वेदना मुत्त (१३ १ ५)

वेदना की विभिन्नता

भाष्यज्ञी जेतवन मे ।

मिथुनी ! घातुनामात्र के होने से स्पर्शनामात्र उत्पन्न होता है । स्पर्शनामात्र के होने से वेदना नामात्र उत्पन्न होता है । वेदना-नामात्र के होने से स्पर्शनामात्र नहीं होता है । स्पर्शनामात्र के होने से घातुनामात्र नहीं होता है ।

मिथुनी ! घातुनामात्र क्या है ? अमु " मनीषा " ।

मिथुनी ! घातुनामात्र के होने से स्पर्शनामात्र कैसे उत्पन्न होता है; स्पर्शनामात्र के होने से वेदना-नामात्र उत्पन्न होता है; वेदनानामात्र के होने से स्पर्शनामात्र उत्पन्न नहीं होता; स्पर्शनामात्र के होने से घातुनामात्र नहीं होता है ?

मिथुनी ! अमुघातु के होने से अमुसंस्पर्श उत्पन्न होता है । अमुसंस्पर्श के होने से अमुसंस्पर्श वेदना उत्पन्न होती है । अमुसंस्पर्श वेदना के होने से अमुसंस्पर्श नहीं होता है । अमुसंस्पर्श के होने से अमुघातु उत्पन्न नहीं होता ।

भिक्षुओ ! श्रोत्रधातु मनोधातु" ।

भिक्षुओ ! इसी तरह, धातुनानात्व के होने से स्पर्शनानात्व उत्पन्न होता है, स्पर्शनानात्व के होने से वेदनानानात्व उत्पन्न होता है । वेदनानानात्व के होने से स्पर्शनानात्व उत्पन्न नहीं होता है, स्पर्शनानात्व के होने से धातुनानात्व नहीं होता है ।

(बाह्य पञ्चक)

§ ६. धातु सुत्त (१३. १. ६)

धातु की विभिन्नता

आवस्ती" जेतवन मे ।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व के विषय में उपदेश करूंगा । उसे सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ, मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व क्या है ? रूपधातु, शब्दधातु, गन्धधातु, रसधातु, स्पृष्टव्यधातु और धर्मधातु ।

भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं धातुनानात्व ।

§ ७. सञ्ज्ञा सुत्त (१३. १. ७)

संज्ञा की विभिन्नता

आवस्ती" जेतवन मे ।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व के होने से सञ्ज्ञानानात्व उत्पन्न होता है । सञ्ज्ञानानात्व के होने से सकल्पनानात्व उत्पन्न होता है । सकल्पनानात्व के होने से छन्दनानात्व उत्पन्न होता है । छन्दनानात्व के होने से हृदय में तरह-तरह की लगेन पैदा होती है । तरह-तरह की लगेन पैदा होने से (उसकी पूर्ति के लिये) तरह-तरह के यत्न होते हैं ।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व क्या है ? रूपधातु धर्मधातु ।

भिक्षुओ ! कैसे तरह-तरह की लगेन पैदा होने से (उसकी पूर्ति के लिये) तरह-तरह के यत्न होते हैं ?

भिक्षुओ ! रूपधातु के होने से रूपसंज्ञा उत्पन्न होती है । रूपसंज्ञा के होने से रूपसकल्प उत्पन्न होता है । रूप में तरह-तरह की लगेन पैदा होने से (उसकी पूर्ति के लिये) तरह-तरह के यत्न होते हैं ?

धर्मधातु के होने से ।

भिक्षुओ ! इसी तरह, धातुनानात्व के होने से सञ्ज्ञानानात्व होता है ।

§ ८. नो चेत् सुत्त (१३. १. ८)

धातु की विभिन्नता से संज्ञा की विभिन्नता

आवस्ती" जेतवन मे ।

• तरह-तरह के यत्न होने से तरह-तरह की लगेन पैदा नहीं होती है । तरह-तरह की लगेन

• परिलाहनानत्त=किसी चीज के पाने के लिये हृदय में एक लगेन ।

पैदा होने से छम्बनामात्र उत्पन्न नहीं होता । छम्बनामात्र के होने से संकल्पनामात्र उत्पन्न नहीं होता । संकल्पनामात्र के होने से संज्ञानामात्र नहीं होता । संज्ञानामात्र के होने से भातुनामात्र नहीं होता ।

मिथुनो ! भातुनामात्र क्या है ? रूपबाहु चर्मबाहु ।

मिथुनो ! कैसे भातुनामात्र के होने से संज्ञानामात्र उत्पन्न होता है ? अगर [प्रतिबोधमयस म बह ठीक नहीं होता है] संज्ञानामात्र के होने से भातुनामात्र नहीं होता है ?

मिथुनो ! रूपबाहु के होने से रूप संज्ञा उत्पन्न होती है । रूप में तरह-तरह की कगल पैदा होने से (उसकी पूर्ति के बिना) तरह-तरह के पक्ष होते हैं । तरह-तरह के पक्ष होने से तरह-तरह की कगल पैदा नहीं होती है । संज्ञानामात्र के होने से भातुनामात्र उत्पन्न नहीं होता है ।

सदृशबाहु ; गन्धबाहु ; रसबाहु ; स्पर्शबाहु ; चर्मबाहु ।

मिथुनो ! इसी तरह भातुनामात्र के होने से संज्ञानामात्र उत्पन्न होता है । अगर संज्ञानामात्र के होने से भातुनामात्र नहीं होता है ।

§ ९ पथम फस्त सुच (१३ १ ९)

विभिन्न प्रकार के काम के कारण

आयस्ती जेतवन में ।

मिथुनो ! भातुनामात्र के होने से संज्ञानामात्र उत्पन्न होता है । संज्ञानामात्र के होने से संकल्पनामात्र उत्पन्न होता है । संकल्पनामात्र के होने से स्पर्शनामात्र उत्पन्न होता है । स्पर्शनामात्र के होने से वेदनानामात्र उत्पन्न होता है । वेदनानामात्र के होने से छम्बनामात्र उत्पन्न होता है । छम्बनामात्र के होने से रूप में तरह तरह की कगल पैदा होती है । तरह-तरह की कगल पैदा होने से तरह-तरह के पक्ष होते हैं । तरह तरह के पक्ष होने से तरह-तरह के काम होते हैं ।

मिथुनो ! भातुनामात्र क्या है ? रूपबाहु चर्मबाहु ।

मिथुनो ! कैसे तरह-तरह की कगल पैदा होने से तरह-तरह के पक्ष होते हैं ?

मिथुनो ! रूपबाहु के होने से रूपसंज्ञा उत्पन्न होती है । रूपसंज्ञा के होने से रूपसंकल्प उत्पन्न होता है । रूपसंकल्प के होने से रूपसंस्पर्श उत्पन्न होता है । रूपसंस्पर्श के होने से रूपसंवेदना उत्पन्न होती है । रूपसंवेदना के होने से रूपसंछम्ब उत्पन्न होता है । रूपसंछम्ब के होने से रूप में तरह तरह की कगल पैदा होती है । रूप में तरह-तरह की कगल पैदा होने से तरह-तरह के पक्ष होते हैं । रूप में तरह तरह के पक्ष होने से रूप के तरह-तरह के काम होते हैं ।

शब्द बाहु चर्मबाहु ।

मिथुनो ! इसी तरह भातुनामात्र के होने से संज्ञानामात्र उत्पन्न होता है । तरह-तरह के पक्ष होने से तरह-तरह के काम होते हैं ।

§ १० दुविय फस्त सुच (१३ १ १०)

भातु की विभिन्नता से ही संज्ञा की विभिन्नता

आयस्ती जेतवन में ।

मिथुनो ! भातुनामात्र के होने से संज्ञानामात्र उत्पन्न होता है । संज्ञानामात्र के होने से संकल्पनामात्र उत्पन्न होता है । स्पर्श । वेदना । छम्ब । रूप । कगल । पक्ष । काम । तरह-तरह के काम होने से तरह-तरह के पक्ष नहीं होते । [इसी तरह प्रतिबोधमयस से] । संज्ञानामात्र के होने से भातुनामात्र उत्पन्न नहीं होता ।

मिधुओ । धानुनानात्य क्या है ? रूप...धर्म ...।

मिधुओ । कैसे धानुनानात्य के होने से संज्ञानानात्य उत्पन्न होता है । .। संज्ञानानात्य के होने से धानुनानात्य उत्पन्न नहीं होता ?

मिधुओ । रूपधानु के होने से रूपमज्ञा उत्पन्न होती है ।

शब्दधानु .धर्मधानु ...।

मिधुओ । इसी तरह, धानुनानात्य के होने से संज्ञानानात्य उत्पन्न होता है ।..। संज्ञानानात्य के होने से धानुनानात्य उत्पन्न नहीं होता ।

नानात्ववर्ग समाप्त ।

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

§ १ सत्तिमं सुत्त (१३ २ १)

साल धातुर्वे

धावस्ती...अंत्यन में ।

मिथुभो ! धातु यह सात हैं ।

कौन स सात ? (१) आभाधातु (२) हुमधातु, (३) आकाशावस्थापतन धातु, (४) विज्ञानावस्थापतन धातु, (५) आकिञ्चन्यापतन धातु, (६) नैवसंज्ञानासंज्ञापतन धातु (७) संज्ञाव्यतिरोध धातु ।

मिथुभो ! यही सात धातु हैं ।

ऐसा कहने पर एक मिथु भगवान् स बोला—भग्ये ! किम प्रत्यय स यह सात धातु जाने जाते हैं ?

मिथु ! जो आभाधातु है वह जगत्कार के प्रत्यय से जाना जाता है । जो हुमधातु है वह अशुभ के प्रत्यय से जाना जाता है । जो आकाशावस्थापतन धातु है वह रूप के प्रत्यय से जाना जाता है । जो विज्ञानावस्थापतन धातु है वह आकाशावस्थापतन के प्रत्यय से जाना जाता है । जो आकिञ्चन्यापतन धातु है वह विज्ञानावस्थापतन के प्रत्यय से जाना जाता है । जो नैवसंज्ञानासंज्ञापतन धातु है वह आकिञ्चन्यापतन के प्रत्यय से जाना जाता है । जो संज्ञाव्यतिरोध धातु है वह विरोध के प्रत्यय से जाना जाता है ।

भग्ये ! इन सात धातुओं की प्राप्ति कैसे होती है ?

मिथु ! जो आभाधातु, हुमधातु, आकाशावस्थापतन-धातु, विज्ञानावस्थापतन धातु, आकिञ्चन्यापतन-धातु हैं उनकी प्राप्ति सत्ता से होती है ।

मिथु ! जो नैवसंज्ञानासंज्ञापतन धातु है वह संस्कारों के विप्लव अवसिद्ध हो जाने से प्राप्त होता है ।

मिथु ! जो संज्ञाव्यतिरोध धातु है वह विरोध के हो जाने से प्राप्त होता है ।

§ २ सनिदान सुत्त (१३ २ २)

कारण से ही कार्य

धावस्ती...अंत्यन में ।

मिथुभो ! कमचित्तर्क किसी मिथुन से ही होता है, बिना मिथुन के नहीं । व्यापारवितर्क किसी मिथुन से ही होता है बिना मिथुन के नहीं । विहिंसावितर्क किसी मिथुन से ही होता है, बिना मिथुन के नहीं ।

मिथुभो ! कैसे ?

भिक्षुओ ! कामधातु के प्रत्यय से कामसज्ञा उत्पन्न होती है । कामसज्ञा के प्रत्यय से कामसंकल्प उत्पन्न होता है । कामसंकल्प के प्रत्यय से कामछन्द उत्पन्न होता है । कामछन्द के प्रत्यय से काम की ओर एक लगन पैदा होती है । काम की ओर एक लगन पैदा होने के प्रत्यय से काम की प्राप्ति के लिये यत्न होता है । भिक्षुओ ! काम की प्राप्ति के लिये यत्न करते रह अविद्वान् पृथक् जन तीन जगह मिथ्या प्रतिपन्न होता है—शरीर से, वचन से और मन से ।

भिक्षुओ ! व्यापादधातु के प्रत्यय से व्यापादसज्ञा उत्पन्न होती है ।

भिक्षुओ ! विहिंसाधातु के प्रत्यय से विहिंसासज्ञा उत्पन्न होती है ।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पुरुष बलती हुई एक लुकारी को सूखी घासा की ढेर पर फेंक दे । उसे हाथ या पैर से शीघ्र ही पीट कर बुझा न दे । भिक्षुओ ! इस प्रकार, घास लकड़ी में रहने वाले प्राणी बड़ी विपत्ति में पड़ जायें, मर जायें ।

भिक्षुओ ! वैसे ही, जो श्रमण या ब्राह्मण पैदा बुरी-बुरी सज्ञा को शीघ्र ही छोड़ नहीं देता, दूर नहीं कर देता • बिल्कुल उड़ा नहीं देता है, वह इसी जन्म में दुःखपूर्वक विहार करता है, विधातपूर्वक, उपायासपूर्वक, परिलाहपूर्वक । शरीर छोड़ मरने के बाद उसे बड़ी दुर्गति प्राप्त होती है ।

भिक्षुओ ! निदान से ही नैऋत्म्य-वितर्क (= त्याग वितर्क) उत्पन्न होता है, बिना निदान के नहीं । निदान से ही अध्यापादवितर्क उत्पन्न होता है, बिना निदान के नहीं । निदान से ही अविहिंसा-वितर्क उत्पन्न होता है, बिना निदान के नहीं ।

भिक्षुओ ! यह कैसे ?

भिक्षुओ ! नैऋत्म्यधातु (= ससार का त्याग) के प्रत्यय से नैऋत्म्यसज्ञा उत्पन्न होती है । • नैऋत्म्य-संकल्प । नैऋत्म्य-छन्द • । लगन । यत्न । भिक्षुओ ! नैऋत्म्य का यत्न करते हुये विद्वान् आर्यश्रावक तीन जगह सम्यक् प्रतिपन्न होता है—शरीर से, वचन से, मन से ।

भिक्षुओ ! अव्यापादधातु , अविहिंसाधातु ।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पुरुष बलती हुई एक लुकारी को सूखी घासों की ढेर पर फेंक दे । उसे हाथ या पैर से शीघ्र ही पीटकर बुझा दे । भिक्षुओ ! इस प्रकार, घास लकड़ी में रहनेवाले प्राणी विपत्ति में न पड़ जायें, न मर जायें ।

भिक्षुओ ! वैसे ही जो श्रमण या ब्राह्मण पैदा हुई बुरी संज्ञा को शीघ्र ही छोड़ देता है=दूर कर देता है=बिल्कुल उड़ा देता है, वह इसी जन्म में सुखपूर्वक विहार करता है, विधातरहित, उपायासरहित, परिलाहरहित । शरीर छोड़ मरने के बाद उसकी अच्छी गति होती है ।

§ ३. गिञ्जकावसथ सुत्त (१३ २ ३)

धातु के कारण ही संज्ञा, दृष्टि तथा वितर्क की उत्पत्ति

एक समय भगवान् जातिकों के साथ गिञ्जकावसथ में विहार करते थे ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! धातु के प्रत्यय से सज्ञा उत्पन्न होती है, वितर्क उत्पन्न होता है ।

ऐसा कहने पर, आयुष्मान् श्रद्धालु कात्यायन भगवान् से बोले —भन्ते ! बुद्धत्व न प्राप्त किये हुये लोगों में जो दृष्टि होती है वह कैसे जानी जाती है ?

कात्यायन ! यह जो अविद्या-धातु है सो एक बड़ी धातु है ।

कात्यायन ! हीन धातु के प्रत्यय से हीन सज्ञा, हीन दृष्टि, हीन वितर्क, हीन चेतना, हीन अभिलाषा, हीन प्रणिधि, हीन पुरुष, हीन वचन उत्पन्न होते हैं । वह हीन बातें करता है, हीन उपदेश

छेड़ें से बनी हुईं बाला—अद्वयता ।

देता है हीन प्रज्ञापन करता है हीन पक्ष की स्थापना करता है हीन विवरण देता है, हीन विभाग करता है हीन समझता है। उसकी उत्पत्ति भी हीन होती है—ऐसा मैं कहता हूँ।

कारणान्न ! मध्यम धातु के प्रत्यय क मध्यम संज्ञा । उसकी उत्पत्ति भी मध्यम होती है—ऐसा मैं कहता हूँ।

कल्याणन ! उत्तम धातु के प्रत्यय स उत्तम संज्ञा । उसकी उत्पत्ति भी उत्तम होती है—ऐसा मैं कहता हूँ।

§ ४ हीनाधिमुत्ति सुच (१३ २ ४)

धातुओं के अनुसार ही मेढज्जोळ का होना

धायस्ती जेतवन में।

मिथुभो ! धातु से सब सिक्कसिका में चकते और मिचते हैं। हीन प्रवृत्तिवाले सब हीन प्रवृत्तिवों के साथ ही सिक्कसिका में चकते और मिचते हैं। कल्याण (= अच्छी) प्रवृत्तिवाले सब कल्याण प्रवृत्तिवों के साथ ही सिक्कसिका में चकते और मिचते हैं।

मिथुभो ! अतीतकाल में भी धातु ही से सब सिक्कसिका में चकते रहे और मिचते रहे।

मिथुभो ! अमागतकाल में भी ।

मिथुभो ! इस समय में भी ।

§ ५ चङ्गम सुच (१३ २ ५)

धातु के अनुसार ही सबों में मेढज्जोळ का होना

एक समय भगवान् राजगृह में गुरुवृत्त पर्वत पर बिहार करते थे।

उस समय आनुष्मान् सारिपुत्र कुछ मिथुओं के साथ भगवान् से कुछ ही दूर पर चक्रमण कर रहे थे।

आनुष्मान् महासमीपस्यायन । महाकाश्यप । अनुद्व्य । पुण्ण मस्तामिपुत्र । उपासि । आनन्द । देवदत्त भी कुछ मिथुओं के साथ भगवान् से कुछ ही दूर पर चक्रमण कर रहे थे।

तब भगवान् ने मिथुओं को आमन्त्रित किया:—

मिथुभो ! तुम सारिपुत्रको कुछ मिथुओं के साथ चक्रमण करते देखते हो न ?

हाँ मन्ते।

मिथुभो ! वे सभी मिथु बड़े पञ्चाबाके हैं।

मिथुभो ! तुम मीत्रक्याण को कुछ मिथुओं के साथ चक्रमण करते देखते हो न ?

हाँ मन्ते।

मिथुभो ! वे सभी मिथु बड़े कदिकाके हैं।

मिथुभो ! तुम वाश्यप को कुछ मिथुओं के साथ चक्रमण करते देखते हो न ?

हाँ मन्ते।

मिथुभो ! वे सभी मिथु पुताइ चारण वरमेयाके हैं।

मिथुभो ! तुम अनुद्व्य को कुछ मिथुओं के साथ चक्रमण करते देखते हो न ?

हाँ मन्ते।

मिथुभो ! वे सभी मिथु दिव्य आनुपास हैं।

भिक्षुओ ! तुम पुण्ण मन्तानिपुत्र को कुछ भिक्षुओं के साथ चक्रमण करते देखते हो न ?
हाँ भन्ते !

भिक्षुओ ! वे सभी भिक्षु बड़े धर्मकथिक हैं ।

भिक्षुओ ! तुम उपालि को कुछ भिक्षुओं के साथ चक्रमण करते देखते हो न ?
हाँ भन्ते !

भिक्षुओ ! वे सभी भिक्षु बड़े विनयधर हैं ।

भिक्षुओ ! तुम आनन्द को कुछ भिक्षुओं के साथ चक्रमण करते देखते हो न ?
हाँ भन्ते !

भिक्षुओ ! वे सभी भिक्षु बहुश्रुत हैं ।

भिक्षुओ ! तुम देवदत्त को कुछ भिक्षुओं के साथ चक्रमण करते देखते हो न ?
हाँ भन्ते !

भिक्षुओ ! वे सभी भिक्षु पापेच्छ हैं ।

भिक्षुओ ! धातु से ही सत्व सिलसिला में चलते और मिलते हैं । हीन प्रवृत्तिवाले सत्व हीन प्रवृत्तियों के साथ ही सिलसिला में चलते और मिलते हैं । कल्याण प्रवृत्तिवाले सत्व कल्याण प्रवृत्तियों के साथ ही सिलसिला में चलते और मिलते हैं ।

भिक्षुओ ! अतीत में भी , अनागत में भी , इस समय भी ।

§ ६. सगाथा सुत्त (१३. २. ६)

धातु के अनुसार ही मेलजोल का होना
श्रावस्ती • जेतवन में ।

क

भिक्षुओ ! धातु से ही सत्व सिलसिला में चलते और मिलते हैं । हीन प्रवृत्तिवाले सत्व हीन प्रवृत्तियों के साथ ही सिलसिला में चलते और मिलते हैं ।

भिक्षुओ ! अतीत में भी , अनागत में भी , इस समय भी ।

भिक्षुओ ! जैसे, मैला मैले के सिलसिले में चला आता और मिल जाता है । मूत्र मूत्र के । यूक यूक के । पीप पीप के । लहू लहू के । भिक्षुओ ! वैसे ही, हीनप्रवृत्तिवाले सत्व हीन-प्रवृत्तियों के साथ ही सिलसिला में चलते और मिलते हैं ।

भिक्षुओ ! अतीत में भी , अनागत में भी , इस समय भी ।

भिक्षुओ ! धातु से ही सत्व सिलसिले में आते और मिलते हैं । कल्याण प्रवृत्तिवाले सत्व कल्याण प्रवृत्तियों के साथ ही सिलसिले में आते और मिलते हैं ।

भिक्षुओ ! जैसे, दूध दूधके साथ, तेल तेल के साथ, घी घी के साथ, मधु मधु के साथ, तथा गुह गुह के साथ सिलसिले में आता है और मिलता है ।

• भिक्षुओ ! अतीत , अनागत , इस समय ।

भगवान् यह बोले । इतना कहकर बुद्ध और भी बोले—

ससर्ग से पैदा हुआ राग का जगल,

असर्ग से काट दिया जाता है,

योद्धी सी लड़की के ऊपर चढ़ कर,

जैसे महासमुद्र में डूब जाता है,

जैसे ही निष्कम्मे भावनी के साथ रह कर
 साधु पुरुष भी ब्रह्म जाता है ॥
 इसलिये उसका वर्जन कर देना चाहिये,
 जो निष्कम्मा भीर भीर-रहित पुरुष है ।
 एकान्त में रहने वाले जो भार्यपुरुष है,
 प्रहिरात्म और भ्राम में रत रहने वाले,
 जिनको सर्वत्र उत्साह बना रहता है
 उन परिवर्तों का सहवत्स करे ॥

§ ७ अस्तद्ध सुच (१३ २ ७)

धातु के अनुसार ही मेळजोल का होना
 भावस्ती जेतघन में ।

क

मिथुनी ! धातु स ही । भद्रारहित पुरुष भद्रारहितों के साथ निर्द्वज निर्द्वजों के साथ
 बेसमस्त बेसमस्तों के साथ मूर्ख मूर्खों के साथ निष्कम्मा निष्कम्माओं के साथ मूढ़ स्पृतिवाले मूढ़ स्पृतिवाले
 के साथ तथा दुष्पक्ष दुष्पक्षों के साथ निष्कसिक्के में जाते और मेक जाते हैं ।
 मिथुनी ! भतीतकाक में , अवापतकाक में , इस समय ।

ख

मिथुनी ! धातु स ही । भद्रातु पुरुष भद्रातुओं के साथ [हीक उसका उदय] प्रज्ञावाद्
 प्रज्ञावानों के साथ ।

§ ८ अभद्रा मूलक पञ्च (१३ २ ८)

§ ९ निर्लज्ज मूलक चार (१३ २ ९)

§ १० बेसमस्त मूलक तीन (१३ २ १०)

§ ११ अल्पभक्त (= मूर्ख) होने से दो (१३ २ ११)

§ १२ निष्कम्मा (१३ २ १२)

[इन सूत्रों में ऊपर की कही गई बातें ही तोष-मरीचकर कही गई हैं]

द्वितीय धर्म समाप्त

तीसरा भाग

कर्मपथ चर्ग

§ १. असमाहित सुत्त (१३. ३. १)

असमाहित का असमाहितों से मेल होना

आवस्ती जेतवन में ।

भिक्षुओ ! धातु से सत्त्व * । अद्वारहित अद्वारहितों के साथ, निर्लज्ज निर्लज्जों के साथ, वेसमझ वेसमझों के साथ, असमाहित असमाहितों के साथ, दुप्पज्ज दुप्पज्जों के साथ मिलमिले में आते और मिलते हैं ।

* [उलटा] । प्रजावान् प्रजावानों के साथ ।

§ २. दुस्सील सुत्त (१३. ३. २)

दुःशील का दुःशीलों से मेल होना

आवस्ती जेतवन में ।

भिक्षुओ ! धातु में सत्त्व * । अद्वारहित , निर्लज्ज , वेसमझ , दुःशील दुःशीलों के साथ, दुप्पज्ज ।

[उलटा] । * शीलवान् शीलवानों के साथ ।

§ ३. पञ्चसिक्खापद सुत्त (१३. ३. ३)

बुरे बुरों का साथ करते तथा अच्छे अच्छों का

आवस्ती जेतवन में * ।

भिक्षुओ ! धातु से सत्त्व । हिंसक पुरुष हिंसकों के साथ, चोर चोरों के साथ, छिनाल छिनालों के साथ, झूठे झूठों के साथ, नशाखोर नशाखोरों के साथ सिलसिले में आते और मिलते हैं ।

* [ठीक इसका उलटा ही] । नशा से परहेज करनेवाले पुरुष नशा से परहेज करनेवाले पुरुषों के साथ सिलसिले में आते और मिलते हैं ।

§ ४. सत्तकम्मपथ सुत्त (१३. ३. ४)

सात कर्मपथ वालों में मेलजोल का होना

आवस्ती जेतवन में ।

भिक्षुओ ! धातु से सत्त्व । हिंसक पुरुष , चोर , छिनाल , झूठे , जुगलखोर जुगलखोरों के साथ, गप्पी गप्पियों के साथ सिलसिले में आते और मिलते हैं ।

। गप्प से परहेज करनेवाले गप्प से परहेज करनेवालों के साथ * ।

§ ५ दसकर्मपथ सूच (१३ ३ ५)

दस कर्मपथवालों में मेळजोळ का होना

भावस्ती जेतवन में ।

मिमुमा ! घाटु से सत्त्व । हिसक चोर किनाक हडे गुराळखोर झले बचन
कहनेवाले गप्पी बोसी व्यापकचित मिप्पा छटि ।

§ ६ अष्टाङ्गिक सूच (१३ ३ ६)

अष्टाङ्गिकों में मेळजोळ का होना

भावस्ती जेतवन में ।

मिमुमा ! घाटु स सत्त्व । मिप्पाछटिवाळे । मिप्पा संकल्पवाक मिप्पा बचनवाळे ,
मिप्पा कर्मान्तवाळे मिप्पा जीविकावाळे , मिप्पा व्याघामवाळे मिप्पा स्मृतिवाळे मिप्पा
समाधिवाळे पुरण मिप्पा समाधिवाळे पुरुषों के साथ सिद्धसिद्धे में जाते भीर मिळते ह ।

[उक्त्य] । सम्पद समाधिवाळे पुरुष सम्पद् समाधिवाळे पुरुषों के साथ ।

§ ७ दसङ्ग सूच (१३ ३ ७)

दशाङ्गों में मेळजोळ का होना

भावस्ती जेतवन में ।

मिमुमा ! घाटु स सत्त्व । [ऊपर के भांड में दो और जोष दिय गये ह] । मिप्पा ज्ञान
वाले मिप्पा विमुक्तिवाळे ।

[उक्त्य] ।

कर्मपथ वर्ग समाप्त

—

चौथा भाग

चतुर्थ वर्ग

§ १. चतु सुत्त (१३ ४ १)

चार धातुये

आवस्ती जेतवन मे ।

भिक्षुओ ! धातु चार है । कौन से चार ? (१) पृथ्वीधातु, (२) आपो धातु, (३) तेजो धातु और (४) वायु धातु ।

भिक्षुओ ! यही चार धातु हैं ।

§ २. पुण्य सुत्त (१३ ४. २)

पूर्वज्ञान, धातुओं के आस्वाद और दुष्परिणाम

आवस्ती ।

भिक्षुओ ! बुद्धत्व प्राप्त करने के पहले, बोधिसत्त्व रहते ही, मेरे मन में यह हुआ—पृथ्वीधातु का आस्वाद क्या है, आदिनव (= द्रोण) क्या है, और नि सरण (= मुक्ति) क्या है ?

भिक्षुओ ! तब, मेरे मन में यह हुआ—पृथ्वीधातु से जो सुख और चैन होता है वह पृथ्वीधातु का आस्वाद है । जो पृथ्वी में अनित्य, दुःख और विपरिणाम धर्म हैं वह पृथ्वीधातु का आदिनव है । जो पृथ्वीधातु के प्रति छन्दराग को दबाना और हटा देना है यही पृथ्वीधातु का नि सरण (= मुक्ति) है ।

जो आपोधातु के प्रत्यय से , जो तेजोधातु के प्रत्यय से , जो वायुधातु के प्रत्यय से . ।

भिक्षुओ ! जबतक इन पृथ्वीधातु के आस्वाद, आदिनव और नि सरण का यथाभूत ज्ञान मुझे प्राप्त नहीं हुआ था, तब तक मैंने—देवताओं के साथ, मार के साथ, ब्रह्मा के साथ—इस लोक में देवता, मनुष्य, ब्राह्मण और श्रमणों के बीच ऐसा दावा नहीं किया कि मुझे अनुत्तर सम्यक् समुद्धत्व प्राप्त हुआ है ।

भिक्षुओ ! जब, इनका*** ज्ञान प्राप्त हो गया, तभी मैंने ऐसा दावा किया ** ।

मुझे ऐसा ज्ञान = दर्शन उत्पन्न हो गया कि अवश्य ही मेरे चित्त की विमुक्ति हो गई । यही अन्तिम जन्म है, और अब पुनर्जन्म होने का नहीं ।

§ ३. अचरि सुत्त (१३ ४ ३)

धातुओं के आस्वादन में विचरण करना

आवस्ती . ।

भिक्षुओ ! पृथ्वीधातु में आस्वाद ढँढ़ते हुये मैंने विचरण किया । पृथ्वीधातु का जो आस्वाद है

वहाँ तक मैं पहुँच गया। पूरबी धातु का जहाँ तक आस्वाद है मैंने प्रज्ञा से वन किया। मिश्रभा ! पूरबी धातु में आदिनव ।

मिश्रभा ! पूरबीधातु का निःसरण जो हुईत हुये मैंने विवरण किया। पूरबीधातु का जो निःसरण है वहाँ तक मैं पहुँच गया। जिससे पूरबीधातु का निःसरण होता है मैंने प्रज्ञा से वन किया।

“ [इसी तरह आपोधातु तजोधातु और वायुधातु के साथ भी]

मिश्रभा ! जबतक इन चार धातुओं के आस्वाद आदिनव और निःसरण का यथाभूत ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ था, तब तक मैंने ऐसा दावा नहीं किया कि मुझे अनुत्तर सम्पक् समुत्तरण प्राप्त हुआ है।

मिश्रभा ! अब इदम ज्ञान प्राप्त हो गया तभी मैंने ऐसा दावा किया ।

सुरी ऐसा ज्ञान=दर्शन उत्पन्न हो गया कि अबश्य ही मेरे चित्त की विमुक्ति हो गई। यही अभिमत अगम है और अब पुनरागम होने का नहीं।

§ ४ नो चेदं मुत्त (१३ ४ २)

धातुभा क यथार्थ ज्ञान से ही मुक्ति

आपत्ती ।

मिश्रभा ! यदि पूरबीधातु में आस्वाद नहीं होता तो प्राणी पूरबीधातु में रक्त नहीं करते। मिश्रभा ! क्योंकि पूरबीधातु में आस्वाद है इसीलिए प्राणी पूरबीधातु में रक्त होते हैं।

मिश्रभा ! यदि पूरबीधातु में आदिनव नहीं होते तो प्राणी पूरबीधातु से उचरते नहीं। मिश्रभा ! क्योंकि पूरबीधातु में आदिनव है इसीलिए प्राणी पूरबीधातु से उचर कर लेते हैं।

मिश्रभा ! यदि पूरबीधातु स निःसरण (= मुक्ति) नहीं होता तो प्राणी पूरबीधातु स मुक्त नहीं होते। मिश्रभा ! क्योंकि पूरबीधातु स निःसरण होता है इसीलिए प्राणी पूरबीधातु से मुक्त हो जाते हैं।

[इसी तरह आपोधातु तजोधातु और वायुधातु के साथ भी]

मिश्रभा ! जब तक इन चार धातुओं के आस्वाद, आदिनव और निःसरण का ज्ञान यथाभूत नहीं जान लेते हैं तब तक वे “इम लोक स नहीं छोड़ते हैं” ।

मिश्रभा ! जब ज्ञान इनकी यथाभूत जान लेते हैं तब वे इम लोक स छोड़ जाते हैं तथा विमुक्त चित्त स विहार करने हैं।

§ ५ दुक्ख मुत्त (१३ ४ ३)

धातुओं क यथार्थ ज्ञान स मुक्ति

आपत्ती ।

मिश्रभा ! यदि पूरबीधातु में कवच हुआ ही दुःख होता और सुख स विमुक्त शब्द, तो प्राणी पूरबीधातु में रक्त नहीं होते। मिश्रभा ! क्योंकि पूरबीधातु में दुःख है दुःख का अभाव है इसीलिए प्राणी पूरबीधातु में रक्त होते हैं।

“ [इसी तरह आपोधातु, तजोधातु और वायुधातु के साथ भी]

मिश्रभा ! यदि पूरबीधातु में केवल सुख ही हुआ होता और दुःख में विमुक्त शब्द तो पूरबीधातु में विरक्त नहीं होते। मिश्रभा ! क्योंकि पूरबीधातु में दुःख है दुःख का अभाव है इसीलिए प्राणी पूरबीधातु में विरक्त होते हैं।

“ [इसी तरह आपोधातु, तजोधातु और वायुधातु के साथ भी]

§ ६. अभिनन्दन सुत्त (१३. ४. ६)

धातुओं की विरक्ति से ही दुःख से मुक्ति

श्रावस्ती ।

क

भिक्षुओ ! जो पृथ्वीधातु में आनन्द उठाता है वह दुःख का स्वागत करता है । जो दुःख का स्वागत करता है । वह दुःख से मुक्त नहीं हुआ है—ऐसा मैं कहता हूँ ।

“आपोधातु”, तेजोधातु”, वायुधातु ।

ख

भिक्षुओ ! जो पृथ्वीधातु से विरक्त रहता है वह दुःख का स्वागत नहीं करना । जो दुःख का स्वागत नहीं करता है, वह दुःख से विमुक्त हो गया—ऐसा मैं कहता हूँ ।

§ ७. उप्पाद सुत्त (१३. ४. ७)

धातु-निरोध से ही दुःख-निरोध

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! जो पृथ्वीधातु का होना, रहना और लय हो जाना है (= उत्पाद, स्थिति, अभिनिर्वृति), वह दुःख ही का प्रादुर्भाव है, रोग तथा जरामरण का ही होना और रहना है ।

आपोधातु , तेजोधातु , वायुधातु ।

भिक्षुओ ! जो पृथ्वीधातु का निरोध=व्युपशम=अस्त हो जाना है, वह दुःख का ही निरोध है, रोग तथा जरामरण का ही व्युपशम और अस्त हो जाना है ।

§ ८. पठम समणब्राह्मण सुत्त (१३. ४. ८)

चार धातुयें

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! धातु चार हैं । कौन से चार ? पृथ्वीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायुधातु ।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण इन चार भूतों के आस्वाद, आदिनव और नि सरण को यथाभूत नहीं जानते हैं, न तो उन श्रमणों में श्रामण्य है और न ब्राह्मणों में ब्राह्मण्य । वे आयुष्मान् श्रमण या ब्राह्मण के परमार्थ को इसी जन्म में स्वयं जान साक्षात् कर और प्राप्त कर विहार नहीं करते हैं ।

भिक्षुओ ! जो यथाभूत जानते हैं वे प्राप्त कर विहार करते हैं ।

§ ९. दुतिय समणब्राह्मण सुत्त (१३. ४. ९)

चार धातुयें

श्रावस्ती ।

। जो श्रमण या ब्राह्मण इन चार धातुओं के समुदय, अस्तगम, आम्वाद, आदिनव, नि सरण को यथाभूत नहीं जानते हैं [ऊपर के ऐसा] ।

§ १० तसिय समणमाद्वण सुत्त (१३ & १०)

चार धामुये

आयस्ती ।

सिद्धिभो ! जो अमण या माद्वण पूम्बीधातु के समुदाय को नहीं जानते हैं ; पूम्बीधातु के विरोध को नहीं जानते हैं ; पूम्बीधातु की विरोधगामिनी प्रतिपदा को नहीं जानते हैं ।

अपोधातु ; सेवोधातु ; वायुधातु ।

सिद्धिभी ! वो जानते हैं ।

चतुर्थ वर्ग समाप्त

धातु-संयुक्त समाप्त

तीसरा परिच्छेद

१४. अनयतग्न-संगुत्त

प्रथम वर्ग

§ १. तिणकट्ट सुत्त (१४. १. १)

संसार के प्रारम्भ का पता नहीं, घास लकड़ी की उपमा

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे ।

वहाँ, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—हे भिक्षुओ !

“भदन्त” कहकर भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—इस संसार का प्रारम्भ (= आदि) निर्धारित नहीं किया जा सकता है ।
अविद्या में पड़े, तृष्णा के बन्धन से बँधे, चलते-फिरते नन्दों की पूर्वकोटि जानी नहीं जाती ।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पुरुष सारे जम्बूद्वीप के घान, लकड़ी, ढाली और पत्ते को तोड़ कर एक जगह जमा कर दे, और चार-चार अगुली भर के टुकड़े करके फेंकता जाय—यह मेरी माता हुई, यह मेरी माता की माता हुई—यों यह माता का सिलसिला समाप्त नहीं होगा, किन्तु वह सारे जम्बूद्वीप के घान, लकड़ी, ढाली और पत्ते समाप्त हो जायेंगे ।

तो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि, इस संसार का प्रारम्भ निर्धारित नहीं किया जा सकता है ।
अविद्या में पड़े सत्त्वों की पूर्वकोटि जानी नहीं जाती ।

भिक्षुओ ! चिरकाल से दुःख, पीड़ा और अनर्थ हो रहे हैं, श्मशान भरता जा रहा है ।

भिक्षुओ ! अतः तुम्हें सभी सत्कारों से विरक्त हो जाना चाहिये, राग नहीं करना चाहिये, विमुक्त हो जाना चाहिये ।

§ २. पठवी सुत्त (१४. १. २)

संसार के प्रारम्भ का पता नहीं, पृथ्वी की उपमा

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! इस संसार का प्रारम्भ ।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पुरुष सारी महापृथ्वी को घेर के घरावर करके फेंकता जाय—यह मेरा पिता, यह मेरे पिता का पिता—तो उसके पिता के पिता का सिलसिला समाप्त नहीं होगा, महापृथ्वी समाप्त हो जायगी ।

“[ऊपर के ऐसा] ।

§ ३. अस्सु सुत्त (१४. १. ३)

संसार के प्रारम्भ का पता नहीं, आँसू की उपमा

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! इस संसार का प्रारम्भ ।

मिथुना ! क्या समझते हो जो चिरकास से जनमत मरत अभिय क संबंध और प्रिय क विर्वांग से रोते हुये कोठों क भस्म अधिक गिरे हैं वह अधिक हैं या चारों महासमुद्र क जल ?

मन्ते ! मगवान के पठाये धर्म का पैसा हम जानते हैं उसमे ता पदी पना चलता है कि जो भस्म गिरे हैं वही चारों महासमुद्र के जलम अधिक हैं ।

मच है मिथुनो मच है ! तुमने मरे पठाये धम को हीक स जान लिया है ।

मिथुनो ! चिरकास से तुम माता की गृधु पुत्र की गृधु पुत्री की गृधु परिवार क भर्त्स भीष की हानि और रोग के दुःख का अनुभव करते आ रह हो जो भस्म गिरे हैं वही अधिक हैं ।

तो क्यों ? मिथुनो ! इस संसार का प्रारम्भ ।

मिथुनो ! सतः तुम्हें सभी संस्कारों मे पिराज हो जाना चाहिये, राग नहीं करना चाहिये । विमुक्त हो जाना चाहिये ।

§ ४ खीर सुत्त (१४ १ ४)

संसार क प्रारम्भ का पता सर्वो दूध की उपमा

मिथुनो ! इस संसार का प्रारम्भ ।

मिथुनो ! तुम क्या समझते हो जो चिरकास से जनमत मरत रह माता का दूध पीया गया है वह अधिक है या चारों महासमुद्र का जल ?

मन्ते ! मगवान के पठाये धर्म को जसा हम जानते हैं जो माता का दूध पीया गया है वही चारों महासमुद्र के जल से अधिक है ।

मच है मिथुनो ! [ऊपर के पैसा]

§ ५ पञ्च सुत्त (१४ १ ५)

कल्प की वीर्यता

भावस्थी ।

तब कोई मिथु वहाँ मगवान् ने वहाँ जाया थीर मगवान् का अनिवादन कर एक और बैठ गया ।

एक और बैठ वह मिथु मगवान् से बोला—मन्ते एक कल्प कितना बड़ा होता है ?

मिथु ! कल्प बहुत बड़ा होता है । उसकी गिनती नहीं की जा सकती है कि इतने वर्ष या इतने ही वर्ष का इतने हजार वर्ष का इतने लाख वर्ष ।

मन्ते ! उपमा करके कुछ समझा जा सकता है ?

मगवान् बोले—उपमा करके हों कुछ समझा जा सकता है । मिथु ! जैसे एक बोजब कम्हा एक बोजब बीका थीर एक बोजब लैका एक महात् पर्वत हो—किन्तु क डोस जिसमें कोई बिछ भी न हो । उसे कोई पुरुष सी-सी वर्ष के बाद काशी के रेखम से एक-एक बार पोंछे । मिथुनो ! इस प्रकार वह पर्वत सीध ही समाप्त हो जायगा किन्तु एक कल्प भी वही पुराने पायागा ।

मिथु ! कल्प ऐसा हीन होता है । ऐसे कल्पों कल्प भीत जुड़े ।

तो क्यों ? क्योंकि संसार का प्रारम्भ ।

§ ६. सासप सुत्त (१४. १. ६)

कल्प की दीर्घता

श्रावस्ती ।

एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला—भन्ते ! कल्प कितना बड़ा होता है ?

• भगवान् बोले—हाँ, उपमा की जा सकती है । भिक्षु ! जैसे, लोहे से घिरा एक नगर हो—योजन भर लम्बा, योजन भर चौड़ा, योजन भर ऊँचा—जो थोप-थोप कर सरसों से भर दिया गया हो । कोई पुरुष उससे एक-एक सौ वर्ष के बाद एक-एक सरसों निकाल ले । भिक्षु ! तो, इस प्रकार वह सरसों की ढेर शीघ्र ही समाप्त हो जायगी किन्तु एक कल्प नहीं पुराने पायगा ।

[ऊपर के ऐसा] ।

§ ६. सावक सुत्त (१४. १. ७)

बीते हुए कल्प अगण्य है

श्रावस्ती ।

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ वह भिक्षु भगवान् से बोले—भन्ते ! अभी तक कितने कल्प बीत चुके हैं ?

• भन्ते ! क्या उपमा करके कुछ समझा जा सकता है ?

भगवान् बोले—हाँ, उपमा की जा सकती है । भिक्षुओ ! सौ वर्षों की आयुवाले चार श्रावक हों । वे प्रतिदिन एक-एक लाख कटपों का स्मरण करें । भिक्षुओ ! वे केवल कटपों का स्मरण ही करते जायँ । तब, सौ वर्ष की आयु समाप्त होने पर वे चारों मर जायँ ।

इस प्रकार, अधिक कल्प बीत गये हैं । उनकी गिनती नहीं की जा सकती है ।

[ऊपर के ऐसा]

§ ८. गङ्गा सुत्त (१४. १. ८)

बीते हुए कल्प अगण्य है

राजगृह वेलुवन में ।

एक ओर बैठ, वह ब्राह्मण भगवान् से बोला, हे गौतम ! अभी तक कितने कल्प बीत चुके हैं ?

भगवान् बोले—हाँ ब्राह्मण ! उपमा की जा सकती है । ब्राह्मण ! जैसे, जहाँ से गङ्गा नदी निकलती है और जहाँ समुद्र में गिरती है उनके बीच में कितने बालुकण हैं उनकी गिनती नहीं की जा सकती है ।

ब्राह्मण ! इतने अधिक कल्प बीत चुके हैं । उनकी गिनती नहीं की जा सकती है ।

सो क्यों ? ब्राह्मण ! क्योंकि इस ससार का प्रारम्भ निश्चित नहीं किया जा सकता है । अविद्या में पड़े, तृष्णा के बन्धन में बँधे, जीते मरते सत्त्वों की पूर्वकोटि जानी नहीं जाती ।

ब्राह्मण ! इतने चिरकाल से दुःख, पीड़ा और विपत्ति का अनुभव हो रहा है, श्मशान भरता जा रहा है । ब्राह्मण ! अतः, सभी सत्कारों से विरक्त रहना चाहिये, विमुक्त हो जाना चाहिये ।

ऐसा कहने पर वह ब्राह्मण भगवान् से बोला—हे गौतम ! आप धन्य हैं ! आज से जन्म भर के लिये मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें ।

९ दण्ड सुत्त (१४ १ ९)

संसार के प्रारम्भ का पता नहीं

भाषस्ती ।

मिथुभा ! इस संसार का प्रारम्भ निश्चित नहीं । ।

मिथुभा ! जैसे ऊपर चेंचो गई छाड़ी जपन ही कमी तो सूख से कमी मध्य से क्षीर कमी अम भाग से गिर पड़ती है । वैसे ही आदिमा में पड़े मृणा के बन्धन में बँधे जीते मरते सत्य कमी तो इस छोड़ सं जय लोक में पड़ते हैं और कमी उस छोड़ से इस लोक में ।

तो क्यों ? मिथुभा ! अतः सभी संस्कारों से बिरक्त रहना चाहिये, विमुक्त हो जाना चाहिये ।

३ १० पुरगल सुत्त (१४ १ १०)

संसार के प्रारम्भ का पता नहीं

राजगृह में गृहकूट पर्वत पर ।

मिथुभा ! इस संसार का प्रारम्भ निश्चित नहीं । मिथुभा ! कल्प भर मित्र-मित्र बोनि में पड़ा होनेवाले एक ही पुरुष की इष्टियाँ कहीं एक जगह इकट्ठी की जायें—और वह भए नहीं हों—तो उसकी डेर सेपुल्ल पर्वत के समान हो जाय ।

तो क्यों ? मिथुभा ! अतः सभी संस्कारों से बिरक्त रहना चाहिये विमुक्त हो जाना चाहिये ।

भगवान् यह बोले । इतना कहकर गृह फिर भी बोले—

एक पुरष तो पहाड़-सा एक डेर छग जाय

महापि ने ऐसा कहा—की कवन भर की इष्टियाँ यदि जमा की जायें ।

जैसा वह महाप सेपुल्ल पर्वत है

गृहकूट के उत्तर भगवों का गिरिवन्ध्र ॥

का आर्यसरणों को सम्मक् प्रज्ञा से देख डेठा है

दुःख दुःखसमुदय दुःख का भन्त कर देता

आर्य जहागिड मार्ग जिससे दुःख से मुक्ति होती है

अधिक से अधिक सात बार जन्म लेकर

दुःखों का भन्त कर देता है

सभी बन्धनों को क्षीण कर ॥

प्रथम धर्म समाप्त ।

द्वितीय वर्ग

§ १. दुग्गत सुत्त (१४. २. १)

दुःखी के प्रति सहानुभूति करना

श्रावस्ती***।

• भिक्षुओ ! इस ससार का प्रारम्भ*** ।

भिक्षुओ ! यदि किसी को अत्यन्त दुर्गति में पड़े देखो तो सोचो—इस दीर्घकाल में हमने भी कभी न कभी इस अवस्था को भी प्राप्त कर लिया होगा ।

तो क्यों ? विमुक्त हो जाना चाहिये ।

§ २. सुखित सुत्त (१४. २. २)

सुखी के प्रति सहानुभूति करना

श्रावस्ती** ।

भिक्षुओ ! इस ससार का प्रारम्भ ** ।

भिक्षुओ ! यदि किसी को सुख सुगम करते देखो तो सोचो—इस दीर्घकाल में हमने भी कभी न कभी इस सुख को भोगा होगा ।

तो क्यों ? • विमुक्त हो जाना चाहिये ।

§ ३. तिसति सुत्त (१४. २. ३)

आदि का पता नहीं, समुद्रों के जल से खून ही अधिक

राजगृह चेलुवन में ।

तब, पावा के रहने वाले तीस भिक्षु सभी आरण्यक, सभी पिण्डपातिक, सभी पासुकूलिक, सभी तीन ही चीवर धारण करने वाले, सभी सयोजन (= बन्धन) में पड़े हुए ही—जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

तब, भगवान् के मन में यह हुआ—ये***भिक्षु सभी सयोजन में पड़े हुये ही हैं । तो, मैं इन्हें ऐसा धर्मापदेश दूँ कि इसी आसन पर बैठे-बैठे इनका चित्त आश्रयों से विमुक्त और उपादान-रहित हो जाय ।

तब, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—हे भिक्षुओ !

“भदन्त !” कह कर भिक्षुओ ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले —भिक्षुओ ! ससार का प्रारम्भ निश्चित नहीं किया जा सकता है । अविद्या में पड़े, तृष्णा के बन्धन में बँधे, जीते मरते सबों की पूर्वकोटि जानी नहीं जाती ।

भिक्षुओ ! क्या समझते हो, जो चिरकाल से जीते मरते लोगों के शिर कटने से खून बहा है वह अधिक है या चारों महासमुद्र का जल ?

९ दण्ड मुत्त (१४ १ ५)

संसार के प्रारम्भ का पता नहीं

धायस्ती ।

मिथुमा ! इस संसार का प्रारम्भ मिथित नहीं । "

मिथुमा ! जब ऊपर कैरी गई छाी अपन-ही कर्मी तो मूल स, कर्मी मध्य स और कर्मी भग्न भाग से गिर पड़ती है । पैस ही अविद्या में पड़ नृप्या क बन्धन में रँधे जीत मरते सब कर्मी तो इस छाक स उस छोक में पड़त है आर कर्मी उस छाक स इस छाक में ।

तो क्यों ? मिथुमा ! अतः सभी सम्कारों स बिरल रहना चाहिये, बिमुक्त हो जाना चाहिये ।

§ १० पुंगल मुत्त (१४ १ १०)

संसार के प्रारम्भ का पता नहीं

राजसूद में गृहकृत पर्वत पर ।

मिथुमा ! इस सगर का प्रारम्भ मिथित नहीं । मिथुमा ! कल्प भर मिथ-मिथ बानि में पैदा होनेवाले एक ही पुंग्य की इष्टिर्वाँ कहीं एक जगह इकट्ठी की जायें—और वह नष्ट नहीं हों—तो उनकी डेर धेपुल्ल पर्वत क समान हो जाय ।

तो क्यों ? मिथुमा ! अतः सभी संस्कारों स बिरल रहना चाहिये, बिमुक्त हो जाना चाहिये ।

भगवान् वह पोल । हमला कहकर सुद फिर भी बाँक —

एक पुरुष तो पहाड़ सा एक डेर का जाय

महिषि ने पुमा कहा—भी कपर भर की इष्टिर्वाँ पक्षि जमा की जायें ।

जसा यह महान् धेपुल्ल पर्वत है

गृहकृत के उत्तर भगवों का गिरिद्वज ॥

आ धार्यसरयो को सम्बक् मजा स दल लता है

हुत्क हु गसमुदय हुत्क का मन्त कर दगा

धार्य अष्टांगिक भाग जिसम हु ल मे मुक्ति हाती है

अधिक से अधिक भात बार अम्म छंकर

हुत्कों का मन्त कर बैता है

समी बन्धनों को छीन कर ॥

प्रथम वर्ग समाप्त ।

भिक्षुओ ! बहुत ही पूर्वकाल में इस वेपुल्ल पर्वत का नाम वंकक पड़ा था । उस समय मनुष्य रोहितस्स कहे जाते थे । आयुप्रमाण तीस हजार वर्षों का था । वे रोहितस्स मनुष्य वकक पर्वत पर तीन दिनो में चढ़ते थे और तीन दिनों में उतरते थे ।

भगवान् कोणागमन * । भिद्यो और सुत्तर नाम के दो अग्रश्रावक * ।

विमुक्त हो जाना चाहिये ।

×

×

×

* पर्वत का सुग्गस्स नाम पड़ा था । मनुष्य सुप्पिय कहे जाते थे । बीस हजार वर्षों का आयुप्रमाण * । दो दिन में चढ़ते थे ।

भगवान् काश्यप । *तिस्स और भारद्वाज नाम के दो अग्रश्रावक थे ।

विमुक्त हो जाना चाहिये ।

×

×

×

भिक्षुओ ! इस समय इस पर्वत का नाम वेपुल्ल पड़ा है । ये मनुष्य मागध कहे जाते हैं । भिक्षुओ ! मागध मनुष्यों का आयुप्रमाण बहुत घटकर कम हो गया है । जो बहुत जीता है वह सौ वर्ष, उसके कुछ कम या अधिक भी जीता है । मागध मनुष्य वेपुल्ल पर्वत पर अल्प काल ही में चढ़ जाते हैं और उतर भी आते हैं ।

भिक्षुओ ! इस समय, अर्हत् सम्मक् सम्बुद्ध मैं ही लोक में उत्पन्न हुआ हूँ । मेरे सारिपुत्र और मौद्गल्यायन दो अग्रश्रावक हैं ।

भिक्षुओ ! एक समय आयेगा कि इस पर्वत का यह नाम लुप्त हो जायगा । ये मनुष्य भी मर जायेंगे । मैं भी परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाऊँगा ।

भिक्षुओ ! सस्कार इतने अनित्य हैं, अध्रुव हैं, चलायमान हैं । भिक्षुओ ! अतः सभी सस्कारों से विरक्त रहना चाहिये, विमुक्त हो जाना चाहिये ।

भगवान् यह बोले । यह कहकर बुद्ध फिर भी बोले—

पाचीनवश तिवरोंका, रोहितोंका वकक,

सुप्पियों का सुग्गस्स, और मागधों का वेपुल्ल ॥

सभी सस्कार अनित्य हैं, उत्पन्न और न्यय होनेवाले,

उत्पन्न होकर निरुद्ध हो जाते हैं, उनका शान्त हो जाना ही सुख है ॥

द्वितीय वर्ग समाप्त

अनमतग्ग-संयुत्त समाप्त ।

ममो ! भगवान् क बताये धर्म को जैसा हम जानते हैं उससे तो बही मात्तम होता है कि हम ही अधिक बड़ा है ।

सब है मित्रमो सब है । तुम मेरे उपदेश किय गये धर्म को ठीक से जानते हो ।

मित्रमो ! बिरकाक से गीबों के सिर करने से जो बल बड़ा है वह चारों समुद्र के बल से अधिक है ।

‘सिस ; मेका ; बररी ; युग ; कुम्भुर ; सुमर ; सुदरों ने जो लोगों के सिर फट कर बल बढ़ाया है’ ; छिवाकों न ।

सो क्यों ? विमुक्त हो जाना चाहिये ।

भगवान् यह बोले । मित्रमो ! न संतुष्ट मन से भगवान् के कहे का अभिनन्दन किया ।

इस उपदेश के दिये जाने पर उन पाषा के तीस मित्रमो का विषय विमुक्त हो गया उपादान रहित हो गया ।

§ ४ माता सुच (१४ २ ४)

माता न ह्यप सत्य असम्मम

आवस्ती ।

मित्रमो ! इस संसार का प्रारम्भ ।

मित्रमो ! ऐसा कोई सत्य ‘मित्रका सुविश्व है जो बिरकाक में कमी न कमी माता न रह चुका हो ।

सो क्यों ? विमुक्त हो जाना चाहिये ।

§ ५-९ पिता सुच (१४ २ ५-९)

पिता न ह्यप सत्य असम्मम

आ बिरकाक में कमी न कमी पिता भाई बहन बैठा बैठी ।

§ १० वेपुल्लपन्वत्त सुच (१४ २ १०)

वेपुल्ल पर्यंत की प्राचीनता सभी संस्कार अनित्य हैं

राजगृह में गृहकृत पर्यंत पर ।

भगवान् बोले—मित्रमो ! इस संसार का प्रारम्भ । मित्रमो ! बहुत ही पूर्वकाल में इस वेपुल्ल पर्यंत का नाम पाथीमपेसा पड़ा था । उस समय मनुष्य तियर फटे जाते थे । इन तियर मनुष्यों का आयुबमान अच्छीस हज़ार वर्षों तक का था । मित्रमो ! वे तियर मनुष्य पाथीमपेसा पर्यंत पर चार दिनों में जाते थे और चार दिनों में नीच उतरते थे ।

मित्रमो ! उस समय आईस सम्पत्कमनुज भगवान् कपुसन्ध कोक में जापन्न हुये थे । उनसे यिपुर और संजीव नाम के दो अन्नप्राप्त किये ।

मित्रमो ! ऐसी इस पर्यंत का वह नाम सुत हो गया । वे मनुष्य सभी के समी परतम हो गये । वे भगवान् की वरिष्ठता का ज्ञात हुये ।

मित्रमो ! संस्कार इनसे अनित्य हैं अमृत हैं अकारण हैं । मित्रमो ! जता सभी संस्कारों से बिरत रहना चाहिये विमुक्त हो जाना चाहिये ।

भिक्षुओ ! बहुत ही पूर्वकाल में इस वेपुल पर्वत का नाम चक्रक पड़ा था । उस समय मनुष्य रोहितस्स कहे जाते थे । आयुप्रमाण तीस हजार वर्षों का था । वे रोहितस्स मनुष्य चक्रक पर्वत पर तीन दिनों में चढ़ते थे और तीन दिनों में उतरते थे ।

“भगवान् कोणागमन” । “भिक्षुओ और मुत्तर नाम के दो अग्रश्रावक” ।

“विमुक्त हो जाना चाहिये ।

×

×

×

“पर्वत का सुपस्स नाम पड़ा था । मनुष्य सुप्पिय कहे जाते थे । तीस हजार वर्षों का आयुप्रमाण ” । “दो दिन में चढ़ते ” थे ।

“भगवान् काश्यप । ‘तिस्स और मारहाज नाम के दो अग्रश्रावक थे ।

“विमुक्त हो जाना चाहिये ।

×

×

×

भिक्षुओ ! इस समय इस पर्वत का नाम वेपुल पड़ा है । ये मनुष्य मागध कहे जाते हैं । भिक्षुओ ! मागध मनुष्यों का आयुप्रमाण बहुत घटकर कम हो गया है । जो बहुत जीता है वह सौ वर्ष, उसके कुछ कम या अधिक भी जीता है । मागध मनुष्य वेपुल पर्वत पर अन्तर काल ही में चढ़ जाते हैं और उतर भी आते हैं ।

भिक्षुओ ! इस समय, अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध मैं ही लोक में उत्पन्न हुआ हूँ । मेरे सारिपुत्र और मौद्गल्यायन दो अग्रश्रावक हैं ।

भिक्षुओ ! एक समय आयेगा कि इस पर्वत का यह नाम लुप्त हो जायगा । ये मनुष्य भी मर जायेंगे । मैं भी परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाऊँगा ।

भिक्षुओ ! संस्कार इतने अनित्य हैं, अशुभ हैं, चलायमान हैं । भिक्षुओ ! अतः सभी संस्कारों से विरक्त रहना चाहिये, विमुक्त हो जाना चाहिये ।

भगवान् यह बोले । यह कहकर बुद्ध फिर भी बोले—

पाचीनवश तिवरोका, रोहितोंका चक्रक,

सुप्पियों का सुपस्स, और मागधों का वेपुल ॥

सभी संस्कार अनित्य हैं, उत्पन्न और व्यय होनेवाले,

उत्पन्न होकर निरुद्ध हो जाते हैं, उनका शान्त हो जाना ही सुख है ॥

द्वितीय वर्ग समाप्त

अनमतग्ग-संयुत्त समाप्त ।

चौथा परिच्छेद

१५ काश्यप-सयुक्त

§ १ सन्तुष्ट सुप्त (१५ १)

प्राप्तधीयन् आदि से सम्बुद्ध रहना

भावस्ती ।

मित्रभो ! काश्यप जैसे तेसे नीबर से संतुष्ट रहता है । जैसे तेसे नीबर से संतुष्ट रहने की प्रसंसा करता है । नीबर के किये अनुचित अन्वेषण में नहीं करता है । नीबर नहीं प्राप्त होने से सिद्ध नहीं होता है, और मित्रने से बिना बहुत कष्टनायेऽविमोह हुये=श्रम किये उसके आदिमन् (= शेष) को देखते हुये मुक्ति की प्रज्ञा के साथ उस नीबर का भोग करता है ।

मित्रभो ! काश्यप जैसे तेसे पिण्डपात ; रायनासन ; गन्धन प्रत्यक्ष भयान्-परिष्कार से ।

मित्रभो ! इसकिये तुम्हें भी ऐसा ही सीखना चाहिये—जैसे तेसे नीबर से संतुष्ट रहूँगा । ” संतुष्ट रहने की प्रसंसा करूँगा । नीबर के किये अनुचित अन्वेषण में नहीं करूँगा । । मुक्ति की प्रज्ञा के साथ उस नीबर का भोग करूँगा । पिण्डपात । रायनासन । गन्धन प्रत्यक्ष । मित्रभो ! तुम्हें ऐसा ही सिखना चाहिये ।

मित्रभो ! काश्यप लयना उसी के समान किसी दूसरे का दिक्काह्न तुम्हें उपदेश करूँगा । उपदेश पाकर तुम्हें ठीक वैसा ही बर्तना चाहिये ।

§ २ अनोचापी सुप्त (१५ २)

आतापी और ओचापी को ही ज्ञान-प्राप्ति

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय आधुपमान् महाकाश्यप और आधुपमान् सारिपुत्र वागणसी के पास ऋषिपत्न्य युगशाय में बिहार करते थे ।

तब आधुपमान् सारिपुत्र सौंस को प्वाल से उठ जहाँ आधुपमान् महाकाश्यप थे वहाँ गये और कुसक-श्रेय के मध्य बैठकर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ आधुपमान् सारिपुत्र आधुपमान् महाकाश्यप से बोले —आजुस काश्यप ! यह कहा जाता है कि अनाचापी (= जो अपने कपड़ों को नहीं तपाता है) और अनोचापी (= जो कपड़ों के बदले पर सावधान नहीं रहता है) परम-ज्ञान विहीन अनुत्तर योगक्षेम को नहीं पा सकता है । आतापी और ओचापी ही परम-ज्ञान को पा सकता है ।

आजुस ! यह कैसे ?

क

आजुस ! मित्र अनुत्तर पाप अकुसल धर्म उत्पन्न होकर अवर्ध करेगे इसके किये आताप नहीं करता है । उत्पन्न पाप अकुसल धर्म प्रहीन नहीं होने से अवर्ध करेगे इसके किये आताप नहीं

करता है । मेरे अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न नहीं होने से अनर्थ करेंगे, इसके लिये आताप नहीं करता है । मेरे उत्पन्न कुशल धर्म नष्ट होने हुये अनर्थ करेंगे, इसके लिये आताप नहीं करता है ।
आयुस ! इस प्रकार वह अनात्तापी होता है ।

ग

आयुस ! कैसे कोई अनोत्तापी होता है ?

आयुस ! भिक्षु, अनुत्पन्न पाप अकुशल धर्म उत्पन्न होकर अनर्थ करेंगे, इसके लिये उत्ताप नहीं करता है । * [ऊपर के प्रश्न]

आयुस ! इस तरह, अनात्तापी और अनोत्तापी परम-ज्ञान, निर्वाण, अनुत्तर योगक्षेम को नहीं पा सकता है ।

ग-घ

[उलटा करके]

आयुस ! इस तरह, आत्तापी और ओत्तापी ही परम-ज्ञान को पा सकता है ।

§ ३. चन्दोपम सुत्त (१५. ३)

चाँद की तरह कुलों में जाना

श्रावस्ती ** ।

भिक्षुओ ! चाँद की तरह कुलों में जाओ । अपने शरीर और चित्त को समेटे, सदा नये अनजान के प्रेमा, अप्रगल्भ हुये ।

भिक्षुओ ! जैसे कोई पुरुष पुराने कृये, पीट्ट पर्वत, खतरनाक नदी को देखकर अपने शरीर और मन को समेटे रहता है , वैसे ही भिक्षुओ ! चाँद की तरह कुलों में जाओ । अपने शरीर और चित्त को समेटे, सदा नये अनजान के प्रेमा, अप्रगल्भ हुए ।

भिक्षुओ ! काश्यप कुलों में चाँद की तरह जाता है ।

×

×

×

भिक्षुओ ! तुम क्या समझते हो, कैसा भिक्षु कुलों में जाने के लायक है ?

भन्ते ! धर्म के आधार भगवान् ही हैं, धर्म के नायक और आश्रय भगवान् ही हैं । अच्छा हो कि भगवान् ही इस कहे गये का अर्थ बताते । भगवान् से सुनकर भिक्षु धारण करेंगे ।

तब, भगवान् ने आकाश में हाथ फेरा । भिक्षुओ ! जैसे, यह हाथ आकाश में नहीं लगता है, नहीं फैसता है = नहीं वक्षता है, वैसे ही जिस भिक्षु का चित्त कुलों में जाकर भी नहीं लगता = नहीं फैसता = नहीं वक्षता है । जो लाभकामी है वे लाभ करें , जो पुण्यकामी है वे पुण्य करें । जैसे अपने लाभ से सन्तुष्ट और प्रसन्न होता है, वैसे ही दूसरों के भी लाभ से । भिक्षुओ ! ऐसा ही भिक्षु कुलों में जाने के लायक है ।

भिक्षुओ ! काश्यप का चित्त कुलों में जाने पर नहीं लगता है=नहीं फैसता है=नहीं वक्षता है ।

+

+

+

+

भिक्षुओ ! तुम क्या समझते हो, किस भिक्षु की धर्मवेदना अपरिशुद्ध होती है, और किस भिक्षु की परिशुद्ध ?

भगवान् स सुनकर मिथु धारण करेंगे ।

भगवान् बोले:—मिथुभी ! जो मिथु मन में ऐसा करक धर्मदेसना करता है—जहाँ ! लोग मरी धर्मदेसना को सुनें सुनकर प्रसन्न हों, और प्रसन्न होकर मेरे सामने अपनी प्रसन्नता दिखावें—उसकी धर्मदेसना अपरिमुक्त होती है ।

मिथुभी ! जो मिथु मन में ऐसा करक धर्मदेसना करता है—भगवान् का धर्म स्वाक्यात है, मांडूष्टिक है अक्राष्टिक है प्रगट है निर्बाण को ले जानेवाला है बिश्वों के द्वारा अपने भीतर ही भीतर जानने का योग्य है । जहाँ ! लोग मेरी धर्मदेसना को सुनें, सुनकर धर्म को जानें, जानकर उसका अभ्यास करें । उस वह उचित रीति से दूसरों को धर्म कहता है । कहना से ब्या से अनुकम्पा से दूसरों को धर्म कहता है । मिथुभी ! इस प्रकार के मिथु भी धर्मदेसना परिमुक्त होती है ।

मिथुभी ! काश्चप ऐसे ही चित से धर्मदेसना करता है ।

मिथुभी ! ऐसा ही तुम्हें भी बर्तना चाहिये ।

§ ४ कुलूपग सुत्त (१५ ४)

कुलों में जान योग्य मिथु

धावस्ती ।

मिथुभी ! तो क्या समझते हो क्या मिथु कुलों में जाने के योग्य है और क्या मिथु नहीं ?

मिथुभी ! जो मिथु इस चित से कुलों में जाता है—मुझे दे ही ऐसा नहीं कि यह है, बहुत द, पादा नहीं, बड़िया ही दे परिवा नहीं, शीम ही द देर न लगावे, सत्कारपूर्वक ही दे बिना सत्कार के नहीं ।

मिथुभी ! यदि हम नहीं देते हैं घोड़ा देते हैं तो उसे बड़ा दुःख होता है बेचनी होती है ।

मिथुभी ! वह मिथु कुलों में जाने के योग्य नहीं है ।

मिथुभी ! यदि हमें नहीं देत हैं घोड़ा देते हैं तो उसे दुःख नहीं होता है ।

मिथुभी ! वह मिथु कुलों में जाने के योग्य है ।

मिथुभी ! काश्चप कुलों में इसी चित से जाता है उस दुःख नहीं होता है ।

मिथुभी ! ऐसा ही तुम्हें भी बर्तना चाहिये ।

§ ५ दिण्ण सुत्त (१५ ५)

भारण्यक होने के क्षम

राजगृह धनुषन में—

एक और बड़े आनुष्मान् महाकादप से भगवान् बोले:—काश्चप ! तुम बहुत दूरे हो गये हो यह ज्ञाना बौमुह्य तुम्हें रहता न जाना होगा । इसलिए तुम गृहस्थों के दिये गये भीवर को पहनी निमग्नन के यात्रन का भाग करा और मर पास रहा ।

धने ! मैं बहुतशान न आरण्यक हूँ और आरण्यक होने की प्रार्थना करता हूँ । पिण्डप्राप्तिक “। बौमुह्यिक” । नाग भीवरों को धारण करनेवाला । अपरप्य “। संगृह” । पृथानावासी “। अर्धगृह” । राजगृहस्थिक” ।

काश्चप ! किग उदरन से तुम बहुत काम न आरण्यक हो और आरण्यक रहने की प्रार्थना करत हो “

धने ! दा उदरन न । एक तो गदग द्य उदर में गृहस्थक विहार करने के लिये, और दूसरी

भविष्य में होनेवाली जनता के प्रति अनुकम्पा करके, कि कहीं वे भ्रम में न पड़ जायें।—जो बुद्ध के श्रावक थे वे बहुत काल से आरण्यक थे । पिण्डपातिक थे • उत्साहशील थे •—ऐसा जान वे भी उचित मार्ग पर आवेंगे जिससे उनका चिरकाल तक हित और सुख होगा ।

भन्ते ! इन्हीं दो उद्देश्यों से ।

ठीक है, काश्यप ठीक है ! तुम बहुतां के हित के लिये, बहुतां के सुख के लिये, लोक पर अनुकम्पा करने के लिये, देव और मनुष्यों के परमार्थ के लिये, हित के लिये, और सुख के लिये ऐसा कर रहे हो ।

काश्यप ! तो, तुम रूपे पासुकूल चीवर धारण करो, पिण्डपात के लिये चरो, आरण्य में रहो ।

§ ६. पठम ओवाद् सुत्त (१५. ६)

धर्मोपदेश सुनने के लिए अयोग्य भिक्षु

राजगृह वेलुवन में ।

एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् महाकाश्यप को भगवान् बोले—काश्यप ! भिक्षुओं को उपदेश दो । काश्यप ! भिक्षुओं को धर्मोपदेश करो । चाहे हम या तुम भिक्षुओं को उपदेश दें, धर्मोपदेश करें ।

भन्ते ! इस समय भिक्षु उपदेश ग्रहण करने के योग्य नहीं हैं, इस समय उन्हें उपदेश देना ठीक नहीं । उपदेश को वे स्वीकार और सत्कार नहीं करेंगे । भन्ते ! इस समय मैंने आनन्द के अनुचर भिक्षु भण्ड और अनुहद्ध के अनुचर भिक्षु अभिज्जक को आपस में कहते सुना है—भिक्षु ! देखें, कौन बहुत बोलता है, कौन बढ़िया बोलता है, कौन अधिक देर तक बोलता है ?

तब, भगवान् ने किसी भिक्षु को आमन्त्रित किया—हे भिक्षु ! सुनो, मेरी ओर से जाकर • भिक्षु भण्ड, और अभिज्जक को कहो कि “बुद्ध आयुष्मानों को बुला रहे हैं” ।

“भन्ते ! बहुत अच्छा” कह, वह भिक्षु भगवान् को उत्तर दे जहाँ वे भिक्षु थे वहाँ गया, और बोला—बुद्ध आयुष्मानों को बुला रहे हैं ।

“आवुस ! बहुत अच्छा” कह, वे उस भिक्षु को उत्तर दे जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठे हुये उन भिक्षुओं से भगवान् बोले—भिक्षुओं ! क्या यह सच है कि तुम आपस में ऐसी बातें कर रहे थे कि, ‘देखें ! कौन बहुत बोलता है, कौन बढ़िया बोलता है, कौन अधिक देर तक बोलता है ?’

हाँ भन्ते !

भिक्षुओं ! क्या मैंने तुम्हें ऐसा धर्म सिखाया है, कि तुम भिक्षुओं ! आपस में ऐसी बातें करो कौन अधिक देर तक बोलता है ?

नहीं भन्ते !

भिक्षुओं ! जब तुम जानते हो कि मैंने ऐसा धर्म नहीं बताया है, तो तुम निकम्मे आदमी क्या जानबूझ इस स्वाख्यात धर्मविनय में प्रव्रजित होकर ऐसी बातें करते हो ‘ कौन अधिक देर तक बोलता है ?’

तब, वे भिक्षु भगवान् के चरणों पर शिर टेककर बोले—शाल, मूढ़, पापी के जैसा हमलोगों ने यह अपराध किया है, कि इस स्वाख्यात धर्मविनय में प्रव्रजित होकर ऐसी बातें कर रहे थे । भन्ते ! भविष्य में ऐसा अपराध न होगा, कृपया भगवान् क्षमा-प्रदान करें ।

भिक्षुओं ! जब तुम अपना दोष समझकर स्वीकार करते हो, तो मैं क्षमा कर देता हूँ ।

मिथुनी ! इस आय-विषय में वह हृदि ही है जो अपन सोप को जानकर स्वीकार कर लेता है और सविष्णु में फिर ऐसा न करने की सिखा छटा है ।

§ ७ द्वितीय ओवाद सुत (१५ ७)

धर्मोपदेश सुनने के लिए अयोग्य मिथु

राजगृह धनुष्यन में - ।

एक ओर बैठ हुए आयुष्मान् महाकाश्यप स मगवान् बोक—काश्यप ! मिथुनों को उपदेश ना ।

भन्ते ! इस समय मिथु उपदेश ग्रहण करने के योग्य नहीं । भन्ते ! जिस किसी को कुशक घर्मों में अज्ञा नहीं है । ही अपव्रथा भीयं प्रज्ञा नहीं है । रात दिन कुशक घर्मों में उनकी अवस्थि ही होती जाती है उन्नति नहीं ।

भन्ते ! पुरुष अग्रहास्तु हाथे यह परिहानि है, अहीन अपव्रथा-रहित काहिक दुष्प्रश्न; आर्षी " बेरी यह परिहानि ही है । भन्ते ! उपदेश देवेनाह मिथु भी नहीं हो यह परिहानि है ।

भन्ते ! जिस पुरुष को अज्ञा ही अपव्रथा भीयं प्रज्ञा कुशक घर्मों में है, उनकी दिन रात कुशक घर्मों में हृदि ही होती है परिहानि नहीं ।

भन्ते ! जैसे शुक्रवस का जो बौद्ध है वह रात-दिन वर्ण होमा अमा भार जरीहपरिवाह से बरता हो जाता है । भन्ते ! जैसे ही जिस अज्ञा है ।

भन्ते ! पुरुष अग्रहास्तु हाथे यह अपरिहानि है हीन ; अपव्रथायुक्त ; उत्साहसील ; प्रज्ञावान् ; श्रीप-रहित ; वैर-रहित यह अपरिहानि है । उपदेश देनेवाले मिथु हैं वह भी अपरिहानि है ।

हीन है, काश्यप हीन है ।

काश्यप ! जैसे कृष्ण-वस का बौद्ध रात-दिन वर्ण स हीन होता जाता है वस ही जिस कुशक घर्मों में अज्ञा नहीं है ही नहीं है प्रज्ञा नहीं है, उसे दिन-रात कुशक घर्मों में परिहानि ही होती है हृदि नहीं ।

[काश्यप के कई गर्व की पुनरावृत्ति]

§ ८ तृतीय ओवाद सुत (१५ ८)

धर्मोपदेश सुनने के लिए अयोग्य मिथु

राजगृह धनुष्यन में ।

भन्ते ! इस समय मिथु उपदेश ग्रहण करने के योग्य नहीं ।

काश्यप ! तो भी पृथक्स्थ में स्थित मिथु आरवक ध और आरवक हीन के प्रमाणक । " विप्रवर्तनिक । पामुद्विक्रिक । तो आ जैसे मिथु हात में उम्मी की स्थित घर्मासन पर निमग्नित करने थे—मिथु की आर्षी कीन इनका भद्र और सिद्धाचामी होगा । मिथुनी जैसे इस आसन पर बैठे ।

काश्यप ! ता जब मिथुनी के मन में वह होगा ना :—आ मिथु आरवक है उम्मी की स्थित घर्मासन पर निमग्नित कर दें " । इस सब से भी बीसा ही आपरत करने थे जो विप्रवर्तनिक तब उनके दिन और रात के किये होगा ना ।

काश्यप ! इस समय स्थित मिथु आरवक नहीं है और आरवक हीन के प्रमाणक । तब

जा भिक्षु यशस्वी है, और चीवर इत्यादि जिनसे बहुत प्राप्त होते रहते हैं, उन्हीं को नाशिर भिक्षु धर्ममय पर निमन्त्रित करते हैं । वे चेंगा करते हैं, जो चिरकाल तक उनके अटित और दुःख के लिये होता है ।

काश्यप ! जिसे उचित कहनेवाले कहते हैं—वे प्रवचनार्थ प्रवचन के उपद्रव में पड़ गये, गिर गये ।

§ ९. ज्ञानाभिज्ञा मुक्त (१५. ९)

ध्यान-अभिज्ञा में काश्यप बुद्ध-तुल्य

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! जय में चाहता हूँ, कामों में रक्त हो, अकुशल धर्मों में रक्त हो, मयितक मयिचार विवेक प्रीति-सुखवाले प्रथम ध्यान को प्राप्त होकर विहार करता हूँ ।—भिक्षुओ ! काश्यप भी ' प्रथम ध्यान को प्राप्त ' ।

भिक्षुओ ! जय में चाहता हूँ, वितर्क विचार के शान्त हो जाने में आध्यात्म सप्रमाद, चित्त की एकप्रता में युक्त, समाधिज प्रीति सुखवाले द्वितीय ध्यान को प्राप्त होकर विहार करता हूँ—भिक्षुओ ! काश्यप भी ' द्वितीय ध्यान को प्राप्त ' ।

भिक्षुओ ! जय में चाहता हूँ तो प्रीति के हट जाने से उपेक्षा के साथ विहार करता हूँ, स्मृति-मान् और संप्रज्ञ हो काया में सुख का अनुभव करते हुये । जिसे आर्यपुरुष कहते हैं कि, उपेक्षा के साथ स्मृतिमान् हो सुख से विहार करता है इस तीसरे ध्यान को प्राप्त कर सुख में विहार करता हूँ ।—भिक्षुओ ! काश्यप भी ' तीसरे ध्यान को प्राप्त ' ।

भिक्षुओ ! जय में चाहता हूँ, सुख और दुःख के प्रहाण में, पूर्व ही सौमनस्य और दोर्मनस्य के अन्त हो जाने से, अदुःख, अमृग, उपेक्षा से स्मृति-परिशुद्धिवाले चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहार करता हूँ ।—भिक्षुओ ! काश्यप भी ' चौथे ध्यान को प्राप्त ' ।

भिक्षुओ ! जय में चाहता हूँ, सर्वथा रूपमज्ञाओं के समतिक्रमण से, प्रतिघ सज्ञाओं के अन्त हो जाने से, नानात्व सज्ञाओं के अमनसिकार से, आकाश अनन्त है—ऐसा आकाशानन्त्रायतन को प्राप्त कर विहार करता हूँ ।—भिक्षुओ ! काश्यप भी ' ।

भिक्षुओ ! जय में चाहता हूँ, सर्वथा आकाशानन्त्रायतन का समतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है' ऐसा विज्ञानान्त्रायतन को प्राप्त कर विहार करता हूँ—भिक्षुओ ! काश्यप भी ' ।

भिक्षुओ ! जय में चाहता हूँ, सर्वथा विज्ञानान्त्रायतन का समतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है' ऐसा आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त कर विहार करता हूँ ।—भिक्षुओ ! काश्यप भी ' ।

भिक्षुओ ! जय में चाहता हूँ, सर्वथा आकिञ्चन्यायतन का समतिक्रमण कर 'नेवसज्जानासज्ञायतन को प्राप्त कर विहार करता हूँ ।—भिक्षुओ ! काश्यप भी ' ।

भिक्षुओ ! जय में चाहता हूँ, सर्वथा नेवसज्जानासज्ञायतन का समतिक्रमण कर सज्ञावेदयित निरोध को प्राप्त कर विहार करता हूँ—भिक्षुओ ! काश्यप भी*** ।

भिक्षुओ ! जय में चाहता हूँ, अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करता हूँ—एक होकर बहुत हो जाता हूँ [देखो पृष्ठ २४३] ।—भिक्षुओ ! काश्यप भी ' ।

भिक्षुओ ! मैं आश्रवों के क्षीण हो जाने से, आश्रव-रहित चेतोविमुक्ति और प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान, साक्षात्कार कर और प्राप्त कर विहार करता हूँ ।—भिक्षुओ ! काश्यप भी आश्रवों के क्षीण हो जाने से, आश्रव-रहित चेतोविमुक्ति और प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान, साक्षात्कार कर और प्राप्त कर विहार करता है ।

§ १० उपस्तय सुप्त (१५ १०)

शुक्लतिस्सा भिक्षुणी का संघ से घटिष्कार

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय आपुष्मान् काश्यप आश्वत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम अंत्यधन में बिहार करते थे ।

क

तब आपुष्मान् आनन्द पूर्वाह्नसमय पहन और पात्रचीवर छे वहाँ आपुष्मान् महाकाश्यप थे वहाँ गये । आकर आपुष्मान् महाकाश्यप से बोले:—मस्त काश्यप ! वहाँ भिक्षुजनों का स्थान है वहाँ चले ।

आपुस आनन्द ! आप आर्ये आपको बहुत काम भास रहा है ।

बूसरी बार भी ?

तीसरी बार । तब आपुष्मान् महाकाश्यप पहन बार पात्रचीवर छे आपुष्मान् आनन्द को पीछे किये वहाँ भिक्षुजनों का स्थान था वहाँ गये । आकर बिछे आसन पर बैठ गये ।

ख

तब कुछ भिक्षुजनों वहाँ आपुष्मान् महाकाश्यप से वहाँ गई आकर आपुष्मान् महाकाश्यप का अभिवादन कर एक ओर बैठ गई । एक ओर बैठी हुई उन भिक्षुजनों को आपुष्मान् महाकाश्यप ने जर्मोपदेशकर दिया दिया पठा दिया और उनके चार्मिक भावों को उत्पन्न कर दिया । जर्मोपदेश कर आपुष्मान् महाकाश्यप आसन से उठकर चले गये ।

तब शुक्लतिस्सा भिक्षुणी असंतुष्ट होकर असंतोष के शब्द कहने लगी:—क्या आर्य महाकाश्यप को आर्य धेनुमुनि आनन्द के सामने जर्मोपदेश करना अशुभ था ? कैसे, कोई सूर्य बेचनेवाला किसी सूर्य बनानेवाले के पास सूर्य बेचने को जाय, वैसे ही आर्य महाकाश्यप ने आर्य आनन्द के सामने जर्मोपदेश करने का साहस किया है ।

आपुष्मान् महाकाश्यप ने शुक्लतिस्सा भिक्षुणी को ऐसा कहत सुना ।

ग

तब आपुष्मान् महाकाश्यप आपुष्मान् आनन्द से बोले:—आपुस आनन्द ! क्या मैं सूर्य बेचने वाला हूँ और आप सूर्य बनानेवाले या मैं सूर्य बनानेवाला हूँ और आप सूर्य बेचनेवाले ?

मस्त काश्यप ! यह सूर्य की है इसी क्षमा कर दें ।

आनन्द ! इन्हें संघ आपके विषय में और चर्चा न करे ।

आपुस आनन्द ! आप क्या समझते हैं ?

क्या भगवान् ने आपके विषय में भिक्षुसंघ के सामने उपस्थित किया था कि:—भिक्षुजो ! जब मैं जा रहा हूँ, प्रथम प्यान को प्राप्त कर बिहार करता हूँ—तब आनन्द सी प्रथम प्यान को प्राप्त कर बिहार करता है ?

वही भगते !

आपुस ! मेरे विषय में भगवान् ने भिक्षुसंघ के सामने ऐसा उपस्थित किया था ।

[तब प्यावाइन्माओं के विषय में ऐसा समझ लेना चाहिए]

आवुस ! यह समझा जा सकता है कि मात हाथ का ऊँचा हाथी डेढ़ हाथ के तालपत्र में छिप जाय, किन्तु यह सम्भव नहीं कि मेरी छ अभिजायें छिप जायें ।

घ

थुस्लत्तिस्सा भिक्षुणी धर्म से च्युत हो गई ।

§ ११. चीवर सुत्त (१५ ११)

आनन्द 'कुमार' जैसे, थुल्लनन्दा का संघ से वहिष्कार

एक समय आयुष्मान् महाकाश्यप राजगृह में वेलुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे ।

क

उस समय आयुष्मान् आनन्द दक्षिणागिरि में भिक्षुओं के एक वड़े सघ के साथ चारिका कर रहे थे ।

उस समय आयुष्मान् आनन्द के तीस अनुचर भिक्षु जो विशेष कर कुमार थे, शिक्षा को छोड़ कर गृहस्थ हो गये थे ।

ख

तब, आयुष्मान् आनन्द दक्षिणागिरि में यथेच्छ चारिका कर, राजगृह के वेलुवन में जहाँ आयुष्मान् महाकाश्यप थे वहाँ पधारे, और आयुष्मान् महाकाश्यप का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द को आयुष्मान् महाकाश्यप बोले.—आवुस आनन्द ! किस उद्देश्य से भगवान् ने कुलों में 'त्रिकभोजन' की प्रज्ञप्ति दी है ?

भन्ते काश्यप ! तीन उद्देश्य से । बुरे लोगों के निग्रह के लिये, शीलवन्त भिक्षुओं के आराम के लिये, कि पापेच्छ लोग पक्ष लेकर कहीं सघ में फूट पैदा न कर दें, और कुलों की भलाई के लिये ।

आवुस आनन्द ! तो, आप क्यों इन नये भिक्षुओं के साथ चारिका करते हैं, जो असयमी, पैट्ट, और सुतक्कड़ हैं ? मालूम होता है कि आप शस्य और कुलों को नष्ट करते हुये विचरते हैं । आवुस आनन्द ! आप की यह नई मण्डली घट रही है, कमती जा रही है । यह नया कुमार मात्रा को नहीं जानता है ।

भन्ते काश्यप ! मेरे बाल भी पक चले, किन्तु आज तक आयुष्मान् महाकाश्यप के 'कुमार' कहकर पुकारे जाने से नहीं छूटे हैं ।

आवुस आनन्द ! इसी से तो मैं कहता हूँ, यह नया कुमार मात्रा को नहीं जानता है ।

ग

थुल्लनन्दा भिक्षुणी ने सुना कि आर्य महाकाश्यप ने आर्य वेद्वेहमुनि आनन्द को "कुमार" कहकर धत्ता बताया है ।

तब, थुल्लनन्दा भिक्षुणी अमत्तुप होकर असतोप के वचन कहने लगी —आयुष्मान् महाकाश्यप, जो पहले अन्य तैर्थिक रह चुके हैं, आर्य आनन्द को 'कुमार' कहकर धत्ता घताने का कैसे साहस करते हैं ?

आयुष्मान् महाकाश्यप ने थुल्लनन्दा भिक्षुणी को ऐसा कहते सुना ।

§ १० उपस्तथ सुच (१५ १)

युक्कतिस्सा भिक्षुणी का मंच से यहि प्रकार

पूसा मने सुना ।

एक समय आयुष्मान् महाकाश्यप भाग्यस्ती में अनापविच्छिन्न क आराम उत्तम में बिहार करत थ ।

क

तब आयुष्मान् आत्मन् पूर्वाह्नसमय पहन भार पायचीवर ले जहाँ आयुष्मान् महाकाश्यप थे वहाँ गये । जाकर आयुष्मान् महाकाश्यप से बोले—भन्ने काश्यप ! जहाँ भिक्षुणियों का स्थान है वहाँ चले ।

आयुस आत्मन् ! आप आये आपकी बहुत काम धाम रहता है ।

दूसरी बार भी ।

तीसरी बार । तब आयुष्मान् महाकाश्यप पहन भार पायचीवर ले आयुष्मान् आत्मन् को पीछे छिपे वहाँ भिक्षुणियों का स्थान था वहाँ गये । जाकर छिपे आसन पर बठ गये ।

ख

तब कुछ भिक्षुणियों जहाँ आयुष्मान् महाकाश्यप थे वहाँ गईं जाकर आयुष्मान् महाकाश्यप का अभिवादन कर एक ओर बैठ गईं । एक ओर बैठी हुई उस भिक्षुणियों की आयुष्मान् महाकाश्यप से धर्मोपदेश दिखा दिया पता दिया और उनके धार्मिक भावों को उद्बुद्ध कर दिया । धर्मोपदेश कर आयुष्मान् महाकाश्यप आसन से उठकर चले गये ।

तब युक्कतिस्सा भिक्षुणी असंतुष्ट होकर अवताप के साथ कहने लगी—क्या आर्थ महाकाश्यप को जय देवेहमुनि आत्मन् के सामने धर्मोपदेश करना अच्छा था ? कैसे, कोई सूर्य बचनेवाला किसी सूर्य बचानेवाले के पास सूर्य बचने का आश; कैसे ही आर्थ महाकाश्यप ने आर्थ आत्मन् के सामने धर्मोपदेश करने का साहस किया है ।

आयुष्मान् महाकाश्यप ने युक्कतिस्सा भिक्षुणी को पूसा कहते सुना ।

ग

तब, आयुष्मान् महाकाश्यप आयुष्मान् आत्मन् से बोले—आयुस आत्मन् ! क्या मैं सूर्य बचने-वाला हूँ और आप सूर्य बचानेवाले का मैं सूर्य बचानेवाला हूँ और आप सूर्य बचनेवाले ?

भन्ने काश्यप ! यह सूर्य की है इसे क्या कर दें ।

आत्मन् ! उन्हें सब आपसे विषय में और चर्चा न करे ।

आयुस आत्मन् ! आप क्या समझते हैं ?

क्या मगबाहू ने आपके विषय में भिक्षुसंघ के सामने उपस्थित किया था कि—भिक्षुणी ! अब मैं चाहता हूँ, प्रथम प्यास की भाँस कर बिहार करता हूँ—और आत्मन् भी "प्रथम प्यास की भाँस कर बिहार करता है ?

वही भन्ते ।

आयुस ! मेरे विषय में मगबाहू ने भिक्षुसंघ के सामने ऐसा उपस्थित किया था ।

[क्या प्यासबन्धनों के विषय में ऐसा समझ लेना चाहिये]

आवुस ! कोई यह ठीक ही कह सकता है—यह भगवान् का पुत्र, मुझसे उत्पन्न, धर्म से उत्पन्न, धर्म से निर्मिति, धर्मदायाद है जो उनके टाट जैसे रूखे पासुकूल को धारण करता है ।

आवुस ! जब मैं चाहता हूँ, प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहार करता हूँ ।

आवुस ! मैं आश्रवों के क्षीण हो जाने से, आश्रव-रहित चेतोविमुक्ति और प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान, साक्षात्कार कर और प्राप्तकर विहार करता हूँ ।

आवुस ! ...मेरी छ अभिज्ञायें नहीं छिप सकती ।

घ

धुल्लनन्दा भिक्षुणी धर्म से च्युत हो गई ।

§ १२. परम्परण सुत्त (१५. १२)

अव्याकृत, चार आर्यसत्य

एक समय आयुष्मान् महाकाश्यप और आयुष्मान् सारिपुत्र वाराणसी के पास ऋषिपतन मृगदाय में विहार करते थे ।

तब, आयुष्मान् सारिपुत्र सांक्ष को ध्यान से उठ जहाँ आयुष्मान् महाकाश्यप थे वहाँ गये, और कुशल क्षेम के प्रश्न पूछकर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् महाकाश्यप से बोले—आवुस काश्यप ! क्या जीव मरने के वाद रहता है ?

आवुस ! भगवान् ने ऐसा नहीं बतलाया है कि जीव मरने के वाद रहता है ।

आवुस ! तो क्या जीव मरने के वाद नहीं रहता ?

आवुस ! भगवान् ने ऐसा भी नहीं बतलाया है कि जीव मरने के वाद नहीं रहता है ।

आवुस ! तो क्या होता भी है, नहीं भी होता है, न होता है, न नहीं होता है ।

आवुस ! भगवान् ने इसे क्यों नहीं बताया है ?

आवुस ! क्योंकि, यह न तो परमार्थ के लिये है, न ब्रह्मचर्य का साधक है, न निर्वेद के लिये है, न विराग के लिये है, न निरोध के लिये है, न शान्ति के लिये है, न ज्ञान के लिये है, न सम्बोधि के लिये है, और न निर्वाण के लिये है । इसीलिये भगवान् ने इसे नहीं बताया ।

आवुस ! तो, भगवान् ने क्या बताया है ?

आवुस ! यह दुःख है—ऐसा भगवान् ने बताया है । यह दुःख-समुदय, निरोध, निरोध-गामिनी प्रतिपदा है—ऐसा भगवान् ने बताया है ?

आवुस ! भगवान् ने इसे क्यों बताया है ?

आवुस ! क्योंकि, यही परमार्थ का साधक है, ब्रह्मचर्य का साधक है, निर्वेद के लिये है निर्वाण के लिये है । इसी से भगवान् ने इसे बताया है ।

§ १३. सद्धम्मपतिरूपक सुत्त (१५. १३)

नकली धर्म से सद्धर्म का लोप

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिंडिक के आराम जेतवन में विहार करते थे ।

तब आयुष्मान् महाकाश्यप आयुष्मान् भगम् से बोले—आहुस भगम् ! धुल्लग्न्या मिथुनी का सहसा ऐसा कहना उचित नहीं। आयुस ! जब मैं सिर दाढ़ी मुकबा कापाय बन्ध पहन घर से बेघर हो प्रव्रजित हो गया हूँ और उन आईन् सम्बन्ध सम्बन्ध भगवान् को छोड़ किसी दूसरे को गुरु नहीं मानता हूँ।

आयुस ! पहले घरवासी रहते मेरे मन में यह हुआ—घर में रहना बड़ा संश्लेष है राधा है, और प्रव्रज्या लुका जाकास सा है। घर में रहत हुये बिस्वुछ भुख पूर्ण शक्किचित्त-सा महाबर्ष पाकन करवा बड़ा करित है। तो क्या न मैं सिर दाढ़ी मुकबा कापायबन्ध पहन घर से बेघर होकर प्रव्रजित हो जाऊँ !

आयुस ! तब मैं गुहरी का एक चीवर बना जो लोक में आईन् हैं उनके बरह्य से सिर दाढ़ी मुकबा कापाय बन्ध पहन घर से बेघर होकर प्रव्रजित हो गया।

सो मैंने इस प्रकार प्रव्रजित हो रास्ते में जाते हुये राजगुरु और जाकम्पा के बीच बहूपुत्र बाल पर भगवान् को बड़े हुए बैठा। देखकर मेरे मन में हुआ—यदि मैं किसी गुरु को देखूँ तो भगवान् ही को देखूँ। सुगत और सम्बन्ध सम्बन्ध।

आयुस ! सो मैंने वहीं भगवान् के चरणों पर गिर कर कहा—भगवान् मेरे गुरु हैं मैं आपका श्रावक हूँ।

आयुस ! ऐसा कहने पर भगवान् मुझसे बोले—काश्यप ! जो इस प्रकार के चित्त से समझागत श्रावक को बिना जाने कह दे कि 'मानता हूँ' बिना बूझे कह दे कि 'देखता हूँ' उसका सिर टूट-टूट कर गिर जाय। काश्यप ! मैं जानकर कहता हूँ कि 'मानता हूँ' देखकर कहता हूँ कि 'देखता हूँ'।

काश्यप ! इसकिये तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—स्वचित्तों में अपने जोगा में और मन्धम में ही अपघपा प्रसुपस्थित होगी।

काश्यप ! इसकिये तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—कुशाकापसंहित को भ्रम सुनूँगा सभी को ब्रह्म कर मन में क्या पुरुषप्रवित से सुनूँगा। --

कमरुप ! इसकिये तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—अत्यन्त कमकारी वापगतास्मृति मुझसे कभी भी टूटने न पायगी।

तब भगवान् मुझ ऐसा उपदेश न आसब से उठकर चले गये।

आयुस ! सात दिनों तक मैं बिना मुष्ट हुये ही रात्रिपिण्ड का भोग करता रहा। आठवें दिन मुझे विष्व ज्ञान उपपन्न हो गया।

+ + + +

आयुस ! तब भगवान् रास्ते से हट एक वृक्ष के नीचे गये।

आयुस ! तब मैंने अपनी गुहरी के सपाटी को चौपैठ कर बिना बिना और भगवान् से कहा—भगन् ! भगवान् इस पर बैठें या फिरकत तक मेरे हिट और सुल के किये हा।

भगवान् बिठे आसब पर बैठ गये।

आयुस ! बट कर भगवान् मुझसे बोले काश्यप ! तुम्हारी वह गुहरी की सपाटी तो बहुत सुकृष्ण है।

भगन् ! मुझपर अनुकम्पा करके भगवान् इस सपाटी को स्वीकार करें।

काश्यप ! तुम मेरे उठ जैसे कपे पुराने पौसुहूक को चारन करोगे ?

भगन् ! हाँ चारन करूँगा।

आयुस ! सो मैंने भगवान् को अपनी सपाटी दे दी और उनके पौसुहूक को अपने चारन कर दिया।

पाँचवाँ परिच्छेद

१६. लाभसत्कार-संयुक्त

पहला भाग

प्रथम वर्ग

§ १. दारुण सुत्त (१६. १. १)

लाभसत्कार दारुण है

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे ।

“भगवान् बोले—भिक्षुओ ! अनुत्तर निर्वाण की प्राप्ति के मार्ग में लाभसत्कार बड़ा दारुण है, कटु है, तीखा है, विघ्नकर है ।

भिक्षुओ ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये कि—लाभ, सत्कार, प्रशंसा आदि को छोड़ दूँगा, उन्हें मन में ठहराने नहीं दूँगा ।

भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा ही सीखना चाहिये ।

§ २. वालिस सुत्त (१६. १. २)

लाभसत्कार दारुण है, चंशी की उपमा

श्रावस्ती ' जेतवन में ।

भिक्षुओ ! अनुत्तर निर्वाण की प्राप्ति के मार्ग में लाभसत्कार बड़ा दारुण है, कटु है, तीखा है, विघ्नकर है ।

भिक्षुओ ! जैसे, अंकुसी फेंकनेवाला चारा लगाकर अकुसी को गहरे पानी में फेंक दे । तब, चारे के लोभ से कोई मछली उसे निगल जाय । भिक्षुओ ! इस तरह, वह मछली अंकुसी को निगल कर बड़े दुःख और विपत्ति में पड़ जाती है, मछुआ जो चाहे उससे करता है ।

भिक्षुओ ! यहाँ अंकुसी फेंकनेवाला मछुआ पापी मार को ही समझना चाहिये, और उसकी अंकुसी यही लाभ, सत्कार, प्रशंसा आदि है ।

भिक्षुओ ! जो भिक्षु लाभदि पाने पर बड़ा खुश होता है और आनन्द उठाता है, वह मार की अंकुसी में फँसा हुआ समझा जाता है । वह दुःख और विपत्ति में पड़ता है । मार उसमें जैसा चाहता है करता है ।

इसलिये, भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये ।

तब आयुष्मान् महाकाश्यप अर्हो भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर पङ्क और बंद गये ।

एक और बैठ आयुष्मान् महाकाश्यप भगवान् से बोले :—भग्वन् ! क्या हेतु है क्या प्रत्यय है कि पहले जन्म ही शिक्षापत्र थे और (उस पर भी) बहुतों ने अर्हत्त्व प्राप्त किया था ? भग्वन् ! क्या हेतु है क्या प्रत्यय है कि इस समय शिक्षापत्र बहुत हैं और कम अर्हत्त्व-पत्र पर प्रतिष्ठित हैं ?

काश्यप ! ऐसा ही होता है—सर्वाँ के हीन होने और सद्धर्म के क्षय होने पर बहुत शिक्षापत्र होते हैं और जन्म मिथु अर्हत्त्व-पत्र पर प्रतिष्ठित होते हैं ।

काश्यप ! तब तक सद्धर्म का कोप नहीं होता है जब तक कोई दूसरा नक्की धर्म उठ खड़ा नहीं होता । जब कोई नक्की धर्म उठ खड़ा होता है तो सद्धर्म का कोप हो जाता है । काश्यप ! जैसे तब तक सत्त्व साधन का कोप नहीं होता जब तक नक्की सैवार होने नहीं लगता—वैसे ही ।

काश्यप ! दुष्क्रीपाणु, सद्धर्म का लुप्त नहीं करता; न आपोधातु न तेजोधातु, और न वायुधातु । किन्तु यही वे मूर्ख लोग टापत्र होते हैं जो सद्धर्म का लुप्त कर देते हैं । काश्यप ! जैसे अधिक मार से नाव डूब जाती है वम धर्म डूब नहीं जाता ।

काश्यप ! पंचे पाँच कारण हैं जिससे सद्धर्म नष्ट होकर लुप्त हो जाता है । कौन से पाँच ?

(१) काश्यप ! मिथु मिथुनी अपामक अपासिकार्थे बुद्धि क प्रति गौरव नहीं करतीं उनका रक्षाल नहीं करतीं हैं । (२) धर्म के प्रति । (३) संघ के प्रति । (४) शिक्षा के प्रति । (५) समाधि के प्रति ।

काश्यप ! यही पाँच कारण हैं जिससे सद्धर्म नष्ट हो कर लुप्त हो जाता है ।

काश्यप ! ऐसे पाँच कारण हैं जिससे सद्धर्म खड़ा रहता है क्षीय और लुप्त नहीं होता ।

(१) बुद्धि क प्रति गौरव । (२) धर्म के प्रति । (३) संघ के प्रति । (४) शिक्षा के प्रति । (५) समाधि के प्रति ।

काश्यप ! यही पाँच कारण हैं जिससे सद्धर्म खड़ा रहता है क्षीय और लुप्त नहीं होता ।

काश्यप-संयुक्त समाप्त ।

वह भिक्षु लाभान्तरों पर फूल जाता है और दूसरे शीलवन्त भिक्षुओं को नीचा समझता है ।
भिक्षुओ ! उस मूर्ख भिक्षु का यह चिरकाल तक अहित और दुःख के लिये होता है ।

• • • ऐसा सीखना चाहिये ।

§ ६ असनि सुत्त (१६. १. ६)

विजली की उपमा और लाभसत्कार

श्रावस्ती • ।

भिक्षुओ ! विजली के गिरने की उपमा उस शैक्ष्य भिक्षु से दी जाती है जिसका मन लाभान्तरों में फँसता है ।

भिक्षुओ ! लाभान्तरों को ही विजली का गिरना समझना चाहिये ।

• ऐसा सीखना चाहिये ।

§ ७. दिट्ठ सुत्त (१६. १ ७)

विपैला तीर

श्रावस्ती • ।

विपैले तीर से सुभे पुरुष की उपमा उस शैक्ष्य भिक्षु से दी जाती है जिसका चित्त लाभान्तरों में फँस जाता है ।

• • • ऐसा सीखना चाहिये ।

§ ८. सिगाल सुत्त (१६. १ ८)

रोगी शृगाल की उपमा

श्रावस्ती • ।

भिक्षुओ ! रात के भिनसारे में तुमने शृगालों को रव करते सुना है ?

हाँ भन्ते !

भिक्षुओ ! वह शृगाल वृद्धा, उक्कण्णक नामक रोग से पीड़ित हो न तो एकान्त में चैन पाता है, न वृक्ष के नीचे और न खुली जगह में । जहाँ-जहाँ जाता है, जहाँ-जहाँ खड़ा रहता है, जहाँ-जहाँ बैठता है और जहाँ-जहाँ लेटता है वहाँ-वहाँ बड़ा दुःख भोगता है ।

भिक्षुओ ! वैसे ही, कितने भिक्षु लाभान्तरों में चित्त फँसा कर न तो शून्यागार न वृक्ष के नीचे और न खुली जगह में रमते हैं । जहाँ-जहाँ जाते हैं...दुःख उठाते हैं ।

ऐसा सीखना चाहिये ।

§ ९. वेरम्ब सुत्त (१६ १ ९)

इन्द्रियों में संयम रखना, वेरम्ब वायु की उपमा

• • • भिक्षुओ ! ऊपर आकाश में वेरम्ब नामकी एक हवा चलती है । इसके बीच में जो पक्षी पड़ता है वह फँसा जाता है । उस पक्षी के पैर, पाख, शिर और शरीर सभी अलग अलग हो जाते हैं ।

भिक्षुओ ! वैसे ही • • • भिक्षुगण के लिये पेटता है । उसके शरीर, ध्यान और मन अरक्षित रहते हैं । स्मृति और इन्द्रियों का संयम नहीं रहता है ।

/ ६ ३ कुम्मा सुत्त (१६ १ ३)

जामादि मयानक हैं, कपुमा भीर व्याधा की उपमा

भाषस्ती ।

मिथुओ ! पूर्वकाल में किसी बलाघ्नय में कपुओं का एक परिवार बहुत समय से वास करता था । तब एक कपुने ये दूसरे कपुने से कहा—प्यारे कपुये ! उस बगइ मय जाओ । किन्तु वह कपुमा उस बगइ पर चला गया । वहाँ किसी व्याधे ने उसे भाखा चकाकर बेध दिया । तब वह कपुमा वहाँ दूसरा कपुमा या वहाँ गया । उस कपुने ने इसे दूर ही से माते देखा । देखकर उसने कहा—प्यारे ! उस स्थान पर गये तो नहीं थे ।

प्यारे ! मैं उस स्थान पर गया था ।

प्यारे ! तो तुम माछे से छिद्-बिध तो नहीं गये ?

प्यारे ! मैं माछे से छिद्-बिध तो नहीं गया हूँ, किन्तु वह बापा मेरे पीछे-पीछे गया है ।

प्यारे कपुये ! तुम छिद् गये हो बिध गये हो । इसी व्याधे से तुम्हारे कितने पाप दावे फैलाकर मार दिये गये हैं । जाओ तुम अब भरे काम के नहीं रहे ।

मिथुओ ! यहाँ व्याधा पापी मार को ही समझना चाहिये । माका यही कामादि हैं । बापा संसारमें स्वाद केना भीर राग करता है ।

[ऊपर के देखा]

६ ४ दीघलोमी सुत्त (१६ १ ४)

कम्मे बाळ बाळे मँके की उपमा

भाषस्ती जेतवम में ।

मिथुओ ! जैसे कम्मे-कम्मे बाळ बाळ कोई मँका जँदीकी झाड़ी में पैठ जाय । वह हजर उबर कम चाप फँस चाप बझ चाप बड़ी बिपत्ति में पड़ जाय ।

मिथुओ ! वैसे ही कितने मिथु कामादि में पड़कर विपद् बिध से मुचइ में पड़न और पाप पीयर के गाँव या कदवे में मिझारन के किये पैठता है । वह हजर उबर छग जाता है फँस जाता है पड़ जाता है ।

[पूर्ववत्]

६ ५ एसक सुत्त (१६ १ ५)

समसत्कार से बानमिद्ध होना बहितकर है

मिथुओ ! जैसे मीका जानेवाका कोई पिण्ड मीका से कचपय सजा हो और उससे सामने मीक की एक डेर पड़ी हो । इससे वह अपने को दूसरे पिण्डों से बचा समझे—मैं मीका जानेवाका पिण्ड मीका से कचपय सजा हूँ और मेरे सामने मीके की एक डेर पड़ी है ।

मिथुओ ! वैसे ही मिझारन के किये पैठता है । वह वहाँ भोजन करके दूसरे दिग् के किये की बिमन्निष्ठ होता है और उसका पात्र पूरा होता है ।

वह आराम में जाकर मिथुओं के सामने गर्ब के साथ कहता है—मैंने भोजन कर लिया दूसरे दिग् के किये की बिमन्निष्ठ हूँ और मेरा पात्र भी पूरा है । मैं बीबरादि का काम करनेपाछा हूँ । वे दूसरे जमागे अप्यग्रुप मिथु बीबरादि का काम नहीं करते ।

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

§ १. पठम पाती सुत्त (१६. २. १)

लाभसत्कार की भयंकरता

श्रावस्ती***।

भिक्षुओ ! ***लाभसत्कार बड़ा दारुण है ।

भिक्षुओ ! मैंने एक समय एक पुरुष के चित्त को अपने चित्त से जान लिया.—यह भिक्षु सोने की थाली में भरे हुये रजत-चूर्ण के लिये भी जान-वृद्ध कर झूठ नहीं बोलेगा ।

उसी पुरुष को मैंने आगे चलकर लाभसत्कार के लिये जान वृद्ध कर झूठ घोलते देखा ।

* इसलिये, ऐसा सीखना चाहिये ।

§ २. दुतिय पाती सुत्त (१६. २. २)

लाभसत्कार की भयंकरता

श्रावस्ती** ।

भिक्षुओ ! मैंने एक समय एक पुरुष के चित्त को अपने चित्त से जान लिया—यह भिक्षु चाँदी की थाली में भरे हुये सुवर्ण-चूर्ण के लिये भी जान वृद्ध कर झूठ नहीं बोलेगा ।

उसी पुरुष को** ।

§ ३-१०. सिङ्गी सुत्त (१६. २. ३-१०)

लाभसत्कार की भयंकरता

- ३ सुवर्ण-निष्क के लिये भी जान वृद्ध कर झूठ नहीं ।
४. एक सौ सुवर्ण-निष्क के लिये भी ।
५. ** निष्कों की एक ढेर के लिये भी ।
६. निष्कों की सौ ढेर के लिये भी ।
७. जातरूप से भरी हुई सारी पृथ्वी के लिये भी ।
८. ससार की किसी भी वस्तु के लिये ।
९. प्राणों के निकल जाने पर भी ।
१०. सबसे सुन्दरी स्त्री के लिये भी ।

द्वितीय वर्ग समाप्त ।

बढ़ वहाँ किसी की को देखता है जो अपने भयों को डीक स डेकी न हो। उसे देख उसके चित्त में राग बसा जाता है। चित्त में राग बसे जाने से वह शिक्षा को छोड़ गृहस्थ हो जाता है। तब, दूसरे लोग उसके भीतर को, पाप को भ्रासन को धीरे सुईदानी को उखा-उखा कर ले जाते हैं। बेरम्ब हवा में पड़े पत्ती की तरह।

“ येमा सीरमा चाहिये ।

§ १० सगाथा सुत्त (१६ १ १०)

लामसत्कार दाग्ग ई

भाषस्ती***।

मिथुभी ! अनुत्तर निर्वाण की प्राप्ति के मार्ग में लामसत्कार बड़ा दाइन है, कट्ट है तीया है बिच्छर है ।

मिथुभी ! मैं देखता हूँ कि कितने लोग सत्कार में अपने चित्त को जैसा कर मरने के बाद मरक में उत्पन्न हो पुनर्जि को प्राप्त होते हैं ।

मिथुभी ! मैं देखता हूँ कि कितने लोग असत्कार में चित्त को लगा कर मरने के बाद मरक में उत्पन्न हो पुनर्जि को प्राप्त होते हैं ।

मिथुभी ! मैं देखता हूँ कि कितने लोग असत्कार और सत्कार में चित्त लगाकर...पुनर्जि को प्राप्त होते हैं ।

मिथुभी ! अनुत्तर निर्वाण की प्राप्ति के मार्ग में लामसत्कार इतना दाग्ग है कट्ट है तीया है बिच्छर है ।

मिथुभी ! इसलिए, येमा सीरमा चाहिये कि—स्वयं सत्कार, परमा को छोड़ देना उन्हें मन में रखने नहीं देना ।

मगवान् यह बाळे ! इतना कहकर कुछ फिर भी बाळे—

आ सत्कार वा असत्कार के मित्रों पर

अपमार्ग से विहार करत हुए समाधि को नहीं बिगाटा है ।

अब प्रबल में सत्कार गृहस्थ छिटि रगनवान को,

मनुकन उवादान-धीन होकर समन करनवाका कहता है ॥

प्रथम योग समाप्त ।

...उपासिका भ्रायिकाओं में यही दोनों आदर्श हैं ।

वेटी ! यदि तुम घर से बेघर हो प्रव्रजित होना तो चैमी होना जैसी कि भिक्षुणी क्षेमा और उत्पलवर्णा हैं ।

.. भिक्षुणी भ्रायिकाओं में यही दोनों आदर्श हैं ।

...[ऊपर के ऐमा]

§ ५. पठम समणब्राह्मण सुत्त (१६. ३. ५)

लाभसत्कार के यथार्थ दोष-ज्ञान से मुक्ति

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! जो भ्रमण या ब्राह्मण लाभादि के आम्बाद, आदीनव, और निःसरण को यथाभूत नहीं जानते हैं, वे * प्राप्त कर नहीं विहार करते हैं ।

भिक्षुओ ! जो जानते हैं ** प्राप्त कर विहार करते हैं ।

§ ६. दुतिय समणब्राह्मण सुत्त (१६. ३. ६)

लाभसत्कार के यथार्थ दोष-ज्ञान से मुक्ति

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! जो भ्रमण या ब्राह्मण लाभादि के समुदय, अस्तगम, आम्बाद, आदीनव और निःसरण को यथाभूत नहीं जानते हैं, वे * प्राप्त कर नहीं विहार करते हैं ।

प्राप्त कर विहार करते हैं ।

§ ७. ततिय समणब्राह्मण सुत्त (१६. ३. ७)

लाभसत्कार के यथार्थ निरोध-ज्ञान से मुक्ति

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! जो लाभादि के समुदय, निरोध, और निरोधगामिनी प्रतिपदा को नहीं जानते हैं, वे प्राप्त कर नहीं विहार करते हैं ।

* प्राप्त कर विहार करते हैं ।

§ ८. छवि सुत्त (१६. ३. ८)

लाभसत्कार खाल को छेद देता है

.. भिक्षुओ ! लाभादि खाल को छेद देता है, खाल को छेद कर चाम को छेद देता है, मांस, नहारू, हड्डी, मज्जा को छेद देता है ।

§ ९. रज्जु सुत्त (१६. ३. ९)

लाभसत्कार की रस्सी खाल को छेद देती है

श्रावस्ती ।

.. लाभसत्कार दारुण है ।

भिक्षुओ ! लाभसत्कार हड्डी को छेदकर मज्जा में जा लगता है ।

तीसरा भाग

तृतीय वर्ग

§ १ पातुगाम सुच (१६ ३ १)

कामसत्कार दारण है

भावस्ती ।

कामसत्कार दारण है ।

मिथुनी ! एकान्त में कोई जकेसी की भी जिसक विष को सुमाने में असमर्थ होती है, उसका बिना काम सत्कार भीर प्रसंसा में फँस जाता है ।

ऐसा सीखना चाहिये ।

§ २ करयाणी सुच (१६ ३ २)

कामसत्कार दारण है

‘एकान्त में सुन्दरी की भी ।

§ ३ पुच सुच (१६ ३ ३)

कामसत्कार में न फँसना पुत्र को आदर्श भाषण

भावस्ती ।

कामसत्कार दारण है ।

मिथुनी ! अज्ञात अपासिका अपनी हककीये काबूके पुत्र को इस तरह सिखाने दे—ठाव ।
बैसा बनना बैसा बिना गृहपति या आश्रयक इत्यर्थ है ।

मिथुनी ! क्योंकि मेरे गृहस्थ आश्रमों में नहीं हो आदर्श माने जाते हैं ।

—ठाव । यदि तुम घर से बेबर हो जाओ तो बैसा ही बनना बीसे सारिपुत्र भीर मौल्यस्पापन हैं ।

मिथुनी ! क्योंकि मेरे मिथु आश्रमों में नहीं हो आदर्श माने जाते हैं ।

—ठाव ! अग्रमच होकर सिद्धा का पाकन करते हुए कामादि के घर में मत फँसना । कामादि के घर में फँसने से वह तुम्हारे विषय के किये होगा ।

“ ऐसा सीखना चाहिये ।

§ ४ एकधीता सुच (१६ ३ ४)

कामसत्कार में न फँसना पुत्र की आदर्श भाविकार्य

भावस्ती ।

‘कामसत्कार दारण’ है ।

मिथुनी ! अज्ञात अपासिका अपनी हककीये काबूकी कबूकी को इस तरह सिखाने—वेटी !
तुम बैसी होना बैसी की अपासिका सुम्भुत्तरा भीर येसुककदकिय बन्द माता हैं ।

चौथा भाग

चतुर्थ वर्ग

१. भिन्दि सुत्त (१६. ४. १)

लाभसत्कार के कारण संघ में फ़ट

श्रावस्ती***।

***लाभसत्कार दारण* है।

लाभसत्कार में फँस और पड़कर देवदत्त ने संघ को फोड़ दिया।

प्रेमा मीखना चाहिए।

§ २. मूल सुत्त (१६. ४. २)

पुण्य के मूल का कटना

देवदत्त के पुण्य के मूल कट गये।

§ ३. धम्म सुत्त (१६. ४. ३)

कुशल धर्म का कटना

***देवदत्त के कुशल धर्म कट गये।

§ ४. सुक्कधम्म सुत्त (१६. ४. ४)

शुल्क धर्म का कटना

देवदत्त के शुल्क धर्म कट गये।

§ ५. पक्कन्त सुत्त (१६. ४. ५)

देवदत्त के वध के लिए लाभसत्कार का उत्पन्न होना

एक समय देवदत्त के जाने के कुछ ही बाद भगवान् राजगृह में गृद्धकूट पर्वत पर विहार करते थे।

वहाँ, भगवान् ने देवदत्त के विषय में भिक्षुओं को आमन्त्रित किया।

भिक्षुओ ! देवदत्त के अपने वध के लिए उसे इतना लाभसत्कार उत्पन्न हुआ है। अपनी परिहानि के लिए।

भिक्षुओ ! जैसे, केला का वृक्ष अपने वध और अपनी परिहानि के लिए ही फल देता है, वैसे ही देवदत्त के अपने वध के लिए।

भिक्षुओ ! जैसे, चेणु का वृक्ष अपने वध और अपनी परिहानि के लिए ही फल देता है।

भिक्षुओ ! जैसे नल।

भिक्षुओ ! जैसे, खचरी अपने वध और अपनी परिहानि के लिए ही वच्चा देती है।

मिथुभो ! जैसे कोई बकबान् पुरुष एक सबल कमी पारो से बंधे में खदेर कर बैठे। वह बागा पाल को डेरकर हथी को डेरकर मजा में आ क्रो।
बसे ही ।

§ १० मिकस्तु सुत्त (१६ अ. १०)

कामसत्कार अर्हत् के छिप भी विघ्नकारक

आवर्त्ती ।

मिथुभो ! जो मिथु क्षीणभाव अर्हत् है उसके किये भी मैं कामसत्कार को विघ्न बताता हूँ ।

ऐसा कहने पर कायुप्मान् आनन्द मगबान् से बोले—मन्ते ! मन्ता क्षीणभाव अर्हत् मिथु को कामसत्कार कैसे विघ्न कर सकता है ?

आनन्द ! जिसका चित्त विस्तृत विस्तृत हो कुछ है उसके किये मैं कामसत्कार को विघ्न नहीं बताता ।

आनन्द ! जो कुछ आतापी प्रहिताय्य इसी काम में कुछ विहार को प्राप्त कर केवेवाकों के किये मैं कामसत्कार को विघ्नकर बताता हूँ ।

आनन्द ! निर्वाण मार्ग के मार्ग के किये कामसत्कार ऐसा बाधक कट्ट तीक्ष्ण और विघ्नकर है ।

आनन्द ! इसकिये तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—काम सत्कार और प्रसंगा को मैं छोड़ दूँगा
जबमें जयये चित्त को कैसे नहीं दूँगा ।

आनन्द ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये ।

तृतीय पर्ग समाप्त ।

छठाँ परिच्छेद

१७. राहुल-संयुक्त

पहला भाग

प्रथम वर्ग

§ १. चक्षु सुत्त (१७. १ १)

इन्द्रियों में अनित्य, दुःख, अनात्म के मनन से विमुक्ति

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में ।

एक ओर घेठ, आयुष्मान् राहुल भगवान् से बोले—भन्ते ! भगवान् मुझे उपदेश दें कि जिसे सुनकर मैं एकान्त में अकेला अप्रमत्त, आतापी, और प्रहितात्म होकर विहार करूँ ।

राहुल ! तो, क्या समझते हो चक्षु नित्य है या अनित्य ?

अनित्य, भन्ते !

जो अनित्य है वह दुःख है अथवा सुख ?

दुःख, भन्ते !

जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है क्या उसे ऐसा समझना चाहिये—यह मेरा है यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है ?

नहीं भन्ते !

[वैसे ही]—श्रोत्र , घ्राण , जिह्वा , काया , मन ।

राहुल ! यह जान और सुनकर आर्यश्रावक चक्षु से मन को उचटा देता है ।

उचटा कर विरक्त हो जाता है । विरक्त रह विमुक्त हो जाता है । विमुक्त होने से विमुक्त हो गया ऐसा ज्ञान हो जाता है । जाति क्षीण हुई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, और कुछ बाकी नहीं बचा—ऐसा जान लेता है ।

§ २ रूप सुत्त (१७ १ २)

रूप में अनित्य, दुःख, अनात्म के मनन से विमुक्ति

राहुल ! तो क्या समझते हो, रूप , शब्द , गन्ध , रस , स्पर्श , धर्म नित्य है वा अनित्य ?

अनित्य भन्ते !

[पूर्ववत्]

पेसा सीखना चाहिये ।

मगवान् यह जोखे । इतना कह कर कुछ फिर भी बोले—

कछ बेका को मार होता है

कछ बेणु को कछ बक को

सत्कार कायुत्प को मार होता है

सैमे अपना गर्म सचरी को ॥

§ ६ रथ सुच (१६ ४ ६)

देवदत्त का कामसत्कार उसकी हानि के लिए

राजगृह घेनुयत ।

उस समय कुमार भञ्जतशत्रु सांघ सुबह पाँच सी राहों को लेकर देवदत्त के उपस्थान के के छिये धामा करता था । पाँच सी पक्वान की याकिर्षो भेजी जाती थी ।

तब कुछ मिथु बहों मगवान् ये बहों भाये भीर मगवान् का जमिबादत कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ कर अब मिथुओं ने मगवान् को कहा—भन्ने । कुमार भञ्जतशत्रु याकिर्षो भेजी जाती है ।

मिथुओं ! देवदत्त के कामसत्कार की ईर्ष्या मत करो । हमसे कुछक जमों में देवदत्त की हानि होई बुद्धि बहों ।

मिथुओं ! जैस जगद कुते के नाक पर कोई पिल काद दे उससे कुत्ता भी जगद हो उदे; वैसे ही, जब तक कुमार भञ्जतशत्रु देवदत्त का उपस्थान इस प्रकार करता रहैया तब तक कुछक जमों में उसकी हानि होई बुद्धि बहों ।

पेसा सीखना चाहिये ।

§ ७ माता सुच (१६ ४ ७)

कामसत्कार दादज ह

भावस्ती ।

मिथुओं ! कामसत्कार दादज है ।

मिथुओं ! मैं किसी पुत्र के बिच को अपने बिच से जाव देता हूँ—बह माता के कारण भी जाव दूँ कर दूँ बहों बोधेया । मिथुओं ! बसी को कामसत्कार में कैसे कामवाप कर दूँ बोधे देवता हूँ ।

मिथुओं ! इसकिये दूँगे ऐसा सीखना चाहिये—कामसत्कार को जोव दूँगा कामसत्कार में अपने बिच को बहों कैसे देवता ।

मिथुओं ! ऐसा सीखना चाहिये ।

§ ८-१३ पिता सुच (१६ ४ ८-१३)

कामसत्कार दादज है

(८) पिता, (९) माता, (१०) बहन, (११) पुत्र, (१२) पुत्री, (१३) स्त्री

[कपर के पैसा]

चतुर्थं पर्व समाप्त ।

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

§ १. चक्षु सुत्त (१७. २. १)

चक्षु आदि में अनित्य, दुःख, अनात्म की भावना से मुक्ति

प्रावस्ती ।

• एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् राहुल से भगवान् बोले—राहुल ! ...चक्षु नित्य है
दा अनित्य ?

अनित्य भन्ते !

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?

दुःख भन्ते !

जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है उसे क्या यह कहना उचित है कि—यह मेरा है, यह
मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है ?

नहीं भन्ते !

श्रोत्र • , घ्राण • , जिह्वा • , काया • , मन • ।

राहुल ! ऐसा देख और सुनकर आर्यप्रावक इनसे उचटा रहता है । उचटा रह वैराग्य करता है ।
वैराग्य से विमुक्त हो जाता है । विमुक्त होने से विमुक्त हो गया ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है । जाति क्षीण
हुई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, और कुछ बाकी नहीं बचा है—ऐसा जान
लेता है ।

इसी भाँति दश सूत्रान्त कर लेने चाहिये ।

§ २-१०. रूप सुत्त (१७ २. २-१०)

अनित्य, दुःख की भावना

प्रावस्ती • ।

राहुल ! तो क्या समझते हो रूप —धर्म • , चक्षुविज्ञान —मनोविज्ञान • , चक्षुसस्पर्श • •
—मन सस्पर्श • , चक्षुसस्पर्शजा वेदना • •—मन सस्पर्शजा वेदना • • , रूप सज्ञा —धर्म सज्ञा • ,
रूपसचेतना • •—धर्मसचेतना • , रूपतृष्णा —धर्मतृष्णा • , पृथ्वी धातु —विज्ञान धातु • ,
रूप, वेदना, सज्ञा, सस्कार और विज्ञान नित्य हैं या अनित्य ?

अनित्य भन्ते ।

§ ११. अनुसय सुत्त (१७ २. ११)

सम्यक् मनन से मानानुशय का नाश

प्रावस्ती ।

• एक ओर बैठ, आयुष्मान् राहुल भगवान् से बोले—भन्ते ! क्या जान और देख लेने से

ई ३ विष्णुसुत (१७ १ ३)

विज्ञान में अनित्य बुद्धि, अनात्म के मनन से मुक्ति

राहुक ! तो क्या समझते हो बहुविज्ञान ओषधिविज्ञान प्राणविज्ञान विष्णुविज्ञान
कावाविज्ञान मनोविज्ञान नित्य है वा अनित्य ?

अनित्य मन्ते ।

ई ४ सम्पर्कसुत (१७ १ ४)

सम्पर्क में अनित्य बुद्धि अनात्म के मनन से मुक्ति

राहुक ! तो क्या समझते हो बहुसम्पर्क मनसम्पर्क नित्य है वा अनित्य ?

अनित्य मन्ते ।

ई ५ वेदनासुत (१७ १ ५)

वेदना का मनन

राहुक ! तो क्या समझते हो बहुसंस्पर्श वेदना मन संस्पर्श वेदना नित्य है वा
अनित्य ?

अनित्य मन्ते ।

ई ६ सञ्ज्ञासुत (१७ १ ६)

सञ्ज्ञा का मनन

राहुक ! तो क्या समझते हो रूप-सञ्ज्ञा —धर्म-सञ्ज्ञा नित्य है वा अनित्य ?

अनित्य मन्ते ।

ई ७ सञ्चेतनासुत (१७ १ ७)

सञ्चेतना का मनन

राहुक ! तो क्या समझते हो रूप-सञ्चेतना —धर्म-सञ्चेतना नित्य है वा अनित्य ?

अनित्य मन्ते ।

ई ८ तृणासुत (१७ १ ८)

तृणा का मनन

राहुक ! तो क्या समझते हो रूप-तृणा नित्य है वा अनित्य ?

अनित्य मन्ते ।

ई ९ धातुसुत (१७ १ ९)

धातु का मनन

राहुक ! तो क्या समझते हो इच्छा-धातु आपोधातु -- तेजो-धातु वायु-धातु
आकाश-धातु -- विज्ञान-धातु नित्य है वा अनित्य ?

अनित्य मन्ते ।

ई १० सुखसुत (१७ १ १०)

सुख का मनन

राहुक ! तो क्या समझते हो रूप- सुख संज्ञा संस्पर्श विज्ञान नित्य है वा
अनित्य ?

अनित्य मन्ते ।

प्रथम ध्या समाप्त ।

सातवाँ परिच्छेद

१८. लक्षण-संयुक्त

पहला भाग

प्रथम वर्ग

§ १. अट्टिपेसि सुत्त (१८. १. १)

अस्थि-कंकाल, गौहत्या का दुष्परिणाम

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह में वेलुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् लक्षण और आयुष्मान् महामौद्गल्यायन गृद्धकूट पर्वत पर विहार करते थे ।

तब, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन पूर्वाह्न-समय पहन और पात्रचीवर ले जहाँ आयुष्मान् लक्षण थे वहाँ गये । जाकर आयुष्मान् लक्षण से बोले—आवुस लक्षण ! चलें, राजगृह में भिक्षाटन के लिये पैठें ।

‘आवुस, बहुत अच्छा’ कहकर आयुष्मान् लक्षण ने आयुष्मान् महामौद्गल्यायन को उत्तर दिया ।

तब, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने गृद्धकूट पर्वत से उतरते हुये एक जगह सुसकरा दिया ।

तब, आयुष्मान् लक्षण आयुष्मान् महामौद्गल्यायन से बोले—आवुस ! आप के सुसकरा देने का क्या हेतु है ?

आवुस लक्षण ! इस प्रश्न का यह उचित-काल नहीं है । भगवान् के सामने मुझे यह प्रश्न पूछना

तब, आयुष्मान् लक्षण और आयुष्मान् महामौद्गल्यायन भिक्षाटन से लौट भोजन कर लेने के बाद जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् लक्षण आयुष्मान् महामौद्गल्यायन से बोले—आप आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने गृद्धकूट पर्वत से उतरते हुये एक जगह सुसकरा दिया । सो आपके इस सुसकरा देने का क्या हेतु था ?

आवुस ! गृद्धकूट पर्वत से उतरते हुये मैंने हड्डियों के एक कंकाल को आकाश मार्ग से जाते देखा । उसे गीध भी, कौए भी, और चील भी क्षपट-क्षपट कर नोचते थे, घीचते थे, टुकड़े-टुकड़े कर देते थे, और वह आर्तस्वर कर रहा था ।

आवुस ! तब, मेरे मन में ऐसा हुआ—बड़ा आश्चर्य है, बड़ा अद्भुत है ! ऐसे भी प्राणी हैं । इस प्रकार का भी आत्मभाव-प्रतिलाभ होता है ।

तब, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! मेरे श्रावक आँख खोले विहार करते हैं, ज्ञान के साथ विहार करते हैं । मेरे श्रावक इस प्रकार को भी जान लेते हैं, देख लेते हैं, साक्षात्कार कर लेते हैं ।

भिक्षुओ ! पहले मैंने भी उस सत्त्व को देखा था, किन्तु किसी को नहीं कहा । यदि मैं कहता तो

विज्ञान-सहित इस शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार = ममंकार = मानानुष्ठान नहीं होते हैं ?

राहुक ! अतीत अवगत या वर्तमान के, अपभ्यास या बाहर के स्थूल या सूक्ष्म, हीन या प्रवीण, दूर के या निकट के कितने रूप हैं सभी न तो मेरे हैं न मैं हूँ, न मेरे आत्मा हैं। जो इसे पचाभूत सम्यक् प्रज्ञा से देखता है।

कितनी बेवना संज्ञा संस्कार और विज्ञान हैं सभी न तो मेरे हैं, न मैं हूँ न मेरे आत्मा हैं। जो इसे पचाभूत सम्यक् प्रज्ञा से देखता है।

राहुक ! इसे ज्ञान और देख केने से विज्ञान-सहित इस शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार = ममंकार = मानानुष्ठान नहीं होते हैं।

§ १२ अपगत सुत (१७ २ १२)

ममत्त्व के त्याग से मुक्ति

आवस्ती ।

“ एक ओर बैठ अपुष्पात् राहुक मगवान् से बोले — भन्ते ! क्या ज्ञान और देख केने से विज्ञान-सहित इस शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार ममंकार और मान इत बाले हैं मम हृद शान्त और बिमुक्त हो जाता है ?

राहुक ! अतीत अवगत या वर्तमान के कितने रूप हैं सभी न तो मेरे हैं न मैं हूँ, न मेरे आत्मा हैं।

बेवना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

राहुक ! इसे ज्ञान और देख केने से विज्ञान-सहित इस शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार ममंकार और मान इत बाले हैं मम हृद शान्त और बिमुक्त हो जाता है।

राहुक संयुक्त समाप्त ।

§ ८. सूचिसारथी सुत्त (१८. १. ८)

सूई-जैसा लोम और सारथी

सूचिलोम पुरुष को ।

• इसी राजगृह में सारथि था ।

§ ९. सूचक सुत्त (१८. १. ९)

सूई-जैसा लोम और सूचक

सूचिलोम पुरुष को ।

इसी राजगृह में सूचक था ।

§ १० गामकूटक सुत्त (१८. १. १०)

दुष्ट गाँव का पञ्च

कुम्भण्ड पुरुष को आकाश से जाते देखा ।

वह जाते हुये उन भण्डों को कन्धे पर रख कर जाता था, बैठते हुये उन्हीं पर बैठता था ।

• वह आर्तस्वर कर रहा था ।

** वह इसी राजगृह में दुष्ट गाँव का पञ्च था ।

प्रथम वर्ग समाप्त ।

—

शाब्द हमरे नहीं मानते। जो मुझे नहीं मानते उसका यह चिरकाल तक अहित और दुःख के सिने होता।

भिष्णुभा ! यह सब इसी राजगृह में गौहत्या करने वाला था। हम पाप के फलस्वरूप यह कार्यों का एक मरक में पकता रहा। उस कर्मके अणुमान में उसने पूरा आत्मभाव प्रतिक्रिया किया है। सभी सुप्तों में इसी तरह।

§ २ गोघातक सुप्त (१८.१.२)

मांसपेदी, गौहत्या का बुप्परिणाम

[हम सब सुप्तों में जागृप्तात् महाभौतस्थापन इसी प्रकार सुप्तकराते हैं जिसकी व्याख्या भगवान् करते हैं—]

आबुस मांसपेदी को आकाश से उतरे देखा।

इसी राजगृह में गोघातक था।

§ ३ पिण्डसाक्षणी सुप्त (१८.१.३)

पिण्ड और चिह्नित

मांसपिण्ड को आकाश से उतरे देखा।

हमी राजगृह में चिह्नित था।

§ ४ निष्छयोरन्मि सुप्त (१८.१.४)

गाल उतरा भार भेड़ों का कसाई

गाल उतरा बुध पुद्ग को देखा।

यह इसी राजगृह में भेड़ों का कसाई था।

§ ५ असिस्फुरिक सुप्त (१८.१.५)

सलयाग और मृग का कसाई

आबुस ! गृहद्वार बर्तन से उतरते हुए एक अस्त्रिकाम (अस्त्रिके शरीरें लम्बायें जगे हों) पुद्ग को आकाश से उतार देखा। वह अस्त्र पृथ पृथ पर उसी के शरीर पर गिरते थे। वह उससे आर्तव्य कर रहा था।

यह इसी राजगृह में मृग का कसाई था।

§ ६ मक्षिमामयी सुप्त (१८.१.६)

वर्षा जैसा काम और यदनिया

सक्षि-लाम बुद्ध को आकाश से उतरे देखा।

इसी राजगृह में मृगमार (मृगदेविका) था।

§ ७ उगुकारणिक सुप्त (१८.१.७)

गाल जैसा काम और मृगवारी हाथिम

हनुमान पुद्ग को आकाश से उतरे देखा।

इसी राजगृह में मृगवारी हाथिम था।

§ ६. सीसच्छिन्न सुत्त (१८ २. ६)

सिर कटा हुआ डाकू

• बिना शिर के एक कवन्ध को आकाश से जाते देखा । उसकी छाती ही में आँख और मुँह थे ।** वह आर्तस्वर कर रहा था ।

** वह सत्त्व इसी राजगृह में हारिक नामक एक डाकू था ।

§ ७. भिक्षु सुत्त (१८. २. ७)

भिक्षु

आवुस ! गृद्धकूट पर्वत से उतरते हुये मैंने एक भिक्षु को आकाश से जाते देखा ।

उसकी संघाटी लहलहा कर जल रही थी । पात्र भी लहलहा कर जल रहा था । काय-ग्रन्थन भी । शरीर भी । वह आर्तस्वर कर रहा था ।

भिक्षुओ ! वह सत्त्व सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् काश्यप के कालमें पापभिक्षु था ।

§ ८. भिक्षुनी सुत्त (१८ २ ८)

भिक्षुणी

भगवान् काश्यप के काल में पापभिक्षुणी थी ।

§ ९. सिक्खमाना सुत्त (१८ २ ९)

शिष्यमाणा

भगवान् काश्यप के काल में पापी शिष्यमाणा थी ।

§ १०. सामणेरे सुत्त (१८ २ १०)

श्रामणेरे

पापी श्रामणेरे था ।

§ ११. सामणेरी सुत्त (१८. २. ११)

श्रामणेरी

वह आर्तस्वर कर रही थी । आवुस ! तब मेरे मन में यह हुआ—आश्चर्य है, अद्भुत है । ऐसे भी सत्त्व होते हैं, ऐसा भी आत्मभाव-प्रतिलाभ होता है ।

तब भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! मेरे श्रावक आँख खोलकर विहार करते हैं, ज्ञान के साथ विहार करते हैं कि वे इस प्रकार को भी जान लेते हैं, देख लेते हैं, साक्षात्कार कर लेते हैं ।

भिक्षुओ ! पहले भी मैंने उस श्रामणेरी को देखा था, किन्तु किसी से कहा नहीं । यदि मैं कहता तो शायद लोग विश्वास नहीं करते, यह चिरकाल तक उनके अहित और दुःख के लिये होता ।

भिक्षुओ ! वह श्रामणेरी सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् काश्यप के कालमें पाप-श्रामणेरी थी । वह उस पाप के फल से लाखों वर्ष नरक में पड़ती रही । उस कर्म के अवसान में उसने ऐसा आत्मभाव-प्रतिलाभ किया है ।

द्वितीय वर्ग

लक्षण-संयुक्त समाप्त

दूसरा भाग

द्वितीय सर्ग

§ १ कूपनिमुग्ग सुत्त (१८ २ १)

परस्त्री-शामन करने वाला कूप्ये में गिरा

‘भावुस ! गृहकर पर्वत से उतरते हुए मैंने गृह के कूप्ये में बिस्फुलक हुए एक पुत्र को देखा ।

‘वह इसी राजगृह में परस्त्री के पास जाने वाला था ।

§ २ गूयखादी सुत्त (१८ २ २)

गृह जानेवाला पुत्र ग्राहण

‘एक पुत्र को देखा जो गृह के कूप्ये में गिरकर दोनों हाथों से गृह पक रहा था ।

मिथुनो ! वह सत्य इसी राजगृह में एक ग्राहण था । उसने सम्भव सम्भुक् भगवाद् काश्यप के शासन रहते मिथु-संघ को भीजन के किये निमन्त्रित कर एक वर्तन में गृह भर कर कहा—‘आप लोग जितनी सरसि चार्य भीरु छ भी चार्ये ।

§ ३ निच्छवित्थी सुत्त (१८ २ ३)

खाऊ उठारी हुई छिनाल स्त्री

खाऊ उठारी हुई स्त्री को व्याकाश से काती देखा । वह आर्तलर कर रही थी ।

वह इसी राजगृह में बड़ी छिनाल स्त्री थी ।

§ ४ मङ्गलिरयी सुत्त (१८ २ ४)

रमक फेंकनेवाली मङ्गुली स्त्री

दुःख से भरी कुक्ष्य स्त्री को देखा । ‘आर्तलर कर रही थी ।

वह इसी राजगृह में रमक फेंक करती थी ।

§ ५ ओकिलिनी सुत्त (१८ २ ५)

खुरी—सीत पर भंगार फेंकनेवाली

मूर्ख पित्री भीर बद्धबाण एक स्त्री को व्याकाश से काती देखा । वह आर्तलर कर रही थी ।

मिथुनो ! वह स्त्री कलिङ्ग राजा की बटायी थी । उसने ईर्ष्या से अपनी सीत के ऊपर एक कटारी भंगार फेंक दिया था ।

भिक्षुओ ! वैसे ही, जिस किसी भिक्षु की मैत्री चेतोविमुक्ति भावित और अभ्यस्त रहती है वह अमनुष्यों से पीड़ित नहीं किया जा सकता है ।

भिक्षुओ ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—मैत्री चेतोविमुक्ति मेरी भावित होगी, अभ्यस्त होगी, अपनी कर ली गई होगी, सिद्ध होगी, अनुष्ठित होगी, परिचित होगी, सुसमारब्ध होगी ।

§ ४. ओक्खा सुत्त (१९. ४)

मैत्री-भावना

आवस्ती ।

भिक्षुओ ! जो सुबह, दोपहर और साँझ को सौ-सौ ओक्खा^१ का दान दे^२ । और जो 'गाय के एक दूहन भर भी मैत्री की भावना करे, तो वही अधिक फल देनेवाला है ।

भिक्षुओ ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—मैत्री चेतोविमुक्ति मेरी भावित होगी ।

§ ५. सत्ति सुत्त (१९. ५)

मैत्री-भावना

आवस्ती ।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई तेज धारवाली बर्छी हो । तब, कोई पुरुष आवे—मैं इस तेज धारवाली बर्छी को हाथ और मुक्के से उलट दूँगा, फट दूँगा, पीट दूँगा । भिक्षुओ ! तो, क्या समझते हो वह पुरुष ऐसा कर सकेगा ?

नहीं भन्ते !

सो क्यों ?

भन्ते ! तेज धारवाली बर्छी को कोई पुरुष हाथ और मुक्के से ऐसा नहीं कर सकता है । बल्कि, उस पुरुष का हाथ ही जखमी हो जायगा और उसे बड़ा कष्ट भोगना पड़ेगा ।

भिक्षुओ ! वैसे ही, जिस किसी भिक्षु की मैत्री चेतोविमुक्ति भावित रहती है, उसे यदि कोई अमनुष्य टाटा देना चाहे तो उसी को विपत्ति में पड़कर कष्ट भोगना पड़ेगा ।

भिक्षुओ ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—मैत्री चेतोविमुक्ति मेरी भावित होगी ।

§ ६. धनुग्गह सुत्त (१९. ६)

अप्रमाद के साथ विहरना

आवस्ती ।

भिक्षुओ ! जैसे, चार वीर धनुर्धर—शिक्षित, हाथ साफ, अभ्यासी—चारों दिशाओं में खड़े हों । तब, कोई पुरुष आवे और कहे—मैं इन चारों के छोड़े हुये बाण को पृथ्वी पर गिरने के पहले ही ले आऊँगा ।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, ऐसी फुर्ती होने से वह बड़ा भारी फुर्तीबाज कहा जा सकेगा ?

भन्ते ! यदि एक ही के छोड़े बाण को पृथ्वी पर गिरने से पहले ले आवे, तो वह सबसे बड़ा फुर्तीबाज कहा जायगा, चारों की बात तो दूर रहे ।

भिक्षुओ ! उम पुरुष की जो तेजी है, उससे भी अधिक तेज चाँद-सूरज हैं । भिक्षुओ ! उस

१ भात पकाने का बहुत बड़ा वर्तन (तौला)—अट्टकथा ।

२. उत्तम भोजन से परिपूर्ण मौ बड़े तौलो का दान करे—अट्टकथा ।

आठवाँ परिच्छेद

१९ औपम्य-संयुक्त

§ १ कूट सुत्त (१९ १)

समी अकुशल भविष्यामूलक हैं

पूसा घीने सुखा ।

एक समय भयबाहू ध्यावस्ती में अनाद्यपिण्डिक के आद्यम जेतवन में विहार करते थे ।

भगवान् बोले :—मिथुभो ! जैसे कूटगार के जितने घरम हैं समी कूट की ओर जाते हैं कूट पर जा डगते हैं कूट में जोड़े रहते हैं कूट में भाकर मिळ जाते हैं ।

मिथुभो ! वैसे ही जितने अकुशल धर्म हैं समी भविष्यामूलक भविष्या में डगो रहने वाले भविष्या में भाकर जुटने और मिळने वाले हैं ।

इसलिये हे मिथुभो ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—अप्रमत्त होकर विहार करेंगा ।

§ २ नखसिख सुत्त (१९ २)

प्रमाद न करना

ध्यावस्ती ।

तब अपने मण्डप पर एक छोटा रत्न-कण रख कर भगवान् ने मिथुओं को आमन्त्रित किया:—
मिथुभो ! क्या समझते हो यह छोटा रत्न-कण क्या है या महापृष्ठी ?

अन्त ! महापृष्ठी बड़ी है; यह रत्न-कण तो पड़ा अदना है । यह अदना कण महापृष्ठी के किसी भी भाग में नहीं समझा जा सकता है ।

मिथुभो ! वैसे ही वे मार्ग बड़े अन्तर हैं जो मनुष्य-जीवि में जन्म करते हैं । वे सत्य बहुत हैं जो दूसरी पोषि में जन्म लेते हैं ।

इसलिये हे मिथुभो ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—अप्रमत्त होकर विहार करेंगा ।

§ ३ कुल सुत्त (१९ ३)

मैत्री माधना

ध्यावस्ती ।

मिथुभो ! जैसे वह कुछ जिनमें बहुत दिवसों और अल्प गुण हों और डाकुओं से राहज में पीड़ित दिने जाते हैं ।

मिथुभो ! वैसे ही जिस दिवसी मिथु की मर्जी केनोविमुक्ति अमरविष और अनमरण रहती है यह अमरपुत्रों या राहज में पीड़ित किया जाता है ।

मिथुभो ! जैसे वह कुछ जिनमें अल्प दिवसों और अधिक गुण हों और डाकुओं से पीड़ित नहीं किया जाता है ।

§ ९. नाग सुत्त (१९. ९)

लालच-रहित भोजन करना

श्रावस्ती* ।

उस समय कोई नया भिक्षु कुवेला करके गृहस्थ-कुलों में रहा करता था । उसे दूसरे भिक्षुओं ने कहा—आयुष्मान् कुवेला करके गृहस्थ-कुलों में मत रहा करें ।

इस पर वह भिक्षु बोला—ये स्थविर भिक्षु गृहस्थ-कुलों में जाया करते हैं, तो भला मुझमें क्या लगा है ?

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा—भन्ते ! एक नया भिक्षु कुवेला करके* ।* तो भला मुझमें क्या लगा है ?

भिक्षुओ ! बहुत पहले कोई जगल में एक सरोवर था । कुछ नाग भी वहीं वास करते थे । वे उस सरोवर में पैठ, सूँढ़ से कमल के नाल को उखाड़, अच्छी तरह धो, कीचड़ हटाकर निगल जाते थे । वह उनके वर्ण और बल के लिये होता था । उसमें न तो उनकी मृत्यु होती थी और न वे मृत्यु के समान दुःख पाते थे ।

भिक्षुओ ! उनकी देखादेखी छोटे छोटे हाथी भी उस सरोवर में पैठ, कमल के नाल को उखाड़, उसे धो, कीचड़ लगे हुए ही निगल जाते थे । वह न तो उनके वर्ण के लिये होता था और न बल के लिये । उससे वे मर भी जाते थे, और मरने के समान दुःख भी पाते थे ।

भिक्षुओ ! वैसे ही, ये स्थविर भिक्षु सुबह में पहन और पात्र-चीवर ले भिक्षाटन के लिये गाँव या कस्बे में पैठते हैं, वे वहाँ धर्म का उपदेश करते हैं । उससे गृहस्थों को बड़ी श्रद्धा होती है । जो भिक्षा मिलती है उसका वे लोभरहित हो, उसके आदीनव और नि सरणका ख्याल करते हुये, भोग करते हैं । यह उनके वर्ण और बल के लिये होता है* ।

भिक्षुओ ! उनकी देखादेखी नये भिक्षु भी कस्बे में पैठते हैं । जो भिक्षा मिलती है उसका वे ललचा हृदिया कर भोग करते हैं, उसके आदीनव और नि सरण का कुछ ख्याल नहीं करते । वह न तो उनके वर्ण के लिये होता है, और न बल के लिये ।

भिक्षुओ ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—बिना ललचाये हृदिआये, तथा आदीनव और नि सरण का ख्याल रख कर भिक्षा का भोग करूँगा ।

§ १०. विलार सुत्त (१९. १०)

सयम के साथ भिक्षाटन करना

श्रावस्ती ।

उस समय कोई नया भिक्षु कुवेला करके गृहस्थ-कुलों में रहा करता था । उसे दूसरे भिक्षुओं ने कहा—आयुष्मान् कुवेला करके गृहस्थ-कुलों में मत रहा करें ।

भिक्षुओं से कहे जाने पर भी वह भिक्षु नहीं मानता था ।

तब कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठकर उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा—भन्ते ! वह भिक्षु नहीं मानता है ।

भिक्षुओ ! बहुत पहले कोई विलार एक गदौरे के पास चूरे की ताक में बँटा था—जैसे ही चूहा बाहर निकलेगा कि मैं झट उसे पकड़ कर खा जाऊँगा ।

पुत्र की जो तेजी है बौद्ध-सूरज की जो तेजी है बौद्ध-सूरज के आगे आगे चलने वाले वैभवाभी की जो तेजी है, उन सभी स तेज आनुवंशिक धर्म हो रहा है।

मित्राभी ! इसलिये तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—अग्रगण्य होकर विहार करेगा।

४ ७ भाणी सुच (१९ ७)

गम्भीर धर्मों में मन लगाना, भविष्य-कथन

भावस्ती ।

मित्राभी ! पूर्वकाल में वृत्तारहों को आगक काम का एक सूर्य था।

उस अग्रगण्य सूर्य में जब कोई छेद हो जाता था तो वृत्तारह लोग उसमें एक छेद होकर बैठे थे। जीरे-जीरे एक ऐसा समय आया कि सारे सूर्य की अपनी पुरानी ककड़ी कुछ भी नहीं रही सारे का सारा खुरियों का एक बच्चा बन गया।

मित्राभी ! भविष्यकाल में मित्र ऐसे ही बन जायेंगे। बुद्ध ने जो गम्भीर, गम्भीर कार्य वाले, जोकोपर सत्यतामति-संयुक्त सूर्य बने हैं उनके बड़े कामों पर काम न देंगे, सुनने की इच्छा न करेंगे समझने की कोशिश नहीं करेंगे। धर्म को वे सीखने और अभ्यास करने के योग्य नहीं समझेंगे।

जो बाहर के आदमियों से बड़े कविता सुन्दर अक्षर और सुन्दर व्यञ्जन वाले जो सूर्य बनें कभी के बड़े कामों पर काम न करेंगे सुनने की इच्छा करेंगे समझने की कोशिश करेंगे। उन्हीं धर्मों को वे सीखने और अभ्यास करने के योग्य समझेंगे।

मित्राभी ! इस तरह बुद्ध ने किन गम्भीर सूर्यों को कहा है उनका भेष हो जायगा।

मित्राभी ! इसलिये तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—बुद्ध ने जो गम्भीर सूर्य बने हैं उनके बड़े कामों पर काम न किया सुनने की इच्छा करेगा समझने की कोशिश करेगा। उसी धर्म को सीखने और अभ्यास करने के योग्य समझेगा।

४ ८ कलिङ्ग सुच (१९ ८)

ककड़ी के बने तन्त्र पर सोना

वैसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् वैशाली में महाबल की कुटुम्बारहाला में विहार करते थे।

महाबल बोले—मित्राभी ! कलिङ्ग की ककड़ी के बने तन्त्र पर सोते हैं अग्रगण्य हो उत्साह के साथ अपने कर्तव्य पूरा करते हैं। महाबल वैशाली में महाबल कुटुम्बारहाला उनके विरुद्ध कोई बौद्ध-यंत्र नहीं पा रहा है।

मित्राभी ! अनागत काल में कलिङ्ग की ककड़ी के बने तन्त्र पर सोते हैं अपने उद्योग में आतापी और अग्रगण्य होकर विहार करते हैं। पापी मार इसके विरुद्ध कोई बौद्ध-यंत्र नहीं पा रहा है।

मित्राभी ! अनागत काल में मित्र लोग "दिन चढ़ जाने तक सोने रहेंगे। उनके विरुद्ध पापी मार को बौद्ध-यंत्र मिला जायगा।

मित्राभी ! इस समय मित्र लोग ककड़ी के बने तन्त्र पर सोते हैं अपने उद्योग में आतापी और अग्रगण्य होकर विहार करेगा।

मित्राभी ! इसलिये तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—ककड़ी के बने तन्त्र पर सोते हैं, अपने उद्योग में आतापी और अग्रगण्य होकर विहार करेगा।

नवाँ परिच्छेद

२०. भिक्षु-संयुक्त

§ १. कोलित सुत्त (२०. १)

आर्य मौन-भाव

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में ।

वहाँ आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—हे भिक्षुओ !

"आवुस !" कहकर भिक्षुओं ने उत्तर दिया ।

आयुष्मान् महामौद्गल्यायन बोले—आवुस ! एकान्त में ध्यान करते समय मेरे मन में यह वितर्क उठा—आर्य तूष्णी-भाव, आर्य तूष्णी भाव कहा जाता है, सो यह आर्य तूष्णी-भाव क्या है ?

आवुस ! तब मेरे मन में यह हुआ—भिक्षु वितर्क और विचार के शान्त हो जाने से* द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है । यही आर्य तूष्णी भाव है ।

आवुस ! सो मैं द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर विहार करता हूँ । इस प्रकार विहार करते हुये वितर्क—सहगत सञ्चार्ये मन में उठती है ।

आवुस ! तब, भगवान् ने ऋद्धि से मेरे पाम आकर यह कहा—हे मौद्गल्यायन, हे ब्राह्मण ! आर्य तूष्णी-भाव में प्रमाद मत करो । आर्य तूष्णी-भाव में चित्त को स्थिर करो, चित्त को एकाग्र करो, चित्त को लगा दो ।

आवुस ! तब, मैं द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर विहार करने लगा । यदि कोई ठीक में कहे, "गुरु से प्रेरित होकर श्रावक ने महा अभिज्ञा को प्राप्त किया" तो वह ऐसे मेरे ही विषय में कह सकता है ।

§ २. उपतिस्स सुत्त (२०. २)

सारिपुत्र को शोक नहीं

श्रावस्ती ।

सारिपुत्र बोले —आवुस ! एकान्त में ध्यान करते समय मेरे मन में ऐसा वितर्क उठा—क्या लोक में ऐसा कुछ है, जिसको विपरिणत होते जान मुझे शोकादि उत्पन्न हों ?

आवुस ! तब, मेरे मन में ऐसा हुआ—लोक में ऐसा कुछ नहीं है, जिसको विपरिणत होते जान मुझे शोकादि हों ।

ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनन्द आयुष्मान् सारिपुत्र से बोले—आवुस सारिपुत्र ! क्या बुद्ध को भी विपरिणत होते जान आपको शोकादि न होंगे ?

आवुस आनन्द ! बुद्ध को भी विपरिणत होते जान मुझे शोकादि न होंगे । किन्तु, मेरे मन में ऐसा होगा—ऐसे प्रतापी, महर्द्धिक और महानुभावी, बुद्ध अन्तर्धान मत होवें । यदि भगवान् चिरकाल

मिथुनो ! तब बूढ़ा बाहर निकला । बिलार सपरा मार उसे सहसा गिरा दिया । बूढ़े ने उस बिलार की धँतड़ी-पत्थरी को काट दिया । उससे वह मृत्यु को प्राप्त हुआ या मृत्यु के समान दुःख का ।

मिथुनो ! वैसे ही कितने मिथु गाँव या कस्बे में मिश्रादन के किये पैठते हैं—शरीर बचन और चित्त से असंयत स्मृतिहीन इन्द्रियों के साथ ।

वह बहाँ किसी बर्षा स्त्री को देखता है । उससे उसके चित्त में कबरदस्त राग उठता है । उससे वह मृत्यु को प्राप्त होता है या मृत्यु के समान दुःख को ।

मिथुनो ! जो शिक्षा छोड़कर गृहस्थ बन जाता है उसे इस आर्षवियस में मृत्यु ही कहे हैं । मिथुनो ! जो मनका ऐसा मिला हो जाता है वह मृत्यु के समान दुःख ही है ।

मिथुनो ! इसकिये तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—शरीर, बचन और मन से रक्षित हो स्मृति पूर्ण इन्द्रियों से गाँव या कस्बे में मिश्रादन के किये पैठेंगा ।

§ ११ पठम सिगाल मुत्त (१९ ११)

अप्रमाद के साथ विहरना

भावस्ती ।

मिथुनो ! रात के मिनसारे तुमन सिबारों को रोते सुना है ?

हाँ मन्ते !

मिथुनो ! यह जर श्वाक उल्लूकक नामक रोग से पीड़ित होता है । वह बहाँ बहाँ जाता है लड़ा होता है बैठता है या सोता है बहाँ बहाँ बड़ी टंढी हवा चकती है ।

मिथुनो ! कोई शाक्यपुत्र (= मिथु) ऐसे आप्रमाद प्रतिष्ठा का प्राप्त करते हैं ।

मिथुनो ! इसकिये तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—अप्रमाद होकर विहार करूँगा ।

§ १२ दुसिय सिगाल मुत्त (१९ १०)

दृढता होना

भावस्ती ।

‘उस सिबारों में भी कृतकता है किन्तु कुछ मिथु में नहीं है ।’

मिथुनो ! इसकिये तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—‘मैं कृतक नहीं हूँ । अपने प्रति किये पये बोध से भी उपकार को नहीं भूलूँगा ।’

औपम्य संयुक्त समाप्त

इस तरह, इन महानागों ने एक दूसरे के सुभाषित का अनुमोदन किया ।

§ ४. नव सुत्त (२० ४)

शिथिलता से निर्वाण की प्राप्ति नहीं

आवस्ती ।

उस समय कोई नया भिक्षु भिक्षाटन से लौट भोजन कर लेने पर विहार में पैठकर अल्पोत्सुक छुपचाप बैठ रहता था । भिक्षुओं को चीवर बनाने में सहायता नहीं करता था ।

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

‘ भन्ते ! ’ वह भिक्षुओं को चीवर बनाने में सहायता नहीं करता है ।

तब, भगवान् ने एक भिक्षु को आमन्त्रित किया—हे भिक्षु ! जाकर उस भिक्षु को मेरी ओर से कहो, “आवुस ! बुद्ध आपको बुला रहे हैं ।”

‘ तब, वह भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठे हुये उस भिक्षु से भगवान् बोले—भिक्षु ! क्या तुम सच में सहायता नहीं करते हो ?

भन्ते ! मैं भी अपना काम करता हूँ ।

तब, भगवान् ने उसके चित्त को अपने चित्त से जान भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! तुम इस भिक्षु से मत रूठो । यह भिक्षु इसी जन्म में सुख पूर्वक विहार करने वाले चार आभिचैतसिक ध्यानों को जब जैसे चाहता है प्राप्त कर लेता है । यह इसी जन्म में ब्रह्मचर्य के उस परम-फल को जान, साक्षात् कर, और प्राप्त कर विहार करता है, जिसके लिये कुलपुत्र अच्छी तरह घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाते हैं ।

भगवान् यह बोले । यह कहकर बुद्ध फिर भी बोले—

शिथिलता करने से, अल्प शक्ति से,

यह निर्वाण नहीं प्राप्त होता, सभी दुःखों से छुड़ा देनेवाला ।

यह नवजवान भिक्षु, यह उत्तम पुरुष,

अन्तिम देह वारण करता है, मार को बिल्कुल जीत कर ।

§ ५. सुजात सुत्त (२०. ५)

बुद्ध द्वारा सुजात की प्रशंसा

आवस्ती ।

तब, आयुष्मान् सुजात जहाँ भगवान् थे वहाँ आये ।

भगवान् ने आयुष्मान् सुजात को दूर ही से आते देखा । देखकर भिक्षुओं को आमन्त्रित किया —

भिक्षुओ ! दोनों तरह से कुलपुत्र शोभता है । जो यह अभिरूप = दर्शनीय = प्रासादिक = अत्यन्त सौन्दर्य से युक्त है, वह इसी जन्म में ब्रह्मचर्य के उस परम-फल को जान, साक्षात् कर, और प्राप्त कर विहार करता है, जिसके लिये कुलपुत्र अच्छी तरह घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाते हैं ।

‘यह कह बुद्ध फिर भी बोले—

यह भिक्षु शोभता है, ऋजुभूत चित्त से,

सभी धन्धनों से अलग होकर छूट गया है,

तक ठहरे तो वह बहनों के हित और सुख के किये, संसार की अनुकम्पा के किये तथा देवता और मनुष्यों के भर्ष हित और सुख के किये होगा।

मधुसूक्त में आयुष्मान् सारिपुत्र से 'महंकार, मर्मकार, और मानाशुसप विरकाय से उठ गया था। इसीकिये बुद्ध को भी विपरिणत होते आम आयुष्मान् सारिपुत्र को लोकादि नहीं होते।

५३ घट सुघ (२० ३)

अप्रभावकों की परस्पर स्तुति, आरक्ष्य-धीर्य

धायस्मी ।

उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र और आयुष्मान् महामीरुस्वायन राजगृह के पेलुपन फलस्पर्क-निघाप में एक ही बगह बिहार करते थे।

तब आयुष्मान् सारिपुत्र सत्ति को प्यान से उठ जहाँ आयुष्मान् महामीरुस्वायन थे वहाँ गये और कुपन्न होम के प्रदन पूछ कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् महामीरुस्वायन स बोले—आजुस मीरुस्वायन ! आपकी इन्द्रिर्षा विप्रसन्न है, मुख-वर्ण सतेज और परिमुद्ध है। क्या आज आयुष्मान् महामीरुस्वायन ने साम्य बिहार से बिहार किया है ?

आजुस ! आज मैंने भौसारिक बिहार से बिहार किया है, और धार्मिक क्या भी हुई है।

किमके साथ धार्मिक क्या हुई ?

आजुस ! भगवान् के साथ।

आजुस ! भगवान् तो बहुत दूर यावस्ती में बिहार कर रहे हैं। क्या आप भगवान् के पास कद्वि से गये थे या भगवान् ही आपके पास आये थे ?

आजुस ! न तो कद्वि स मैं भगवान् के पास गया था और न भगवान् मेरे पास आये थे। किन्तु जहाँ भगवान् हैं वहाँ तक मुझे दिग्ग्य चक्षु और श्रोत्र उत्पन्न हुये। ऐसे ही जहाँ मैं हूँ वहाँ तक भगवान् को दिग्ग्य चक्षु और श्रोत्र उत्पन्न हुये।

आयुष्मान् महामीरुस्वायन की भगवान् के साथ क्या चर्मकथा हुई ?

आजुस ! मैंने भगवान् से यह कहा—ममो ! आरक्ष्यधीर्य आरक्ष्यधीर्य कहा जाता है, तो आरक्ष्यधीर्य कैसे होता है ?

आजुस ! ऐसा कहने पर भगवान् इससे बोले—मीरुस्वायन ! मिथु इस प्रकार आरक्ष्यधीर्य का बिहार करता है—एकदा महाक और हर्षा हो मके बच कार्य; शरीर में मोम और सोहित भी भल हो शून्य कार्य; विम्यु, पुण्य के उत्साह धीरे धीरे पराजय स भी पाया जा सकता है उस बिना पाय विजय नहीं लूँगा। मातृस्वायन ! इसी तरह आरक्ष्यधीर्य होता है।

आजुस ! भगवान् के साथ मीरी यही चर्मकथा हुई।

आजुस ! जने चर्चताज हिमालय के सामने चरकर कंकड़ों की एक ढेर अदानी है। ऐसे ही आजुष्मान् महामीरुस्वायन के सामने हमारी अवस्था है। आयुष्मान् महामीरुस्वायन यही कद्विवाले महापुमावी हैं। यदि कद्वि ली करन भर भी उठर सकते हैं।

आजुस ! जिस मजक के एक बड़े बड़े के गजने मजक का एक काटा कम अदानी है। ऐसे ही इस अजुष्मान् सारिपुत्र के सामने है।

भगवान् ने भी आयुष्मान् सारिपुत्र की अनेक प्रकार से प्रशंसा की है—

जग में सारिपुत्र की तरह राजा भी और जनसमूह भी

यह मिथु भी कार्यजन है यही राज-वद् है ॥

इस तरह, इन महाभागों ने एक दूसरे के सुभाषित का अनुमोदन किया ।

§ ४. नव सुत्त (२० ४)

शिथिलता से निर्वाण की प्राप्ति नहीं

प्रावस्ती ।

उस समय कोई नया भिक्षु भिक्षाटन से लोट भोजन कर लेने पर विहार में पैठकर अत्पोंसुक चुपचाप बैठ रहता था । भिक्षुओं को चीवर बनाने में सहायता नहीं करता था ।

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

‘ भन्ते !’ वह भिक्षुओं को चीवर बनाने में सहायता नहीं करता है ।

तब, भगवान् ने एक भिक्षु को आमन्त्रित किया—हे भिक्षु ! जाकर उस भिक्षु को मेरी ओर से कहो, “आयुस ! बुद्ध आपको उला रहे हैं ।”

‘ तब, वह भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठे हुये उस भिक्षु से भगवान् बोले—भिक्षु ! क्या तुम मत्त में सहायता नहीं करते हो ?

भन्ते ! मैं भी अपना काम करता हूँ ।

तब, भगवान् ने उसके चित्त को अपने चित्त से जान भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! तुम इस भिक्षु से मत रूठो । यह भिक्षु इसी जन्म में सुख पूर्वक विहार करने वाले चार आभिचैतसिक ध्यानों को जत्र जैमे चाहता है प्राप्त कर लेता है । यह इसी जन्म में ब्रह्मचर्य के उस परम-फल को जान, साक्षात् कर, और प्राप्त कर विहार करता है, जिसके लिये कुलपुत्र अच्छी तरह घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाते हैं ।

भगवान् यह बोले । यह कहकर बुद्ध फिर भी बोले—

शिथिलता करने से, अत्प शक्ति से,

यह निर्वाण नहीं प्राप्त होता, सभी दुःखों से छुड़ा देनेवाला ।

यह नवजवान भिक्षु, यह उत्तम पुरुष,

अन्तिम देह धारण करता है, मार को बिट्कुल जीत कर ।

§ ५. सुजात सुत्त (२०. ५)

बुद्ध द्वारा सुजात की प्रशंसा

प्रावस्ती ।

तब, आयुष्मान् सुजात जहाँ भगवान् थे वहाँ आये ।

भगवान् ने आयुष्मान् सुजात को दूर ही से आते देखा । देखकर भिक्षुओं को आमन्त्रित किया —

भिक्षुओ ! दोनों तरह से कुलपुत्र शोभता है । जो यह अभिरूप = दर्शनीय = प्रासादिक = अत्यन्त सौन्दर्य से युक्त है, वह इसी जन्म में ब्रह्मचर्य के उस परम-फल को जान, साक्षात् कर, और प्राप्त कर विहार करता है, जिसके लिये कुलपुत्र अच्छी तरह घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाते हैं ।

यह कह बुद्ध फिर भी बोले—

यह भिक्षु शोभता है, ऋजुभूत चित्त से,

सभी वस्त्रों से अलग होकर छूट गया है,

अनुपादान के द्विजे निबोण पा किया है
अन्तिम देह धारण करता है मार को विदकुल झीतकर ॥

§ ६ मद्दिय सुत्त (२० ६)

दायीर से महीं ज्ञान से यका

आपत्ती ।

तब आधुप्मान् लकुण्टक मद्दिय बहों भगवान् से बहों भाये ।

भगवान् ने आधुप्मान् लकुण्टक मद्दिय को दूर ही से आते देखा । बुझकर मिश्रुओं को आमन्त्रित किया—मिश्रुओ ! इस छोटे कुसुम मम मारै हुये मिश्रु को जाते देखते हो ?

हाँ मन्ते !

मिश्रुओ ! वह मिश्रु बड़ी आदिवाका बड़ा ठहराई है । किम समापत्तियों को इस मिश्रु ने पा किया है वे सुकम नहीं हैं । वह इसी जन्म में ब्रह्मचर्य के इस अन्तिम फल को ।

यह कहकर कुछ फिर भी बोले—

इस मौच और मयूर हाथी और चितकबरे युग

सभी सिंह से बरते हैं धरीर में कोई दुष्पला नहीं ॥

इसी मन्त्र मनुष्यों में कम उन्नत का भी बहि मशान् हो

तो वह वैसे ही मशान् होता है सरीर से कोई बाकक नहीं होता ॥

§ ७ विसाख सुत्त (२० ७)

धर्म का उपदेस कर

वैमा मीने सुभा ।

एक समय भगवान् वैशाखी में महावन की फूटागारछाया में बिहार करते थे ।

उस समय आधुप्मान् विसाख पाण्ड्यालपुत्र ने उपवासनाका में मिश्रुओं को धर्मोपदेश कर दिया दिया बता दिया भद्र वचनों से उचित रीति से बिना किसी बकवाता से परमार्थ को बताते हुये विषय पर ही कहते हुये ।

तब भगवान् साँस को ध्यान स उठ बहों वह उपवासनाका की बहों गण भीर बिठे आसन पर बैठ गये ।

बैठकर भगवान् ने मिश्रुओं को आमन्त्रित किया—मिश्रुओ ! उपवासनाका में मिश्रुओं को कौन धर्मोपदेश कर रहा था ?

भग्न ! आधुप्मान् विसाख बाजाकपुत्र " ।

तब भगवान् ने आधुप्मान् विसाख को आमन्त्रित किया—ठीक व विसाख ! तुमने क्या अवल किया कि मिश्रुओं का धर्मोपदेश कर रहे थे ।

“ वह कहकर कुछ फिर भी बोले—

नहीं कहने से भी लोग जान लेते हैं मूलों में मिल हुये वरिष्ठ का

उपदेस कहने पर जान लेते हैं अमृत-वत् का उपदेश करते हुये ॥

धर्म को बड़े प्रकाशित करे, ज्ञानियों के स्वप्न को वास्तव करे

सुमानि ही ज्ञानियों का भजना है धर्म ही उनका भजना है ॥

१८. नन्द सुत्त (२०. ८)

नन्द को उपदेश

श्रावस्ती ।

तब, भगवान् के मांसरे भाई आयुष्मान् नन्द सीट और सिजिल किये चीवर को पहन, आँख में अञ्जन लगा, सुन्दर पात्र लिये जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् नन्द से भगवान् बोले—नन्द ! श्रद्धापूर्वक घर से वेधर हो प्रव्रजित हुये तुम जैसे कुलपुत्र के लिये यह उचित नहीं कि ऐमे मीटे और सिजिल किये चीवर को पहनो, आँख में अञ्जन लगाओ, और सुन्दर पात्र धारण करो ।

नन्द ! तुम्हें तो उचित था कि आरण्य में रहते, पिण्डपात्तिक और पासुकुलिक हो कामों में अनपेक्षित रहते ।

“यह कहकर धुद फिर भी बोले.—

कब मैं नन्द को देखूँगा,
आरण्य में रहते, पासुकुलिक,
भिक्षा से जीवन निवाहते,
कामों में अनपेक्षित ।

तब, उसके बाद आयुष्मान् नन्द आरण्य में रहने लगे, पिण्डपात्तिक और पासुकुलिक हो गये कामों में अनपेक्षित होकर विशार करने लगे ।

१९. तिस्स सुत्त (२०. ९)

नहीं बिगड़ना उत्तम

श्रावस्ती ।

तब भगवान् के फुफेरे भाई आयुष्मान् तिस्स जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये—दु खी, उदास, आँसू टघराते ।

तब, भगवान् आयुष्मान् तिस्स से बोले —तिस्स ! तुम एक ओर बैठे दु खी, उदास और आँसू क्यों टघरा रहे हो ?

भन्ते ! भिक्षुओं ने आपस में मिलकर मेरी नकल की है, और मुझे घनाया है ।

तिस्स ! तुम तो भले ही दूसरों को कहना चाहो, किन्तु उनकी सह नहीं सकते ।

तिस्स ! श्रद्धापूर्वक घर से वेधर हो प्रव्रजित हुये तुम जैसे कुलपुत्र के लिये यह उचित नहीं कि अपने तो भले दूसरों को कहना चाहो, किन्तु उनकी सह नहीं सको । यदि तुम दूसरों को कहते हो तो उनकी तुम्हें सहना भी चाहिये ।

यह कह कर धुद फिर भी बोले —

बिगड़ते क्यों हो, मत बिगड़ो,
तिस्स ! तुम्हारा नहीं बिगड़ना ही अच्छा है,
क्रोध, मान, और माया को दबाने ही के लिये,
तिस्स ! तुम ब्रह्मचर्य का आचरण करते हो ॥

§ १० धरनाम सुप्त (२० १०)

मकंछा रटने वाला कौन ?

एक समय भगवान् राजगृह में ।

उस समय स्वयंवर नाम का कोई मिथु भकेका रहता था और भक्क रटने का प्रशंसक था । वह भक्क ही गाँव में भिक्षादन के किये पैदल था, भकेका ही बौढ़ता था भकेका ही एकान्त में बैठता था और भकेका ही चक्रमण करता था ।

तब कुछ मिथु वहाँ भगवान् से वहाँ आने और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ कर जब मिथुओं ने भगवान् को कहा—भन्ते ! यह मिथु भक्क ही चक्रमण करता है ।

तब भगवान् ने एक मिथु को आसनस्थ किया ।

एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् स्वयंवर को भगवान् बोले—जब सच है कि तुम भकेके ही रहते हो उसकी प्रशंसा करते हो ?

हाँ भन्ते !

स्वयंवर ! तुम भकेका ही किये रहते और उसकी प्रशंसा किया करते हो ?

भन्ते ! मैं भकेका ही गाँव में भिक्षादन के किये पैदल हूँ भकेका ही चक्रमण करता हूँ । भन्ते इस तरह मैं भकेका रहता हूँ और भकेके रहने की प्रशंसा करता हूँ ।

स्वयंवर ! इसे मैं भकेका रहना नहीं बताता । जबार्थ मैं भकेके कैदो रहा जाता है उसे सुखी भक्की तरह मन लगावो मैं कहता हूँ ।

स्वयंवर ! जो बीत गया वह प्रदीप हुआ, जो अभी जलागल है उसकी बात छोड़ो, वर्तमान में का प्रज्-राग है उसे बीत को । स्वयंवर ! ऐसे ही जबार्थ मैं भकेका रहा जाता है ।

— वह कह कर कुछ फिर भी बोले—

सर्वाभिन् सर्वाभिन् परिहृत

समी प्रमो में अनुपस्थित

सर्वस्यामी मृत्वा के क्षीय हो जाने से विमुक्त,

ऐसे ही पर को मैं भकेका रहने वाला कहता हूँ ॥

§ ११ कपिन सुप्त (२० ११)

आयुष्मान् कपिन के शृणों की प्रशंसा

आवली ।

तब आयुष्मान् महाकपिन वहाँ भगवान् से वहाँ बाये ।

भगवान् ने आयुष्मान् कपिन को दूर ही से जाते देखा । देख कर मिथुओं को आसनस्थ किया—मिथुओं ! तुम इस गोरों पतके लँके बाक बाके मिथु को जाते देखते हो ?

हाँ भन्ते !

मिथुओं ! वह मिथु वहाँ कदिवार्य बड़ा अनुपाय वाला है । जिन समावर्तियों को हलने या किया दे वे सुकम नहीं हैं । इसने महाकपिन के उद्यम अन्तिम ककको ।

यह कह कर भगवान् फिर भी बोले—

मनुष्यों में क्षत्रिय जेठ है जो योग का बचाव करने वाला है,

विद्याचरण से सम्पन्न, देव-मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं ॥
 दिनमें सूर्य तपता है, रात में चाँद शोभता है,
 सन्नद्ध हो क्षत्रिय तपता है, ब्राह्मण ध्यान से तपता है,
 और, सदा ही दिनरात, अपने तेज से बुद्ध तपते हैं ॥

§ १२. सहाय सुत्त (२० १२)

दो क्रद्धिमान भिक्षु

श्रावस्ती ।

तब, आयुष्मान् महाकप्पिन के दो अनुचर मित्र भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये ।

भगवान् ने उन दोनों को दूर ही से आते देखा । देख कर भिक्षुओं को आम्न्त्रित किया —
 भिक्षुओ ! इन दोनों को आते देखते हो ?

हाँ भन्ते !

ये दोनों भिक्षु बड़ी क्रद्धिवाले और बड़े अनुमान वाले हैं . ।

यह कह कर भगवान् फिर भी बोले :—

ये भिक्षु आपस में मित्र हैं, चिरकाल से साथी हैं,
 मद्धर्म को उनसे पा लिया है, कप्पिन के द्वारा,
 बुद्ध के धर्म में सिखाये गये हैं, जो आर्य प्रवेदित है,
 अन्तिम देह को धारण करते हैं, मार को बिचकुल जीत कर ॥

भिक्षु-सयुत्त समाप्त ।

निदान वर्ग समाप्त

तीसरा खण्ड

खन्ध वर्ग

पहला परिच्छेद

२१. खन्ध-संयुक्त

मूल पण्णासक

प्रहला भाग

नकुलपिता वर्ग

§ १. नकुलपिता सुत्त (२१. १ १ १)

चिन्तन का आतुर न होना

ऐसा मैंने सुना ।

एक नम्र भगवान् भर्ग (देश) में सुसुमारगिरि के भेस कला-वन मृगदाव में विहार करते थे ।

तब, गृहपति नकुलपिता जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ गृहपति नकुलपिता भगवान् से बोला—भन्ते ! मैं जीर्ण = वृद्ध = महल्लक = पुरनिया = आयु-प्राप्त = हारे शरीर वाला हूँ, न जाने कब मर जाऊँ । भन्ते ! मुझे भगवान् और मनो-भावनीय भिक्षुओं के दर्शन प्राप्त करने का बराबर अवकाश नहीं मिलता है । भन्ते ! भगवान् मुझे उप-देश दें, जो चिरकाल तक मेरे हित और सुख के लिये हो ।

गृहपति, सच है । तुम्हारा शरीर हार गया है, तुम्हारी आयु पुर गई है, तुम जीर्ण हो गये हो । गृहपति ! जो ऐसे शरीर को धारण करते मुहूर्त भर भी आरोग्य की आशा करता है वह मूर्ख छोड़ कर और क्या है ? गृहपति ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—मेरा शरीर भले ही आतुर हो जाय, किन्तु चित्त आतुर होने नहीं पायगा ।

तब, गृहपति नकुलपिता भगवान् के कहे का अभिनन्दन और अनुमोदन कर, आसन से उठ, भगवान् का अभिषादन और प्रदक्षिणा कर, जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ गया, और उनका अभिषादन कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठे गृहपति नकुलपिता से आयुष्मान् सारिपुत्र बोले—गृहपति ! तुम्हारी इन्द्रियो प्रसन्न दीख रही हैं, सुखवर्ण सतेज और परिशुद्ध है । क्या तुम्हें आज भगवान् से धर्मकथा सुनने को मिली है ?

भला और क्या भन्ते ! अभी ही मैं भगवान् के धर्मोपदेशरूपी अमृत से अभिषिक्त किया गया हूँ । ... भगवान् ने कहा—गृहपति ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—मेरा शरीर भले ही आतुर हो जाय, किन्तु चित्त आतुर होने नहीं पायगा ।

गृहपति ! इसके आगे की बात भगवान् से पूछने को तुम्हें नहीं सूझी ?—भन्ते ! कैसे शरीर के आतुर होने पर चित्त आतुर होता है ? भन्ते ! कैसे शरीर के आतुर होने पर चित्त आतुर नहीं होता है ?

भन्ते ! मैं बड़ी दूर से भी इस कहे गये के अर्थ को समझने के लिये आयुष्मान् सारिपुत्र के पास आऊँ । अच्छा हो, आयुष्मान् सारिपुत्र ही इसका अर्थ बताते ।

गृहपति ! तो सुनो अच्छी तरह सब छागाबी मैं कहता हूँ ।

सन्धे । बहुत अच्छा" कह गृहपति नकुम्पिता ने आयुष्मान् सारियुग को उठार दिया ।

आयुष्मान् सारियुग बोले—गृहपति ! कैसे शरीर के आतुर हो जाने पर चित्त भी आतुर हो जाता है ? गृहपति । कोई प्रयत्नजन्य अविद्यात्, आर्षों को न देखने बाका आर्षधर्म को नहीं जानने बाका, आर्ष-धर्म में विनीत नहीं हुआ सत्पुरुषों को न देखनेबाका सत्पुरुषों के धर्म को नहीं जानने-बाका सत्पुरुषों के धर्म में विनीत नहीं हुआ रूप को अपनापन की दृष्टि से देखता है। या रूपवान् को अपना, या अपने में रूप को; या रूप में अपने को देखता है । मैं रूप हूँ; मेरा रूप है—ऐसा मन में जाता है । वह जिस रूप को अपने में और अपना समझता है वह विपरिणत हो जाता है बद्ध जाता है । उस रूप के विपरिणत और अन्यथा हो जाने से उसे शोक, रोना पीटना दुःख, दीर्घमरण और अपायास होते हैं ।

बन्दा को अपनापन की दृष्टि से देखता है ।

संज्ञार्थी । मस्करों को ; विज्ञान को अपनापन की दृष्टि से देखता है; या विज्ञान को अपना; या अपने में विज्ञान को; या विज्ञान में अपने को देखता है । मैं विज्ञान हूँ; मेरा विज्ञान है—ऐसा मन में जाता है । वह जिस विज्ञान को अपने में और अपना समझता है वह विपरिणत हो जाता है अन्यथा हो जाता है । तब विज्ञान के विपरिणत और अन्यथा हो जाने से उसे शोक-रोना-पीटना दुःख दीर्घमरण और अपायास होते हैं ।

गृहपति ! इसी तरह शरीर के आतुर हो जाने पर चित्त भी आतुर हो जाता है ।

गृहपति ! कैसे शरीर के आतुर हो जाने पर चित्त आतुर नहीं होता है ?

गृहपति ! कोई विद्वान् आर्षधामक, आर्षों को देखने बाका, आर्षों के धर्म का जानने बाका आर्षों के धर्म में सुविनीत सत्पुरुषों के धर्म में सुविनीत होता है । वह रूप को अपनापन की दृष्टि से नहीं देखता है; या रूप को अपना; या अपने में रूप को; या रूप में अपने को नहीं देखता है । मैं रूप हूँ; मेरा रूप है—ऐसा मन में नहीं जाता है । तब उस रूप के विपरिणत और अन्यथा हो जाने से उस शोकदि नहीं होते ।

बेदना को ; संज्ञा को ; मस्करों को ; विज्ञान की अपनापन की दृष्टि से नहीं देखता है । तब उस विज्ञान के विपरिणत और अन्यथा हो जाने से उसे शोकदि नहीं होते ।

गृहपति ! इसी तरह शरीर के आतुर हो जाने पर चित्त आतुर नहीं होता है ।

आयुष्मान् सारियुग कह बोले । गृहपति नकुम्पिता ने समुद्र होकर आयुष्मान् सारियुग के कह का अभिनन्दन किया ।

३ २ देवदत्त सुच (२१ १ १ २)

गुह की शिक्षा छन्द-पाग का वृत्त

देना मिने सुना ।

एक समय भगवान् शाक्यों के देश में द्युद्ध नामक शाक्यों के करने में बिहार करते थे ।

तब कुछ पश्चिम की ओर जाने वाले मिथु जहाँ भगवान् थे वहाँ जाये और भगवान्‌का अभिवादन कर दूक और ईद गये ।

एक बार ईद ने मिथु भगवान् न बाका—सन्धे । हम पश्चिम देश में जाना चाहते हैं पश्चिम देश में निवास करनी हमारी इच्छा है ।

१ शाक्यों के मगध के पास यथा हुआ नगर दक्षर' कहा जाता था और आठपाठ का नियम भी इसी नाम से प्रसिद्ध था—सदृश ।

भिक्षुओ ! सारिपुत्र से तुमने छुट्टी ले ली है ?

नहीं भन्ते ! सारिपुत्र से हमने छुट्टी नहीं ली है ।

भिक्षुओ ! सारिपुत्र ने छुट्टी ले ली । सारिपुत्र भिक्षुओं में पण्डित हैं, सग्राह्यचारियों का अनुग्राहक है ।

“भन्ते ! बहुत अच्छा” कह, उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र भगवान् के पास ही किसी प्लगला^१ नामक गुम्फ के नीचे बैठे थे ।

तब, वे भिक्षु भगवान् के श्रापित का अनुमोदन और अभिनन्दन कर, आसन से उठ भगवान् को अभिवादन और प्रदक्षिणा कर, जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ गये । जाकर, आयुष्मान् सारिपुत्र से कुशल क्षेम के प्रश्न पूछ एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ, वे भिक्षु आयुष्मान् सारिपुत्र से बोले:—भन्ते ! हम पश्चिम देश में जाना चाहते हैं, पश्चिम देश में निवास करने की हमारी इच्छा है । हमने बुद्ध से छुट्टी ले ली है ।

आवुस ! नाना देश में घूमने वाले भिक्षु को तरह तरह के प्रश्न करने वाले मिलते हैं—क्षत्रिय पण्डित भी, ब्राह्मण पण्डित भी, गृहस्थ पण्डित भी, श्रमण पण्डित भी । आवुस ! पण्डित मनुष्य पूछेंगे, “आयुष्मानों के गुरु की क्या शिक्षा है, क्या उपदेश है ?” आयुष्मानों ने क्या धर्म का अच्छी तरह अध्ययन कर लिया है, अच्छी तरह ग्रहण कर लिया है, अच्छी तरह मनन कर लिया है, अच्छी तरह धारण कर लिया है—

जिससे आप भगवान् के धर्म को ठीक-ठीक कह सकें, कुछ उलटा-पुलटा न कर दें, धर्मासुकूल ही बोलें, वातचीत करने में किसी सदोप स्थान पर नहीं पहुँच जायें ?

आवुस ! इस कहे गये का अर्थ जानने के लिये हम दूर से भी आयुष्मान् सारिपुत्र के पास आवें । इसका अर्थ आप आयुष्मान् सारिपुत्र ही कहते तो अच्छा था ।

आवुस ! तो सुनें, अच्छी तरह मन लगावें, मैं कहता हूँ ।

“आवुस ! बहुत अच्छा” कह, भिक्षुओं ने आयुष्मान् सारिपुत्र को उत्तर दिया ।

आयुष्मान् सारिपुत्र बोले—आवुस ! पण्डित मनुष्य आप से पूछेंगे, “आयुष्मानों के गुरु की क्या शिक्षा है, क्या उपदेश है ?” आवुस ! ऐसा पूछे जाने पर आप यों उत्तर देंगे—छन्दराग को दमन करना हमारे गुरु की शिक्षा है ।

आवुस ! ऐसा उत्तर देने पर भी, ऐसे पण्डित लोग हैं जो आगे का प्रश्न पूछेंगे, “आयुष्मानों के गुरु छन्दराग को कैसे दमन करने का उपदेश देते हैं ?” आवुस ! ऐसा पूछे जाने पर आप यों उत्तर देंगे—रूप में छन्दराग का दमन करना हमारे गुरु की शिक्षा है, वेदना में , संज्ञा में , सस्कारों में , विज्ञान में ।

आवुस ! ऐसा उत्तर देने पर भी ऐसे पण्डित लोग हैं जो आगे का प्रश्न पूछेंगे, “आयुष्मानों के गुरु रूप में क्या दोष देखकर उसमें छन्दराग को दमन करने का उपदेश देते हैं ?” वेदना , संज्ञा , सस्कार , विज्ञान । आवुस ! ऐसा पूछे जाने पर आप यों उत्तर देंगे—जिसको रूप में राग लगा हुआ है, छन्द लगा हुआ है, प्रेम लगा हुआ है, प्यास लगी हुई है, लगन लगी हुई है, तृष्णा लगी हुई है, उसे रूप के विपरिणत और अन्यथा हो जाने से शोकादि उत्पन्न होते हैं । वेदना , संज्ञा , सस्कार , विज्ञान । हमारे गुरु रूप में इसी दोष को देखकर उसमें छन्दराग को दमन करने

२ वृक्षों का मण्डप । यह मण्डप पानी वाले प्रदेश में था । उसके नीचे ईंटों का एक बगला-सा बना दिया गया था, जो बड़ा ही शीतल था—अट्ठकथा ।

का उपदेश देते हैं। वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान में छन्दराग को हमन करने का उपदेश देते हैं।

आहुस ! ऐसा उत्तर देने पर भी ऐसे परिचित हैं जो ध्याने का प्रश्न पूछेंगे “आयुष्मन्तो के गुण ने क्या काम देकर रूप में छन्द-राग को हमन करने का उपदेश दिया है ? वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान ?” आहुस ! ऐसा बूढ़े बान्ने पर ध्याने को उत्तर देंगे—रूप में जो विगतराग विगतउन्मद विगतद्वेष विगतपिपास विगतपरिक्लेश और विगतदुःख है उसे रूप के विपरिवर्तन और अभ्यया हो जाने से शोकदि नहीं होते। वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान। इसी काम को देख-कर हमारे गुण ने रूप में वेदना में संज्ञा में संस्कारों में विज्ञान में छन्दराग को हमन करने का उपदेश दिया है।

आहुस ! अकुसल धर्मों के साथ विहार करनेवाला इसी जन्म में यदि सुख से विहार करता उसे विघात परिकल वा अपाधास नहीं होते। शरीर छूट कर मरने के बाद उसकी गति अच्छी होती, तो मगवान् अकुसल धर्मों का प्रहाय नहीं बताते।

आहुस ! क्योंकि अकुसल धर्मों के साथ विहार करने से इसी जन्म में दुःख से विहार करता है उसे विघात परिकल और अपाधास होते हैं तथा शरीर छूट कर मरने के बाद दुर्गति को प्राप्त होता है इसी से मगवान् ने अकुसल धर्मों का प्रहाय बताया है।

आहुस ! कुसल धर्मों के साथ विहार करने से यदि इसी जन्म में दुःख से विहार करता तो मगवान् कुसल धर्मों का सहाय करना नहीं बताते।

आहुस ! क्योंकि कुसल धर्मों के साथ विहार करने से इसी जन्म में सुख से विहार करता है उसे विघातदि नहीं होते तथा शरीर छूट कर मरने के बाद उसकी गति अच्छी होती है इसी से मगवान् ने कुसल-धर्मों का सहाय करना बताया है।

आयुष्मान् सारिपुत्र यह बोले। संतुष्ट होकर उन भिक्षुओं ने आयुष्मान् सारिपुत्र के गद्दे का अभिमन्त्रन किया।

§ ३ पथम हासिलिकानि सुत्त (२१ १ १ ३)

मागन्धिय-प्रश्न की व्याख्या

ऐसा मने सुत्ता।

एक समय आयुष्मान् महाकात्यायन अवस्थी में कुरुरघर के अर्धे पथ पर विहार करते थे। तब, गृहपति हासिलिकानि वहाँ आयुष्मान् महाकात्यायन से वहाँ जाकर और सबका अभिवादन कर एक और बैठ गया। एक और बैठ, गृहपति हासिलिकानि आयुष्मान् महाकात्यायन से बोला-धन्ये ! मगवान् ने अद्वैतार्थिक मागन्धिय प्रश्न में कहा है—

वर को धीरे धीरे ब्रह्मसेवाका

सुनि गाँव में लगाव-बसाव न करते हुए

धर्मों से रिक्त नहीं अपमपन न कोष

कियी मनुष्य से कुछ संशय नहीं करता है न

धन्ये ! मगवान् ने जो यह संक्षेप से कहा है उसका विस्तार-पूर्वक कैसे जहाँ समझना चाहिये ?

गृहपति ! कन्याय विज्ञान का वर है। कन्याय के रूप में बँबा हुआ विज्ञान वर में रहनेवाला कहा जाता है। गृहपति ! वेदवाचाय विज्ञान का वर है। वेदवाचाय के राग में बँबा हुआ विज्ञान वर में रहने वाला कहा जाता है। गृहपति ! संज्ञावाय विज्ञान का वर है। संज्ञावाय के राग में बँबा हुआ

विज्ञान घर में रहने वाला कहा जाता है। गृहपति ! संस्कारधातु विज्ञान का घर है। संस्कारधातु के राग में बँधा हुआ विज्ञान घर में रहने वाला कहा जाता है।

गृहपति ! इसी तरह कोई घर में रहने वाला कहा जाता है।

गृहपति ! कोई वेघर कैसे होता है ?

गृहपति ! जो रूपधातु के प्रति छन्द = राग = नन्दि = नृणा = उपादान तथा चित्त के अधिष्ठान, अभिनिवेश और अनुशय है, सभी बुद्ध में प्रहीण = उच्छिन्नमूल = शिर कटे तालवृक्ष के ऐसा = मिटे = भविष्य में कभी उठ न सकने वाले हुये रहते हैं। इसीलिये, बुद्ध वेघर कहे जाते हैं।

गृहपति ! जो वेदनाधातु के प्रति '...', संज्ञाधातु के प्रति '...', संस्कारधातु के प्रति '...' इसी लिये बुद्ध वेघर कहे जाते हैं।

गृहपति ! ऐसे ही कोई वेघर होता है।

गृहपति ! कैसे कोई निकेतसारी होता है ?

गृहपति ! जो रूप निमित्त के निकेत में फँसकर बँध गया है वह निकेतसारी कहा जाता है। जो शब्दनिमित्त '...', गन्धनिमित्त '...', रसनिमित्त '...', स्पर्शनिमित्त '...', धर्मनिमित्त '...'।

गृहपति ! कैसे कोई अनिकेतमारी होता है ?

गृहपति ! जो रूप निमित्त के निकेत में फँसकर बँध जाता है, वह बुद्ध में प्रहीण = उच्छिन्नमूल = शिर कटे तालवृक्ष के ऐसा = मिटे = भविष्य में कभी उठ न सकने वाले हुये रहते हैं। इसीलिये, बुद्ध अनिकेतसारी कहे जाते हैं। शब्द '...', गन्ध '...', रस '...', स्पर्श '...', धर्म '...'।

गृहपति ! गाँव में लगाव-बन्धन करने वाला कैसे होता है ?

गृहपति ! कोई (भिक्षु) गृहस्थों से मसृष्ट होकर विहार करता है, उनके आनन्द में आनन्द मनाता है, उनके शोक में शोकित होता है, उनके सुख-दुःख में सुखी-दुःखी होता है, उनके काम-काज आ पढ़ने पर अपने भी जुट जाता है। गृहपति ! इसी तरह, गाँव में लगाव-बन्धन करने वाला होता है।

गृहपति ! कैसे गाँव में लगाव-बन्धन करने वाला नहीं होता है ?

गृहपति ! कोई (भिक्षु) गृहस्थों से असंमृष्ट होकर विहार करता है, उनके आनन्द में आनन्द नहीं मनाता, उनके शोक में शोकित नहीं होता, उनके सुख-दुःख में सुखी-दुःखी नहीं होता, उनके काम-काज आ पढ़ने पर अपने भी जुट नहीं जाता है। गृहपति ! इसी तरह, गाँव में लगाव-बन्धन करने वाला नहीं होता है।

गृहपति ! कैसे कोई कामों से अरिक्त होता है ?

गृहपति ! कोई कामों में अविगतराग होता है, अविगतछन्द = अविगतप्रेम = अविगतपिपास = अविगत-परिलाह = अविगतवृष्ण होता है। गृहपति ! इसी तरह, कोई कामों से अरिक्त होता है।

गृहपति ! कैसे कोई कामों से रिक्त होता है ?

गृहपति ! कोई कामों में विगतराग होता है, विगतछन्द = विगतप्रेम = विगतपिपास = विगतपरिलाह = विगतवृष्ण होता है। गृहपति ! इसी तरह कोई कामों से रिक्त होता है।

गृहपति ! कैसे कोई कहीं अपनापन जोड़ता है ?

गृहपति ! किसी के मन में ऐसा होता है—अनागतकाल में मैं इस रूप का होऊँ, इस वेदना • विज्ञान का होऊँ। गृहपति ! इसी तरह कोई अपनापन जोड़ता है।

गृहपति ! कैसे कोई कहीं अपनापन नहीं जोड़ता है ?

गृहपति ! किसी के मन में ऐसा नहीं होता है—अनागतकाल में मैं इस रूप का होऊँ, इस वेदना • • विज्ञान का होऊँ। गृहपति ! इसी तरह, कोई अपनापन नहीं जोड़ता है।

गृहपति ! कैसे कोई किसी मनुष्य से क्षण्ट करता है ?

गृहपति ! कोई इस प्रकार कहता है—तुम इस धर्मविनय को नहीं जानते हो मैं इस धर्मविनय को जानता हूँ तुम इस धर्मविनय को क्या जानोगे ! तुम भिक्षा मार्ग पर आसक्त हो मैं धुमार्गपर आसक्त हूँ । जो पहले कहना चाहिये या उसे पीछे करता, जो पीछे कहना चाहिये या उसे पहले ही कह दिया । मेरा कहना विषयानुसृत है तुम्हारा कहना तो विषयान्तर हो गया । जो तुमने इतना कहा सभी उकड़ गया । तुम्हारे बिन्दु तक वे दिया गया है, अब छूटने की कोशिश करो । तुम तो पकड़ा गये यदि ताकत है तो निकलो । गृहपति ! इसी तरह कोई किसी मनुष्य से संशय करता है ।

गृहपति ! कैसे कोई किसी मनुष्य से संशय नहीं करता है ।

गृहपति ! कोई इस प्रकार नहीं कहता है—तुम इस धर्मविनय को नहीं जानते हो मैं इस धर्म विनय का जानता हूँ । गृहपति ! इसी तरह कोई किसी मनुष्य से संशय नहीं करता है ।

गृहपति ! यही भगवान् ने अष्टकवर्गिक मागम्भिय प्रश्न में कहा है—

वर को छोड़ बेघर भूमने बाका

मुनि गाँव में जगाव-वझाव न करते हुए

कामों से रिक्त, कहीं अपनापन न जोड़

किसी मनुष्य से कुछ संशय नहीं करता है ।

गृहपति ! भगवान् ने जो यह संक्षेप से कहा है उसका विस्तारपूर्वक ऐसे ही अर्थ समझना चाहिये ।

३ ४ दुतिय हालिदिकानि सुत्त (२१ १ १ ४)

शक्र प्रश्न की व्याख्या

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय आपुष्पाम महाकात्यायन अश्वमेधी में छुररधर के लगे पक्ष पर बिहार करते थे ।

तब " एक बार बड़ गृहपति हालिदिकानि आपुष्पाम महाकात्यायन से बोला—भगते ! भगवान् ने यह शक्र प्रश्न में कहा है—

'जो धर्म का माहण लूणा क क्षय से विमुक्त हो गये हैं

उन्हींमें अपना कर्तव्य पूरा कर किया है उन्हींमें परम—

योग-श्रेय का किया है व ही सत्यतः ब्रह्मचारी हैं

उन्हींमें उच्चतम स्थान को पा लिया है तथा देवताओं की

मनुष्यों में वे ही श्रेष्ठ हैं ।

भगते ! भगवान् के इस संक्षेप में कहे गये का विस्तारपूर्वक अर्थ कैसे समझना चाहिये ।

गृहपति ! रूपवान् के प्रति जो उम्भू=राग=भ्रामन् सृजना=लूणा=व्यापान तथा चित्त के अधिष्ठान अभिमिदोहा और अनुशास हैं उनके अन्तःविश्राण=निरोध=प्राप्ति से चित्त विमुक्त कहा जाता है ।

गृहपति ! वैदना आशु के प्रति " । संज्ञा प्राप्ति । संस्कार-प्राप्ति । विज्ञान प्राप्ति ।

गृहपति ! यही भगवान् ने शक्र प्रश्न में कहा है जो धर्म का माहण लूणा क क्षय से ।

गृहपति ! भगवान् के इस संक्षेप में कहे गये का विस्तारपूर्वक अर्थ कैसे ही समझना चाहिये ।

३ ५ समाधि सुत्त (२१ १ १ ५)

समाधि का अभ्यास

ऐसा मैंने सुना ।

भिक्षुओ ! समाधि का अभ्यास करो । भिक्षुओ ! समाधि हाकर भिक्षु ब्रह्मार्थ को ज्ञान ऐसा

है । किसके यथार्थ को जान लेता है ? रूप के उगने और दूबने के । वेदना के उगने और दूबने के । संस्कारों के... । विज्ञान के ।

भिक्षुओ ! रूप का उगना क्या है ? वेदना... ; सजा... , संस्कार... , विज्ञान का उगना क्या है ?

भिक्षुओ ! (कोई) आनन्द मनाता है, आनन्द के शब्द कहता है, उसमें दूब जाता है । किमसे आनन्द मनाता है... ?

रूप में आनन्द मनाता है, आनन्द के शब्द कहता है, उसमें दूब जाता है । इसमें वह रूप में आसक्त हो जाता है । रूप में तो यह आसक्त होता है वही उपादान है । उस उपादान के प्रत्यय से भय होता है । भय के प्रत्यय में जाति होती है । जाति के प्रत्यय से जरा, मरण... होते हैं । इस तरह सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है ।

वेदना से... ; सजा से..., संस्कारों से..., विज्ञान में आनन्द मनाता है... । इस तरह सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है ।

भिक्षुओ ! रूप, वेदना, सजा, संस्कार, विज्ञान यहाँ उगना है ।

भिक्षुओ ! रूप, वेदना, सजा, संस्कार, विज्ञान का दूब जाना क्या है ?

भिक्षुओ ! (कोई) न तो आनन्द मनाता है, न आनन्द के शब्द कहता है, और न उसमें दूब जाता है । किमसे न तो आनन्द मनाता है... ?

रूप से न तो आनन्द मनाता है, न आनन्द के शब्द कहता है, और न उसमें दूब जाता है । इससे रूप में, उसकी जो आसक्ति है वह निरुद्ध हो जाती है । आसक्ति के निरुद्ध हो जाने से उपादान नहीं होता । उपादान के निरुद्ध हो जाने से भय नहीं होता... । इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है ।

वेदना से..., सजा से..., संस्कार से..., विज्ञान से... । इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है ।

भिक्षुओ ! यही रूप का दूब जाना है, वेदना का दूब जाना है, सजा का दूब जाना है, संस्कारों का दूब जाना है, विज्ञान का दूब जाना है ।

§ ६. पटिसल्लान सुत्त (२१ १ १. ६)

ध्यान का अभ्यास

श्रावस्ती... ।

भिक्षुओ ! ध्यान के अभ्यास में लग जाओ । भिक्षुओ ! ध्यानस्थ हो भिक्षु यथार्थ को जान लेता है । किसके यथार्थ को जान लेता है ?

रूपके उगने और दूबने के यथार्थ को । वेदना..., सजा..., संस्कार..., विज्ञान... ।

[ऊपर वाले सूत्र के समान]

§ ७. पठम उपादान परितस्सना सुत्त (२१ १ १. ७)

उपादान और परितस्सना

श्रावस्ती... ।

भिक्षुओ ! उपादान और परितस्सना के विषय में उपदेश करूँगा । अनुपादान और अपरितस्सना के विषय में उपदेश करूँगा । उसे सुनो, अच्छी तरह मनमें लाओ, मैं कहता हूँ ।

“भन्ते ! बहुत्त अज्झा” कह भिक्षुओ ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—मिथुओ ! उपादान और परितस्सना कैसे होती है ?

मिथुओ ! कोई अविज्ञान् एपक्खन रूप को अपना समझता है; अपने को रूपवाक्य समझता है; अपने में रूप या रूप में अपने को समझता है । तब वह रूप विपरिणत तथा दूसरा ही हो जाता है । रूप के विपरिणत तथा दूसरा ही हो जाने से रूपविपरिणामानुवर्ती विज्ञान होता है । उसे रूपविपरिणामानुपरिचर्तका परितस्सना के होने से चित्त उसमें बस जाता है । चित्त के बस जाने से उस उपास हुआ, अपेक्षा और परितस्सना होती है ।

मिथुओ ! वेदना को अपना समझता है । संज्ञा को अपना समझता है । संस्कारों को अपना समझता है ।—विज्ञान को अपना समझता है ।

मिथुओ ! इसी तरह उपादान और परितस्सना होती है ।

मिथुओ ! अनुपादान और अपरितस्सना कैसे होती है ?

मिथुओ ! कोई विज्ञान् आर्यभावक रूपको अपना नहीं समझता है; अपने को रूपवाक्य नहीं समझता है; अपने में रूप या रूप में अपने को नहीं समझता है । तब, वह रूप विपरिणत तथा दूसरा ही हो जाता है । रूप के विपरिणत तथा दूसरा ही हो जाने से रूपविपरिणामानुवर्ती विज्ञान नहीं होता है । रूपविपरिणामानुपरिचर्तका बर्तन की उत्पत्ति से उसका चित्त परितस्सना में नहीं बसता है । चित्त के नहीं बसने से उस उपास हुआ, अपेक्षा परितस्सना नहीं होती है ।

मिथुओ !—वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान को अपना नहीं समझता है ।

मिथुओ ! इसी तरह अनुपादान और अपरितस्सना होती है ।

४८ द्वितीय उपादान परितस्सना सुच (१२ १ १ ८)

उपादान और परितस्सना

भावस्ती ।

‘मिथुओ ! उपादान और परितस्सना कैसे होती है ?

मिथुओ ! कोई अविज्ञान् एपक्खन रूप को ‘‘वह मेरा है; वह मैं हूँ; वह मेरा आत्मा है’’ समझता है । उसका वह रूप विपरिणत तथा अन्यथा हो जाता है । रूप के विपरिणत तथा अन्यथा हो जाने से उसे शोक परिदेव हुआ हीमंवरन और उपादास होते हैं ।

मिथुओ ! वेदना को , संज्ञा को , संस्कार को , विज्ञान को ।

मिथुओ ! इसी तरह, उपादान और परितस्सना होती है ।

मिथुओ ! अनुपादान और अपरितस्सना कैसे होती है ?

मिथुओ ! कोई विज्ञान् आर्यभावक रूपको ‘‘वह मेरा है; वह मैं हूँ; वह मेरा आत्मा है’’ नहीं समझता है । उसका वह रूप विपरिणत तथा अन्यथा हो जाता है । रूप के विपरिणत तथा अन्यथा हो जाने से उसे शोक परिदेव हुआ हीमंवरन और उपादास नहीं होते हैं ।

—‘वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

मिथुओ ! इसी तरह अनुपादान और अपरितस्सना होती है ।

४९० षष्ठम मवीदानागत सुच (२१ १ १ ९)

भूत और भविष्यत्

भावस्ती—

‘‘भगवान् बोले—मिथुओ ! भूत अतीत और अनागत में अमित्र है; वर्तमान का वहना बना।

भिक्षुओ ! इसे जानकर विद्वान् आर्यश्रावक अतीत के रूप में अनपेक्ष रहता है, अनागत रूपका अभिनन्दन नहीं करता, वर्तमान रूप के निर्वेद, विराग और निरोध के लिये यत्नवान् रहता है ।

• वेदना • , संज्ञा • , सस्कार • , विज्ञान ।

§ १०. दुत्तिय अतीतानागत सुत्त (२१ १. १. १०)

भूत और भविष्यत्

श्रावस्ती ।

• भगवान् बोले—भिक्षुओ ! रूप अतीत और अनागत में दुःख है, वर्तमान का कहना क्या ? भिक्षुओ ! इसे जानकर विद्वान् आर्यश्रावक अतीत के रूप में अनपेक्ष रहता है, अनागत रूप का अभिनन्दन नहीं करता, वर्तमान रूप के निर्वेद, विराग और निरोध के लिये यत्नवान् रहता है ।

वेदना , संज्ञा , सस्कार • , विज्ञान ।

§ ११. ततिय अतीतानागत सुत्त (२१ १ १. ११)

भूत और भविष्यत्

श्रावस्ती ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! रूप अतीत और अनागत में अनात्म है, वर्तमान का कहना क्या ? [पूर्ववत्]

नकुलपितावर्ग समाप्त

दूसरा भाग

अनित्य वर्ग

§ १ अनित्य सुप्त (२१ १ २ १)

अनित्यता

ऐसा मैंने सुना ।

***भावस्ती ।

---मगधात् बोधे :—मिथुनो ! रूप अनित्य है वेदना अनित्य है संज्ञा अनित्य है विज्ञान अनित्य है ।

मिथुनो ! इस जानकर विद्वान् आर्यभट्टाचक्र को रूप से भी निर्बेद होता है, वेदना से भी निर्बेद होता है संज्ञा से भी निर्बेद होता है संस्कारों से भी निर्बेद होता है विज्ञान से भी निर्बेद होता है । निर्बेद होने से विरक्त हो जाता है वैराग्य से विमुक्त हो जाता है । विमुक्त हो जाने से विमुक्त हो गया ऐसा ज्ञान होता है । विमुक्त हो जाने से बुरा हो गया जो करना भा छा कर किया गया अब कुछ बाकी नहीं बचा—ऐसा जान लेता है ।

§ २ दुःख सुप्त (२१ १ २ २)

दुःख

आवस्ती ।

मिथुनो ! रूप दुःख है वेदना दुःख है संज्ञा दुःख है संस्कार दुःख है विज्ञान दुःख है ।

मिथुनो ! इसे जान कर --।

§ ३ अनन्त सुप्त (२१ १ २ ३)

अनात्मता

भावस्ती ।

मिथुनो ! रूप अनात्म है -- ।

मिथुनो ! इसे जान कर ।

§ ४ पठम यदनिच्च सुप्त (२१ १ २ ४)

अनित्यता के गुण

भावस्ती ।

मिथुनो ! रूप अनित्य है । जो अनित्य है वह दुःख है । जो दुःख है वह अनात्म है । जो अनात्म है वह न तो मेरा न मैं न मेरा आत्मा है । इसे वचार्थता महावर्णक रूपता कहिये ।

वेदना***, सज्ञा***, सस्कार **, विज्ञान अनित्य है***।

भिक्षुओ ! इसे जानकर विद्वान् आर्यश्रावक जाति क्षीण हुई **ऐसा जान लेता है ।

§ ५. दुतिय यदनिच्च सुत्त (२१ १ २. ५)

दुःख के गुण

श्रावस्ती ।

***भिक्षुओ ! रूप दुःख है । जो दुःख है वह अनात्म है ।

• [शेष पूर्ववत्]

§ ६. ततिय यदनिच्च सुत्त (२१ १. २. ६)

अनात्म के गुण

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! रूप अनात्म है ।

[शेष पूर्ववत्]

§ ७. पठम हेतु सुत्त (२१ १. २ ७)

हेतु भी अनित्य है

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! रूप अनित्य है । रूप की उत्पत्ति के जो हेतु और प्रत्यय हैं वे भी अनित्य हैं ।
भिक्षुओ ! अनित्य से उत्पन्न होकर रूप नित्य कैसे हो सकता है ।

[इसी तरह वेदना, सज्ञा, सस्कार और विज्ञान के विषय में]

भिक्षुओ ! इसे जान कर विद्वान् आर्यश्रावक ***जाति क्षीण हुई * ऐसा जान लेता है ।

§ ८. दुतिय हेतु सुत्त (२१ १ २. ८)

हेतु भी दुःख है

श्रावस्ती ।

• भिक्षुओ ! रूप दुःख है । रूप की उत्पत्ति के जो हेतु और प्रत्यय हैं वे भी दुःख हैं । भिक्षुओ !
दुःख से उत्पन्न होकर रूप सुख कैसे हो सकता है ।

[इसी तरह वेदना, सज्ञा, सस्कार, और विज्ञान के विषय में]

भिक्षुओ ! इसे जानकर विद्वान् आर्यश्रावक जाति क्षीण हुई ***ऐसा जान लेता है ।

§ ९. ततिय हेतु सुत्त (२१ १ २ ९)

हेतु भी अनात्म है

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! रूप अनात्म है । रूप की उत्पत्ति के जो हेतु और प्रत्यय हैं वे भी अनात्म हैं ।
भिक्षुओ ! अनात्म से उत्पन्न हो कर रूप आत्मा कैसे हो सकता है ।

[पूर्ववत्]

§ १० आनन्द सुष्ठ (२१ १ २ १०)

मिरोध किसका ?

आपस्ती ।

तब, आयुष्मान् आनन्द बहो भगवान् मे बहो आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ आयुष्मान् आनन्द भगवान् से बोले :—मस्ते ! लोग 'मिरोध मिरोध' कहा करते हैं । मन्ते ! किम धर्मोक्क मिरोध मिरोध कहा जाता है ?

आनन्द ! कय अभित्थ है संस्सुत्त है मत्तीत्थसमुत्पप्प है, अन्नधर्मा है, पक्कधर्मा है मिरोधधर्मा है । उसी के मिरोध से मिरोध कहा जाता है ।

वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान , उसीके मिरोध से मिरोध कहा जाता है ।

आनन्द ! इन्हीं धर्मों के मिरोध से मिरोध कहा जाता है ।

अभित्थ धर्मा समाप्त ।

तीसरा भाग

भार वर्ग

§ १. भार सुत्त (२१ १. ३. १)

भार को उतार फेंकना

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! भार के विषय में उपदेश करूँगा भारहार के विषय में, भार उठाने के विषय में और भार उतार देने के विषय में । उसे सुनो ।

भिक्षुओ ! भार क्या है ?

इन पाँच उपादान-स्कन्धों को कहना चाहिये । किन पाँच ? जो यह, रूप-उपादान-स्कन्ध, वेदना-उपादान-स्कन्ध, सज्ञा-उपादान स्कन्ध, सस्कार-उपादान-स्कन्ध, और विज्ञान-उपादान स्कन्ध हैं । भिक्षुओ ! इसी को भार कहते हैं ।

भिक्षुओ ! भारहार क्या है ? पुरुष को ही कहना चाहिये । जो यह आयुष्मान् इस नाम और इस गोत्र के हैं । भिक्षुओ ! उसी को भारहार कहते हैं ।

भिक्षुओ ! भार का उठाना क्या है ? जो यह तृष्णा, पुर्नजन्म करानेवाली, आसक्ति और राग-वाली, वहाँ वहाँ लग जानेवाली है । जो यह काम तृष्णा, भव तृष्णा, विभव-तृष्णा है । भिक्षुओ ! इसी को भार का उठाना कहते हैं ।

भिक्षुओ ! भार का उतार देना क्या है ? उसी तृष्णा का जो बिल्कुल विराग=निरोध=त्याग=प्रतिनि सर्ग=मुक्ति=क्षनालय है । भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं भार का उतार देना ।

भगवान् यह बोले । यह कह कर बुद्ध फिर भी बोले —

ये पाँच स्कन्ध भार हैं,

पुरुष भारहार है,

भार का उठाना लोक में दुःख है,

भार का उतार देना सुख है ॥ १॥

भार के बोझ को उतार,

दूसरा भार नहीं लेता है,

तृष्णा की जड़ से उखाड़,

दुःखमुक्त निर्वाण पा लेता है ॥ २॥

§ २. परिज्जा सुत्त (२१ १ ३ २)

परिज्जेय और परिज्जा की व्याख्या

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! परिज्जेय धर्म और परिज्जान के विषय में उपदेश करूँगा । उसे सुनो ॥

भिक्षुओ ! परिज्जेय धर्म क्या है ? भिक्षुओ ! रूप परिज्जेय धर्म है, वेदना परिज्जेय धर्म है, सज्ञा

परिज्ञेय धर्म है संस्कार परिज्ञेय धर्म है विज्ञान परिज्ञेय धर्म है । मिथुनो ! इन्हीं को परिज्ञेय धर्म कहते हैं ।

मिथुनो ! परिज्ञा क्या है ? मिथुनो ! जो राग द्वेष और मोह द्वेष है उसी को परिज्ञा कहते हैं ।

§ ३ अभिव्रान मुक्त (२१ १ ३ ३)

रूप को समझे बिना दुःख का क्षय नहीं

भावस्ती ।

मिथुनो ! रूप को बिना समझे जाने, त्याग किये तथा उससे विरक्त हुये कोई दुःखों का क्षय नहीं कर सकता है ।

‘वेदना’ , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान को बिना समझे जाने त्याग किये तथा उससे विरक्त हुये कोई दुःखों का क्षय नहीं कर सकता है ।

मिथुनो ! रूप को समझ जान त्याग उससे विरक्त हो कोई दुःखों का क्षय कर सकता है ।

वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान को समझ जान त्याग कर तथा उससे विरक्त हो कोई दुःखों का नाश कर सकता है ।

§ ४ छन्दराग मुक्त (२१ १ ३ ४)

छन्दराग का त्याग

भावस्ती ।

मिथुनो ! रूपमें जो छन्दराग है उसे छोड़ दो । इस तरह वह रूप प्रतीय हो जायगा बहिष्कृत मूक कहे हुये सिर वाले वाक्पुच्छ के समान जब भाव किया हुआ फिर भी कमी न उठा सकने वाला ।

वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान में जो छन्दराग है उसे छोड़ दो ।

§ ५ पठम अस्साद मुक्त (२१ १ ३ ५)

रूपादि का आस्वाद

भावस्ती ।

मिथुनो ! सुखरूप प्राप्त करने के पहले जो बिसरल रहते ही भरे मनमें वह हुआ ।—रूप का आस्वाद क्या है शब्द क्या है सुखरूप क्या है ? वेदना संज्ञा ? संस्कार ? विज्ञान ?

मिथुनो ! तब मेरे मनमें यह हुआ ।—रूप के प्रत्यक्ष से जो सुख और सीमबल होता है वही रूप का आस्वाद है । रूप को अतिवृत्त हुए विपरिणामधर्मों है वह रूप का शब्द (= आशीष) है । जो रूप के प्रति छन्दराग को क्या होगा प्रतीति करना है वही रूप से सुखकारा है ।

[वेदना संज्ञा संस्कार और विज्ञान के साथ भी ऐसे ही]

मिथुनो ! जब तक मैंने इस पाँच उपादान-स्कन्धों के आस्वाद को आस्वाद के तीर पर शब्द को शब्द के तीर और सुखरूप को सुखरूप के तीर पर नवाच्यता नहीं ज्ञाप किया था तब तक इस लोक में अनुत्तर सम्बन्ध सम्बुद्धत्व प्राप्त करने का दावा नहीं किया ।

मिथुनो ! जब मैंने ‘नवाच्यता’ ज्ञाप किया तभी इस लोक में अनुत्तर सम्बन्ध सम्बुद्धत्व प्राप्त करने का दावा किया ।

मुझे ऐसा ज्ञान = दर्शन उत्पन्न हुआ—मेरा चित्त लोक में विमुक्त हो गया वही अन्तिम जाति है जब पुनर्जन्म होने का नहीं ।

§ ६. तृतीय अस्साद सुत्त (२१ १ ३. ६)

आस्वाद की खोज

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! मैंने रूप के आस्वाद की खोज की । रूप का जो आस्वाद है उसे समझ लिया ।

जहाँ तक रूप का आस्वाद है उसे प्रज्ञा से अच्छी तरह देख लिया ।

भिक्षुओ ! मैंने रूप के दोष की खोज की । रूप का जो दोष है उसे समझ लिया । जहाँ तक रूप का दोष है उसे प्रज्ञा से अच्छी तरह देख लिया ।

भिक्षुओ ! मैंने रूप के छुटकारे की खोज की । रूप का जो छुटकारा है उसे समझ लिया । जहाँ तक रूप का छुटकारा है उसे प्रज्ञा से अच्छी तरह देख लिया ।

[वेदना, सज्ञा, सस्कार, और विज्ञान के साथ भी ऐसे ही]

भिक्षुओ ! जब तक मैंने इन पाँच उपादान-स्कन्धों के आस्वाद को आस्वाद के तौर पर

यही अन्तिम जाति है, अब पुनर्जन्म होने का नहीं ।

§ ७. तृतीय अस्साद सुत्त (२१ १. ३. ७)

आस्वाद से ही आसक्ति

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! यदि रूप में आस्वाद नहीं होता तो सत्त्व रूप में आसक्त नहीं होते । भिक्षुओ ! क्योंकि रूप में आस्वाद है इसीलिये सत्त्व रूप में आसक्त होते हैं ।

भिक्षुओ ! यदि रूप में दोष नहीं होता तो सत्त्व रूप से निर्वेद (= विराग) को प्राप्त नहीं होते ।

भिक्षुओ ! क्योंकि रूप में दोष है, इसलिये सत्त्व से निर्वेद को प्राप्त होते हैं ।

भिक्षुओ ! यदि रूप से छुटकारा नहीं होता तो सत्त्व रूप से मुक्त नहीं होते । भिक्षुओ ! क्योंकि रूप से छुटकारा होना है, इसलिये सत्त्व रूप से मुक्त होते हैं ।

[वेदना, सज्ञा, सस्कार, विज्ञान के साथ भी ऐसे ही]

भिक्षुओ ! जब तक सर्वों ने इन पाँच उपादान-स्कन्धों के आस्वाद को आस्वाद के तौर पर, दोष को दोष के तौर पर, और छुटकारे को छुटकारे के तौर पर यथार्थतः नहीं जान लिया तब तक *वे नहीं निकले=छूटे=मुक्त हुये तथा मर्यादा रहित चित्त से विहार किये ।

भिक्षुओ ! जब सर्वों ने *यथार्थतः जान लिया तब *वे निकल गये=छूट गये=मुक्त हुये तथा मर्यादा रहित चित्त से विहार किये ।

§ ८. अभिनन्दन सुत्त (२१ १ ३ ८)

अभिनन्दन से दुःख की उत्पत्ति

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! जो रूप का अभिनन्दन करता है वह दुःख का ही अभिनन्दन करता है । जो दुःख का अभिनन्दन करता है वह दुःख से मुक्त नहीं हुआ है—ऐसा मैं कहता हूँ ।

वेदना , सज्ञा , सस्कार , जो विज्ञान का अभिनन्दन करता है ।

भिक्षुओ ! और, जो रूप का अभिनन्दन नहीं करता है वह दुःख का अभिनन्दन नहीं करता है । जो दुःख का अभिनन्दन नहीं करता है वह दुःख से मुक्त हो गया—ऐसा मैं कहता हूँ ।

वेदना , सज्ञा , सस्कार , जो विज्ञान का अभिनन्दन नहीं करता है ।

§ ९ उत्पाद सुक्त (२१ १ ३ ९)

रूप की उत्पत्ति दुःख का उत्पाद है

भावस्ती ।

मिथुनो ! रूप के जो उत्पाद स्थिति पुनश्च, और प्रादुर्भाव हैं वे दुःख के उत्पाद रोगों की स्थिति और ब्रामरण के प्रादुर्भाव हैं ।

वेदना ; संज्ञा ; संस्कार विज्ञान के जो उत्पाद स्थिति ।

मिथुनो ! जो रूप का विरोध व्युपसम तथा ब्रामरण का अस्त हो जाता है ।

वेदना ; संज्ञा संस्कार ; विज्ञान ।

§ १० अघमूल सुक्त (२१ १ ३ १०)

दुःख का मूल

भावस्ती ।

मिथुनो ! दुःख के विषय में उपदेश कहेगा तथा दुःख के मूल के विषय में । उसे सुनो ।

मिथुनो ! दुःख क्या है ?

मिथुनो ! रूप दुःख है । वेदना दुःख है । संज्ञा दुःख है । संस्कार दुःख हैं । विज्ञान दुःख है ।

मिथुनो ! इसी को दुःख कहते हैं ।

मिथुनो ! दुःख का मूल क्या है ?

जो यह तुम्हा पुनर्भव कराने वाली जासकि आर राग से मुक्त नहीं बहो आनन्द खोजने वाली ।

जो यह, काम-मृणा भव-मृणा विभव-मृणा । मिथुनो ! इसी को दुःख का मूल कहते हैं ।

§ ११ परमंशु सुक्त (२१ १ ३ ११)

क्षयार्थगुरुता

भावस्ती ।

मिथुनो ! भद्र के विषय में उपदेश कहेगा और अमभद्र के विषय में ।

मिथुनो ! क्या भद्र है और क्या अमभद्र ? मिथुनो ! रूप भद्र है । जो उसका विरोध = व्युपसम = अस्त हो जाता है वह अमभद्र है ।

-- वेदना ; संज्ञा संस्कार ; विज्ञान ।

आर वर्ग समाप्त ।

चौथा भाग

न तुम्हाक वर्ग

§ १. पठम न तुम्हाक सुत्त (२१ १. ४. १)

जो अपना नहीं है, उसका त्याग

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! जो तुम्हारा नहीं है उसे छोड़ दो । उसका प्रहीण हो जाना तुम्हारे हित और सुख के लिये होगा ।

भिक्षुओ ! तुम्हारा क्या नहीं है ?

भिक्षुओ ! रूप तुम्हारा नहीं है, उसे छोड़ दो । उसका प्रहीणमे हो जाना तुम्हारे हित और सुख के लिये होगा ।

वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई आदमी इस जेतवन के तृण, काष्ठ, शाखा और पत्ते को ले जाय, या जला दे, या जो मरजी करे । तो क्या तुम्हारे मन में ऐसा होगा—यह आदमी हमें ले जा रहा है । या जला रहा है, या जो मरजी कर रहा है ?

नहीं मन्ते ।

सो क्यों ?

मन्ते ! क्योंकि यह हमारा आत्मा, आत्मनीय नहीं है ।

भिक्षुओ ! इसी तरह, रूप तुम्हारा नहीं है । उसे छोड़ दो । उसका प्रहीण हो जाना तुम्हारे हित और सुख के लिये होगा ।

वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान तुम्हारा नहीं है, उसे छोड़ दो ।

§ २ दुतिय न तुम्हाक सुत्त (२१. १. ४. २)

जो अपना नहीं है, उसका त्याग

श्रावस्ती ।

[ठीक ऊपरवाले के जैसा, जेतवन का दृष्टान्त नहीं]

§ ३. पठम भिक्षु सुत्त (२१. १. ४. ३)

अनुशय के अनुसार समझा जाना

श्रावस्ती ।

क

तब, कोई भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठ कर वह भिक्षु भगवान् से बोला —

मन्ते ! भगवान् मुझे संक्षेप च धर्म का उपदेश करें; कि मैं भगवान् के धर्म को सुनकर जलैया, पुत्रात्त में अग्रमत्त संप्रमणीक तथा प्रहिलात्त होकर बिहार करूँ ।

हे मित्र ! जिसका जैसा अनुसप रहता है वह जैसा ही समझा जाता है; जैसा अनुसप नहीं रहता है जैसा नहीं समझा जाता है ।

भगवान् ! समझ गया । सुगत ! समझ गया ।

हे मित्र ! मेरे इस संक्षेप से कहे गये का तुमसे बिस्तार स धर्म कैसे समझा ?

मन्ते ! यदि रूप का अनुसप होता है तो वह जैसा ही समझा जाता है । यदि वेदना का ; संज्ञा का ; संस्कारों का ; विज्ञाप का ।

मन्ते ! यदि (किसी को) रूप का अनुसप नहीं होता है तो वह जैसा नहीं समझा जाता है । यदि वेदना का ; संज्ञा का ; संस्कारों का ; विज्ञाप का । भगवान् के इस संक्षेप से कहे गये का मैं ऐसे ही बिस्तार से जब समझता हूँ ।

ठीक है मित्र ! ठीक है ! मेरे इस संक्षेप से कहे गये का तुमसे ठीक मैं बिस्तार से धर्म समझ किया । मेरे इस संक्षेप स कहे गये का ऐसे ही बिस्तार से धर्म समझना चाहिये ।

तब वह मित्र भगवान् के कहे का अभिगमन और अनुमीदन कर आसन्न से उठ भगवान् को अभिवादन और प्रणमना कर चला गया ।

स्व

तब उस मित्र ने जलैया पुत्रात्त में अग्रमत्त संप्रमणीक तथा प्रहिलात्त हो बिहार करते हुये सीमा ही ब्रह्मचर्य के उस अनुसर अन्तिम करु को इसी क्षण में स्वर्ग जाय वैश और पा किया जिसके किन्ने कुरुपुत्र भया से सत्यम् वर से वेधर हो कर प्रमणित हो गये हैं । जाति क्षीण हुई, ब्रह्मचर्य सफल हो गया जो करता था सो कर किया जब और कुछ बाकी नहीं रहा—येछा जाय किया ।

वह मित्र अर्धरात्रि में एक हुआ ।

३ ४ दुविम भिक्षु सुच (२१ १ ४ ४)

अनुसप के अनुसार मापता

भाष्यस्ती ।

कोई मित्र नहीं भगवान् ने नहीं क्या और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठ कर वह मित्र भगवान् से बोला —

मन्ते ! भगवान् मुझे संक्षेप से धर्म का उपदेश करें कि मैं भगवान् के धर्म को सुन कर जलैया पुत्रात्त में अग्रमत्त संप्रमणीक तथा प्रहिलात्त होकर बिहार करूँ ।

हे मित्र ! जिसका जैसा अनुसप रहता है वह जैसा ही मापता है । जो जैसा मापता है वह जैसा ही समझा जाता है ।

[ऊपर वाले सूत्र के समान ही]

वह मित्र अर्धरात्रि में एक हुआ ।

३ ५ पठम मानन्द सुच (२१ १ ४ ५)

किन्ना उत्तराद् द्यप्य और विपरिणाम ?

भाष्यस्ती ।

“एक ओर बैठे अनुसप आनन्द स भगवान् बोले “अनन्द ! यदि तुमसे कोई पूछे अनुसप

आनन्द ! किन धर्मों का उत्पाद जाना जाता है, व्यय जाना जाता है, तथा स्थित हुओं का अन्यथात्व जाना जाता है ?” आनन्द ! ऐसा पूछे जाने पर तुम क्या उत्तर दोगे ?

भन्ते ! ऐसा पूछे जाने पर मैं यों उत्तर दूँगा .—

आवुस ! रूप का उत्पाद जाना जाता है, व्यय जाना जाता है, तथा स्थिर हुये का अन्यथात्व जाना जाता है । वेदना का , सज्ञा का , संस्कारों का , विज्ञान का । आवुस ! इन्हीं धर्मों का उत्पाद जाना जाता है । भन्ते ! ऐसा पूछे जाने पर मैं यों ही उत्तर दूँगा ।

ठीक है, आनन्द, ठीक है । ऐसा पूछे जाने पर तुम यों ही उत्तर दोगे ।

§ ६. दुतिय आनन्द सुत्त (२१. १. ४. ६)

किनका उत्पाद, व्यय और विपरिणाम ?

श्रावस्ती .—

एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् आनन्द से भगवान् बोले, “आनन्द ! यदि तुमसे कोई पूछे, आवुस आनन्द ! किन धर्मों का उत्पाद जाना गया है, व्यय जाना गया है तथा स्थित हुये का अन्यथात्व जाना गया है ? किनका जाना जायगा ? किनका जाना जाता है ?” आनन्द ! ऐसा पूछे जाने पर तुम क्या उत्तर दोगे ?”

भन्ते ! ऐसा पूछा जाने पर मैं यों उत्तर दूँगा —

आवुस ! जो रूप अतीत हो गया = निरुद्ध हो गया = विपरिणत हो गया, उसका उत्पाद जाना गया, व्यय जाना गया, स्थित हुये का अन्यथात्व जाना गया । वेदना , सज्ञा , संस्कार, जो विज्ञान अतीत हो गया ।

आवुस ? इन्हीं धर्मों का उत्पाद जाना गया है, व्यय जाना गया है, तथा स्थित हुये का अन्यथात्व जाना गया है ।

आवुस ! जो रूप अभी उत्पन्न नहीं हुआ है, प्रगट नहीं हुआ है, उसी का उत्पाद जाना जायगा, व्यय जाना जायगा, तथा स्थित हुये का अन्यथात्व जाना जायगा । वेदना , सज्ञा , संस्कार , जो विज्ञान अभी उत्पन्न नहीं हुआ है ।

आवुस ! इन्हीं धर्मों का उत्पाद जाना जायगा, व्यय जाना जायगा, तथा स्थित हुये का अन्यथात्व जाना जायगा ।

आवुस ! जो रूप अभी उत्पन्न हुआ है, प्रादुर्भूत हुआ है, उसी का उत्पाद जाना जाता है व्यय जाना जाता है, तथा स्थित हुये का अन्यथात्व जाना जाता है । वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

आवुस ! धर्मों का उत्पाद जाना जाता है, व्यय जाना जाता है, तथा स्थित हुये का अन्यथात्व जाना जाता है ।

भन्ते ! ऐसा पूछा जाने पर मैं यों ही उत्तर दूँगा ।

ठीक है आनन्द, ठीक है । [सारे की पुनरुक्ति] ऐसा पूछे जाने पर तुम यों ही उत्तर दोगे ।

§ ७ पठम अनुधम्म सुत्त (२१. १. ४. ७)

विरक्त होकर विहरना

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! जो भिक्षु धर्मानुधर्म प्रतिपन्न है उसका यह धर्मानुकूल होता है, कि रूप के प्रति विरक्त होकर विहार करे, वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान के प्रति विरक्त होकर विहार करे ।

इस प्रकार विरक्त होकर विहार करते हुए वह रूप को जान लेता है वेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान को जान लेता है ।

वह रूप विज्ञान को जानकर रूप से मुक्त हो जाता है वेदना से मुक्त हो जाता है, संज्ञा से मुक्त हो जाता है संस्कारों से मुक्त हो जाता है विज्ञान से मुक्त हो जाता है । जाति बरा मरण शोक, परिदेव दुःख पीनमत्स्य उपापात्त से मुक्त हो जाता है । दुःख से छूट जाता है—वेदा में कहता है ।

§ ८ तृतीय अनुषम्म सूच (२१ १ ४ ८)

अमित्य समममता

भाष्यस्ती ।

मिथुषो ! जो मिथु धर्मानुधर्म प्रतिपन्न है उसका वह धर्मानुधर्म होता है कि रूप को अमित्य समसे [पूर्ववत्] ।

दुःख से छूट जाता है—वेदा में कहता है ।

§ ९ तृतीय अनुषम्म सूच (२१ १ ४ ९)

दुःख समममता

भाष्यस्ती ।

मिथुषो ! कि रूप को दुःख समसे ।

§ १० चतुर्थ अनुषम्म सूच (२१ १ ४ १०)

अनात्म समममता

भाष्यस्ती ।

मिथुषो ! कि रूप को अनात्म समसे

न तुम्हात्त धर्म समता ।

पाँचवाँ भाग

आत्मद्वीप वर्ग

§ १. अत्तदीप सुत्त (२१. १. ५. १)

अपना आधार आप बनना

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! अपना आधार आप बनो, अपना शरण आप बनो, किसी दूसरे का शरणागत मत बनो, धर्म ही तुम्हारा आधार है, धर्म ही तुम्हारा शरण है, कुछ दूसरा तुम्हारा शरण नहीं है ।

इस प्रकार विहार करते हुए तुम्हें ठीक से इसकी परीक्षा करनी चाहिये—शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास का जन्म = प्रभव क्या है ।

भिक्षुओ ! इनका जन्म=प्रभव क्या है ?

भिक्षुओ ! कोई अविद्वान् पृथक्जन रूपको अपना करके समझता है, अपने को रूपवान् समझता है, रूप में अपने को समझता है । उसका वह रूप विपरिणत=अन्यथा हो जाता है । रूप को विपरिणत तथा अन्यथा हो जानेसे शोकादि उत्पन्न होते हैं ।

वेदना को , सज्ञा को , सस्कारों को , विज्ञानको अपना करके समझता है ।

भिक्षुओ ! रूप के अनित्यत्व, विपरिणाम, विराग, निरोध को जान कर, जो पहले के रूप थे, और जो अभी रूप हैं सभी अनित्य, दुःख और विपरिणाम-धर्मा हैं, इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक देख लेने से जो शोकादि हैं सभी प्रहीण हो जाते हैं । उनके प्रहीण हो जाने से त्रास नहीं होता । त्रास नहीं होने से सुखपूर्वक विहार करता है । सुखपूर्वक विहार करते हुये वह भिक्षु उस अश में मुक्त कहा जाता है ।

वेदना , सज्ञा , सस्कार , विज्ञान , सुखपूर्वक विहार करते हुये वह भिक्षु उस अश में मुक्त कहा जाता है ।

§ २. पटिपदा सुत्त (२१. १. ५. २)

सत्काय की उत्पत्ति और निरोध का मार्ग

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! सत्काय की उत्पत्ति तथा सत्काय के निरोध के मार्ग के विषय में उपदेश करूँगा । उसे सुनो ।

भिक्षुओ ! सत्काय की उत्पत्ति का मार्ग क्या है ?

भिक्षुओ ! कोई अविद्वान् पृथक्जन रूप को अपना करके समझता है, अपने को रूपवान् समझता है, अपने में रूप को समझता है, रूप में अपने को समझता है ।

वेदना , सज्ञा , सस्कार , विज्ञान ।

भिक्षुओ ! इसी को सत्काय की उत्पत्ति का मार्ग कहते हैं । भिक्षुओ ! यही दुःख की उत्पत्ति का मार्ग कहा जाता है, यही समझना चाहिये ।

भिक्षुओ ! सत्काय के निरोध का मार्ग क्या है ?

मिथुओं ! कोई बिह्वान् आर्यभट्टाक रूप को अपना करके नहीं समझता है अपने को रूपवान् नहीं समझता है अपने में रूप को नहीं समझता है रूप में अपने को नहीं समझता है ।

बेवना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान ।

मिथुओं ! इसी को सत्काय के विरोध का मार्ग कहते हैं । मिथुओं ! यही बुद्ध के विरोध का मार्ग कहा जाता है—वही समझना चाहिये ।

§ ३ पठम अनिश्चता सुच (२१ १ ५ २)

अनित्यता

आवस्ती १

मिथुओं ! रूप अनित्य है । जो अनित्य है वह बुद्ध है जो बुद्ध है वह अनारम्भ है । जो अनारम्भ है तो न मेरा है न मैं हूँ, न मेरा आत्मा है । इसे पञ्चार्थता प्रज्ञापूर्वक देख लेना चाहिये । चित्त उपादान-रहित हो आकाशों से बिरक्त और विमुक्त हो जाता है ।

बेवना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान ।

मिथुओं ! यदि मिथु का चित्त रूप के प्रति उपादान-रहित हो आकाशों से बिरक्त और विमुक्त हो जाता है । बेवना ; संस्कार ; विज्ञान के प्रति ; तो स्थिर हो जाता है, स्थिर होने से शान्त हो जाता है, शान्त होने से प्रास नहीं होता; प्रास नहीं होने से अपने भीतर ही भीतर निर्वाण पा लेता है । आदि क्षीय हुई ऐसा काम लेता है ।

§ ४ दुतिय अनिश्चता सुच (२१ १ ५ ४)

अनित्यता

आवस्ती ।

मिथुओं ! रूप अवलम्ब है [ऊपर जैसा] इसे पञ्चार्थता प्रज्ञापूर्वक देख लेना चाहिये ।

बेवना अनित्य है संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान ।

इसे पञ्चार्थता प्रज्ञापूर्वक देख लेने से वह पुराण की सिध्दा-रहि में नहीं पड़ता है । पुराण की सिध्दा-रहियों में न पड़ने से उसे अपरान्त की भी सिध्दा-रहियों नहीं होती हैं । अपरान्त की यदि नहीं होने से वह कहीं नहीं छुटता है । वह रूप विज्ञान के प्रति आकाशों से बिरक्त, विमुक्त तथा उपादान-रहित हो जाता है । उसका चित्त विमुक्त हो जाने से स्थिर हो जाता है । स्थिर हो जाने से शान्त हो जाता है । शान्त हो जाने से प्रास नहीं होता है । प्रास नहीं होने से अपने भीतर ही भीतर निर्वाण पा लेता है । आदि क्षीय हुई ऐसा काम लेता है ।

§ ५ सयनुपस्सना सुच (२१ १ ५ ५)

आत्मा मानने से ही अस्मि की अभिधा

आवस्ती ।

मिथुओं ! कितने समय का आशय जलक प्रकार से आत्मा की भावते और समझते हैं, वे सभी इन्हीं पाँच उपादान स्कन्धों को मानते और समझते हैं या उनमें से किसी को ।

किन् पाँच ?

मिथुओं ! कोई बिह्वान् एवम्भुवन रूपको अपना करके समझता है अपने को रूपवान् समझता है अपने में रूप को समझता है, रूप में अपने को समझता है ।

वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान । ऐसा समझने से उम्मे “अस्मि” की अविद्या होती है ।

भिक्षुओ ! “अस्मि” की अविद्या होने से पाँच इन्द्रियाँ चली आती हैं—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, और काया ।

भिक्षुओ ! मन है, धर्म है, और अविद्या है । भिक्षुओ ! अविद्या संस्पर्शोत्पन्न वेदना होने से अविद्वान् पृथक्जनको ‘अस्मिता’ होती है । ‘यह मैं हूँ’—ऐसा होता है । ‘होऊँगा’—ऐसा भी होता है । ‘नहीं होऊँगा’—ऐसा भी होता है । ‘रूपवान्’ , ‘अरूपवान्’ , ‘संज्ञी’ , ‘असंज्ञी’ , ‘न संज्ञी और न असंज्ञी होऊँगा’—ऐसा भी होता है ।

भिक्षुओ ! वही पाँच इन्द्रियाँ ठहरी रहती हैं । यही विद्वान् आर्यश्रावक की अविद्या प्रहीण हो जाती है, विद्या उत्पन्न होती है । उसको अविद्या के हट जाने और विद्या के उत्पन्न होने से ‘अस्मिता’ नहीं होती है । ‘होऊँगा’—ऐसा भी नहीं होता है । ‘रूपवान्’ , ‘अरूपवान्’ , ‘संज्ञी’ , ‘असंज्ञी’ , ‘न संज्ञी और न असंज्ञी होऊँगा’—ऐसा भी नहीं होता है ।

§ ६. खन्ध सुत्त (२१. १. ५. ६)

पाँच स्कन्ध

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! पाँच स्कन्ध तथा पाँच उपादान स्कन्ध के विषय में उपदेश करूँगा । उसे सुनो ।

भिक्षुओ ! पाँच स्कन्ध कौन से हैं ?

भिक्षुओ ! जो रूप—अतीत, अनागत, वर्तमान् , आध्यात्म, ब्राह्म , स्थूल, सूक्ष्म, हीन, प्रणीत, दूर का, या निकट का—है वह रूपस्कन्ध कहा जाता है ।

जो वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

भिक्षुओ ! यही पाँच स्कन्ध कहे जाते हैं ।

भिक्षुओ ! पाँच उपादान स्कन्ध कौन से हैं ?

भिक्षुओ ! जो रूप—अतीत, अनागत, वर्तमान् , आध्यात्म, ब्रह्मि , स्थूल, सूक्ष्म, हीन, प्रणीत, दूर का, या निकट का आश्रय के साथ उपादानीय है वह रूपोपादानस्कन्ध कहा जाता है ।

जो वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

भिक्षुओ ! इन्हीं को पञ्च-उपादानस्कन्ध कहते हैं ।

§ ७. पठम सोण सुत्त (२१. १. ५. ७)

यथार्थ का ज्ञान

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह में बेलुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे ।

तब, गृहपतिपुत्र सोण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठे हुये गृहपतिपुत्र सोण को भगवान् बोले —सोण ! जो श्रमण या ब्राह्मण इस अनित्य, दुःख, विपरिणामधर्मा रूप से अपने को बड़ा समझते हैं, सदृश समझते हैं, या हीन समझते हैं, वह यथार्थ का अज्ञान छोड़ कर दूसरा क्या है ।

वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

सोण ! जो भ्रमण या ब्राह्मण रूप भवित्य दुःख विपरिणामधर्मा रूप स अपने को बड़ा भी नहीं समझते हैं सदा भी नहीं समझते हैं या हीन भी नहीं समझते हैं यह वचार्थ का ज्ञान छोड़ कर और क्या है ?

बेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

सोण ! तो तुम क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

अन्ते ! अनित्य ।

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?

अन्ते ! दुःख है ।

जो अनित्य है दुःख है विपरिणामधर्मा है उसे क्या ज्ञान समझना ठीक है कि यह मेरा है यह मैं हूँ यह मेरा आत्मा है ?

नहीं अन्ते !

सोण ! बेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान भवित्य है या नित्य ।

माग ! इसलिये जो रूप—अतीत अनागत वतमान् आध्यात्म बाह्य स्थूल सूक्ष्म हीन प्रवीत दूर का या निम्न का—है उस वचार्थतः प्रज्ञापूर्वक देख लेना चाहिये कि न यह मेरा है न यह मैं हूँ, और न यह मेरा आत्मा है ।

जो बेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

सोण ! ऐसा देखनेवाला विज्ञान आर्यभाषक रूप से निर्बेद करता है बेदना स निर्बेद करता है संज्ञा से संस्कारों से , विज्ञान से । निर्बेद स विरक्त हो जाता है । वैराग्य से मुक्त हो जाता है । विमुक्त हो जाने से विमुक्त हो गया ऐसा ज्ञान उपपन्न होता है । जाति क्षीय हुई महाकर्म पूरा हो गया, जो करता या सो कर दिया सब और कुछ बाकी नहीं यथा—यसा ज्ञान सेता है ।

४ ८ दुतिय सोण सुच (२१ १ ५ ८)

भ्रमण और ब्राह्मण कीन ?

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय मगधान् राजगृह में बेलुबन कच्छम्बक निवाप में बिहार करते थे ।

तब गृहपतिपुत्र सोण वहाँ भगवान् के वहाँ आया और मगधान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया :

एक ओर बैठे हुए गृहपतिपुत्र सोण को मगधान् बोले :—

सोण ! जो भ्रमण या ब्राह्मण रूप को नहीं जानते हैं रूप के समुद्र को नहीं जानते हैं, रूप के निरोध को नहीं जानते हैं, रूप के निरोधगामी मार्ग को नहीं जानते हैं, बेदना , संज्ञा , संस्कार विज्ञान को नहीं जानते हैं ; वे न तो भ्रमणों में भ्रमण समझ करते हैं और न ब्राह्मणों में ब्राह्मण । वे आपुष्पाद् इसी कर्म में भ्रमण या ब्राह्मण के परमार्थ को जान देख और पाकर बिहार नहीं करते हैं ।

सोण ! जो भ्रमण या ब्राह्मण रूप को जानते हैं विज्ञान को जानते हैं वे ही भ्रमणों में भ्रमण समझते हैं, और ब्राह्मणों में ब्राह्मण । वे आपुष्पाद् इसी कर्म में भ्रमण या ब्राह्मण के परमार्थ को जान देख और पाकर बिहार करते हैं ।

४ ९ पठम नन्दिक्कय सुच (२१ १ ५ ९)

आत्मन् का क्षय कैसे ?

आवस्ती ।

मिथुओ ! मिथु जो रूप को अनित्य के तौर पर देख लेता है, उसे सत्यम्बुधि कहते हैं ।

इसे अच्छी तरह समझ कर वह निर्वेद को प्राप्त होता है। आनन्द लेने की इच्छा मिट जाने से राग मिट जाता है, राग मिट जाने से आनन्द लेने की इच्छा मिट जाती है। आनन्द लेने की इच्छा और राग के मिट जाने से चित्त बिल्कुल मुक्त कहा जाता है।

भिक्षु जो वेदना को , संज्ञा की , संस्कारों को , विज्ञान को अनित्य के तौर पर देखता है उसे सम्यक् दृष्टि कहते हैं। । आनन्द लेने की इच्छा और राग के मिट जाने से चित्त बिल्कुल मुक्त कहा जाता है।

§ १०. दुतिय नन्दिक्खय सुत्त (२१. १. ५. १०)

रूप का यथार्थ मनन

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! रूप का ठीक से मनन करो, रूप की अनित्यता को यथार्थत देखो। रूप का ठीक से मनन करने, तथा रूप की अनित्यता को यथार्थत देखने से रूप के प्रति निर्वेद को प्राप्त होता है। आनन्द लेने की इच्छा मिट जाने से राग मिट जाता है, राग मिट जाने से आनन्द लेने की इच्छा मिट जाती है। आनन्द लेने की इच्छा और राग के मिट जाने से चित्त बिल्कुल मुक्त कहा जाता है।

वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान का ठीक से मनन करो ।

आत्मद्वीप वर्ग समाप्त ।

मूल पण्णासक समाप्त

दूसरा परिच्छेद

मज्झिम पण्णासक

पहला भाग

उपय वर्ग

§ १ उपय सुत्त (२१ २ १ १)

अनासक विमुक्त हे

आवस्ती ।

मिथुओ ! आसक अबिमुक्त हे अनासक विमुक्त हे ।

मिथुओ ! रूप में आसक होने से विज्ञान बना रहता है— रूप पर आकम्बित रूप पर प्रतिष्ठित आनन्द उद्यमे बाका और उगता बढ़ता तथा फैकता है ।

संस्कारों पर आकम्बित संस्कारों पर प्रतिष्ठित आनन्द उद्यमे बाका उगता बढ़ता तथा फैकता है ।

मिथुओ ! जो कोई ऐसा कहे कि मैं बिना रूप बिना वेदना बिना संज्ञा बिना संस्कार बिना विज्ञान के आवागमन करना जानता या उगता बढ़ता तथा फैकना सिद्ध कर दूँगा यह सम्भव नहीं है ।

मिथुओ ! यदि मिथु का रूप-धातु में राग ग्रहीत हो जाता है, तो विज्ञान का आकम्बन प्रतिष्ठा ग्रहीत हो जाता है । यदि मिथु का वेदना-धातु में ; संज्ञा-धातु में संस्कार-धातु में— विज्ञान धातु में राग ग्रहीत हो जाता है तो विज्ञान का आकम्बन—प्रतिष्ठा ग्रहीत हो जाता है ।

यह अप्रतिष्ठित विज्ञान उद्यमे नहीं पाता संस्कारों से रहित हो विमुक्त हो जाता है । विमुक्त होने से रिक्त हो जाता है स्थित होने से ध्यात हो जाता है । ध्यात होने से भास नहीं होने पाता । भास नहीं होने से अपने भीतर ही भीतर निर्वास हो प्राप्त कर लेता है । प्राप्ति क्षीय हुई अज्ञात हो जाता है । जो करना का सो कर लिया अब और कुछ बाकी नहीं है—ऐसा ज्ञान होता है ।

§ २ बीज सुत्त (२१ २ १ २)

पौंच प्रकार के बीज

आवस्ती ।

“ मिथुओ ! बीज पौंच प्रकार के होते हैं । बीज सं पौंच ? सूक्ष्म-बीज, एकजन्म-बीज अग्र-बीज पक्ष-बीज और बीज-बीज ।

मिथुओ ! ये पौंच प्रकार के बीज अप्रतिष्ठित हो सब पके नहीं हो जाया का रूप से नष्ट नहीं हो गये हो पार बाधे हो और अस्पर्शा से रोये जा सकने वाले हो, किन्तु मिट्टी न हो और कंकड़ न हो । मिथुओ ! तो क्या ये बीज कहीं कहीं और फैकते ?

नहीं भन्ते !

भिक्षुओ ! ये पाँच बीज खण्डित हों, सड़े-गले हों, हवा या धूप से नष्ट हों, निःसार हों, और आसानी से रोपे जा सकनेवाले नहीं हों, किन्तु मिट्टी भी हो और जल भी हो । भिक्षुओ ! तो क्या वे बीज उगेंगे, बढ़ेंगे, और फैलेंगे ?

नहीं भन्ते !

भिक्षुओ ! ये पाँच बीज अखण्डित हों , और मिट्टी और जल भी हो । भिक्षुओ ! तो क्या वे बीज उगेंगे, बढ़ेंगे और फैलेंगे ?

हाँ भन्ते ! यहाँ जैसे पृथ्वी-धातु है वैसे विज्ञान की स्थितियाँ समझनी चाहिये । यहाँ जैसे जल-धातु है वैसे नन्दिराग समझना चाहिये । यहाँ जैसे पाँच प्रकार के बीज हैं वैसे आहार के साथ विज्ञान को समझना चाहिये ।

भिक्षुओ ! रूप में आसक्त होने से विज्ञान बना रहता है—रूप पर आलम्बित, रूप पर प्रतिष्ठित आनन्द उठानेवाला, और उगता, बढ़ता तथा फैलता है । [शेष ऊपर वाले सूत्र के समान ही ।]

§ ३. उदान सुत्त (२१. २. १. ३)

आश्रवों का क्षय कैसे ?

श्रावस्ती...।

वहाँ भगवान् ने उदान के यह शब्द कहे, “यदि यह नहीं होवे तो मेरा नहीं होवे, नहीं होगा, वह मेरा नहीं होगा—ऐसा कहनेवाला भिक्षु नीचे के बन्धन (=औरम्भागीय सञ्जोजन) को काट देता है ।”

ऐसा कहने पर कोई भिक्षु भगवान् से बोला, “भन्ते ! यह कैसे ?”

भिक्षुओ ! कोई अविद्वान् पृथक्जन रूप को अपना करके समझता है, अपने रूपवान् समझता है, अपने में रूप को समझता है, या रूप में अपने को समझता है ।

वेदना , संज्ञा , संस्कार विज्ञान को अपना समझता है, अपने को विज्ञानवान् समझता है ।

वह अनित्य रूप की अनित्यता को यथार्थत नहीं जानता है, अनित्य वेदना की , संज्ञा की ; संस्कारों की , विज्ञान की अनित्यता को नहीं समझता है ।

वह दुःखमय रूप के दुःख को यथार्थत नहीं जानता है, दुःखमय वेदना के , संज्ञा के , संस्कारों के , विज्ञान के दुःख को नहीं जानता है ।

वह अनात्म रूप के अनात्मत्व को यथार्थत नहीं जानता है, अनात्म वेदना के , संज्ञा के , संस्कारों के , विज्ञान के अनात्म को नहीं जानता है ।

वह संस्कृत रूप को संस्कृत के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है । संस्कृत वेदना को , संज्ञा को , संस्कारों को , विज्ञान को संस्कृत के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है ।

रूप नहीं रहेगा वह यथार्थत नहीं जानता ।

वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान नहीं रहेगा वह यथार्थत नहीं जानता है ।

भिक्षुओ ! कोई विद्वान् आर्यश्रावक रूप को अपना करके नहीं समझता है ।

वह अनित्य रूप की अनित्यता को यथार्थत जानता है ।

वह दुःखमय रूप के दुःख को यथार्थत जानता है ।

वह अनात्म रूप के अनात्मत्व को यथार्थत जानता है ।

वह संस्कृत रूप को संस्कृत के तौर पर यथार्थत जानता है ।

रूप नहीं रहेगा वह पदार्थतः जागता है ।

रूप बेदना संज्ञा संस्कार आर विज्ञान के नहीं होने से जो मिथु 'यदि यह नहीं होवे तो मेरा नहीं होवे नहीं होगा वह मेरा नहीं होगा — ऐसा कहे वह नीचेके बन्धन को काट देता है ।

भन्ते ! ऐसा कहवेवाला मिथु नीचे के बन्धन को काट देता है ।

भन्ते ! क्या जान और देख देने के बाद आश्रयों का खन हो जाता है ?

मिथु ! कोई अविज्ञान् पृथक्त्व प्राप्त नहीं करने के स्थान पर प्राप्त को प्राप्त होता है । मिथु ! अविज्ञान् पृथक्त्वों को यह प्राप्त होता है कि—'यदि यह नहीं होवे तो मेरा नहीं होवे, नहीं होगा वह मेरा नहीं होगा ।

मिथु ! विज्ञान् आर्यभावक ज्ञान नहीं करने के स्थान पर प्राप्त को नहीं प्राप्त होता है । मिथु ! विज्ञान् आर्यभावक का यह प्राप्त नहीं होता है कि—'यदि यह नहीं होवे ।

मिथु ! रूप में प्राप्त होने से विज्ञान क्या रहता है—रूप पर आश्रित रूप पर प्रतिष्ठित [सेप २१ २ १ १ सूत्र के समान] ।

मिथु ! वह जान और देख देने के बाद उसके आश्रयों का खन हो जाता है ।

३४ उपादान परिवर्ध सुच (२१ २ १ ४)

उपादान स्कन्धों की व्याख्या

आयस्ती ।

'मिथुनी ! पाँच उपादान-स्कन्ध हैं । क्या मैं पाँच ? जो यह उपादान स्कन्ध वेदको-पादान स्कन्ध, संज्ञोपादान स्कन्ध संस्कारोपादान स्कन्ध और विज्ञानोपादान स्कन्ध ।

मिथुनी ! अब तक मैंने इन पाँच उपादान स्कन्धों को चारों सिद्धसिद्धे में पदार्थतः नहीं समझा था अब तक हम कोक में 'अनुत्तर सम्बन्ध' समुद्भव प्राप्त करने का दावा नहीं किया था ।

मिथुनी ! अब मैंने पदार्थतः समझ लिया उसी दावा किया ।

ब चार सिद्धसिद्ध कैसे ? रूप को जान लिया । रूप के समुद्भव को जान लिया । रूप के विरोध को जान लिया । रूप के निरापगामी मार्ग को जान लिया । बदना को ; संज्ञा को ; संस्कारों को ; विज्ञान को ।

मिथुनी ! रूप क्या है ? चार महाभूत और चार महाभूत से बनने वाले रूप । यही रूप है । आहार के समुद्भव से रूप का समुद्भव होता है । आहार के विराध से रूप का विरोध होता है । वही आर्य अर्थात् मार्ग रूप के विरोध का मार्ग है । जो यह सम्बन्ध सिद्ध सम्बन्ध समायि ।

मिथुनी ! जो धम्म या ब्राह्मण होने जान कर रूप के निर्बन्ध के किसे विराध के किसे विरोध के निच प्रतिपन्न होते हैं वे ही समुत्पिपन्न हैं । जो समुत्पिपन्न हैं वे इस धर्म विषय में प्रतिष्ठित होते हैं ।

मिथुनी ! जो धम्म या ब्राह्मण होने जान कर रूप के निर्बन्ध से विराध से, विरोध से अनुपादान में विमुक्त हो गये हैं वे ही पदार्थ में विमुक्त हुए हैं । जो पदार्थ में विमुक्त हो गये हैं वे ही कबली हैं । जो कबली हैं उनके निच और नहीं हैं ।

मिथुनी ! वेदना क्या है ? मिथुनी ! वेदना-काय का है । अनुसंस्पर्शका वेदना । आशंसंस्पर्शका वेदना । प्राप्तासंस्पर्शका वेदना । जिह्वासंस्पर्शका वेदना । कायसंस्पर्शका वेदना । धम्मसंस्पर्शका वेदना । मिथुनी ! इसे वेदना कहते हैं । वहाँ के समुद्भव से वेदना का समुद्भव होता है । वहाँ के विराध से वेदना का विरोध होता है । वही आर्य अर्थात् मार्ग वेदना के विरोध का मार्ग है ।

मिथुनी ! जो धम्म या ब्राह्मण होने जान -- ।

मिथुनी ! क्या क्या है ?

भिक्षुओ ! संज्ञाकाय छ हैं । रूप-संज्ञा, शब्द-संज्ञा, गन्ध-संज्ञा, रस-संज्ञा, स्पर्श-संज्ञा, धर्म-संज्ञा । यही संज्ञा है । स्पर्श के समुदय से संज्ञा का समुदय होता है । स्पर्श के निरोध से संज्ञा का निरोध होता है । यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग संज्ञा के निरोध का मार्ग है ।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण 'इसे जान' ।

भिक्षुओ ! संस्कार क्या है ?

भिक्षुओ ! चेतना-काय छ हैं । रूप-संचेतना, शब्द-संचेतना, गन्ध-संचेतना, रस-संचेतना, स्पर्श-संचेतना, धर्म-संचेतना । भिक्षुओ ! इन्हीं को संस्कार कहते हैं । स्पर्श के समुदय से संस्कारों का समुदय होता है । स्पर्श के निरोध से संस्कारों का निरोध होता है । यही आर्य-अष्टाङ्गिक मार्ग संस्कारों के निरोध का मार्ग है ।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण 'इसे जान' ।

भिक्षुओ ! विज्ञान क्या है ?

भिक्षुओ ! विज्ञान-काय छ हैं । चक्षुर्विज्ञान, श्रोत्रविज्ञान, घ्राणविज्ञान, जिह्वाविज्ञान, काय-विज्ञान, मनोविज्ञान । भिक्षुओ ! इसी को विज्ञान कहते हैं । नामरूप के समुदय से विज्ञान का समुदय होता है । नामरूप के निरोध से विज्ञान का निरोध होता है । यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग विज्ञान के निरोध का मार्ग है ।

भिक्षु ! जो श्रमण या ब्राह्मण 'इसे जान कर रूप के निर्वेद के लिये, विराग के लिये, निरोध के लिये प्रतिपन्न होते हैं वे ही सुप्रतिपन्न हैं । जो सुप्रतिपन्न हैं वे इस धर्म विनय में प्रतिष्ठित होते हैं ।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण 'इसे जान कर रूप के निर्वेद से, अनुपादान से विमुक्त हो गये हैं वे ही यथार्थ में विमुक्त हुये हैं । जो यथार्थ में विमुक्त हो गये हैं वे ही केवली हैं । जो केवली उनके लिये भँवर नहीं है ।

§ ५. सत्तट्टान सुत्त (२१. २. १. ५)

सात स्थानों में कुशल ही उत्तम पुरुष है

आचस्ती • ।

भिक्षुओ ! जो भिक्षु सात स्थानों में कुशल तथा तीन प्रकार से परीक्षा करनेवाला होता है, वह इस धर्मविनय में केवली, सफल ब्रह्मचर्यवाला, और उत्तम पुरुष कहा जाता है ।

भिक्षुओ ! भिक्षु सात स्थानों में कुशल कैसे होता है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु रूप को जानता है । रूप के समुदय को जानता है । रूप के निरोध को जानता है । रूप के निरोधगामी मार्ग को जानता है । रूप के आस्वाद को जानता है । रूप के दोष को जानता है । रूप के छुटकारे (= मुक्ति) को जानता है ।

• वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

भिक्षुओ ! रूप क्या है ? चार महाभूत और उनसे होनेवाले रूप । भिक्षुओ ! इसी को रूप कहते हैं । आहार के समुदय से रूप का समुदय होता है । आहार के निरोध से रूप का निरोध होता है । यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग रूप के निरोध का मार्ग है ।

जो रूप के प्रत्यय से सुख और सौमनस्य होता है वही रूप का आस्वाद है । रूप जो अनित्य, दुःख, विपरिणामधर्मा है वह रूप का दोष है । जो रूप से छन्द-राग का प्रहीण हो जाना है वह रूप की मुक्ति है ।

भिक्षुओ जो श्रमण या ब्राह्मण इस प्रकार रूप को जान, रूप के समुदय को जान, रूप के निरोध को जान, रूप के निरोध के मार्ग को जान, रूप के आस्वाद को जान, रूप के दोष को जान, रूप की

रूप नहीं रहेगा वह वधार्थतः जानता है ।

रूप वेदना संज्ञा संस्कार और विज्ञान के नहीं होने से जो मिथु 'यदि वह नहीं होते तो मेरा नहीं होते नहीं होगा वह मेरा नहीं होगा — ऐसा कहे वह नीचे के वन्धन को काट देता है ।

मन्ते ! ऐसा कहनेवाला मिथु नीचे के वन्धन को काट देता है ।

मन्ते ! क्या साध और देव करने के बाद आत्मियों का क्षय हो जाता है ?

मिथु ! कोई अधिहान् पूजकव्यस प्राप्त नहीं करने के स्थान पर प्राप्त को प्राप्त होता है । मिथु ! अधिहान् पूजकव्यस को यह प्राप्त होता है कि—'यदि वह नहीं होते तो मेरा नहीं होते, नहीं होगा वह मेरा नहीं होगा ।

मिथु ! विज्ञान् आर्यभाषक प्राप्त नहीं करने के स्थान पर प्राप्त को नहीं प्राप्त होता है । मिथु ! विज्ञान् आर्यभाषक को यह प्राप्त नहीं होता है कि—'यदि वह नहीं होते ।'

मिथु ! रूप में आसक्त होने से विज्ञान बना रहता है—रूप पर आसक्त रूप पर प्रतिष्ठित [सेप २१ २ १ १ शुद्ध के समान] ।

मिथु ! वह जान और देव देने के बाद उसके आत्मियों का क्षय हो जाता है ।

५ ४ उपादान परिबन्ध मुच (२१ २ १ ४)

उपादान स्कन्धों की व्याख्या

ध्यायस्ती ।

मिथुनी ! पाँच उपादान-स्कन्ध हैं । कौन से पाँच ? जो यह कर्मोपादान स्कन्ध वेदको-पादान स्कन्ध, संज्ञोपादान स्कन्ध संस्कारोपादान स्कन्ध और विज्ञानोपादान स्कन्ध ।

मिथुनी ! जब तक मैंने इन पाँच उपादान स्कन्धों को चारों दिक्कतों में वधार्थतः नहीं समझा था तब तक इस लोक में अनुत्तर सम्यक् समुत्पन्न प्राप्त करने का दावा नहीं किया था ।

मिथुनी ! जब मैंने वधार्थतः समझ किया तभी 'दावा किया ।

वे चार दिक्कतों के हैं ? रूप को जान किया । रूप के समुत्पन्न को जान किया । रूप के निरोध को जान किया । रूप के विरोधगामी मार्ग को जान किया । वेदना को ; संज्ञा को ; संस्कारों को ; विज्ञान को ।

मिथुनी ! रूप क्या है ? चार महाभूत और चार महाभूत से बनने वाले रूप । वही रूप है । आहार के समुत्पन्न से रूप का समुत्पन्न होता है । आहार के निरोध से रूप का निरोध होता है । वही आर्य अध्यात्मिक मार्ग रूप के निरोध का मार्ग है । जो वह सम्यक् दृष्टि सम्यक् समाधि ।

मिथुनी ! जो अमग्न वा माहाग्न इसे जान कर रूप के निर्बन्ध के किने, विराग के किने निरोध के किने प्रतिपन्न होते हैं वे ही सुप्रतिपन्न हैं । जो सुप्रतिपन्न हैं वे इस वर्ग निबन्ध में प्रतिष्ठित होते हैं ।

मिथुनी ! जो अमग्न वा माहाग्न इसे जान कर रूप के निर्बन्ध से, विराग से निरोध से अनुपादान से विमुक्त हो गये हैं वे ही वधार्थ में विमुक्त हुये हैं । जो वधार्थ में विमुक्त हो गये हैं वे ही केवली हैं । जो केवली हैं उनके किने चरर नहीं हैं ।

मिथुनी ! वेदना क्या है ? मिथुनी ! वेदना-आव कः हैं । आनुसंस्पर्शका वेदना । प्रोक्षसंस्पर्शका वेदना । प्राण-संस्पर्शका वेदना । विज्ञासंस्पर्शका वेदना । अयसंस्पर्शका वेदना । मनसंस्पर्शका वेदना । मिथुनी ! इस वेदना कहते हैं । स्पर्श के समुत्पन्न से वेदना का समुत्पन्न होता है । स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध होता है । वही आर्य अध्यात्मिक मार्ग वेदना के निरोध का मार्ग है ।

मिथुनी ! जो अमग्न वा माहाग्न इसे जान ।

मिथुनी ! संज्ञा क्या है ?

§ ६. बुद्ध सुत्त (२१. २. १. ६)

बुद्ध और प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु में भेद

श्रावस्ती***।

भिक्षुओ ! तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध रूप के निर्वेद, विराग तथा विरोध से उपादान-रहित हो विमुक्त सम्यक्-सम्बुद्ध कहे जाते हैं, भिक्षुओ ! प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु भी रूप के निर्वेद, विराग, निरोध तथा अनुपादान से विमुक्त हो प्रज्ञाविमुक्त कहा जाता है ।

भिक्षुओ ! तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध वेदना , सज्ञा , सस्कार , विज्ञान के निर्वेद, विराग, तथा निरोध से उपादान-रहित हो विमुक्त सम्यक्-सम्बुद्ध कहे जाते हैं । भिक्षुओ ! प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु भी वेदना , सज्ञा , सस्कार, विज्ञान के निर्वेद, विराग, निरोध, तथा अनुपादान से विमुक्त हो प्रज्ञाविमुक्त कहा जाता है ।

भिक्षुओ ! तो, तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध और प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु में क्या भेद है ?

भन्ते ! भगवान् ही हमारे धर्म के अधिष्ठाता हैं, भगवान् ही नेता हैं, भगवान् ही प्रतिशरण हैं । अच्छा होता कि भगवान् ही इसे बतलाते । भगवान् से सुनकर भिक्षु धारण करेंगे ।

भिक्षुओ ! तो सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ मैं कहता हूँ ।

“भन्ते ! बहुत अच्छा” कहकर भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध अनुत्पन्न मार्ग के उत्पन्न करनेवाले होते हैं, अज्ञात मार्ग के जनाने वाले होते हैं, नहीं बताये गये मार्ग के बताने वाले होते हैं, मार्ग-विद् और मार्ग-क्रोविट होते हैं । भिक्षुओ ! इस समय के जो श्रावक हैं वे बाद में मार्ग का अनुगमन करने वाले हैं ।

भिक्षुओ ! तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध और प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु में यही भेद है ।

§ ७ पञ्चवर्गिय सुत्त (२१. २. १. ७)

अनित्य, दुःख, अनात्म का उपदेश

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् वाराणसी के पास ऋषिपत्तन मृगदाय में विहार करते थे ।

वहाँ भगवान् ने पञ्चवर्गिय भिक्षुओं को आमन्त्रित किया ।

भिक्षुओ ! रूप अनात्म है । भिक्षुओ ! यदि रूप आत्मा होता तो यह दुःख का कारण नहीं बनता, और तब कोई ऐसा कह सकता, ‘मेरा रूप ऐसा होवे, मेरा रूप ऐसा नहीं होवे ।’

भिक्षुओ ! क्योंकि रूप अनात्म है इसीलिये यह दुःख का कारण होता है, और कोई ऐसा नहीं कह सकता है, ‘मेरा रूप ऐसा होवे, मेरा रूप ऐसा नहीं होवे ।’

भिक्षुओ ! वेदना , सज्ञा , सस्कार , विज्ञान अनात्म है

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, रूप अनित्य है या नित्य ?

अनित्य, भन्ते !

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?

दुःख भन्ते !

जो अनित्य, दुःख, और विपरिणामधर्मा है क्या उसे ऐसा समझना ठीक है कि ‘यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है ?’

नहीं भन्ते !

वेदना , सज्ञा , सस्कार , विज्ञान नित्य है या अनित्य ?

मुक्ति को ज्ञान निर्बोध के किये विराग के किये तथा निर्वाण के किये प्रतिपन्न होते हैं वे ही सुप्रतिपन्न हैं । जो सुप्रतिपन्न हैं वे इस विषय में प्रतिष्ठित होते हैं ।

मिथुभो ! जो भ्रमण या माह्व्य इस प्रकार रूप को ज्ञान रूप की मुक्ति को ज्ञान रूप के निर्बोध से विराग से निरोध से तथा अनुपादान से विमुक्त हो गये हैं वे ही यथार्थ में विमुक्त हुए हैं । जो यथार्थ में विमुक्त हो गये हैं वे केवली हैं । जो केवली हो गये हैं उनके किये भँवर नहीं है ।

मिथुभो ! वेदना क्या है ?

मिथुभो ! वेदना-काय छ । चक्षुस्पर्शज वेदना मनःस्पर्शज वेदना । मिथुभो ! इसे वेदना कहते हैं । स्पर्श के समुत्पन्न से वेदना का समुत्पन्न होता है । स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध होता है । वही आर्य जहाँगिक मार्ग वेदना के निरोध का मार्ग है ।

जो वेदना के प्रत्यय से सुख सीमन्तर्य होता है वह वेदना का आस्वाद है । वेदना को अनिय बुद्ध विपरिणामधर्मा है वह वेदना का दोष है । जो वेदना के प्रति छन्दराग का प्रहीन हो जाना है वह वेदना की मुक्ति है ।

मिथुभो ! जो भ्रमण या माह्व्य इस प्रकार वेदना को ज्ञान ।

मिथुभो ! संज्ञा क्या है ?

मिथुभो ! संज्ञाकाय छ । रूपसंज्ञा धर्मसंज्ञा । मिथुभो ! इसी को संज्ञा कहते हैं ।

मिथुभो ! जो भ्रमण या माह्व्य इस प्रकार संज्ञा को ज्ञान ।

मिथुभो ! संस्कार क्या है ? मिथुभो ! वेतनाकाय छ । रूपसंवेतना धर्मसंवेतना । मिथुभो ! इसी का संस्कार कहते हैं । स्पर्श के समुत्पन्न से संस्कार का समुत्पन्न होता है ।

मिथुभो ! जो भ्रमण या माह्व्य इस प्रकार संस्कारों को ज्ञान ।

मिथुभो ! विज्ञान क्या है ?

मिथुभो ! विज्ञानकाय छ । चक्षुर्विज्ञान मधोविज्ञान । मिथुभो ! इसी को विज्ञान कहते हैं । नामरूप के समुत्पन्न से विज्ञान का समुत्पन्न होता है । नामरूप के निरोध से विज्ञान का निरोध होता है । आर्य जहाँगिक मार्ग विज्ञान के निरोध का मार्ग है ।

विज्ञान के प्रत्यय से जो सुख सीमन्तर्य होता है वह विज्ञान का आस्वाद है । विज्ञान को अनिय बुद्ध और विपरिणामधर्मा है वह विज्ञान का दोष है । जो विज्ञान के प्रति छन्दराग का प्रहीन हो जाना है वह विज्ञान की मुक्ति है ।

मिथुभो ! जो भ्रमण या माह्व्य विज्ञान को इस प्रकार ज्ञान निर्बोध के किये तथा निर्वाण के किये प्रतिपन्न होते हैं वे ही सुप्रतिपन्न हैं । जो सुप्रतिपन्न हैं वे इस विषय में प्रतिष्ठित होते हैं ।

मिथुभो ! जो भ्रमण या माह्व्य इस प्रकार विज्ञान को ज्ञान विज्ञान के निर्बोध से विज्ञान के विराग से तथा अनुपादान से विमुक्त हो गये हैं वे ही यथार्थ में विमुक्त हुए हैं । जो यथार्थ में विमुक्त हो गये हैं वे केवली हैं । जो केवली हो गये हैं उनके किये भँवर नहीं है ।

मिथुभो ! इसी प्रकार मिथु गाल यथार्थों में बुद्धक होता है ।

मिथुभो ! मिथु कर्म तीन प्रकार से परीक्षा करने वाला होता है ?

मिथुभो ! मिथु धानु से परीक्षा करने वाला होता है । आपतन से परीक्षा करने वाला होता है । जलीनसमुत्पाद से परीक्षा करने वाला होता है ।

मिथुभो ! केसे ही मिथु तीन प्रकार से परीक्षा करने वाला होता है ।

मिथुभो ! जो मिथु गाल यथार्थों में बुद्धक तथा तीन प्रकार से परीक्षा करने वाला होता है वह इस धर्म विषय में केवली राज्य प्रत्यक्ष के आर्य जहाँगिक मार्ग बुद्धक कहा जाता है ।

निर्वेद नहीं करते । महालि ! क्योंकि रूप में बड़ा दुःख और सुख का अभाव है, इसलिये सत्त्व रूप से निर्वेद को प्राप्त होते हैं, निर्वेद से विरक्त हो जाते हैं; विराग से विशुद्ध हो जाते हैं ।

महालि ! सत्त्वों की विशुद्धि का यही हेतु=प्रत्यय है । इस तरह, हेतु=प्रत्यय से सत्त्व विशुद्ध हो जाते हैं ।

[वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान के साथ भी ऐसा ही]

§ ९ आदित्त सुत्त (२१. २. १. ९)

रूपादि जल रहा है

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! रूप जल रहा (=आदीप्त) है । वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान जल रहा है ।

भिक्षुओ ! विद्वान् आर्यश्रावक इसे समझ कर रूप से निर्वेद करता है, वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान से निर्वेद करता है । निर्वेद से विरक्त हो जाता है, विराग से मुक्त हो जाता है, मुक्त होने से मुक्त हो गया—ऐसा ज्ञान होता है ।

जाति क्षीण हुई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, अब और कुछ बाकी नहीं बचा—ऐसा जान लेता है ।

§ १०. निरुक्तिपथ सुत्त (२१. २. १. १०)

तीन निरुक्ति-पथ सदा एक-सा रहते हैं

श्रावस्ती ।

* भिक्षुओ ! तीन निरुक्ति-पथ = अधिवचन पथ = प्रज्ञप्ति पथ बदले नहीं हैं, पहले भी कभी नहीं बदले थे और न आगे चलकर बदलेंगे । श्रमण, ब्राह्मण या विज्ञ पुरुष उसे उलट नहीं सकते हैं । कौन से तीन ?

भिक्षुओ ! जो रूप अतीत = निरुद्ध = विपरिणत हो गया, वह 'हुआ था' ऐसा जाना जाता है । वह 'अभी है' ऐसा जाना नहीं जाता । वह 'होगा' ऐसा भी नहीं जाना जाता ।

जो वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

भिक्षुओ ! जो रूप अभी उत्पन्न = प्रादुर्भूत नहीं हुआ है, वह 'होगा' ऐसा जाना जाता है । 'वह है' ऐसा जाना नहीं जाता । 'वह था' ऐसा जाना जाता है ।

जो वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

भिक्षुओ ! जो रूप अभी उत्पन्न = प्रादुर्भूत हुआ है, वह 'है' ऐसा जाना जाता है । 'वह होगा' ऐसा जाना नहीं जाता । 'वह था' ऐसा जाना नहीं जाता है ।

जो वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

भिक्षुओ ! यही तीन निरुक्ति पथ = अधिवचन-पथ=प्रज्ञप्ति-पथ बदले नहीं हैं, पहले भी कभी नहीं बदले थे और आगे चलकर भी नहीं बदलेंगे । श्रमण, ब्राह्मण या विज्ञ पुरुष उसे उलट नहीं सकते हैं ।

भिक्षुओ ! जो उत्कल (प्रान्त के रहने वाले) वस्स और भज्ज अहेतुवादी, अक्रियवादी, नास्तिक वादी हैं, वे भी इन तीन निरुक्ति पथ=अधिवचन पथ=प्रज्ञप्ति-पथ को मान्य और अनिन्द्य समझते हैं ।

सो क्यों ? निन्दा और तिरस्कार के भय से ।

उपय-वर्ग समाप्त

अनित्य ममो ।

ओ अनित्य ई यह दुःख है या सुख ?

दुःख ममो ।

ओ अनित्य दुःख और विपरिणामधर्मों ई क्या उस प्रश्न समझना ठीक है कि यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है ?

वहीं ममो ।

मिथुनो ! इसमिय आ भी रूप—भर्तात जनागत वर्तमान् कर्पात्म बाध स्पृह सूख डीन, प्रजात दूर में या निकट में—ई सभी धर्मावर्ता प्रज्ञापूर्वक प्रश्न समझना चाहिये कि 'यह मेरा नहीं है यह मैं नहीं हूँ यह मेरा आत्मा नहीं है ।

ओ भी वेदना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान ।

मिथुनो ! प्रश्न समझने वाला बिना आध्यात्मिक रूप में निर्बद्ध करता है वेदना संज्ञा संस्कार विज्ञान में निर्बद्ध करता है । निर्बद्ध करने से विरक्त हो जाता है । विरक्त होने से विमुक्त हो जाता है । विमुक्त हो जान में विमुक्त हो गया—येसा ज्ञान होता है । वाति क्षीय हुई —येसा ज्ञान होता है ।

मगवान् यह बात । संयुक्त हो पंचवर्गीय मिथुनो ने मगवान् के कह का अभिलम्बन किया । इस चर्मोपद्रव के किय जाने पर पंचवर्गीय मिथुनो का चित्त उपादान रहित हो आत्मियों से मुक्त हो गया ।

ई ८ महालि सुत (२१ २ १ ८)

सख्यों की गुरु का हनु पूज काश्यप का भवेत्तु-याद

एक समय मगवान् पैनाली में मद्रासन की कूटागार-आला में विहार करते थे ।

एक प्रजाति किष्कपि यहाँ मगवान् थे वहाँ आया और मगवान् का अभिषादन कर एक ओर बढ़ गया ।

एक और ईद कर महालि मिष्कपि मगवान् स बोला "ममो ! गुराय काश्यप प्रेमा बहता है गान्धो के संस्नेह के निवे कोई देन प्राप्त नहीं है । बिना देनप्राप्त के सब संस्नेह में पड़ते हैं । गान्धो की विमुक्ति के निवे कोई देन प्राप्त नहीं है । बिना देनप्राप्त के सब विमुक्त होत हैं । इसमें मगवान् का क्या करना है ?

महालि ! गान्धो के संस्नेह के निवे देनप्राप्त है । देनप्राप्त स ही तरह संस्नेह में पड़त हैं । गान्धो की विमुक्ति के निवे देनप्राप्त है । देनप्राप्त स ही तरह विमुक्त होते हैं ।

मगवान् ! गान्धो के संस्नेह के निवे क्या देनप्राप्त है ? कर्म देनप्राप्त संस्नेह में पड़ जात है ।

महालि ! यदि एक केवल दुःख ही दुःख और सुख ही सुख स सर्वथा रहित होता तो सब रूप में रहत नहीं होता । महालि ! क्योंकि रूप में क्या सुख है तथा दुःख नहीं है ; इसीलिने सब रूप में रहत होते हैं । रूप ही जाने से रहता संस्नेह करने हैं, संस्नेह से स्नेह में पड़ जाते हैं ।

महालि ! गान्धो के संस्नेह का वह देनप्राप्त है । इस तरह भी देनप्राप्त से सब संस्नेह में पड़ते हैं ।

[वेदना संज्ञा संस्कार विज्ञान के साथ भी ऐसा ही]

ममो ! गान्धो की विमुक्त का देनप्राप्त क्या है ? देनप्राप्त से सब स्नेह विमुक्त होते हैं ।

महालि ! यदि एक केवल सुख ही सुख और दुःख ही दुःख स सर्वथा रहित होता तो सब रूप में

निर्वेद नहीं करते । महालि ! क्योंकि रूप में बड़ा दुःख और सुख का अभाव है, इसलिये सत्त्व रूप से निर्वेद को प्राप्त होते हैं, निर्वेद से विरक्त हो जाते हैं, विराग से विशुद्ध हो जाते हैं ।

महालि ! सत्त्वों की विशुद्धि का यही हेतु=प्रत्यय है । इस तरह, हेतु=प्रत्यय से सत्त्व विशुद्ध हो जाते हैं ।

• [वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान के साथ भी ऐसा ही]

§ ९. आदित्त सुत्त (२१. २. १. ९)

रूपादि जल रहा है

श्रावस्ती • ।

• भिक्षुओ ! रूप जल रहा (=आदीप्त) है । वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान जल रहा है ।

भिक्षुओ ! विद्वान् आर्यश्रावक इसे समझ कर रूप से निर्वेद करता है, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान से निर्वेद करता है । निर्वेद से विरक्त हो जाता है, विराग से मुक्त हो जाता है, मुक्त होने से मुक्त हो गया—ऐसा ज्ञान होता है ।

जाति क्षीण हुई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, अब और कुछ बाकी नहीं बचा—ऐसा ज्ञान लेता है ।

§ १०. निरुक्तिपथ सुत्त (२१. २. १. १०)

तीन निरुक्ति-पथ सदा एक-सा रहते हैं

श्रावस्ती ।

• भिक्षुओ ! तीन निरुक्ति-पथ = अधिवचन पथ = प्रज्ञप्ति पथ बदले नहीं हैं, पहले भी अभी नहीं बदले थे और न आगे चलकर बदलेंगे । श्रमण, ब्राह्मण या विज्ञ पुरुष उसे उलट नहीं सकते हैं । कौन से तीन ?

भिक्षुओ ! जो रूप अभीत = निरुद्ध = विपरिणत हो गया, वह 'हुआ था' ऐसा जाना जाता है । वह 'अभी है' ऐसा जाना नहीं जाता । वह 'होगा' ऐसा भी नहीं जाना जाता ।

जो वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान ।

भिक्षुओ ! जो रूप अभी उत्पन्न = प्रादुर्भूत नहीं हुआ है, वह 'होगा' ऐसा जाना जाता है । 'वह है' ऐसा जाना नहीं जाता । 'वह था' ऐसा जाना जाता ।

जो वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान ।

भिक्षुओ ! जो रूप अभी उत्पन्न = प्रादुर्भूत हुआ है, वह 'है' ऐसा जाना जाता है । 'वह होगा' ऐसा जाना नहीं जाता । 'वह था' ऐसा जाना नहीं जाता है ।

जो वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान ।

भिक्षुओ ! यही तीन निरुक्ति पथ = अधिवचन-पथ=प्रज्ञप्ति-पथ बदले नहीं हैं, पहले भी अभी नहीं बदले थे और आगे चलकर भी नहीं बदलेंगे । श्रमण, ब्राह्मण या विज्ञ पुरुष उसे उलट नहीं सकते हैं ।

भिक्षुओ ! जो उत्कल (प्रान्त के रहने वाले) वस्स और भज्ज अहेतुवादी, अक्रियवादी, नास्तिक-वादी हैं, वे भी इन तीन निरुक्ति-पथ=अधिवचन पथ=प्रज्ञप्ति-पथ को मान्य और अनिन्द्य समझते हैं ।

सो क्यों ? निन्दा और तिरस्कार के भय से ।

उपय-वर्ग समाप्त

दूसरा भाग

अर्हत वर्ग

§ १ उपादिय सुच (०१ ० २ १)

उपादान के त्याग से मुक्ति

भावस्ती ।

तब कोई मित्रु बहो भगवान् ने बहो थापा और भगवान् का अभिवादन कर एक और बैठ गया ।

एक और बैठ वह मित्रु भगवान् से बोला 'मन्ते ! भगवान् मुझे संक्षेप में भर्मापदेश करें जिसे सुनकर मैं एकान्त में अच्छे भ्रमसत् आतापी और प्रह्वितारम हो बिहार करूँ ।

मित्रु ! उपादान में पहा हुआ मार के बन्धन से बँधा रहता है, उपादान को छोड़ देनेवाला उस पापी से मुक्त हो जाता है ।

भगवान् ! जान किया । सुगत ! जान किया ।

मित्रु ! मरे संक्षेप से बतावे राब का तुमने बिस्तार से कर्ब क्या समझा ?

मन्ते ! रूप के उपादान में पहा हुआ मार के बन्धन से बँधा रहता है, रूप के उपादान को छोड़ देनेवाला उस पापी से मुक्त हो जाता है ।

वैश्या ! संज्ञा ! संस्कार ! विज्ञा !

मन्ते ! भगवान् के संक्षेप से बतावे राब का तुमने बिस्तार से पही कर्ब समझा है ।

मित्रु ! ठीक है । तुम्हें बही समझना चाहिये ।

तब वह मित्रु भगवान् के कहे का अभिनन्दन कर भगवान् को प्रणाम कर खड़ा गया ।

तब उस मित्रु ने एकान्त में अच्छे भ्रमसत् आतापी और प्रह्वितारम हो बिहार करते हुए शीघ्र ही मध्यमर्ग के उस अन्तिम फल को प्राप्त कर बिहार करने लगा जिसके किये कुरुपुत्र मर्माभिति पर स बेपर हो प्रव्रजित हो जाते हैं । जाति छोड़ हुई —देमा जान देता है ।

वह मित्रु अर्हता में एक हुआ ।

§ २ मन्त्रमान सुच (०१ २ ० २)

मार से मुक्ति कैसे ?

भावस्ती ।

एक और बैठ वह मित्रु भगवान् से बोला "मन्ते ! भगवान् मुझे संक्षेप में भर्मापदेश करें ।

मित्रु ! मानते हुये बहो मार के बन्धन में बँधा रहता है । मानना छोड़ देने से पापी के बन्धन से मुक्त हो जाता है ।

मन्ते ! रूप का मानते हुये बहो मार के बन्धन में बँधा रहता है । [रूप कपरावाले सूत्र के समान ही ।]

§ ३. अभिनन्दन सुत्त (२१. २. २. ३)

अभिनन्दन करते हुए मार के बन्धन में

आवस्ती ।

भिक्षु ! अभिनन्दन करते हुये कोई मार के बन्धन में बंधा रहता है ।

[शेष ऊपर वाले सूत्र के समान]

§ ४. अनिच्च सुत्त (२१. २. २. ४)

छन्द का त्याग

आवस्ती ।

“भिक्षु ! जो अनित्य है उसके प्रति छन्द का ग्रहण कर देना चाहिये ।

भगवान् ! समझ लिया । सुगत ! समझ लिया ।

भिक्षु ! मेरे इस संक्षेप से कहे गये का तुमने विस्तार से अर्थ कैसे समझा ?

भन्ते ! रूप अनित्य है । उसके प्रति छन्द का ग्रहण कर देना चाहिये । वेदना , सज्जा ,

मस्कार , विज्ञान ।

वह भिक्षु अर्हत्तों में एक हुआ ।

§ ५. दुक्ख सुत्त (२१. २. २. ५)

छन्द का त्याग

आवस्ती ।

भिक्षु ! जो दुःख है उसके प्रति छन्द का ग्रहण कर देना चाहिये ।

वह भिक्षु अर्हत्तों में एक हुआ ।

§ ६. अनत्त सुत्त (२१. २. २. ६)

छन्द का त्याग

आवस्ती ।

भिक्षु ! जो अनात्म है उसके प्रति छन्द का ग्रहण कर देना चाहिये ।

वह भिक्षु अर्हत्तों में एक हुआ ।

§ ७. अनत्तनेय्य सुत्त (२१. २. २. ७)

छन्द का त्याग

आवस्ती ।

भिक्षु ! जो अनात्मनीय है उसके प्रति छन्द का ग्रहण कर देना चाहिये ।

वह भिक्षु अर्हत्तों में एक हुआ ।

§ ८. रजनीयसंछित सुत्त (२१. २. २. ८)

छन्द का त्याग

आवस्ती ।

भिक्षु ! जो राग उत्पन्न करनेवाली चीज है उसके प्रति छन्द का ग्रहण कर दो ।

§ ९ राघ सुप्त (२१ २ ० ९)

अहंकार का नाश कैसे ?

आपस्ती ।

तब आयुष्मान् राघ जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ राघ ।

एक ओर बैठ आयुष्मान् राघ भगवान् से घाल भक्त ! क्या जान और देखकर हम विज्ञान-युक्त शरीर में तथा बाहर सभी निमित्तों में अद्वैत समझार और मानानुभव नहीं होते हैं ?

राघ ! जो रूप है—अतीत अवागत अतमान भीतर बाहर स्पर्श सूक्ष्म दीन प्रणीत दूर में या निकट में—सभी 'मेरा नहीं है' मैं नहीं हूँ, मग भगवान् नहीं है—यथा यथाथना प्रत्यक्ष देखता हूँ ।

देवता ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान ।

राघ ! इसे जान और देखकर हम विज्ञान-युक्त शरीर में तथा बाहर सभी निमित्तों में अद्वैत समझार और मानानुभव नहीं होते हैं ।

आयुष्मान् राघ अर्हंतों में एक हुए ।

§ १० सुराघ सुप्त (२१ ० ० १०)

अहंकार से चित्त की विमुक्ति कैसे ?

आपस्ती ।

तब आयुष्मान् सुराघ भगवान् से बोले 'मन्ते ! क्या जान और देखकर हम विज्ञान-युक्त शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अद्वैत समझार और मान से रहित हो चित्त विमुक्त होता है ?

सुराघ ! जो रूप है सभी 'मेरा नहीं है' —यथा जान और देखकर अवाधान रहित हो कोई विमुक्त होता है ।

अज्ञान ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान ।

सुराघ ! इसे जान और देखकर हम विज्ञान-युक्त शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अद्वैत समझार और मान से रहित हो चित्त विमुक्त होता है ।

आयुष्मान् सुराघ अर्हंतों में एक हुए ।

अर्हन्त धर्म समाप्त

तीसरा भाग

स्वजनीय वर्ग

§ १. अस्माद सुत्त (२१. २ ३. १)

आस्वाद का यथार्थ ज्ञान

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! अविद्वान् पृथक्जन रूप के आस्वाद, आदीनव (=दोष) और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानता है ।

वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

भिक्षुओ ! विद्वान् आर्यश्रावक रूप के आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जानता है ।

वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

§ २. पठम समुदय सुत्त (२१. २ ३. २)

उत्पत्ति का ज्ञान

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! अविद्वान् पृथक्जन रूप के समुदय, अस्त, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानता है ।

विद्वान् आर्यश्रावक यथार्थतः जानता है ।

§ ३. दुतिय समुदय सुत्त (२१. २ ३. ३)

उत्पत्ति का ज्ञान

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! विद्वान् आर्यश्रावक रूप के समुदय, अस्त, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जानता है ।

वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

§ ४. पठम अरहन्त सुत्त (२१. २ ३. ४)

अर्हत् सर्वश्रेष्ठ

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! रूप अनित्य है । जो अनित्य है वह दुःख है । जो दुःख है वह अनात्म है । जो अनात्म है वह न मेरा है, न मैं हूँ, न मेरा आत्मा है । इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक समझना चाहिये ।

वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

मिथुभी ! बिद्वान् आर्यभाषक रूप में निर्वेद करता है । वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

निर्वेद से विरक्त हो जाता है । विराग से विमुक्त हो जाता है । विमुक्त हो जाने से विमुक्त हो गया ऐसा ज्ञान होता है । अति क्षीन हुई यह ज्ञान होता है ।

मिथुभी ! जिसने सत्पापाय भगवान् हैं उनमें कोई ही सर्वश्रेष्ठ भीतर सर्वांग हैं ।

भगवान् यह बोले । यह कहकर कुछ फिर भी बोले :—

मईत् बने सुखी हैं उन्हें तुलना नहीं है ।

अस्मि-मात्र समुच्छिन्न हो गया है मोह-बाध कर गया है ॥१॥

ज्ञान परमार्थ-प्राप्त मग्नभूत भगवान् ।

कोक में अनुपविष्ट स्वच्छ चित्तवाले ॥२॥

पाँच दृग्भों को जान सात धर्मों में विचरनेवाले ।

प्रसन्नगीत सत्पुरुष तुझ के प्यारे पुत्र ॥३॥

सात रथों से सम्पन्न तीन शिक्षाओं में सिद्धित ।

महावीर विचरते हैं जिनके भय भेरव प्रहील हो गये हैं ॥४॥

इस अन्त में सम्पन्न महा-भाग समाहित ।

ब कोक में छोड़ हैं उन्हें तुलना नहीं है ॥५॥

असीम नष्ट प्राप्त अन्तिम जन्म बाध ।

मग्नपथ का वो चार है उसे अपना देने वाले ॥६॥

ज्ञान में अन्तर्गम्य पुनर्जन्म से विमुक्त ।

ज्ञान भूमि को प्राप्त वे कोक के बिजयी हैं ॥७॥

ऊपर नीचे ठेके कभी भी उन्हें आसक्ति नहीं है ।

वे सिंह नाद करते हैं कोक के अनुत्तर तुझ ॥८॥

३ ५ दुसिय अरहन्त सुच (२१ २ ३ ५)

मईत् सर्वश्रेष्ठ

धापस्ती ।

मिथुभी ! रूप अनित्य है । जो अनित्य है वह दुःख है । जो दुःख है वह अभाग्य है । जो अभाग्य है वह न तो मेरा है न मैं हूँ, न मेरा धारता है । इसे व्यर्थता महा पूर्ण रूप देना चाहिये । वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

मिथुभी ! बिद्वान् आर्यभाषक रूप में निर्वेद करता है । वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान में निर्वेद करता है ।

निर्वेद करत हुए विरक्त हो जाता है । विरक्त हो विमुक्त हो जाता है । विमुक्त हो विमुक्त हो गया ऐसा ज्ञान होता है । अति क्षीन हुई — ज्ञान होता है ।

मिथुभी ! जिसने सत्पापाय भगवान् हैं उनमें कोई ही सर्वश्रेष्ठ भीतर सर्वांग हैं ।

३ ६ पठम सीह सुच (२१ २ ३ ६)

तुझ का उपदेश सुन बचता भी भयभीत हो जाते हैं

आपस्ती ।

मिथुभी ! भगवान् सिंह गीत को अपनी मर्द से विजयता है । मर्द से विजय कर जैसा

लेता है। जँभाई लेकर अपने चारों ओर देखता है। अपने चारों ओर देखकर तीन बार गर्जना करता है। तीन बार गर्जना कर शिकार के लिये निकल जाता है।

भिक्षुओ ! जितने जानवर सिंह की गरजना सुनते हैं सभी भय = संवेग = संत्रास को प्राप्त होते हैं। विल में रहनेवाले अपने विल में घुस जाते हैं। जल में रहनेवाले जल में पैठ जाते हैं। जंगल-झाड़ में रहनेवाले जंगल-झाड़ में पंठ जाते हैं। पक्षी आकाश में उड़ जाते हैं।

भिक्षुओ ! राजा के हाथी जो गाँव, कस्बे या राजधानी में बँधे रहते हैं वे भी अपने दढ़ बन्धन को तोड़-ताड़, डर से पेशाब-पाखाना करते जिधर-तिधर भाग खड़े होते हैं।

भिक्षुओ ! जानवरों में मृगराज सिंह का ऐसा तेज और प्रताप है।

भिक्षुओ ! इसी तरह, अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध, विद्या-चरण-सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, पुरुषों को दमन करने में सारथी के समान, देवताओं और मनुष्यों के गुरु भगवान् बुद्ध लोक में जन्म लेकर धर्म का उपदेश करते हैं। यह रूप है। यह रूप का समुदय है। यह रूप का अस्त हो जाना है। यह वेदना, सज्ञा, सस्कार, विज्ञान।

भिक्षुओ ! जो दीर्घायु, वर्णवान्, सुख-सम्पन्न और ऊपर के विमानों में चिरकाल तक बने रहने वाले देव हैं वे भी बुद्ध के धर्मोपदेश सुनकर भय को प्राप्त होते हैं। अरे ! हम अनित्य होते हुए भी अपने को नित्य समझे बैठे थे। अरे ! हम अध्रुव होते हुए भी अपने को ध्रुव समझे बैठे थे। अरे ! हम अशाश्वत होते हुए भी अपने को शाश्वत समझे बैठे थे। अरे ! हम अनित्य = अध्रुव = अशाश्वत हो सत्काय के घोर अविद्या-मोह में पड़े थे।

भिक्षुओ ! देवताओं के साथ इस लोक में बुद्ध ऐसे तेजस्वी और प्रतापी हैं।

भगवान् यह बोले। यह कह कर बुद्ध फिर भी बोले —

जब बुद्ध अपने ज्ञान-बल से धर्मचक्र का प्रवर्तन करते हैं,

देवताओं के साथ इस लोक के सर्वश्रेष्ठ गुरु ॥१॥

सत्काय का निरोध और सत्काय की उत्पत्ति,

और आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग, दुःखों को शान्त करनेवाला ॥२॥

जो भी दीर्घायु देव हैं, वर्णवान्, यशस्वी,

वे डर जाते हैं, जैसे सिंह से दूसरे जानवर ॥३॥

क्योंकि वे सत्काय के फेर में पड़े हैं।

अरे ! हम अनित्य हैं।

वैसे विमुक्त अर्हत् के उपदेश को सुनकर ॥४॥

§ ७. दुतिय सीह सुत्त (२१ २. ३ ७)

देवता दूर ही से प्रणाम करते हैं

आवस्ती ••।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण अपने अनेक पूर्व जन्मों की बातें याद करते हैं, वे सभी पाँच उपादान स्कन्धों को या उनमें किसी एक को याद करते हैं।

भूतकाल में मैं ऐसा रूपवाला था—यह याद करते हुये भिक्षुओ ! वह रूप ही को याद करता हूँ। भूतकाल में मैं ऐसी वेदना वाला था—यह याद करते हुये भिक्षुओ ! वह वेदना ही को याद करता हूँ। ऐसी सज्ञा वाला । ऐसे सस्कारों वाला, ऐसे विज्ञान वाला ।

भिक्षुओ ! रूप क्यों कहा जाता है ? भिक्षुओ ! क्योंकि यह प्रभावित होता है, इन्हीं से 'रूप' कहा जाता है। किससे प्रभावित होता है ? शक्ति से प्रभावित होता है। ऊष्ण से प्रभावित होता है।

मिथुनो ! बिहान् आर्यभट्टावक रूप में निर्वेद करता है । बेदना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान ।

निर्वेद से विरक्त हो जाता है । विरक्त से विमुक्त हो जाता है । विमुक्त हो जाने से विमुक्त हो गया' ऐसा ज्ञान होता है । छाति क्षीय हुई 'बह ज्ञान होता है ।

मिथुनो ! कितने सत्त्वावास भवाग्र है उनमें अर्हत् ही सर्वश्रेष्ठ और सर्वोत्तम है ।

भगवान् यह बांटे । यह कहकर बुद्ध फिर भी बोले :—

अर्हत् बने सुखी है उन्हें तुल्य नहीं है ।

अस्मि-भाग समुच्छिन्न हो गया है मोह-जाल बह गया है ॥१॥

शान्त परमार्थ प्राप्त प्रकृत्य भूत जनाश्रय ।

लोक में अनुपलब्ध स्वच्छ चित्तवाले ॥२॥

पौष्टि रूपायों को ज्ञान सात धर्मों में विचरतेवाले ।

प्रशंसनीय सत्पुरुष बुद्ध के प्यारे पुत्र ॥३॥

सात रत्नों से सम्यक् तीन सिद्धान्तों में शिक्षित ।

महावीर विचरते हैं जिसके भय भेरव प्राणी हो गये हैं ॥४॥

इस अर्हत् से सम्यक् महा भाग समाहित ।

ये लोक में श्रेष्ठ हैं उन्हें तुल्य नहीं है ॥५॥

असीत्य ऋषि मात अस्मिन् जन्म बांटे ।

प्रकृत्यै क्व को सार है उस अपना लेने वाले ॥६॥

द्वैत में अकर्मित पुनर्जन्म से विमुक्त ।

शान्त भूमिको प्राप्त वे लोक के विजयी हैं ॥७॥

कपर बीजे दे दे कहीं भी उन्हें आसक्ति नहीं है ।

वे सिंह-भाव करते हैं लोक के अनुत्तर बुद्ध ॥८॥

§ ५ दुसिय अरहन्त सुत्त (२१ २ ३ ५)

अर्हत् सर्वश्रेष्ठ

भावस्ती ।

मिथुनो ! क्या अवश्य है । जो अनित्य है वह दुःख है । जो दुःख है वह जगत्तम है । जो जगत्तम है वह व तो मेरा है व मैं हूँ, व मेरा जगत्तम है । इसे परार्थतः प्रज्ञा-पूर्वक देख लेना चाहिये । बेदना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान ।

मिथुनो ! बिहान् आर्यभट्टावक इसे वैक रूप में निर्वेद करता है । बेदना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान में निर्वेद करता है ।

निर्वेद करते हुए विरक्त हो जाता है । विरक्त हो विमुक्त हो जाता है । विमुक्त हो विमुक्त हो गया' ऐसा ज्ञान होता है । छाति क्षीय हुई —ज्ञान होता है ।

मिथुनो ! कितने सत्त्वावास भवाग्र है उनमें अर्हत् ही सर्वश्रेष्ठ और सर्वोत्तम है ।

§ ६ पठम सीह सुत्त (२१ २ ३ ६)

सुत्त का उपपद्य सुग देखता भी मयमीत हो जाते हैं

भावस्ती ।

-- मिथुनो ! जगराज सिंह सौंघ को अपनी माँ से निकलता है । माँ से निकल कर जैभाई

किस्को छोड़ना है, बटोरता नहीं , बुझा देता है, सुलगता नहीं ?

रूप को , वेदना को , सज्ञा को , सस्कारों को ; विज्ञान को ।

भिक्षुओ ! यह समझ कर, विद्वान् आर्यब्राह्मण रूप से भी निर्वेद करता है; वेदना से भी , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान , निर्वेद करने में विरक्त हो जाता है । विरक्त हो विमुक्त हो जाता है । विमुक्त होने पर 'विमुक्त हो गया' ऐसा ज्ञान होता है । जाति क्षीण हुई —ज्ञान लेता है ।

भिक्षुओ ! इमी को कहते हैं कि न छोड़ता है और न बटोरता है , न बुझाता है, न सुलगता है । किस्को न छोड़ता है और न बटोरता है , न बुझाता है, न सुलगता है ? रूप को , वेदना को , सज्ञा को , सस्कारों को , विज्ञान को ।

भिक्षुओ ! इस तरह वित्तुल बुझाकर विमुक्त-चित्त हो गये भिक्षु को इन्द्र, ब्रह्मा, प्रजापति आदि सभी देव दूर ही से प्रणाम करते हैं ।

हे पुरुष-श्रेष्ठ ! आपको नमस्कार है,

हे पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है ।

जिसमें हम भी उसे जाने ,

जिसके लिये आप ध्यान करते हैं ॥

§ ८. पिण्डोल सुत्त (२१ २ ३. ८)

लोभी की मुर्दाई से तुलना

एक समय भगवान् शाक्य जनपद में कपिलवस्तु के निम्रोधाराम में विहार करते थे ।

तब, भगवान् किसी कारणवश भिक्षु-सघ को अपने पास से हटा सुबह में पहन और पात्र-जीवर ले कपिलवस्तु में भिक्षाटन के लिये पड़े ।

भिक्षाटन में लौट भोजन कर लेने के उपरान्त दिन के विहार के लिये जहाँ महाजन है वहाँ गये, और एक तरुण विल्व वृक्ष के नीचे बैठ गये ।

तब, एकान्त में ध्यान करते समय भगवान् के चित्त में यह चित्तक उठा —मैंने भिक्षुसघ को स्थापित किया है । यहाँ कितने नव-प्रव्रजित भिक्षु भी हैं जो इस धर्मविनय में अभी तुरत ही आये हैं । मुझे न देखने से शायद उनके मन में कुछ अन्यथात्व हो, जैसे माता को नहीं देखने से तरुण वत्स के मन में अन्यथात्व होता है, जैसे पानी नहीं मिलने से अभी तुरत का लगाया बीज अन्यथात्व को प्राप्त होता है । तो क्यों न मैं भिक्षु-सघ को स्वीकार लूँ जैसे मैं पहले से कर रहा हूँ ।

तब, सहस्रपति ब्रह्मा अपने चित्त से भगवान् के चित्त को जान—जैसे बलवान् पुरुष समेटी बाँह को फैला दे और फैलाई बाँह को समेट ले वैसे—ब्रह्मलोक में अन्तर्धान हो भगवान् के सम्मुख प्रगट हुये ।

तब, सहस्रपति ब्रह्मा उपरनी को एक कन्धे पर सहूल भगवान् की ओर हाथ जोड़ कर बोले —भगवान् ! ऐसी ही बात है । सुगत ! ऐसी ही बात है । भन्ते ! भगवान् ने ही भिक्षु-सघ को स्थापित किया है ।

यहाँ कितने नव-प्रव्रजित भिक्षु भी हैं जो इस धर्मविनय में अभी तुरत ही आये हैं । भगवान् को न देखने से शायद उनके मन में अन्यथात्व हो, जैसे माता को नहीं देखने से तरुण वत्स के मन में अन्यथात्व होता है, जैसे पानी नहीं मिलने से अभी तुरत का लगाया बीज अन्यथात्व को प्राप्त होता है ।

भन्ते ! भगवान् भिक्षुसघ का अभिनन्दन करें । भन्ते ! भगवान् भिक्षुसघ का अभिनन्दन करें । जैसे भगवान् भिक्षुसघ को पहले से स्वीकार कर रहे हैं, वैसे ही अभी भी स्वीकार कर लें ।

भगवान् ने चुप रह कर स्वीकार कर लिया ।

मूल में प्रभावित होता है। प्यास से प्रभावित होता है। ईश्वर मच्छर द्वारा भूय तथा कीड़े-मकोड़े के स्पर्श से प्रभावित होता है। मिथुना ! क्योंकि यह प्रभावित होता है इसी से 'रूप' कहा जाता है।

मिथुना ! पदना क्यों कहा जाता है ? मिथुना ! क्योंकि अनुभव करता है इसी से 'वेदना' कहा जाता है। क्या अनुभव करता है ? सुख का भी अनुभव करता है दुःख का भी अनुभव करता है गुण और गुण में रहित का भी अनुभव करता है। मिथुना ! क्योंकि अनुभव करता है इसीसे 'वेदना' कहा जाता है।

मिथुना ! ज्ञाना क्यों कहा जाता है ? मिथुना ! क्योंकि जानता है इसलिये 'संज्ञा' कहा जाता है। क्या जानता है ? मौल का भी जानता है। पीछे को भी जानता है। छात को भी जानता है। उत्तर का भी जानता है। मिथुना ! क्योंकि जानता है इसलिये 'संज्ञा' कहा जाता है।

मिथुना ! संस्कार क्यों कहा जाता है ? मिथुना ! संस्कृत का अभिसंस्करण करता है। इसलिये संस्कार कहा जाता है। किस संस्कृत का अभिसंस्करण करता है ? रूपान के लिये संस्कृत रूप का अभि संस्करण करता है। वेदनाएँ के लिये संस्कृत वेदना का अभिसंस्करण करता है। संसार के लिये संस्कृत संज्ञा का। संस्कारों के लिये संस्कृत संस्कार का। विज्ञान के लिये संस्कृत विज्ञान का। मिथुना ! संस्कृत का अभिसंस्करण करता है इसलिये संस्कार कहा जाता है।

मिथुना ! विज्ञान क्या कहा जाता है ? मिथुना ! क्योंकि पदधानता है इसलिये विज्ञान कहा जाता है। क्या पदधानता है ? घर्मल का भी पदधानता है। मीने को भी ; कपूय को भी ; मीठे को भी ; गारे का भी ; आ गया नहीं है उस भी ; नमकीन को भी ; ओ नमकीन नहीं है उस भी। मिथुना ! क्योंकि पदधानता है इसलिये विज्ञान कहा जाता है।

मिथुना ! यहाँ विज्ञान कार्यभावक देखा मनन करता है।

इस समय में क्या मैं क्या जा रहा हूँ। अर्थात् काल में भी मैं रूप में क्या गया हूँ और इस समय गया जा रहा हूँ। यद् यद् भवागत रूप का अभिभूत रूप वर्तमान भावागत रूप से भी देखा ही गया जायेगा। जो इस वर्तमान रूप में। वह जेगा मनन कर अर्थात् रूप में अभिपन्न रहता है। भवागत रूप का अभिभूत रूप नहीं करता है; तथा वर्तमान रूप के विवेक विराग और निरोध के लिये अनिवार्य होता है।

इस समय में वेदना से क्या जा रहा हूँ। संज्ञा में ; संस्कारों में ; विज्ञान में।

मिथुना ! जो कुछ क्या समझता है रूप निरूप है या अनिरूप ?

अनिरूप !

आ अनिरूप है वह रूप है या अनिरूप ?

रूप अनिरूप !

आ अनिरूप रूप विनिर्माणमय है क्या उसे केना समझता है किने "यह मेरा है वह मेरा है यह मेरा है ना है" ?

नहीं मेरा !

वेदना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान ।

मिथुना ! इस लिये जो रूप वर्तमान भवागत वर्तमान — ईश्वरीय देखा है वह ईश्वरीय है ना है — केना समझता है किने ?

आ वेदना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान ।

मिथुना ! ईश्वरीय के लिये किने केना समझता है ना है ना नहीं । कुछ देखा है कुछ ना है ना है।

किसको छोड़ता है, बढोरता नहीं , बुझा देता है, सुलगाता नहीं ?

रूप को , वेदना को , सज्ञा को , संस्कारों को , विज्ञान को ... ।

भिक्षुओ ! यह समझ कर, विद्वान् आर्यश्रावक रूप में भी निर्वेद करता है, वेदना से भी , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान । निर्वेद करने से विरक्त हो जाता है । विरक्त हो विमुक्त हो जाता है । विमुक्त होने पर 'विमुक्त हो गया' ऐसा जान होता है । जाति क्षीण हुई —जान होता है ।

भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं कि न छोड़ता है और न बढोरता है , न बुझाता है, न सुलगाता है । किसको न छोड़ता है और न बढोरता है , न बुझाता है, न सुलगाता है ? रूप को , वेदना को , सज्ञा को , संस्कारों को , विज्ञान को ।

भिक्षुओ ! इस तरह वित्कुल बुझाकर विमुक्त-चित्त हो गये भिक्षु को इन्द्र, ब्रह्मा, प्रजापति आदि सभी देव दूर ही से प्रणाम करते हैं ।

हे पुरुष-श्रेष्ठ ! आपको नमस्कार है,

हे पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है ।

जिनमें हम भी उसे जाने ,

जिसके लिये आप ध्यान करते हैं ॥

§ ८. पिण्डोल सुत्त (२१. २ ३. ८)

लोभी की मुर्दाठी से तुलना

एक समय भगवान् शाक्य जनपद में कपिलवस्तु के निम्रोधाराम में विहार करते थे ।

तब, भगवान् किसी कारणवश भिक्षु-सघ को अपने पास से हटा सुवह में पहन और पात्र-चीवर ले कपिलवस्तु में भिक्षाटन के लिये पड़े ।

भिक्षाटन से लौट भोजन कर लेने के उपरन्त दिन के विहार के लिये जहाँ मट्ठाचन हैं वहाँ गये, और एक तरुण विल्व वृक्ष के नीचे बैठ गये ।

तब, एकान्त में ध्यान करते समय भगवान् के चित्त में यह वितर्क उठा —'मैंने भिक्षुसघ को स्थापित किया है । यहाँ कितने नव-प्रव्रजित भिक्षु भी हैं जो इस धर्मचिनय में अभी तुरत ही आये हैं । मुझे न देखने से शायद उनके मन में कुछ अन्यथात्व हो, जैसे माता को नहीं देखने से तरुण वत्स के मन में अन्यथात्व होता है, जैसे पानी नहीं मिलने से अभी तुरत का लगाया बीज अन्यथात्व को प्राप्त होता है । तो क्यों न मैं भिक्षु-सघ को स्वीकार लूँ जैसे मैं पहले से कर रहा हूँ ।

तब, सहस्रपति ब्रह्मा अपने चित्त से भगवान् के चित्त को जान—जैसे बलवान् पुरुष समेटी बोह को फैला दे और फैलाई बोह को समेट ले वैसे—ब्रह्मलोक में अन्तर्धान हो भगवान् के सम्मुख प्रगट हुये ।

तब, सहस्रपति ब्रह्मा उपरनी को एक कन्धे पर सम्हाल भगवान् की ओर हाथ जोड़ कर बोले —भगवान् ! ऐसी ही बात है । सुगत ! ऐसी ही बात है । भन्ते ! भगवान् ने ही भिक्षु-सघ को स्थापित किया है ।

यहाँ कितने नव-प्रव्रजित भिक्षु भी हैं जो इस धर्मचिनय में अभी तुरत ही आये हैं । भगवान् को न देखने से शायद उनके मन में अन्यथात्व हो; जैसे माता को नहीं देखने से तरुण वत्स के मन में अन्यथात्व होता है, जैसे पानी नहीं मिलने से अभी तुरत का लगाया बीज अन्यथात्व को प्राप्त होता है ।

भन्ते ! भगवान् भिक्षुसघ का अभिनन्दन करें । भन्ते ! भगवान् भिक्षुसघ का अभिनन्दन करें । जैसे भगवान् भिक्षुसघ को पहले से स्वीकार कर रहे हैं, वैसे ही अभी भी स्वीकार कर लें ।

भगवान् ने सुण रह कर स्वीकार कर लिया ।

तब गद्गदगति मझा भगवान् की स्थावृति को जान भगवान् का अभिवादन भार प्रदक्षिणा कर बड़ी अन्तर्धान हो गये ।

तब मौझ को पवन से उठ भगवान् जहाँ मित्रोपाराम या वहाँ गये आर बिछे आसम पर बर गये । तब भगवान् न भवन अहि-वन से गया किया कि सारा मिथुसंघ एक साथ वड़ प्रेम से भगवान् के सम्मुख जा उपस्थित हुआ । व मिथु भगवान् के पास आ अभिवादन कर एक ओर बर गये ।

एक भार बर हुय उन मिथुओं से भगवान् बोले—

मिथुभा ! यह जा भिक्षादन करके जीवा है सो सभी अविद्यमानों में हीन है । किन्तु, तुम अपने हाथ में पात्र से पारे मान का छाड़ भिक्षादन करने फिरते हो । मिथुभा ! यह कुलपुत्र भवन किसी उदरय के कारण ही गया करते हैं । व किसी राजा या किसी पार म दूधित हाकर पैसा नहीं करत न ता किसी और मय से और न किसी दूसरी अविद्या न मिलने के कारण ही । बल्कि जन्म जरा गुण्य, पात्र रामा पीटना गुण्य शर्मनम्ब और उपायाम (अपरेशानी) से मुक्त हो जन्म के सिद्ध ही ये गया प्रतापजन करते हैं जिससे हमें हम विशाल बुततराशि का अन्त मिल जाय । मिथुभा ! कुलपुत्र पैसा महाशरीरा को लकर प्रयत्न होता है ।

यदि बर (कुलपुत्र) पामी मोग बिलाम में तीव्र राग करनेवाया गिरे हुए चित्तवाक्य दोषपूर्ण मंडपवाक्या मूढ स्मृतिवाक्या अर्थात् अजमाहित विधान्त चित्तवाक्या और अर्थात् अमित्र हो ता है मिथुभा ! यह इमगान में कोई हुई उम जन्मी लकड़ी के समान है जो पानों आर स जहाँ हुई और बाँध में गन्दगी लगी हुई है जो व गौँ में और न ता जगल ही में लकड़ी के काम में जा मरती है । यह गृहमय के भाग न भी बचल रहता है और अपन भ्रमल भाव का भी नहीं पूरा कर सता है ।

मिथुभा ! तीन अनुगत (अपात्र) बितक हैं—(१) काम बितक (२) म्यापाद बितक और (३) विहिता बितक । मिथुभा ! यह तीन बितक बहो विन्तुन निरुद्ध हो जत हैं ? पार वसुति प्ररथानों में गुप्तनिहित का आनमिल समायि के अमयन चित्त में ।

मिथुभा ! अतः मुझे हय अनिमित्त समायि की भावना बरनी चाहिए । मिथुभा ! इस समायि की भावना तथा अमयन का काम महात्त है ।

मिथुभा ! हो (मयगा) रहितो है, (१) भय रहित और (२) विभव रहित । मिथुभा ! सो कोई चरित्त आनमयन केगा विचारता है—कया इस लोक में पैसा कोई चीज है जिस पाकर मैं पाव से बचा रह गऊँ ?

यह पैसा काम होता है—इस लोक में पैसा कोई चीज नहीं है जिस पाकर मैं होय से बचा रह गऊँ । मैं कहे की चरित्त बरौगा ता जन्म ही का वैदना ही का मोग ही को मरवार ही को का विज्ञान ही को पाईगा । इस काम की वा ताता (अवतारन) न भव हागा भव न जति जानि से प्रतापजन है । इस प्रकार गारा गुण मयूह उठ गवा हागा ।

मिथुभा ! ता क्या मयमल हो जत बित्त है वा अमय ?

अतः अमय ।

यदि अमय है वा बर गुण है वा गुण ?

अतः गुण है ।

व अमय गुण अविचर्य जाल है उमे क्या केगा मयमल हो क ह दि—यह पैसा है बर है हुँ यह पैसा अमय है ?

अतः पैसा मयमल हो क नहीं ।

विदुः कि क्या मयमल है वैदना मान में है । चित्तम— ।

भिक्षुओ ! इसी से ऐसा समझने वाला "फिर जन्म का नहीं ग्रहण करता है ।

§ ९. पारिलेख्य सुत्त (२१ २ ३. ९)

आश्रवों का क्षय कैसे ?

एक समय भगवान् कौशाम्बी के घोषिताराम में विहार करने थे ।

तब, भगवान् पूर्वाह्न समय पहन और पात्र-चीवर ले कौशाम्बी में भिक्षाटन के लिये पड़े । कौशाम्बी में भिक्षाटन करके लौट, भोजन कर लेने के बाद स्वयं अपने आमन लपेट, पात्र और चीवर ले, किसी महायक को बिना कुछ कहे और भिक्षु-सभ से भी बिना मिले बिल्कुल अकेले रमत के लिये चल पड़े ।

तब, भगवान् के चले जाने के कुछ ही देर बाद कोई भिक्षु जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ आया । आकर आयुष्मान् आनन्द से बोला—आयुस आनन्द ! अभी तुरत भगवान् स्वयं अपने आमन लपेट, पात्र और चीवर ले, किसी महायक को बिना कुछ नहे और भिक्षु-सभ से भी बिना मिले बिल्कुल अकेले रमत के लिये निकल गये हैं । आयुस ! ऐसे समय भगवान् अकेला विहार करना चाहते हैं, अतः किसी को उनके पीछे-पीछे हो लेना अच्छा नहीं ।

तब, भगवान् रमत (= चारिका) लगाते हुये क्रमशः वहाँ पहुँचे जहाँ पारिलेख्यक हैं । वहाँ भगवान् पारिलेख्यक में भद्रशाल वृक्ष के नीचे विहार करने लगे ।

तब, कुछ भिक्षु जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ पहुँचे, और कुशल-समाचार पूछ कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ, वे भिक्षु आयुष्मान् आनन्द से बोले—आयुस आनन्द ! भगवान् के मुँह से धर्म सुने बहुत दिन बीत गये । बड़ी इच्छा हो रही है कि फिर भी भगवान् के मुँह से धर्म सुनें ।

तब, आयुष्मान् आनन्द उन भिक्षुओं को साथ ले पारिलेख्यक में भद्रशाल वृक्ष के नीचे जहाँ भगवान् विहार कर रहे थे वहाँ गये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठे हुये उन भिक्षुओं को भगवान् ने धर्मोपदेश कर दिखा दिया, बतला दिया, उत्साह से भर दिया और पुलकित कर दिया ।

उस समय किसी भिक्षु के चित्त में ऐसा वितर्क उठा—क्या जान और देख लेने से आश्रवों का क्षय होता है ?

तब, भगवान् ने अपने चित्त से उस भिक्षु के चित्त के वितर्क को जान भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! मैंने विश्लेषण करके बतला दिया कि धर्म क्या है, चार स्मृति-प्रस्थान क्या हैं, चार सम्यक प्रधान क्या हैं, चार ऋद्धि-पाद क्या हैं, पाँच इन्द्रियाँ क्या हैं, पाँच बल क्या हैं, सात बोध्यङ्ग क्या हैं, आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग क्या है । भिक्षुओ ! मैंने इस प्रकार विश्लेषण कर धर्म समझा दिया है । भिक्षुओ ! तो भी, एक भिक्षु के चित्त में ऐसा वितर्क उठा है—क्या जान और देख लेने से आश्रवों का क्षय होता है ?

भिक्षुओ ! क्या जान और देख लेने से आश्रवों का क्षय होता है ?

भिक्षुओ ! कोई अज्ञ = पृथक्जन = आर्य सत्यां को न समझने वाला सत्पुरुषों के धर्म में अविनीत रूप को आत्मा करके जानता है । भिक्षुओ ! ऐसा जो जानना है वह संस्कार कहलाता है । उस संस्कार का क्या निदान = समुदय = जाति = प्रभव है ?

भिक्षुओ ! अधिद्या-पूर्वक सस्पर्श से जो वेदना होती है उससे अज्ञ=पृथक्जन को तृष्णा उत्पन्न होती है । उसी से संस्कार पैदा होता हैं । भिक्षुओ ! इस तरह, वह संस्कार भी अनित्य, संस्कृत और किसी कारण से उत्पन्न होने वाला है । वह तृष्णा भी अनित्य, संस्कृत और किसी कारणसे उत्पन्न होने

तब यह प्रकटि प्रज्ञा भगवान् की स्वीकृति को जान भगवान् का अभिवादन और प्रवक्षिणा कर बड़ी अन्तर्धान हो गये ।

तब साँझ को प्यार से उठ भगवान् वहाँ निमोधारण पा बहाँ गये और बिछे साधन पर बैठ गये । तब भगवान् ने अपने कवि-कवच से पूछा किया कि सारा भिक्षुसंघ एक साथ बड़े प्रेम से भगवान् के सम्मुख आ उपस्थित हुआ । वे भिक्षु भगवान् के पास आ अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ हुये उस भिक्षुओं से भगवान् बोला—

भिक्षुओ ! यह आ भिक्षादन करके जीवा है तो सभी जीविकाओं में हीन है । किन्तु, तुम अपने हाथ में पात्र से सारे मातृ का छाँड़ भिक्षादन करते फिरते हो । भिक्षुओ ! यह कुत्तुपुत्र अपने किसी उद्देश के कारण ही पूछा करत है । वे किसी राजा या किसी ओर से वृद्धित हाकर ऐसा नहीं करते व तो किसी और मय से और न किसी दूसरी जीविका न भिक्षु के कारण ही । बल्कि दम्भ और गुरु, लोक राजा पीडना हुए धर्मनिरास और उपायान (नपरोशासी) से मुक्त हो जान के लिए ही वे पूछा प्रतापन करत है जिससे हमें इस भिक्षाक बुद्धरासि का अन्त निक बाध । भिक्षुओ ! कुत्तुपुत्र पूछी महाराज्योष्ठा को संकर प्रकृतित होता है ।

यदि वह (कुत्तुपुत्र) कामी भोग विकास में तीव्र राग करनेवाला गिर हुए चित्तवाक्य होपपूर्ण संस्कारोपासना मृदु स्मृतिवाक्य अत्यप्रश्रुत जन्ममाहित विज्ञाना चित्तवाक्य कार अस्यतेमित्र हो तो हे भिक्षुओ ! वह हमेशा में चँडो हुई उस कभी कभी के समान है जो दोनों ओर से कभी हुई और बीच में गम्भीरी सगी हुई है या म गौन में भार न तो अगक ही में कभी के नाम में आ सकती है । वह गृहस्थ के माग से भी बँधित रहता है और अपने जन्म माग को भी नहीं पूरा कर सकता है ।

भिक्षुओ ! तीन अष्टादश (अपात्र) चित्तक हैं—(१) काम चित्तक (२) स्वापात्र चित्तक और (३) विहिंसा-चित्तक । भिक्षुओ ! यह तीन चित्तक वहाँ चित्तुक निरुद्ध हो जाते हैं ? पार स्मृति प्रस्थानों में सुप्रतिष्ठित या अनिमित्त समाधि के अन्तर्गत चित्त में ।

भिक्षुओ ! अतः तुम्हें हम अनिमित्त समाधि की भावना करनी चाहिए । भिक्षुओ ! हम समाधि की भावना तथा अन्त्याय का कर्म महान् है ।

भिक्षुओ ! हो (मिच्छा) दृष्टिओं हैं; (१) भव दृष्टि और (२) विमल दृष्टि । भिक्षुओ ! जो कोई पण्डित आर्यवाक्य ऐसा विचारता है—कहा हम माक में मूरी काई कीज है जिस पाकर मैं हीन से क्या रह सऊँ ?

वह पूछा जान लेगा है—हम माक में गी कोई कीज नहीं है जिसे पाकर मैं हीन से क्या रह सऊँ । मैं पात्र की काँटिषा करूँगा तो रूप ही को बेचना ही वा संज्ञा ही को संस्कार ही को वा विज्ञान ही का काँटिषा । उस पात्र की काँटिषा (अडपादाय) से भव होगा भव से जाति जाति से जरासरण होगा । इस प्रकार सारा दुःख समुद्र उद सरा होगा ।

भिक्षुओ ! तो क्या समझने का रूप भिन्न है वा ज न व ?

अन्त ! अनिच्छ ।

यदि अनिच्छ है तो वह दुःख है वा सुख ?

ज ने ! दुःख है ।

तो अनिच्छ दुःख परिवर्तन सीध है उस क्या लेगा समझना दीक है कि—वह मेरा है वह मैं हूँ वह मेरा जानता है ।

अन्त ! अन्त समझना दीक नहीं ।

भिक्षुओ ! तो क्या समझने का वेदव संज्ञा संस्कार विज्ञान ।

§ १०. पुण्यमा सुत्त (२१. २. ३. १०)

पञ्चस्कन्धों की व्याख्या

एक समय भगवान् वड़े भिक्षु-संघ के साथ श्रावस्ती में [मृगारमाता के पूर्वाराण प्रासाद में विहार करते थे ।

उस समय, भगवान् उपोसथ को पूर्णिमा की चाँदनी रात में भिक्षु-संघ के बीच खुली जगह में बैठे थे ।

तब, कोई भिक्षु अपने आसन से उठ, उपरनी को एक कन्धे पर सम्हाल, भगवान् की ओर हाथ जोड़कर बोला—यदि भगवान् की अनुमति हो तो मैं भगवान् से कोई प्रश्न पूछूँ ?

भिक्षु ! तो, तुम अपने आसन पर बैठकर जो पूछना चाहते हो पूछो ।

‘भन्ते ! बहुत अच्छा’ कह वह भिक्षु अपने आसन पर बैठ गया और बोला—भन्ते ! वही पाँच उपादान-स्कन्ध हैं न, जो (१) रूप-उपादान स्कन्ध, (२) वेदना-उपादान स्कन्ध, (३) संज्ञा-उपादान स्कन्ध, (४) सस्कार-उपादान स्कन्ध और (५) विज्ञान-उपादान स्कन्ध ?

हाँ भिक्षु ! वही पाँच उपादान-स्कन्ध हैं, जो रूप-उपादान स्कन्ध ।

साधुकार दे, वह भिक्षु भगवान् के कहे का अभिनन्दन और अनुमोदन कर उसके आगे का प्रश्न पूछा—भन्ते ! इन पाँच उपादान-स्कन्धों का मूल क्या है ?

भिक्षु ! इन पाँच उपादान-स्कन्धों का मूल इच्छा (= छन्द) है ।

साधुकार दे प्रश्न पूछा—भन्ते ! जो उपादान है क्या वही पच-उपादान-स्कन्ध है, या पच-उपादान स्कन्ध दूसरा है और उपादान दूसरा ?

भिक्षु ! न तो जो उपादान है वही पच-उपादान-स्कन्ध है, और न पच-उपादान-स्कन्ध से भिन्न ही कोई उपादान है । बल्कि, जो जहाँ छन्दराग है वही वहाँ उपादान है ।

साधुकार दे प्रश्न पूछा—भन्ते ! पाँच उपादान स्कन्धों में छन्दराग का नानात्व होता है या नहीं ?

भगवान् बोले, “होता है । भिक्षु ! किसी के मन में ऐसा होता है—मैं आगे चलकर ऐसा रूप-वाला हूँगा, ऐसी वेदनावाला हूँगा, ऐसी संज्ञावाला हूँगा, ऐसे सस्कारवाला हूँगा, ऐसा विज्ञानवाला हूँगा । भिक्षु, इस तरह पाँच उपादान स्कन्धों में छन्द राग का नानात्व होता है ।

साधुकार दे फिर आगे का प्रश्न पूछा—भन्ते ! इन स्कन्धों का नाम “स्कन्ध” ऐसा क्यों पड़ा ?

भिक्षुओ ! जो रूप—अतीत, अनागत, वर्तमान, अध्यात्म, बाह्य, स्थूल, सूक्ष्म, हीन, प्रणीत, दूर, निकट है—वह रूप-स्कन्ध कहा जाता है । जो वेदना । जो संज्ञा । जो सस्कार । जो विज्ञान—अतीत —है वह विज्ञान-स्कन्ध कहा जाता है । भिक्षु ! इसी से स्कन्धों का नाम स्कन्ध पड़ा है ।

साधुकार दे फिर आगे का प्रश्न पूछा—भन्ते ! रूप-स्कन्ध की प्रज्ञप्ति का क्या हेतु = प्रत्यय है ? वेदना-स्कन्ध की ? संज्ञा-स्कन्ध की ? सस्कार-स्कन्ध की ? विज्ञान-स्कन्ध की प्रज्ञप्ति का क्या हेतु = प्रत्यय है ?

भिक्षु ! रूप-स्कन्ध की प्रज्ञप्ति का हेतु = प्रत्यय यही चार महाभूत हैं । वेदना-स्कन्ध की प्रज्ञप्ति का हेतु = प्रत्यय स्पर्श है । संज्ञा-स्कन्ध की प्रज्ञप्ति का हेतु = प्रत्यय स्पर्श है । सस्कार-स्कन्ध की प्रज्ञप्ति का हेतु = प्रत्यय स्पर्श है । विज्ञान-स्कन्ध की प्रज्ञप्ति का हेतु = प्रत्यय नाम-रूप है ।

साधुकार दे फिर आगे का प्रश्न पूछा—भन्ते ! सत्काय-दृष्टि कैसे होती है ?

भिक्षु ! कोई अज्ञ = पृथक्जन रूप को आत्मा करके जानता है, या आत्मा को रूपवाला,

वाली है। यह वेदना भी । यह स्पर्श भी । यह अविद्या भी । मिथुनो ! इसे भी ज्ञान और देख कने से आधमों का छाप होता है ।

यह रूप को आत्मा करके नहीं जानता है किन्तु आत्मा को रूप खाखा जानता है । मिथुनो ! उसका जो ऐसा जानता है वह संस्कार है । उस संस्कार का क्या निदान = समुद्र्य = जति = प्रसव है । मिथुनो ! अविद्या-पूर्वक संस्पर्श से जो वेदना होती है उससे मज्ज = पुण्यजन को मृत्पा उत्पन्न होती है । उसी से संस्कार पैदा होता है । मिथुनो ! इस तरह यह संस्कार भी अनित्य मृत्पा भी वेदना भी स्पर्श भी अविद्या भी अनित्य संस्कृत और किसी कारण से उत्पन्न होने वाली है । मिथुनो ! इस भी ज्ञान और देख कने से आधमों का छाप होता है ।

यह रूप को आत्मा करके नहीं जानता है और न आत्मा को रूपवाला जानता है किन्तु आत्मा में रूप है ऐसा जानता है । मिथुनो ! उसका जो ऐसा जानता है वह संस्कार है । उस संस्कार का क्या निदान । मिथुनो ! इसे भी ज्ञान और देख कने से आधमों का छाप होता है ।

यह रूप को आत्मा करके नहीं जानता है, न आत्मा को रूपवाला जानता है न आत्मा में रूप है ऐसा जानता है किन्तु रूप में आत्मा है, ऐसा जानता है । मिथुनो ! उसका जो ऐसा जानता है वह संस्कार है । उस संस्कार का क्या निदान = समुद्र्य = जति = प्रसव है । मिथुनो ! अविद्या-पूर्वक संस्पर्श से जो वेदना होती है उससे मज्ज = पुण्यजन को मृत्पा उत्पन्न होती है । उसी से संस्कार पैदा होता है । मिथुनो ! इस तरह यह संस्कार भी अनित्य मृत्पा भी वेदना भी स्पर्श भी अविद्या भी अनित्य संस्कृत और किसी कारण से उत्पन्न होने वाली है । मिथुनो ! इस भी ज्ञान और देख कने से आधमों का छाप होता है ।

यह रूप को आत्मा करके नहीं जानता है न आत्मा को रूपवाला जानता है न आत्मा में रूप है ऐसा जानता है और न रूप में आत्मा है ऐसा जानता है किन्तु यह वेदना को आत्मा करके जानता है आत्मा को वेदना वाला जानता है आत्मा में वेदना है ऐसा जानता है वेदना में आत्मा है ऐसा जानता है । संज्ञा को । संस्कार को । विज्ञान को ।

यह न ता रूप को न वेदना का न संज्ञा को न संस्कार को नार न विज्ञान को आत्मा करके जानता है किन्तु ऐसा मत मानता है—जो आत्मा है वही कोक है । सा में मरने के बाद किन्तु धुब शादयन और परिकल्पन-रहित हा जाऊँगा ।

मिथुनो ! उनकी जो यह शास्त्रत दृष्टि है यह संस्कार है । उस संस्कार का क्या निदान है । मिथुनो ! इस भी ज्ञान और देख कर आधमों का छाप होता है ।

किन्तु "ह ऐसा मत मानता है—ज मैं हुआ हूँ और न मरा कुछ होने न मैं हूँगा और न मरा कुछ होगा ।

मिथुनो ! उनकी जो यह अन्तेष्ट दृष्टि है यह संस्कार है । मिथुनो ! इसे भी ज्ञान और देख कर आधमों का छाप होता है ।

किन्तु यह मन्द पाया जाता है बिचित्रित्वा करने वाला और सद्धर्म में उग्रही निष्ठा नहीं होती है ।

मिथुनो ! उनका जो यह मन्देद करना और सद्धर्म में निष्ठा का नहीं जानता है यह संस्कार है । उस संस्कार का क्या निदान = समुद्र्य = जति = प्रसव है । मिथुनो ! अविद्या-पूर्वक संस्पर्श से जो वेदना होती है उससे मज्ज = पुण्यजन को मृत्पा उत्पन्न होती है । उसी से संस्कार पैदा होता है । मिथुनो ! इस तरह यह संस्कार भी अनित्य मृत्पा भी वेदना भी स्पर्श भी अविद्या भी अनित्य संस्कृत और किसी कारण से उत्पन्न होने वाली है । मिथुनो ! इस भी ज्ञान और देख कने से आधमों का छाप होता है ।

चौथा भाग

स्थविर वर्ग

§ १. आनन्द सुत्त (२१. २. ४. १)

उपादान से ही अहंभाव

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय आयुष्मान् आनन्द श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे ।

वहाँ आयुष्मान् आनन्द ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—आवुस भिक्षुओं ।

“आवुस !” कहकर उन भिक्षुओं ने आयुष्मान् आनन्द को उत्तर दिया ।

आयुष्मान् आनन्द बोले—आवुस ! यह आयुष्मान् मन्तानिपुत्र पूर्ण हम नये भिक्षुओं के बड़े उपकार करने वाले हैं । वे हमें ऐसा उपदेश देते हैं, “आवुस आनन्द ! उपादान के कारण ही ‘अस्मि’ होता है, अनुपादान के कारण नहीं ।

“किसके उपादान से ‘अस्मि’ (=मैं हूँ) होता है ।

“रूप के उपादान से ‘अस्मि’ होता है, उसके अनुपादान से नहीं । वेदना के । सज्ञा के । सस्कार के । विज्ञान के उपादान से ‘अस्मि’ होता है, उसके अनुपादान से नहीं ।

“आवुस आनन्द ! जैसे कोई स्त्री, पुरुष, लड़का या युवक अपने को सज-धज कर दर्पण या परिशुद्ध निर्मल जलपात्र में अपने चेहरे को देखते हुए उपादान के साथ देखे, अनुपादान के साथ नहीं । आवुस आनन्द ! इसी तरह रूप के उपादान से ‘अस्मि’ होता है, उसके अनुपादान से नहीं । वेदना । सज्ञा । सस्कार । विज्ञान के उपादान से ‘अस्मि’ होता है, उसके अनुपादान से नहीं ।

“आवुस आनन्द ! तो तुम क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

आवुस ! अनित्य है ।

“वेदना , सज्ञा , सस्कार , विज्ञान ।

आवुस ! अनित्य है ।

“इसलिये , यह जान और देख कर पुनर्जन्म में नहीं पड़ता है ।”

आवुस ! आयुष्मान् मन्तानिपुत्र पूर्ण हम नये भिक्षुओं के बड़े उपकार करने वाले हैं । वे हमें ऐसा उपदेश देते हैं । उनके इस धर्मोपदेश को सुन मैं स्रोतापन्न हो गया ।

§ २. तिस्स सुत्त (२१. २. ४. २)

राग-रहित को शोक नहीं

श्रावस्ती जेतवन ।

उस समय भगवान् के चचेरे भाई आयुष्मान् तिप्प कूट भिक्षुओं के बीच ऐसा कह रहे थे—
आवुस ! मुझे कुछ उल्लाह नहीं हो रहा है, मुझे दिगार्ये भी नहीं दीव्य रही है; धर्म भी मुझे नहीं प्याए

या आत्मा में रूप या रूप में आत्मा जानता है। वेदना को । संज्ञा को । संस्कार को । विज्ञान को आत्मा करके । मिथु ! इसी तरह सत्काय-वृद्धि होती है।

साधुकार वे फिर आगे का प्रश्न पूछा—मन्ते ! रूप के क्या आस्वाद दोष और मोक्ष हैं ? वेदना संज्ञा संस्कार विज्ञान के क्या आस्वाद दोष और मोक्ष हैं ?

मिथु ! रूप के कारण जो सुख और भाराम उत्पन्न होता है वह रूप का आस्वाद है। रूप का अनित्य दुःख और परिवर्तनशील है वह रूप का दोष है। रूप के प्रति जो छन्दराग का प्रहाय है वह रूप से मोक्ष है। वेदना के । संज्ञा के । संस्कारों के । विज्ञान के कारण जो सुख और भाराम उत्पन्न होता है वह विज्ञान का आस्वाद है। विज्ञान जो अनित्य दुःख और परिवर्तनशील है वह विज्ञान का दोष है। विज्ञान के प्रति जो छन्दराग का प्रहाय है वह विज्ञान से मोक्ष है।

साधुकार वे फिर आगे का प्रश्न पूछा—मन्ते ! क्या ज्ञान और देखकर इस विज्ञान बाहेरी शरीर में तथा बाहर के सभी विमिश्रा में अहंकार ममंकार माय और अनुशास नहीं होते हैं ?

मिथु ! जो रूप—भरीठ अनागत वर्तमान आन्त्यात्म बाह्य अन्तः सूक्ष्म हीम प्रणीत दूर, निरुद्ध—है सभी न मेरा है न 'मैं' हूँ, और न मेरा आत्मा है। इसे क्या-वर्तमान प्रज्ञा-पूर्वक ज्ञान होता है। जो वेदना संज्ञा संस्कार विज्ञान न मेरा है न 'मैं' हूँ और न मेरा आत्मा है। इस क्या वर्तमान प्रज्ञा-पूर्वक ज्ञान होता है। मिथु ! इसे ही ज्ञान और देखकर इस विज्ञानबाह्य शरीर में तथा बाहर के सभी विमिश्रा में अहंकार ममंकार, माय और अनुशास नहीं होते हैं।

उस समय किसी मिथु के चित्त में ऐसा चित्तवृत्ति उदा—यदि रूप ज्ञात है वेदना संज्ञा संस्कार विज्ञान सभी आत्मा है तो आत्मा से किये गये कर्म कैसे किसी को कर्मों ?

तब महाबाह ने अपने चित्त से उस मिथु के चित्त के चित्तवृत्ति को ज्ञान मिथुओं को आत्मनिष्ठ किया—मिथुओं ! इसी सत्ता है कि वहाँ कोई बेसमझ अविज्ञान तुम्हारा सँ अस्मिन्मूढ हो अपने चित्त से तुम्हारे धर्म को छोड़ जाये योग्य समझ बैठे—कि यदि रूप ज्ञात है तो आत्मा से किये गये कर्म कैसे किसी को कर्मों ? मिथुओं ! धर्म में ऐसी-वैसी ज्ञानों पर तुम्हें पूछ कर समझ लेना चाहिये।

मिथुओं ! तो क्या समझते हो रूप नित्य है वा अनित्य ?

अनित्य मन्ते !

वेदना संज्ञा संस्कार विज्ञान !

जो अनित्य है वह दुःख होगा वा सुख !

मन्ते ! दुःख होगा।

जो अनित्य दुःख और परिवर्तनशील है उस क्या ऐसा समझना उचित है—वह मेरा है वह मैं हूँ, वह मेरा आत्मा है !

नहीं मन्ते !

इत्यन्तिरे । वह ज्ञान और देख वह पुनर्जन्म में नहीं पड़ता।

अज्ञानीय वर्ग समाप्त

चौथा भाग

स्थविर वर्ग

§ १. आनन्द सुत्त (२१ २ ४ १)

उपादान से ही अहंभाव

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय आयुष्मान् आनन्द श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे ।

वहाँ आयुष्मान् आनन्द ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया—आवुस भिक्षुओ ।

“आवुस !” कहकर उन भिक्षुओं ने आयुष्मान् आनन्द को उत्तर दिया ।

आयुष्मान् आनन्द बोले—आवुस ! यह आयुष्मान् मन्तानिपुत्र पूर्ण हम नये भिक्षुओं के वड़े उपकार करने वाले हैं । वे हमें ऐसा उपदेश देते हैं, “आवुस आनन्द ! उपादान के कारण ही ‘अस्मि’ होता है, अनुपादान के कारण नहीं ।

“किसके उपादान से ‘अस्मि’ (=मैं हूँ) होता है ।

“रूप के उपादान से ‘अस्मि’ होता है, उसके अनुपादान से नहीं । वेदना के । सज्ञा के । सस्कार के । विज्ञान के उपादान से ‘अस्मि’ होता है, उसके अनुपादान से नहीं ।

“आवुस आनन्द ! जैसे कोई स्त्री, पुरुष, लड़का या युवक अपने को सज-धज कर दर्पण या परिशुद्ध निर्मल जलपात्र में अपने चेहरे को देखते हुए उपादान के साथ देखे, अनुपादान के साथ नहीं । आवुस आनन्द ! इसी तरह रूप के उपादान से ‘अस्मि’ होता है, उसके अनुपादान से नहीं । वेदना । सज्ञा । सस्कार । विज्ञान के उपादान से ‘अस्मि’ होता है, उसके अनुपादान से नहीं ।

“आवुस आनन्द ! तो तुम क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

आवुस ! अनित्य है ।

“वेदना , सज्ञा , सस्कार , विज्ञान ।

आवुस ! अनित्य है ।

“इसलिये , यह जान और देख कर पुनर्जन्म में नहीं पड़ता है ।”

आवुस ! आयुष्मान् मन्तानिपुत्र पूर्ण हम नये भिक्षुओं के वड़े उपकार करने वाले हैं । वे हमें ऐसा उपदेश देते हैं । उनके इस धर्मोपदेश को सुन मैं स्तोतापन्न हो गया ।

§ २. तिस्स सुत्त (२१. २. ४ २)

राग-रहित को शोक नहीं

श्रावस्ती जेतवन ।

उस समय भगवान् के घेरे भाई आयुष्मान् तिप्प कूट भिक्षुओं के बीच ऐसा कह रहे थे—आवुस ! मुझे कुछ उत्साह नहीं हो रहा है, मुझे दिशायें भी नहीं दीख रही हैं, धर्म भी मुझे नहीं ख्याल

हा रहा है; मरे चित्त में बड़ा आकाश हो रहा है; बेसन से मैं मधुसूदन का पावन कर रहा हूँ; धर्म में मुझे विश्विक्रिया उत्पन्न हो रही है।

तब कुछ मित्रु वहाँ भगवान् पे बहों जाये और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ उन मित्रुओं ने भगवान् से कहा “मन्ते ! भगवान् के चबरे साहू आयुष्मान् तिप्प कुछ मित्रुओं के बीच ऐसा कह रहे थे— धर्म में मुझे विश्विक्रिया उत्पन्न हो रही है।”

तब भगवान् ने किसी मित्रु को आमन्त्रित किया ‘मित्रु ! तुमो मेरी ओर से आकर तिप्प मित्रु को कहो—अमुस तिप्प ! आपको कुछ बुझा रहे हैं।”

‘मन्ते बहुत भयङ्ग’ कह बह मित्रु भगवान् को उत्तर दे वहाँ आयुष्मान् तिप्प पे बहों गया भार वोका—आमुस तिप्प ! कुछ आपको बुझा रहे हैं।

अमुस ! बहुत भयङ्ग” कह आयुष्मान् तिप्प उस मित्रु को उत्तर दे वहाँ भगवान् पे वहाँ आया और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् तिप्प से भगवान् बोले “तिप्प ! क्या तुमने सबमुच कुछ मित्रुओं के बीच ऐसा कहा है— धर्म में मुझे विश्विक्रिया उत्पन्न हो रही है ?

मन्ते ! हाँ।

तिप्प ! तो तुम क्या समझते हो जिस रूप के प्रति राग = छन्द = प्रेम = पिपासा = परिच्छा = लूना वगे हैं उसे उस रूप के विपरिणत तथा भयङ्ग हो जाने से क्या शोक रोना पीडना दुःख दीर्घमन्य और उपावास (अपरेक्षा) नहीं होते हैं ?

हाँ मन्ते ! होते हैं।

शोक है तिप्प ! ऐसी ही बात है। रूप के प्रति ; वन्दन के प्रति ; सत्ता के प्रति ; मरकरा के प्रति ; रागादि ने शोक परिवेश उत्पन्न होते हैं ?

हाँ मन्ते !

शोक है तिप्प ! ऐसी ही बात है। विज्ञान के प्रति जिसमें राग = छन्द = प्रेम = पिपासा = परिच्छा = लूना वगे हैं उसे उस विज्ञान के विपरिणत तथा भयङ्ग हो जाने से शोक रोना पीडना दुःख दीर्घमन्य और उपावास होते हैं ?

हाँ मन्ते !

तिप्प ! तो क्या समझते हो जिस रूप के प्रति सभी रागादि नष्ट हो गये हैं उसे उस रूप के विपरिणत तथा भयङ्ग हो जाने से शोकादि होगे ?

नहीं मन्ते !

शोक है तिप्प ! ऐसी ही बात है। जिस रूप के प्रति ; वन्दन के प्रति ; सत्ता के प्रति ; मरकरा के प्रति ; विज्ञान के प्रति सभी रागादि नष्ट हो गये हैं उन्हें उन विज्ञान के विपरिणत तथा भयङ्ग हो जाने से शोकादि नहीं होंगे।

तिप्प ! तो तुम क्या समझते हो सब तिप्प है का अनित्य ?

अनित्य मन्ते !

वन्दन ; सत्ता ; मरकरा ; विज्ञान ?

अनित्य मन्ते !

द्वान्तिव । यह जगत् भार देन लेने में भी दुःखपूर्ण नहीं होता है।

तिप्प ! उसे ही दुःख है। एक दुःख मार्ग कृपाल ही और कृपाल नहीं। तब वह मनुष्य जो मार्गकृपाल नहीं है वह मार्गकृपाल मनुष्य ने मार्ग चूरी। वह कैसा बड़े—ही दुःख ! यह मार्ग है। इस बार कुछ दूर नहीं। कुछ दूर अच्छा तुम सब दीर्घमन्य दीर्घमन्य। वहाँ कैसे की चीज दीर्घमन्य व। वन्दन।

उस रास्ते पर भी कुछ दूर जाओ । कुछ दूर जाकर तुम्हें एक घना जंगल मिलेगा । उस पर भी कुछ दूर जाओ । कुछ दूर जाकर तुम्हें एक नीचा गड्ढा मिलेगा । उस पर भी कुछ दूर जाओ । कुछ दूर जाकर तुम्हें एक खाई और प्रपात मिलेगा । उस पर भी कुछ दूर जाओ । कुछ दूर जाकर तुम एक समतल रमणीय प्रदेश में पहुँचोगे ।

तिष्य । बात को समझाने के लिये मैंने यह उपमा कही है । उसका मतलब यह है । तिष्य । यहाँ मार्ग में अकुशल मनुष्य में पृथक्जन समझना चाहिये, और मार्ग में कुशल मनुष्य से अर्हत् सम्यक् समुद्ध तथागत को ।

तिष्य । दो रास्ता विचित्रित्सा का द्योतक है, बायाँ रास्ता अष्टाङ्गिक मिथ्यामार्ग का, दाहिना रास्ता आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का—जैसे सम्यक् दृष्टि सम्यक् समाधि ।

घना जंगल अविद्या का द्योतक है । बड़ा नीचा गड्ढा कामों का, खाई और प्रपात क्रोध तथा उपायास का, और समतल रमणीय प्रदेश निर्वाण का द्योतक है ।

तिष्य । इसे समझ कर श्रद्धा से रहो, मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ ।

भगवान् यह बोले । सतुष्ट हो आयुष्मान् तिष्य ने भगवान् के कहे का अभिनन्दन किया ।

§ ३. यमक सुत्त (२१. २ ४ ३)

मृत्यु के बाद अर्हत् क्या होता है ?

एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे ।

उस समय यमक नामक भिक्षुको इस प्रकार की पापयुक्त मिथ्या धारणा हो गई थी—मैं भगवान् के बताये धर्म को इस प्रकार जानता हूँ कि क्षीणाश्रव भिक्षु शरीर के गिर जाने पर (=मृत्यु के बाद) उच्छिन्न हो जाते हैं, विनष्ट हो जाते हैं, मरने के बाद वे नहीं रहते हैं ।

कुछ भिक्षुओं ने यमक भिक्षु की यह पापयुक्त मिथ्या धारणा को सुना । तब, वे भिक्षु जहाँ आयुष्मान् यमक थे वहाँ गये, और कुशल-क्षेम पूछने के बाद एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने आयुष्मान् यमक को कहा, 'आवुस यमक । क्या सचमुच मैं आप को ऐसी पापमय मिथ्या-धारणा उत्पन्न हुई है ?'

आवुस । मैं भगवान् के बताये धर्म को इसी प्रकार जानता हूँ कि क्षीणाश्रव भिक्षु शरीर के गिर जाने पर उच्छिन्न हो जाते हैं, विनष्ट हो जाते हैं, मरने के बाद वे नहीं रहते हैं ।

आवुस यमक । ऐसा मत कहें । भगवान् पर झूठी बात मत बाँटें । यह अच्छा नहीं है । भगवान् ऐसा नहीं कह सकते हैं कि, क्षीणाश्रव भिक्षु शरीर के गिर जाने पर उच्छिन्न हो जाते हैं, विनष्ट हो जाते हैं, मरने के बाद वे नहीं रहते हैं ।'

उन भिक्षुओं से ऐसा कहे जाने पर भी आयुष्मान् यमक अपने आग्रह को पकड़े कहने लगे, "आवुस । मैं भगवान् के बताये धर्म को इस प्रकार जानता हूँ ।"

जब वे भिक्षु आयुष्मान् यमक को इस पापमय मिथ्या धारणा से नहीं अलग कर सके, तब आसन से उठ जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ चले गये । जाकर आयुष्मान् सारिपुत्र से बोले, "आवुस सारिपुत्र । यमक भिक्षु को ऐसी पापमय मिथ्या धारणा हो गई है । अच्छा होता यदि आप कृपा करके जहाँ आयुष्मान् यमक हैं वहाँ चलते ।

आयुष्मान् सारिपुत्र ने चुप रह कर स्वीकार कर लिया ।

तब आयुष्मान् सारिपुत्र ने संन्या समय ध्यान से उठ जहाँ आयुष्मान् यमक थे वहाँ गये, और

हा रहा है, मेरी निष्ठा में क्या जाहिर हो रहा है, बेमन से मैं मन्त्रार्थ का पाठन कर रहा हूँ। धर्म में मुझ विधिक्रिया उत्पन्न हो रही है।

तब कुछ मित्रु वहाँ भगवान् से वहाँ जाये और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ उन मित्रुओं ने भगवान् से कहा “मन्ते ! भगवान् के लोभे माई आयुष्मान् तिप्प कुछ मित्रुओं के बीच ऐसा कह रहे थे— धर्म में मुझ विधिक्रिया उत्पन्न हो रही है।”

तब भगवान् ने किसी मित्रु को आमन्त्रित किया मित्रु ! तुम मेरी धार से जाकर तिप्प मित्रु को कहो—मन्ते तिप्प ! जापको बुझ बुझा रहे हैं।

‘मन्ते बहुत मन्त्र कह वह मित्रु भगवान् को उठर दे वहाँ आयुष्मान् तिप्प से वहाँ गया और बोला—माहुस तिप्प ! बुझ आपको बुझा रहे हैं।

भन्तु ! बहुत मन्त्र कह आयुष्मान् तिप्प उस मित्रु को उठर दे वहाँ भगवान् से वहाँ आया और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् तिप्प ने भगवान् को “तिप्प ! क्या तुमने सबकुछ कुछ मित्रुओं के बीच ऐसा कहा है— धर्म में मुझे विधिक्रिया उत्पन्न हो रही है।

मन्ते ! हैं।

तिप्प ! तो तुम क्या समझते हो जिसे रूप के प्रति राग = काम = प्रेम = विपासा = परि पाह = तुम्हारे होते हैं उसे उस रूप के विपरिणत तथा अन्धका हो जाने से क्या शोक रोना पीटना दुःख होमनस्य और उपास्य (=परोक्ष) नहीं होते हैं ?

हैं मन्ते ! होते हैं।

ठीक है, तिप्प ! ऐसी ही बात है। रूप के प्रति ; भूतना के प्रति ; संज्ञा के प्रति ; संस्कार के प्रति ; रागादि से शोक परिदेव उत्पन्न होते हैं ?

हैं मन्ते !

ठीक है, तिप्प ! ऐसी ही बात है। विज्ञान के प्रति जिसे राग = काम = प्रेम = विपासा = परिपाह = तुम्हारे होते हैं उसे उस विज्ञान के विपरिणत तथा अन्धका हो जाने से शोक रोना पीटना दुःख होमनस्य और उपास्य होते ही हैं।

हैं मन्ते !

तिप्प ! तो क्या समझते हो जिसे रूप के प्रति सभी रागादि मग हो गये हैं उसे उस रूप के विपरिणत तथा अन्धका हो जाने से शोकादि होंगे ?

नहीं मन्ते !

ठीक है तिप्प ! ऐसी ही बात है। जिसे रूप के प्रति ; भूतना के प्रति ; संज्ञा के प्रति ; संस्कार के प्रति ; विज्ञान के प्रति सभी रागादि मग हो गये हैं उस उस विज्ञान के विपरिणत तथा अन्धका हो जाने से शोकादि नहीं होंगे।

तिप्प ! तो तुम क्या समझते हो रूप मित्त है वा अमित्त ?

अमित्त मन्ते !

भूतना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान ?

अमित्त मन्ते !

इत्यदि यह बात और देव केने से भी पुनर्जन्म नहीं होता है।

तिप्प ! जैसे ही पुण्य हो। एक पुण्य मार्ग-कुण्डल हो और दूसरा नहीं। तब वह मनुष्य को मार्गज्ञान नहीं है उस मार्गज्ञान मनुष्य से मार्ग गूँडे। वह ऐसा नहीं—ही पुण्य ! यह मार्ग है। इस पर कुछ बुरा नहीं। कुछ बुरा जाकर तुम एक पोराला देखोगे। वहाँ कर्मे को हीच दाहिने को बन्दगा।

मन में ऐसा हो, “.....इसके साथ सदा आरक्षक तैयार रहते हैं, इसे पटक कर जान में मार देना सहज नहीं है। तो क्या न मैं चाल से भीतर पैठ कर अपना काम निकालूँ।” वह उस गृहपति या गृहपति-पुत्र के पास जा कर ऐसा कहे—देव ! मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ। तब, उसे वह अपनी सेवा में नियुक्त कर ले। वह सेवा करे, स्वामी के उठने के पहले ही उठ जाय, स्वामी के सोने के बाद सोये, आज्ञा सुनने में सदा तत्पर रहे, मनोहर आचार-विचार का ब्रतके रहे, और बड़ा प्रिय बोले। वह गृहपति या गृहपति-पुत्र उसे अपना अन्तरंग मित्र समझ कर उसमें बड़ा विश्वास करने लगे। जब उस मनुष्य को यह मालूम हो जाय कि मैंने इस गृहपति या गृहपति-पुत्र के विश्वास को जीत लिया है, तब कही एकान्त में उसे अकेला पा कर तेज तलवार से जान से मार दे।

आवुस यमक ! तो आप क्या समझते हैं—जब उस मनुष्य ने उस गृहपति या गृहपति-पुत्र से कहा था—देव ! मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ—उस समय भी वह उसका वधक ही था। वधक होते हुये भी उसने नहीं पहचाना कि यह मेरा वधक है।

जब वह सेवा कर रहा था, स्वामी के उठने के पहले ही उठ जाया करता था, स्वामी के सोने के बाद सोता था, आज्ञा सुनने में सदा तत्पर रहता था, मनोहर आचार-विचार वाला होके रहता था, और बड़ा प्रिय बोलता था, उस समय भी वह वधक ही था। वधक होते हुए भी उसने नहीं पहचाना कि यह मेरा वधक है।

जब उसने एकान्त में उसे अकेला पा जान से मार दिया, उस समय भी वह वधक ही था। वधक होते हुये भी उसने नहीं पहचाना कि यह मेरा वधक है।

आवुस ! ठीक है।

आवुस ! इसी तरह, अज्ञ पृथक्जन रूप को आत्मा करके जानता है, या आत्मा को रूप वाला, या आत्मा में रूप, या रूप में आत्मा, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान। वह अनित्य रूप को अनित्य रूप के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है, अनित्य वेदना को अनित्य वेदना के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है, अनित्य संज्ञा को, अनित्य संस्कार को, अनित्य विज्ञान को। वह दुःख रूप को दुःख रूप के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है, दुःख वेदना को, दुःख संज्ञा को, दुःख संस्कार को, दुःख विज्ञान को। वह अनात्म रूप को अनात्म रूप के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है, अनात्म वेदना को, अनात्म संज्ञा को, अनात्म संस्कार को, अनात्म विज्ञान को। संस्कृत रूप को संस्कृत रूप के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है। वधक रूप को वधक के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है।

वह रूप को प्राप्त होता है, रूप का उपादान करता है, और समझता है कि रूप मेरा आत्मा है। वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान। पंच-उपादान स्कन्ध को प्राप्त हो, उनका उपादान कर उसे दीर्घकाल तक अपना अहित और दुःख होता है।

आवुस ! ज्ञानी आर्यश्रावक रूप को आत्मा करके नहीं जानता है, न आत्मा को रूप वाला, न आत्मा में रूप, न रूप में आत्मा, न वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान।

वह अनित्य रूप को अनित्य रूप के तौर पर यथार्थत जानता है। अनित्य वेदना को अनित्य वेदना को। अनित्य संस्कार को अनित्य संस्कार को। अनित्य विज्ञान को अनित्य विज्ञान को।

वह दुःख रूप को दुःख रूप के तौर पर यथार्थत जानता है।

वह अनात्म रूप को अनात्म रूप के तौर पर यथार्थत जानता है।

वह संस्कृत रूप को संस्कृत रूप के तौर पर यथार्थत जानता है।

वह वधक रूप को वधक रूप के तौर पर यथार्थत जानता है।

वह रूप को नहीं प्राप्त होता है, रूप का उपादान नहीं करता है, न ऐसा समझता है कि रूप

कुसल-श्रेय पूर कर पड़ भोर बैठ गय । एक भोर बैठ अचुप्प न मारियुन अचुप्पान पमक से बोळ
‘आबुम ! क्या मय में जपको ऐसी पापमय मिच्छा पारजा हा गई है ?

अबुम ! मैं भगवान के बताये धर्म को इसी प्रकार जानता हूँ ।

आबुम पमक ! तो क्या समझते हैं रूप मिथ है या अनय ?

अबुम ! अनिय है ।

बद्धता , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान !

अबुम ! अनिय है ।

इसलिय यह जन कर बुन कर पुनर्जन्म में नहीं पड़ता ।

अबुम पमक ! तो क्या समझते हैं जो यह रूप है वही जीव (= तपगत) है ?

नहीं अबुम !

बद्धता , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान है वही जीव है !

नहीं अबुम !

अबुम पमक ! तो क्या समझते हैं रूप में जीव है ?

नहीं अबुम !

ता क्या जीव रूप स मित्र कहीं है ?

नहीं अबुम !

बद्धता , बद्धता से मित्र ?

संज्ञा , संज्ञा से मित्र ?

संस्कार , संस्कार से मित्र !

विज्ञान , विज्ञान से मित्र !

नहीं अबुम !

आबुम पमक ! ता क्या समझते हैं रूप बद्धता-संज्ञा-संस्कार और विज्ञान जीव है ?

नहीं अबुम !

अबुम पमक ! तो क्या समझते हैं जीव कोई रूप-रहित बद्धता-रहित संज्ञा-रहित संस्कार-रहित और विज्ञान-रहित है ?

नहीं अबुम !

अबुम पमक ! जब पदार्थ में सारवतः काई जीव उपलब्ध नहीं होता है ता क्या आपका ऐसा कहना ठीक है “मगज्जं क वताप धर्म का मं हूम प्रकार जानता हूँ कि क्षीणमय भिक्षु शरीर के गिर जान कर उपिच्छ हा जत है विनष्ट हा जते हैं सारे के बाव में बड़ी रहते हैं” ?

अबुम मारियुन ! मुझ सुने का ठीक में पापमय मिच्छा पारजा हा गई थी किन्तु आपके इस भर्त्सना का मुझ मीरा बड़ मिच्छा पारजा मिद गई और धर्म में समझ में आ गया ।

अबुम पमक ! यदि आपका काई उपाय पुण—हे मित्र पमक क्षीणमय अर्हन् भिक्षु मरण के बाद क्या होता है ?—ता आप क्या उत्तर देंगे ?

अबुम मारियुन ! यदि मुझे कोई जग पड़ेगा तो मैं बड़ उत्तर दूँगा—मित्र रूप अनिय है । आ न नय है बड़ दुःख है । आ दुःख है बड़ विपद् न अण्ड हा गया । बद्धता , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

अबुम पमक ! आपने ठीक कहा । मैं बड़ उपाय देता हूँ शिगमें बाण और भी शाक हो ज-बर्गी ।

अबुम पमक ! मैं काई गृहपति या गृहपति पुत्र महाधनी वैभवशास्त्री हा जियाके शाक गया अण्डक गिर रहते हा । नय उपाय का कोई पाप कम जय आ जमे जय न मार शाकनः बड़े । उनके

मन में ऐसा हो, “... इसके साथ सदा आरक्षक तैयार रहने हैं, इसे पटक कर जान से मार देना सहज नहीं है। तो क्यों न मैं चाल से भीतर पंठ कर अपना काम निकालूँ।” वह उस गृहपति या गृहपति-पुत्र के पाग जा कर ऐसा कहे—देव ! मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ। तब, उसे वह अपनी सेवा में नियुक्त कर ले। वह सेवा करे, स्वामी के उठने के पहले ही उठ जाय, स्वामी के सोने के बाद सोये, आज्ञा सुनने में सदा तत्पर रहे, मनोहर आचार-विचार का धनके रहे, और बड़ा प्रिय बोले। वह गृहपति या गृहपति-पुत्र उसे अपना अन्तरंग मित्र समझ कर उसमें बड़ा विश्वास करने लगे। जब उस मनुष्य को यह मालूम हो जाय कि मैंने इस गृहपति या गृहपति-पुत्र के विश्वास को जीत लिया है, तब कहीं एकान्त में उगे अकेला पा कर तेज तलवार से जान से मार दे।

आबुस यमक ! तो आप क्या समझते हैं—जब उस मनुष्य ने उस गृहपति या गृहपति-पुत्र से कहा था—देव ! मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ—उस समय भी वह उसका वधक ही था। वधक होते हुये भी उसने नहीं पहचाना कि यह मेरा वधक है।

जब वह सेवा कर रहा था, स्वामी के उठने के पहले ही उठ जाया करता था, स्वामी के सोने के बाद सोता था, आज्ञा सुनने में सदा तत्पर रहता था, मनोहर आचार-विचार वाला होके रहता था, और बड़ा प्रिय बोलता था, उस समय भी वह वधक ही था। वधक होते हुए भी उसने नहीं पहचाना कि यह मेरा वधक है।

जब उसने एकान्त में उसे अकेला पा जान से मार दिया, उस समय भी वह वधक ही था। वधक होते हुये भी उसने नहीं पहचाना कि यह मेरा वधक है।

आबुस ! ठीक है।

आबुस ! इसी तरह, अज्ञ पृथक्जन रूप को आत्मा करके जानता है, या आत्मा को रूप वाला, या आत्मा में रूप, या रूप में आत्मा, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान। वह अनित्य रूप को अनित्य रूप के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है, अनित्य वेदना को अनित्य वेदना के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है, अनित्य संज्ञा को, अनित्य संस्कार को, अनित्य विज्ञान को। वह दुःख रूप को दुःख रूप के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है, दुःख वेदना को, दुःख संज्ञा को, दुःख संस्कार को, दुःख विज्ञान को। वह अनात्म रूप को अनात्म रूप के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है, अनात्म वेदना को, अनात्म संज्ञा को, अनात्म संस्कार को, अनात्म विज्ञान को। संस्कृत रूप को संस्कृत रूप के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है। वधक रूप को वधक के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है।

वह रूप को प्राप्त होता है, रूप का उपादान करता है, और समझता है कि रूप मेरा आत्मा है। वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान। पंच-उपादान स्कन्ध को प्राप्त हो, उनका उपादान कर उसे दीर्घकाल तक अपना अहित और दुःख होता है।

आबुस ! ज्ञानी आर्यश्रावक रूप को आत्मा करके नहीं जानता है, न आत्मा को रूप वाला, न आत्मा में रूप, न रूप में आत्मा, न वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान।

वह अनित्य रूप को अनित्य रूप के तौर पर यथार्थत जानता है। अनित्य वेदना को। अनित्य संज्ञा को। अनित्य संस्कार को। अनित्य विज्ञान को।

वह दुःख रूप को दुःख रूप के तौर पर यथार्थत जानता है।

वह अनात्म रूप को अनात्म रूप के तौर पर यथार्थत जानता है।

वह संस्कृत रूप को संस्कृत रूप के तौर पर यथार्थत जानता है।

वह वधक रूप को वधक रूप के तौर पर यथार्थत जानता है।

वह रूप को नहीं प्राप्त होता है, रूप का उपादान नहीं करता है, न ऐसा समझता है कि रूप

मेरा आत्मा है। बेचना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान । न ऐसा समझता है कि बिना मेरा आत्मा है। उपादान स्वप्नों को न प्राप्त हो उसका उपादान न करते हुए उसे शीर्षकात् तक अपना हित भोग मुक्त होता है।

अबुध सारिपुत्र ! वे ऐसा ही होते हैं जिन आधुप्यानों के जैसे कल्याणीक परमार्थों और उपदेश देने वाले गुरु-भ्रातृ होते हैं। यह आधुप्यान् सारिपुत्र के प्रतीपदेश को मुन मेरा चित्त उपादान-रहित हो अभवा से मुक्त हो गया।

आधुप्यान् सारिपुत्र वह बाके। संतुष्ट हो आधुप्यान् बमक ने आधुप्यान् सारिपुत्र के कहे का अभिमान किया।

४ ४ अनुराध मुत्त (२१ २ ४ ४)

शुश्रूष का निरोध

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् वैशाखी में महाघन की कूटागारशाळा में बिहार करते थे।

उन समय आधुप्यान् अनुराध भगवान् के पास ही आरम्भ में कुटी बनाकर बिहार करते थे।

तब कुछ तैयिक परित्रजक वहाँ आधुप्यान् अनुराध से वहाँ जाये और कुसक-शेन पूछ कर एक बार बैठ गये। एक और बड़ उन तैयिक परित्रजकों ने आधुप्यन् अनुराध को कहा—अबुध ! जो तथागत उत्तम पुरुष = परमपुरुष परम मांति प्राप्त हैं वे पूछे जाने पर जीव के विषय में बार स्वार्थों में से किसी एक को बताते हैं—(१) मरने के बाद जीव रहता है (२) या मरने के बाद जीव नहीं रहता है (३) या मरने के बाद जीव रहता ही है और नहीं भी रहता है (४) या मरने के बाद जीव न रहता है और न नहीं रहता है।

उनके ऐसा कहने पर अनुराध ने उन तैयिक परित्रजक को कहा—अबुध ! हाँ तथागत बार स्वार्थों में से किसी एक को बताते हैं।

इस पर उन तैयिक परित्रजकों ने कहा—अवश्य वह कोई मत्वा जमी दूरत का बना मिश्र-वांछा या कोई भूयै वेचमस्य स्वदिर ही होगा। इस तरह वे आधुप्यान् अनुराध की अवहेलना कर आपन से उठ चले गये।

तब उन परित्रजकों के जाने के बाद ही आधुप्यान् अनुराध के मन में यह हुआ—यदि वे परित्रजक मुझे उनके आगे का प्रश्न पूछें तो मैंने किस प्रकार कहने से भगवान् के सिद्धान्त का ठीक-ठीक प्रतिपादन होगा। भगवान् पर झूठी बात का आपना नहीं होगा। जर्मामुक्त बात होगी और कोई अपने धर्म का वाक् के निरसिक्त में विविक्त स्थान को नहीं प्राप्त होगा।

तब आधुप्यान् अनुराध वहाँ भगवान् से वहाँ गये और भगवान् का अभिवादन कर एक बार बैठ गये।

एक और बड़ आधुप्यान् अनुराध भगवान् से बोले—भन्ने ! मैं भगवान् के पास ही आरम्भ में कुटी बनाकर बिहार करता था। उन परित्रजकों के जाने के बाद ही मैंने मन में यह हुआ 'यदि वे परित्रजक मुझे उनके आगे का प्रश्न पूछें तो मैंने किस प्रकार कहने से कोई अपने धर्म का वाक् के निरसिक्त में विविक्त स्थान का नहीं प्राप्त होगा।

अनुराध ! तो तुम क्या समझते हो। क्या निश्चय है वा अनिश्चय ?

अनिश्चय भन्ने।

इसविषय में तुम ज्ञान और धैर्य के से पुनर्वाच्य में नहीं पड़ता।

अनुराध ! तो तुम क्या समझते हो। क्या जीव है ?

नहीं भन्ते ।

वेदना , संज्ञा , सस्कार , विज्ञान .. ?

नहीं भन्ते ।

अनुरोध ! तो तुम क्या समझते हो, रूप में जीव है ?

नहीं भन्ते ।

क्या रूप से भिन्न कहीं जीव है ?

नहीं भन्ते ।

वेदना , संज्ञा , सस्कार , विज्ञान से भिन्न कहीं जीव है ?

नहीं भन्ते ।

अनुरोध ! तो तुम क्या समझते हो, रूप-वेदना-संज्ञा-सस्कार और विज्ञान के बिना कोई जीव है ?

नहीं भन्ते ।

अनुरोध ! तुमने स्वयं देखा लिया कि यथार्थ में मृत्युत किसी जीव की उपलब्धि नहीं होती है, तो क्या तुम्हारा ऐसा कहना ठीक था कि—“आवुस ! हाँ, जो तथागत उत्तमपुरुष = परमपुरुष परम-प्राप्ति-प्राप्त हैं वे पूरे जने पर जीव के विषय में चार स्थानों में से किसी एक को बताते हैं —(१) मरने के बाद जीव रहता है, (२) या, मरने के बाद जीव नहीं रहता है, (३) या, मरने के बाद जीव रहता भी है और नहीं भी रहता है, (४) या मरने के बाद जीव न रहता है और न नहीं रहता है ?”

नहीं भन्ते !

ठीक है अनुरोध , मैं पहले ओर अब भी दुःख और दुःख के निरोध को बता रहा हूँ ।

§ ५. वक्कलि सुत्त (२१ २. ४. ५)

जो धर्म देखता है, वह बुद्ध को देखता है, वक्कलि द्वारा आत्म-हत्या

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह में वेलुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् वक्कलि एक कुम्हार के घर में रोगी, दुःखी और बड़े बीमार पड़े थे ।

तब, आयुष्मान् वक्कलि ने अपने टहल करनेवालों को आमन्त्रित किया, “आवुस ! सुनो, जहाँ भगवान् हैं वहाँ जाओ, और मेरी ओर से भगवान् के चरणों पर शिर से प्रणाम करें, और कहें—भन्ते ! वक्कलि भिक्षु रोगी, दुःखी और बड़े बीमार हैं, वे आपके चरणों पर शिर से प्रणाम करते हैं । और ऐसी प्रार्थना करें—भन्ते ! यदि भगवान् जहाँ वक्कलि भिक्षु हैं वहाँ चलते तो बड़ी कृपा होती ।”

“आवुस ! बहुत अच्छा” कह कर वे भिक्षु आयुष्मान् वक्कलि को उत्तर दे जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा, “भन्ते ! वक्कलि भिक्षु रोगी , वहाँ चलते तो बड़ी कृपा होती ।”

भगवान् ने चुप रहकर स्वीकार कर लिया ।

तब, भगवान् पहन और पात्र-चीवर ले जहाँ आयुष्मान् वक्कलि थे वहाँ आये ।

आयुष्मान् वक्कलि ने भगवान् को दूर ही से आते देखा, देखकर खाद ठीक करने लगे ।

तब, भगवान् आयुष्मान् वक्कलि से बोले, “वक्कलि ! रहने दो, खाद ठीक मत करो, ये आमन धिड़े हैं, मैं इन पर बैठ जाऊँगा ।” भगवान् धिड़े आसन पर बैठ गये । बैठकर, भगवान् वक्कलि भिक्षु से बोले, “वक्कलि ! कहो, तथीयत कैसी है, बीमारी घट तो रही है ?”

भन्ते ! मेरी तथीयत अच्छी नहीं है, बड़ी पीडा हो रही है, बीमारी बढ़ती ही मालूम होती है ।

बलकि ! तुम्हें कोई मकसद या पछावा हो नहीं रह गया है ?

मन्ते ! मुझे बहुत मकसद और पछावा हो रहा है !

क्या तुम्हें सीक नहीं पाकन करने का पञ्चात्ताप है ?

नहीं मन्ते ! मुझे यह पञ्चात्ताप नहीं है ।

बलकि ! जब तुम्हें सीक नहीं पाकन करने का पञ्चात्ताप नहीं है तो तुम्हें किस बात का मकसद और पछावा हो रहा है ?

मन्ते ! बहुत दिनों से भगवान् के दर्शन करने को आने की इच्छा थी किन्तु शरीर में इतना बल ही नहीं था कि आ सकेता ।

बलकि ! जहाँ इस गम्भीरी से मेरे शरीर के दर्शन से क्या होगा ! बलकि ! जो धर्म को देखता है वह मुझे देखता है जो मुझे देखता है वह धर्म को देखता है ।

बलकि ! तो तुम क्या समझते हो क्या नित्य है या अनित्य ?

अनित्य मन्ते !

वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ?

अनित्य मन्ते !

इसीलिये यह आत्मा और देवदत्त पुनर्जन्म में नहीं पड़ता है ।

तब भगवान् आशुप्मान् बलकि को इस तरह उपदेश दे आसन से उठ उहाँ गुरुकुल पर्वत है वहाँ चले गये ।

तब भगवान् के चले जाने के बाद ही आशुप्मान् बलकि ने अपने दृष्ट करमेवालों को आमन्त्रित किया आशुप्त । तुम्हें मुझे बाद पर क्या वहाँ अपिगिस्ति शिखा है वहाँ छ चले । तुम जैसे का घर के भीतर सरवा अच्छा नहीं लगता है ।

“आशुप्त ! बहुत अच्छा कद ने आशुप्मान् बलकि को उत्तर दे उन्हें बाद पर क्या वहाँ अपिगिस्ति शिखा है वहाँ छे गये ।

तब भगवान् उस रात को और दिन के अवसेप तक गुरुकुल पर्वत पर बिहार करत रहे ।

तब रात बीतने पर ही अत्यन्त सुन्दर देवता अपनी चमक से सारे गुरुकुल पर्वत को चमकाते हुये वहाँ भगवान् के वहाँ आये और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर चले हो गये । एक ओर चले ही एक देवता भगवान् से बोला “मन्ते ! बलकि मिश्र विमोक्ष में चित्त लगा रहा है ।” दूसरा देवता भगवान् से बोला “मन्ते ! बलकि मिश्र अवश्य विमुक्त हो निर्वाण को प्राप्त होगा । इतना कद ने देवता भगवान् को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर वहाँ अन्तर्धान हो गये ।

तब उस रात के बीच जागे पर भगवान् ने मिश्रियों को आमन्त्रित किया “मिश्रियों ! तुमने वहाँ बलकि मिश्र है वहाँ आओ और उपदेश लो—आशुप्त बलकि ! भगवान् ने और जो दो देवताओं ने कहा है उसे तुमने ।

एक ओर चले हो एक देवता भगवान् से बोला “मन्ते ! बलकि मिश्र विमोक्ष में चित्त लगा रहा है । दूसरा देवता । आशुप्त बलकि ! और भगवान् आपसे कहते हैं—बलकि ! मत डरो मत डरो तुम्हारी धृष्टि निष्पाप होगी ।

“मन्ते ! बहुत अच्छा” कद ने मिश्र भगवान् को उत्तर दे वहाँ आशुप्मान् बलकि के वहाँ गये । बादर आशुप्मान् बलकि से बोले—आशुप्त बलकि ! तुमने भगवान् ने और दो देवताओं ने क्या कहा है ।

तब आशुप्मान् बलकि ने अपने दृष्ट करमेवालों को आमन्त्रित किया आशुप्त । तुम्हें मुझे बलक कर बाद ने बीचे उतार दें । तुम जैसे को हम जैसे आसन पर बैठ भगवान् का उपदेश सुनना अच्छा नहीं ।

‘आयुस ! बहुत अच्छा’ कह, उन भिक्षुओं ने आयुष्मान् वक्कलि को उत्तर दे, उन्हें पकड़ कर ग्याट में उतार दिया ।

आयुस ! आज की रात को अद्यन्त सुन्दर देवता । आयुस ! आर भगवान् भी आपमें कहते हैं—वक्कलि ! मन उगे, मन उगे, तुम्हारी मृत्यु निश्चय होगी।

आयुस ! तब, आप लोग मेरी ओर से भगवान् के चरणों पर प्रणाम करें—भन्ते ! वक्कलि भिक्षु रोगी, पीड़ित और बहुत बीमार है, यों वा भगवान् के चरणों पर शिर से प्रणाम करता है और कहता है, “भन्ते ! रूप अनित्य है, मैं उसकी आकाक्षा नहीं करता । जो अनित्य है वह दुःख है, इसमें मुझे सन्देह नहीं । जो अनित्य, दुःख, और परिवर्तनशील है उसके प्रति मुझे छन्द=राग=प्रेम नहीं, इसमें मुझे कुछ सन्देह नहीं ।

वेदना ; सज्जा , संस्कार , विज्ञान अनित्य ।”

“आयुस ! बहुत अच्छा” कह, वे भिक्षु आयुष्मान् वक्कलि को उत्तर दे चले गये ।

तब, उन भिक्षुओं के जाने के बाद ही आयुष्मान् वक्कलि ने आत्म-हत्या कर ली ।

तब, वे भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा, “भन्ते ! वक्कलि भिक्षु रोगी, पीड़ित और बहुत बीमार है, यों भगवान् के चरणों पर शिर से प्रणाम करता है और कहता है—भन्ते रूप अनित्य है मैं उसकी आकाक्षा नहीं करता । जो अनित्य है वह दुःख है, इसमें मुझे सन्देह नहीं । जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है उसके प्रति मुझे छन्द=राग=प्रेम नहीं है, इसमें मुझे कुछ सन्देह नहीं । वेदना , सज्जा संस्कार , विज्ञान ।

तब, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, ‘भिक्षुओ ! चलो, जहाँ ऋषिगिरि शिला है वहाँ चल चले, जहाँ वक्कलि कुलपुत्र ने आत्म-हत्या करली है ।’

“भन्ते ! बहुत अच्छा” कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

तब, कुछ भिक्षुओं के साथ भगवान् जहाँ ऋषिगिरि शिला है वहाँ गये । भगवान् ने आयुष्मान् वक्कलि को दूर ही से ग्याट पर गला कटे सोये देखा । उस समय, कुछ धुँवाती हुई छाया के समान पूरव की ओर उड़ रही थी, पच्छिम की ओर उड़ रही थी, ऊपर की ओर उड़ रही थी, नीचे की ओर उड़ रही थी, सभी ओर उड़ रही थी ।

तब, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, “भिक्षुओ ! इस कुछ धुँवाती हुई छाया के समान पूरव की ओर उड़ रही है इसे देखते हो न ?”

भन्ते ! हाँ ।

भिक्षुओ ! यह पापी मार है, जो कुलपुत्र वक्कलि के विज्ञान को खोज रहा है—वक्कलि कुलपुत्र का विज्ञान कहाँ लगा है ।

भिक्षुओ ! वक्कलि कुलपुत्र का विज्ञान कहीं नहीं लगा है । उसने तो परिनिर्वाण पा लिया ।

§ ६ अस्सजि सुत्त (२१ २. ४ ६)

वेदनाओं के प्रति आसक्ति नहीं रहती

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् अस्सजि काश्यपकाराम में रोगी, पीड़ित और बहुत बीमार थे ।

तब, आयुष्मान् अस्सजि ने अपने दहल करने वालों को आमन्त्रित किया, “आयुस ! आप जहाँ भगवान् हैं वहाँ जायें, और मेरी ओर से भगव के चरणों पर शिर से प्रणाम करें—भन्ते ! अस्सजि भिक्षु रोगी

पंडित और बहुत बीमार हैं। सो भगवान् के घरणों पर गिर से प्रणाम करते हैं। भार कहें—भन्ते ! यदि रुपा कर वहाँ भस्त्रि मित्रु हैं वहाँ जल्ते तो बड़ी अच्छी बात होती।

“आहुत ! बहुत अच्छा” कह के मित्रु आहुप्मान् भस्त्रि को उठर दे वहाँ भगवान् के वहाँ जाये और भगवान् का अभिवादन कर एक और बैठ गये। एक और बैठ उन मित्रुओं ने भगवान् को कहा भन्ते ! भस्त्रि मित्रु रागी । वहाँ जल्ते तो बड़ी अच्छी बात होती।

भगवान् ने चुप रह कर स्वीकार कर लिया।

तब भगवान् सँभवा समझ प्मान से उठ वहाँ आहुप्मान् भस्त्रि के वहाँ गये।

अहुप्मान् भस्त्रि ने भगवान् को दूर ही सँभते देखा देखा कर छाट ठीक करने लगे।

तब भगवान् आहुप्मान् भस्त्रि से बोले रहने दो भस्त्रि ! छाट ठीक मत करो। ये भामन बिटे हैं मैं इस पर बैठ जाऊँगा।

भगवान् बिटे घासत पर बैठ गये और आहुप्मान् भस्त्रि से बोले ‘भस्त्रि ! कहीं तबान्त कपी है ?’

भन्ते ! मेरी तबीयत अच्छी नहीं है।

भस्त्रि ! तुम्हें कोई मछल या पक्ष या तो नहीं रह गया है ?

भन्ते ! हमें तो बहुत बड़ा मछल रह गया है।

भस्त्रि ! कहीं तुम्हें शीक न पाकन करने का पक्षात्पा ता नहीं रह गया है ?

भन्ते ! नहीं मुझ शीक न पाकन करने का पक्षात्पा नहीं रह गया है।

भस्त्रि ! यदि तुम्हें शीक न पाकन करने का पक्षात्पा नहीं रह गया है तो किस बात का मछल या पक्षात्पा है ?

भन्ते ! इस रोग के पक्ष मैं अपने आवास-अधाम पर प्यास लगान का अन्ध रा किया करता था सो मुझे उस समाधि का काम नहीं हुआ। अता भरे मन में यह बात आई—कहीं मैं सासन से गिर ता नहीं जाऊँगा ?

भस्त्रि ! जिस अन्ध आर सासन का पक्ष मत है कि समाधि ही असल चीज है (स्विसके बिना मुक्ति नहीं हो सकती है) ने मने ही ऐसा समझते हैं कि समाधि के बिना कहीं मैं मुक्त न हो पाऊँ।

भस्त्रि ! ता क्या समझते हो क्या लिख है या अलिख ?

अलिख भन्ते !

वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ?

अलिख भन्ते !

दुर्गति, वह ज्ञान और वेद पुनर्जन्म में नहीं पड़ता है।

यदि उसे पुनर् वेदना होती है तो जानता है कि वह वेदना अलिख है। वह जानता है कि इसमें ज्ञाना नहीं चाहिए। वह जानता है कि इसका अभिगन्ध नहीं करना चाहिए। यदि उसे पुनर् वेदना होती है तो जानता है कि वह वेदना अलिख है। वह जानता है कि इसमें ज्ञाना नहीं चाहिए। वह जानता है कि इसका अभिगन्ध नहीं करना चाहिए। यदि उसे न पुनर् न पुनर् वाली वेदना होती है।

यदि उस पुनर् वेदना होती है तो वह अज्ञान हो उसे अनुभव करता है। यदि उसे पुनर्... यदि उस न पुनर् न पुनर् वाली वेदना।

वह आकाश वेदना का अनुभव करने जानता है कि वह आकाश वेदना है। जीवितपक्ष

वेदना का अनुभव करते जागता है कि यह जीवितपर्यन्त वेदना है। देह छूटने, मरने के पहले, यहीं सभी वेदनायें ठंडी हो जायँगी और उनके प्रति कोई आसक्ति नहीं रहेगी।

अस्सजि ! जैसे तेरु और वत्ती के प्रत्यय से प्रदीप जलता है, तथा उसी तेरु और वत्ती के न होने से प्रदीप बुझ जाता है, वैसे ही भिक्षु कायपर्यन्त वेदना का अनुभव करते जानता है कि कायपर्यन्त वेदना का अनुभव कर रहा हूँ, जीवितपर्यन्त, वेह छूटने तथा मरने के पहले यहीं सभी वेदनायें ठंडी हो जायँगी और उनके प्रति कोई आसक्ति नहीं रहेगी।

§ ७. खेमक सुत्त (२१ २. ४. ७)

उदय-व्यय के मनन से मुक्ति

एक समय कुछ स्थविर भिक्षु कौशाभ्यो के घोषिताराम में विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् खेमक वदरिकाराम में रोगी, पीडित और बीमार थे।

तब, संध्या समय ध्यान से उठ उन स्थविर भिक्षुओं ने आयुष्मान् दासक को आमन्त्रित किया, “आवुस दासक ! सुनें, जहाँ खेमक भिक्षु हैं वहाँ जाय और उनसे कहें—आवुस ! स्थविर भिक्षुओं ने पूछा है कि आपकी तबीयत कैसी है ?”

“आवुस ! बहुत अच्छा” कह, दासक भिक्षु उन स्थविर भिक्षुओं को उत्तर दे जहाँ खेमक भिक्षु थे वहाँ आये, और बोले—अबुस खेमक ! स्थविर भिक्षुओं ने पूछा है कि आपकी तबीयत कैसी है ?

आवुस ! मेरी तबीयत अच्छी नहीं है।

तब, आयुष्मान् दासक जहाँ स्थविर भिक्षु थे वहाँ आये और बोले—आवुस ! खेमक भिक्षु ने कहा कि मेरी तबीयत अच्छी नहीं है।

आवुस दासक ! सुनें, जहाँ खेमक भिक्षु हैं वहाँ जायँ। जाकर खेमक भिक्षु से कहें, “आवुस खेमक ! स्थविर भिक्षुओं ने आपको कहा है—भगवान् ने पाँच उपादान स्कन्ध बताये हैं, जैसे—रूप, वेदना, संज्ञा, सस्कार और विज्ञान-उपादान-स्कन्ध। इन पाँच में क्या आयुष्मान् खेमक किसी को आत्मा या आत्मीय करके देखते हैं ?

“आवुस ! बहुत अच्छा” कह । इन पाँच में क्या आयुष्मान् खेमक किसी को आत्मा या आत्मीय करके देखते हैं ?

आवुस ! भगवान् ने पाँच उपादान स्कन्ध बताये हैं । इन पाँच में मैं किसी को आत्मा या आत्मीय करके नहीं देखता हूँ।

तब, आयुष्मान् दासक जहाँ स्थविर भिक्षु थे वहाँ आये और बोले, “आवुस ! खेमक भिक्षु कहता है कि— इन पाँच स्कन्धों में मैं किसी को आत्मा या आत्मीय करके नहीं देखता हूँ।

आवुस दासक ! सुनें, जहाँ खेमक भिक्षु हैं वहाँ जायँ। जाकर खेमक भिक्षु से कहें, “आवुस खेमक ! स्थविर भिक्षुओं ने आपको कहा है— यदि आयुष्मान् खेमक इन पाँच स्कन्धों में से किसी को भी आत्मा या आत्मीय करके नहीं देखते हैं तो अवश्य क्षीणाश्रव अर्हत् हैं।

“आवुस ! बहुत अच्छा” कह, आयुष्मान् दासक स्थविर भिक्षुओं को उत्तर दे, जहाँ खेमक भिक्षु थे वहाँ गये, और बोले, “आवुस खेमक ! स्थविर भिक्षुओं ने कहा है— यदि आयुष्मान् खेमक इन पाँच स्कन्धों में से किसी को भी आत्मा या आत्मीय करके नहीं देखते हैं तो अवश्य क्षीणाश्रव अर्हत् हैं।

आवुस ! इन पाँच उपादान स्कन्धों में मैं किसी को आत्मा या आत्मीय करके नहीं देखता, किन्तु मैं क्षीणाश्रव अर्हत् नहीं हूँ। आवुस ! किन्तु, मुझे पाँच उपादान स्कन्धों में ‘अस्मि’ (=मैं हूँ) की बुद्धि है ही, यद्यपि मैं नहीं जानता कि मैं ‘यह’ हूँ।

तब, आयुष्मान् दासक जहाँ स्थविर भिक्षु थे ।

पीड़ित और बहुत बीमार है। सो भगवान् के घरों पर सिर से प्रणाम् करत है। भार कहै—भग्नो ! यदि कृपा कर बहौं अस्सजि मित्रु है बहौं चखते तो बड़ी अच्छी बात होती।

आहुम ! बहुत अच्छा” कह ये मित्रु आयुष्मान् अस्सजि को उत्तर दे बहौं भगवान् न बहौं जाये और भगवान् का धर्मिबाधन कर एक बीर बैठ गये। एक और बैठ उन मित्रुओं न भगवान् को कहा ‘भग्नो ! अस्सजि मित्रु रोगी । बहौं चखते तो बड़ी अच्छी बात होती।

भगवान् नै चुप रह कर स्वीकार कर लिया।

तब भगवान् संज्ञा समय प्यान से उठ बहौं आयुष्मान् अस्सजि ये बहौं गये।

अ युष्मान् अस्सजि न भगवान् को दूर ही से आते हुआ देख कर लाठ ठीक करने लगे।

तब भगवान् आयुष्मान् अस्सजि से बोले “रहने दो अस्सजि ! लाठ ठीक मत करो। ये आत्मन बिछे है मैं इन पर बैठ जाऊँगा।

भगवान् बिछे आसन पर बैठ गये और आयुष्मान् अस्सजि से बोले अस्सजि ! कहे तबीयत कैसी है ?

भग्नो ! मेरी तबीयत अच्छी नहीं है।

अस्सजि ! तुम्हें कोई मसाला या पछतावा तो नहीं रह गया है ?

भग्नो ! हमें तो बहुत बड़ा मसाला रह गया है।

अस्सजि ! कभी तुम्हें सीक न पाकन करने का पञ्चाशप तो नहीं रह गया है ?

भग्नो ! नहीं मुझ सीक न पाकन करने का पञ्चाशप नहीं रह गया है।

अस्सजि ! यदि तुम्हें शील न पाकन करने का पञ्चाशप नहीं रह गया है तो किस बात का मसाला या पछतावा है ?

भग्नो ! इस रोग के पहर मैं अपने जाबाब-मजास पर ध्यान लगाने का समय स निभा करता था सो मुझे बस समाधि का काम नहीं हुआ। अता मेरे मन में यह बात आई—कहीं मैं साधन से गिर तो नहीं जाऊँगा ?

अस्सजि ! जिस समय और साधन का पूरा मत है कि समाधि ही असक चीज है (जिसके बिना मुक्ति नहीं हो सकती है) ये भग्नो ही पूरा समझते हैं कि समाधि के बिना कहीं मैं खुद न हो सकूँ।

अस्सजि ! तो क्या समझते हो रूप बिलय है या अभित्य ?

अभित्य भग्नो !

बदना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान ?

अभित्य भग्नो !

हृन्मिष्टि, यह ज्ञान और देन पुनर्जन्म में नहीं पड़ता है।

यदि उसे सुगन्ध वैदना होती है तो जानता है कि यह वैदना अभित्य है। यह जानता है कि इसमें स्वादा नहीं चाहिए। यह जानता है कि इसका अभिव्यक्त नहीं करना चाहिए। यदि उसे दुःख वैदना होती है तो जानता है कि यह वैदना अभित्य है। यह जानता है कि इसमें कषा नहीं चाहिए। यह जानता है कि इसका अभिव्यक्त नहीं करना चाहिए। यदि उसे न सुख न दुःख बाकी वैदना होती है।

यदि उसे सुगन्ध वैदना होती है तो यह ज्ञातसक हो उसे अनुभव करता है। यदि उसे दुःख । यदि उसे न सुख न दुःखवाची वैदना ।

यह वाच्यवैदना बदना का अनुभव करते जानता है कि यह अव्यवर्तन वैदना है। प्रीतिपर्वण्ड

उपादान-स्कन्धों में उदय और व्यय देखते हुये विहार करने से उसके पाँच उपादान स्कन्धों के साथ होने वाले “मै हूँ” का मान, छन्द और अनुशय छूट जाता है ।

इस पर, वे स्थविर भिक्षु आयुष्मान् खेमक से बोले, “हमने आयुष्मान् खेमक को कुछ नीचा दिखलाने के लिए नहीं पूछा था, किन्तु आप आयुष्मान् यथार्थ से भगवान् के धर्म को विस्तार-पूर्वक बता सकते हैं, समझा सकते हैं, जना सकते हैं, सिद्ध कर सकते हैं, खोल सकते हैं, और विश्लेषण करके साफ साफ कर सकते हैं । सो आपने वैसा ही किया ।

आयुष्मान् खेमक यह बोले । सतुष्ट हो स्थविर भिक्षुओं ने आयुष्मान् खेमक के कहे का अभि-नन्दन किया ।

इस धर्मालाप के अनन्तर उन साठ स्थविर भिक्षुओं के तथा आयुष्मान् खेमक के चित्त उपा-दान-रहित हो आश्रवों से मुक्त हो गये ।

§ ८. छन्न सुत्त (२१. २ ४ ८)

बुद्ध का मध्यम मार्ग

एक समय कुछ स्थविर भिक्षु वाराणसी के पास ऋषिपतन मृगदाय में विहार करते थे ।

तब, आयुष्मान् छन्न संध्या समय ध्यान से उठ, चाभी ले एक विहार से दूसरे विहार जा स्थविर भिक्षुओं से बोले, “आप स्थविर लोग मुझे उपदेश दें, सिखावें और धर्म की बात कहें जिससे मैं धर्म को जान सकूँ ।

इस पर, उन स्थविर भिक्षुओं ने आयुष्मान् छन्न को कहा, “आयुस छन्न ! रूप अनित्य है, वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान अनित्य है । रूप अनात्म है, वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान अनात्म है । सभी संस्कार अनित्य हैं, सभी धर्म अनात्म हैं ।

तब, आयुष्मान् छन्न के मन में ऐसा हुआ, “मैं भी इसे ऐसा ही समझता हूँ—रूप अनित्य अनात्म है । सभी संस्कार अनित्य हैं, सभी धर्म अनात्म हैं । किन्तु, मेरे सभी सम्कारों के शान्त हो जाने, सभी उपाधियों के अन्त हो जाने, तृष्णा के क्षय हो जाने, विराग, निरोध, निर्वाण से चित्त शान्त, शुद्ध, स्थिर तथा परित्रास से विमुक्त नहीं हो जाता है । उपादान उत्पन्न होता है और मन को आच्छा-दित कर देता है । तब, मेरा कोन आत्मा है । इस तरह धर्म को जना नहीं जाता है । भला, मुझे कौन धर्मोपदेश करे कि मैं धर्म को ठीक-ठीक जान सकूँ ।

तब आयुष्मान् छन्न के मन में यह हुआ, “यह आयुष्मान् आनन्द कौशाम्बी के घोषित-राम में विहार करते हैं । भगवान् स्वयं उनकी प्रशंसा करते हैं, तथा विज्ञ भिक्षुओं में भी उनका बड़ा सम्मान है । अतः, आयुष्मान् आनन्द मुझे वैसा धर्मोपदेश कर सकते हैं जिससे मैं धर्म को ठीक-ठीक जान सकूँ । मुझे आयुष्मान् आनन्द में पूरा-पूरा विश्वास भी है । तो, मैं चलों जहाँ आयुष्मान् आनन्द हैं ।

तब, आयुष्मान् छन्न अपना विछावन समेट, पात्र और चीवर ले, जहाँ कौशाम्बी के घोषित-राम में आयुष्मान् आनन्द विहार कर रहे थे वहाँ पहुँचे, और कुशल-क्षेम पूछने के बाद एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ, आयुष्मान् छन्न ने आयुष्मान् आनन्द को कहा, “आयुस आनन्द ! एक समय मैं वाराणसी के पास ऋषिपतन मृगदाय में मुझे आयुष्मान् आनन्द में पूरा विश्वास भी है । तो, मैं चलों जहाँ आयुष्मान् आनन्द हैं ।

“अयुष्मान् आनन्द मुझे उपदेश दें समझावें, धर्म की बात बतावें जिससे मैं धर्म को जान लूँ ।

इतने भर से हम लोग आयुष्मान् छन्न से सतुष्ट हैं । उसे आयुष्मान् छन्न ने प्रकट कर दिया, खोल दिया । आयुस छन्न ! आप स्रोतापत्ति-फल का लाभ करें । आप धर्म अच्छी तरह जान सकते हैं ।

आयुस दासक ! तुमने जहाँ रोमक मिथु हैं वहाँ बापें भीर बहें, आयुस रोमक ! स्थविर मिथुओं ने कहा है—आयुस ! मां आप कहते हैं “मैं हूँ, वह ‘मैं हूँ’ क्या है ?

क्या रूप को ‘मैं हूँ’ कहते हैं या ‘मैं हूँ’ रूप से कहीं बाहर है ? वेदना ; संज्ञा ; संस्कार विज्ञान !

“आयुस ! बहुत अच्छा” कह आयुप्मान् दासक स्थविर मिथुओं को उत्तर दे ।

आयुस दासक ! यह दाह-रूप बस रहे । मेरी छाड़ी छाँसे में स्वयं वहाँ जाऊँगा जहाँ ने स्थविर मिथु है ।

तब आयुप्मान् रोमक छाड़ी देखते वहाँ ने स्थविर मिथु ने वहाँ पहुँचे भीर कुसल समाचार पत्र कर एक ओर बैठ गये ।

एक भीर बैठ हुये आयुप्मान् रोमक को उन स्थविर मिथुओं ने कहा “आयुस ! वो आप कहते हैं “मैं हूँ,” वह “मैं हूँ” क्या है ? क्या रूप को “मैं हूँ” कहते हैं या “मैं हूँ” रूप से कहीं बाहर है ? वेदना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान ?

आयुस ! मैं रूप वेदना संज्ञा संस्कार भीर विज्ञान को ‘मैं हूँ’ नहीं कहता और न ‘मैं हूँ’ इनसे कहीं बाहर है । किन्तु पाँच उपादान स्कन्धों में “मैं हूँ” ऐसी मेरी बुद्धि है, यद्यपि यह नहीं जानता यह ‘मैं हूँ’ क्या है ।

आयुस ! जैसे उपाध का या पद्म का या पुष्परीक का गन्ध है । यदि कोई कहे, “पते का गन्ध है या इसके रंग का गन्ध है या इसके पराग का गन्ध है” तो क्या वह ठीक समझा जायगा ?

वहीं आयुस !

आयुस ! तो आप बतावें कि किस प्रकार कहने से ठीक समझा जायगा ।

आयुस ! “रूप का गन्ध है” ऐसा कहने से वह ठीक समझा जायगा ।

आयुस ! इसी तरह मैं रूप को ‘मैं हूँ’ नहीं कहता और न “मैं हूँ” को रूप से बाहर की चीज बताता । न वेदना को । न संज्ञा को । न संस्कार को । न विज्ञान को । आयुस ! यद्यपि पाँच उपादान स्कन्धों में मुझे “मैं हूँ” की बुद्धि कमी है, तथापि मैं नहीं जानता कि मैं यह हूँ ।

आयुस ! आर्यभाषक के पाँच बीजे के बन्धन कर जाने पर भी उसे पाँच उपादानस्कन्धों के साथ होने वाले “मैं हूँ” का मान छन्द (अज्ञान) और अनुसंधान कमा ही रहता है । वह जाने चक कर पाँच उपादानस्कन्धों में उदय और व्यय (उत्पत्ति और विनाश) देखते हुए बिहार करता है —यह रूप है, यह रूप की उत्पत्ति है यह रूप का अस्त हो जाना है । यह वेदना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान ।

इस प्रकार पाँच उपादानस्कन्धों में उदय और व्यय देखते हुये बिहार करने से उसके पाँच उपादान स्कन्धों के साथ होने वाले “मैं हूँ” का मान छन्द और अनुसंधान कृत होता है ।

आयुस ! जैसे कोई बहुत मीठा गन्ध कापवा हो । उसे उसका मासिक बोली को दे दे । बीबी राख या चार या गोबर में उस कपड़े को मज्ज-मज्ज कर लूण पीने और साथ पानी में खंवार दे । कपड़ा पत्र साफ उमका हो चाय किन्तु उसमें राख या चार या गोबर का गन्ध कमा ही रहे । उसे पीबी मासिक को दे दे । मासिक उसे सुगन्धित चक से पी के । तब कपड़े में कमा हुआ राख या चार गोबर का गन्ध विकसित दूर हो जाय ।

आयुस ! इसी तरह आर्यभाषक के पाँच बीजे के बन्धन कर जाने पर भी उसे पाँच उपादान स्कन्धों के साथ होने वाले “मैं हूँ” का मान छन्द और अनुसंधान कमा ही रहता है । वह जाने चक कर पाँच उपादान स्कन्धों में उदय और व्यय देखते हुये बिहार करता है —यह रूप है, यह रूप की उत्पत्ति है यह रूप का अस्त हो जाना है । यह वेदना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान । इस प्रकार पाँच

उपादान-स्कन्धों में उदय और व्यय देखते हुये विहार करने से उसके पाँच उपादान स्कन्धों के साथ होने वाले “मैं हूँ” का मान, छन्द और अनुग्रह छूट जाता है।

इस पर, वे स्थविर भिक्षु आयुष्मान् खेमक से बोले, “हमने आयुष्मान् रोमक को कुछ नीचा दिखलाने के लिए नहीं पूछा था, किन्तु आप आयुष्मान् यथार्थ में भगवान् के धर्म को विस्तार-पूर्वक बता सकते हैं, सनझा सकते हैं, जना सकते हैं, सिद्ध कर सकते हैं, खोल सकते हैं, और विश्लेषण करके साफ साफ कर सकते हैं। सो आपने वैसा ही किया।

आयुष्मान् खेमक यह बोले। सतुष्ट हो स्थविर भिक्षुओं ने आयुष्मान् खेमक के कहे का अभि-नन्दन किया।

इस धर्मालाप के अनन्तर उन साठ स्थविर भिक्षुओं के तथा आयुष्मान् खेमक के चित्त उपा-दान-रहित हो आश्रवों से मुक्त हो गये।

§ ८. छन्न सुत्त (२१. २ ४ ८)

बुद्ध का मध्यम मार्ग

एक समय कुछ स्थविर भिक्षु वाराणसी के पास ऋषिपत्तन मृगदाय में विहार करते थे।

तब, आयुष्मान् छन्न सध्या समय ध्यान से उठ, चाभी ले एक विहार से दूसरे विहार जा स्थविर भिक्षुओं से बोले, “आप स्थविर लोग मुझे उपदेश दें, सिखावें और धर्म की बात कहें जिससे मैं धर्म को जान सकूँ।

इस पर, उन स्थविर भिक्षुओं ने आयुष्मान् छन्न को कहा, “आयुस छन्न ! रूप अनित्य है, वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान अनित्य है। रूप अनात्म है, वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान अनात्म है। सभी संस्कार अनित्य हैं, सभी धर्म अनात्म हैं।

तब, आयुष्मान् छन्न के मन में ऐसा हुआ, “मैं भी इसे ऐसा ही समझता हूँ—रूप अनित्य अनात्म है। सभी संस्कार अनित्य हैं, सभी धर्म अनात्म हैं। किन्तु, मेरे सभी संस्कारों के शान्त हो जाने, सभी उपाधियों के अन्त हो जाने, तृष्णा के क्षय हो जाने, विरग, निरोध, निर्वाण में चित्त शान्त, शुद्ध, स्थिर तथा परित्रास से विमुक्त नहीं हो जाता है। उपादान उत्पन्न होता है और मन को आच्छा-दित कर देता है। तब, मेरा कोन आत्मा है। इस तरह धर्म को जाना नहीं जाता है। भला, मुझे कौन धर्मोपदेश करे कि मैं धर्म को ठीक-ठीक जान सकूँ !

तब आयुष्मान् छन्न के मन में यह हुआ, “यह आयुष्मान् आनन्द कौशाम्बी के घोषिताराम में विहार करते हैं। भगवान् स्वयं उनकी प्रशंसा करते हैं, तथा विज्ञ भिक्षुओं में भी उनका बड़ा सम्मान है। अतः, आयुष्मान् आनन्द मुझे वैसा धर्मोपदेश कर सकते हैं जिससे मैं धर्म को ठीक-ठीक जान सकूँ। मुझे आयुष्मान् आनन्द में पूरा-पूरा विश्वास भी है। तो, मैं चलों जहाँ आयुष्मान् आनन्द हैं।

तब, आयुष्मान् छन्न अपना विछावन समेट, पात्र और चीवर ले, जहाँ कौशाम्बी के घोषिताराम में आयुष्मान् आनन्द विहार कर रहे थे वहाँ पहुँचे, और कुशल-क्षेम पूछने के बाद एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ, आयुष्मान् छन्न ने आयुष्मान् आनन्द को कहा, “आयुस आनन्द ! एक समय मैं वाराणसी के पास ऋषिपत्तन मृगदाय में मुझे आयुष्मान् आनन्द में पूरा विश्वास भी है। तो, मैं चलों जहाँ आयुष्मान् आनन्द हैं।

“आयुष्मान् आनन्द मुझे उपदेश दें समझावें, धर्म की बात बतावें जिससे मैं धर्म को जान लूँ।

इतने भर से हम लोग आयुष्मान् छन्न से सतुष्ट हैं। उसे आयुष्मान् छन्न ने प्रकट कर दिया, खोल दिया। आयुस छन्न ! आप स्रोतापत्ति-फल का लाभ करें। आप धर्म अच्छी तरह जान सकते हैं।

इसे सुन आयुष्मान् छत्र के मन में बड़ी प्रीति उत्पन्न हुई—सिं धर्म अच्छी तरह जान सकता है। आयुस्त छत्र ! सिंने स्वयं भगवान् को कात्यायनगोत्र भिक्षु को उपदेश देते सुनकर जाना है—करवायन ! यह संसार जो अज्ञान में पड़ा है जिनके कारण अस्तित्व और नास्तित्व की प्राप्ति होती है। कात्यायन ! संसार के समुद्रब को पयार्थता जान लेने से संसार के प्रति जो नास्तित्व-मुक्ति है वह नहीं होती है। कात्यायन ! संसार के विरोध को पयार्थता जान लेने से संसार के प्रति जो अस्तित्व की मुक्ति है वह नहीं होती है। कात्यायन ! यह संसार उपाय उपायान और अभिमिषेस से बेतरह बड़बा है। इस ज्ञान लेने से बिना में अभिधान अभिमिषेस और अनुसप नहीं कगते हैं और य उसी 'व्याप्ता' की प्राप्ति होती है। उत्पन्न हो कर कुछ ही उत्पन्न होता है, और विपन्न हो कर कुछ ही विपन्न होता है—इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह जाता। प्रतीत्य-समुत्पाद का पराम्परा ज्ञान ही जाता है। कात्यायन ! इसी को सम्मन्वयि कहते हैं।

कात्यायन ! "समी कुछ है" (असर्व अस्ति) यह एक वचन है। "कुछ नहीं है" (असर्व नास्ति) यह दूसरा वचन है। कात्यायन ! इन दो वचनों में न बा कुछ धर्म की मध्य से उपदेश करते हैं। अविद्या के प्रत्यय से संस्कार होते हैं, संस्कार के प्रत्यय से विज्ञान होता है इस प्रकार सारा दुष्ट-अमूह बट पड़ा होता है। उन्नी अविद्या के विरुद्ध विरोध हो जाने में संस्कार नहीं होते इस प्रकार सारा दुष्ट-समूह वन्द ही जाता है।

आयुस्त आनन्द ! जिस आयुष्मान् को इस प्रकार कृपाछ, परमार्थी और उपदेश देने वाले गुहमाई होते हैं उनका ऐसा ही होता है। आयुष्मान् आनन्द के इस उपदेश को सुन सुने पराम्परा धर्म-ज्ञान हो गया।

§ ९ पठम राहुल सुच (२१ २ ४ ९)

पञ्चस्कन्ध के आग से मईकार से मुक्ति

आयस्ती जेतपन ।

तब आयुष्मान् राहुल वहीं भगवान् ने वहीं जाने और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर रंग गये।

एक ओर रंग, आयुष्मान् राहुल भगवान् से बोले धम्मे ! क्या जान और देख कर मनुष्य को विज्ञानवाले इस शरीर में और बाहर के सभी निमित्तों में अद्वार ममद्वार, माय और अनुपप नहीं होते हैं ?

राहुल ! जा कुछ रूप—अतीत अनागत वर्तमान अव्यायस बाध स्पृह श्रम हान प्रतीत दूर या निकट—ही सभी न ता मरा है न मैं हूँ और न मेरा व्याप्ता है। इसी को पयार्थता पराम्परा जान लेने से।

जो कुछ बदला । जो कुछ संज्ञा । जो कुछ संस्कार । जो कुछ विज्ञान ।

राहुल ! होने जान और देख कर मनुष्य को विज्ञानवाले इस शरीर में और बाहर के सभी निमित्तों से अद्वार ममद्वार माय और अनुपप नहीं होते हैं।

§ १० दुतिय राहुल सुच (२१ २ ४ १०)

चित्तके प्राग न मुक्ति ?

अन्त ! क्या जान और देख कर मनुष्य विज्ञानवाले इस शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अद्वार, ममद्वार और माय न इति सब बाध इन्द्र के बरे प्राप्त और विमुक्त होता है ? राहुल ! जो कुछ रूप । इन जान और देख कर ।

अधिर धर्म समाप्त ।

पाँचवाँ भाग

पुष्प वर्ग

§ १. नदी सुत्त (२१. २ ५. १)

अनित्यता के ज्ञान से पुनर्जन्म नहीं

श्रावस्ती जेतवन ।

भिक्षुओ ! जैसे पर्वत से निकल कर गिराती-पराती बहनेवाली वेगवती नदी हो । उसके दोनों तट पर कास उगे हों, जो नदी की धोर झुके हों । कुश भी उगे हों, जो नदी की ओर झुके हों । वज्रज (= भाभङ्ग) भी । वीरण (= ढोङ्ग) भी । वृक्ष भी उगे हों जो नदी की ओर झुके हों ।

नदी की धारा में बहता हुआ कोई मनुष्य यदि कासों को पकड़े तो वे उखड़ जायें । इसमें मनुष्य और भी खतरे में पड़ जाय । यदि कुशों को पकड़े । यदि वज्रजों को पकड़े । यदि वीरण को पकड़े । यदि वृक्षों को पकड़े ।

भिक्षुओ ! इसी तरह, ज्ञान=पृथक्जन=आर्यसत्तों को न जानने वाला=आर्यधर्म में अज्ञान=आर्यधर्म में अधिनीत रूप को आत्मा करके जानता है, या रूप में आत्मा को जानता है । उसका वह रूप उखड़ जाता है, उससे वह ओर विपत्ति में पड़ जाता है । वेदना । सज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते ।

वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान ?

अनित्य भन्ते ।

भिक्षुओ ! इसलिये इसे जान और देख वह पुनर्जन्म में नहीं पड़ता है ।

§ २. पुष्प सुत्त (२१. २ ५. २)

बुद्ध संसार से अनुपलित रहते हैं

श्रावस्ती जेतवन ।

भिक्षुओ ! मैं संसार में विवाद नहीं करता, संसार ही मुझसे विवाद करता है । भिक्षुओ ! धर्म-वादी संसार में कुछ विवाद नहीं करता ।

भिक्षुओ ! संसार में पण्डित लोग जिसे “नहीं है” कहते हैं उसे मैं भी “नहीं है” कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! जिसे पण्डित लोग “है” कहते हैं उसे मैं भी “है” कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! संसार में किसे पण्डित लोग “नहीं है” कहते हैं जिसे मैं भी “नहीं है” कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! संसार में पण्डित लोग रूप को नित्य=ध्रुव=शाश्वत=अविपरिणामधर्मा नहीं बताते हैं, मैं भी उसे ‘ऐसा नहीं है’ कहता हूँ । वेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान । भिक्षुओ ! संसार में इसी को पण्डित लोग “नहीं है” कहते हैं जिसे मैं भी “नहीं है” कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! किसे पण्डित लोग “है” कहते हैं, जिसे मैं भी “है” कहता हूँ ?

इसे सुन आपुष्मान् छत्र के मन में बड़ी प्रीति उत्पन्न हुई—मैं जर्म अच्छी तरह जान सकता हूँ।

आपुस छत्र ! मैंने स्वर्ण मगवान् की कारवायनगोच भिक्षु को उपदेश देते सुनकर जाना है—
कात्यायन ! यह संसार जो ब्रह्म में पड़ा है, जिसके कारण अस्तित्व और नास्तित्व की प्राप्ति होती है।
कात्यायन ! संसार के समुद्र को यथार्थता जान लेने से संसार के प्रति जो नास्तित्व-बुद्धि है वह नहीं होती है। कात्यायन ! संसार के निरोध को यथार्थता जान लेने से संसार के प्रति जो अस्तित्व की बुद्धि है वह नहीं होती है। कारवायन ! यह संसार उपाय उपाय और अभिमिशेष से बेतरह बड़बा है। इस जान लेने से चित्त में अधिकृत अभिमिशेष और अनुसय नहीं लगते हैं और व उसे 'आत्मा' की प्राप्ति होती है। उत्पन्न हो कर कुछ ही उत्पन्न होता है, और निवृत्त हो कर कुछ ही निवृत्त होता है—इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह जाता। प्रतीक-समुत्पाद का प्रामाण्य जान ही जाता है। कात्यायन ! इसी को सम्यक्-चिन्ता कहते हैं।

कारवायन ! "समी कुछ है" (=सर्व अस्ति) यह एक वस्तु है। "कुछ नहीं है" (=सर्व नास्ति) यह दूसरा वस्तु है। कात्यायन ! हम जो वस्तुओं में प जा कुछ जर्म को मध्य से उपदेश करते हैं। अविद्या के प्रत्यय से संस्कार होते हैं; संस्कार के प्रत्यय से विज्ञान होता है इस प्रकार सारा दुःख-समुद्र ब्रह्म प्रका होता है। उसी अविद्या के विस्तृत निरोध हो जाने से संस्कार नहीं होते इस प्रकार सारा दुःख-समुद्र ब्रह्म हो जाता है।

आपुस जानम् ! जिस आपुष्मान् के इस प्रकार लुप्राप्त, परमार्थी भार उपदेश देन वाले पुढेमाई होते हैं उनका ऐसा ही होता है। आपुष्मान् जानम् के इस उपदेश को ध्रुम सुमे पूरा-पूरा धर्म-ज्ञान हो गया।

§ ९. पठम राहुल सुच (२१ २ ४ ९)

पञ्चस्कन्ध के घात से आईकार से मुक्ति

भावस्ती जेतघन ।

यह आपुष्मान् राहुल जहाँ मगवान् ने जहाँ जाने और मगवान् का अभिवादन कर एक जोर बंद गये।

एक और बंद, आपुष्मान् राहुल मगवान् से बोले भन्त ! क्या जान और देख कर मनुष्य की विज्ञानवाले इस शरीर में और बाहर के सभी निमित्तों में अद्वार, समझार मान और अनुसय नहीं होते हैं ?

राहुल ! जो कुछ रूप—अतीत अनागत वर्तमान अन्धकार बाध स्पृक सूत्र हीन प्रतीत, पुर, वा निवृत्त—ही सभी व ता मेरा है व मैं हूँ और व मेरा आत्मा है। इसी को यथार्थता प्रामाण्य जान लेने से।

जो कुछ वेदना । जो कुछ संज्ञा । जो कुछ संस्कार । जो कुछ विज्ञान ।

राहुल ! इसे जान और देख कर मनुष्य की विज्ञानवाले इस शरीर में और बाहर के सभी निमित्तों से अद्वार समझार मान और अनुसय नहीं होते हैं।

§ १०. दुतिय राहुल सुच (२१ २ ४ १०)

किसको प्रान से मुक्ति !

..भन्ते ! क्या जान और देख कर मनुष्य विज्ञानवाले इस शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अद्वार समझार और मान से रहित मन धावा इन्द्र के परे शान्त और निवृत्त होता है ?

राहुल ! जो कुछ रूप । इस जान और देख कर ।

अथिद धर्म समाप्त ।

भिक्षुओ ! जैसे कोई जादूगर या जादूगर का शागिर्द बीच सड़क पर खेल दिखाये । उसे कोई चतुर मनुष्य देखे । भिक्षुओ ! भला जादू में क्या सार रहेगा ?

भिक्षुओ ! वैसे ही, जो कुछ विज्ञान ।

भिक्षुओ ! इसे देख, पण्डित आर्यश्रावक रूपसे विरक्त होता है, वेदना से भी विरक्त होता है, संज्ञा , संस्कार , विज्ञान से भी विरक्त होता है । विरक्त रहने से वह राग-रहित हो जाता है, राग-रहित होने से विमुक्त हो जाता है, विमुक्त हो जाने से उसे “मैं विमुक्त हो गया” ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है ।

भगवान् यह बोले । यह बोल कर बुद्ध ने फिर भी कहा .—

रूप फेनपिण्डोपम है,
वेदना की उपमा जलके बुलबुले से है,
संज्ञा मरीचि की तरह है,
संस्कार केले के पेड़ की तरह,
जादू के खेल के समान विज्ञान है—
सूर्य वंशोत्पन्न गौतम बुद्ध ने बताया है ॥
जैसे-जैसे गौर से देखता भालता है,
और अच्छी तरह परीक्षा करता है,
उसे रिक्त और तुच्छ पाता है,
वह, जो ठीक से देखता है ॥

इस निन्दित शरीर के विषय में जो महाज्ञानी ने उपदेश दिया है,
उस ग्रहीण धर्मों को पार किये हुये छोड़े रूप को देखो ॥
आयु, ऊष्मा (= गर्मी) और विज्ञान जब इस शरीर को छोड़ देते हैं,
तब यह बेकार चेतनाहीन होकर गिर जाता है ॥
इसका सिलसिला ऐसा ही है, बच्चों की माया की तरह,
यह बंधक कहा गया है, यहाँ कोई सार नहीं ॥
स्कन्धों को ऐसा ही समझे, उत्साही भिक्षु,
सदा दिन और रात सप्रजन्य और स्मृतिमान् होकर रहे ॥
सभी संयोग को छोड़ दे, अपना शरण आप बने
मानो शिर जल रहा हो ऐसा ख्याल रख कर विचरे,
निर्वाण-पद की प्रार्थना करते हुये ।

§ ४. गोमय सुत्त (२१. २ ५ ४)

सभी संस्कार अनित्य हैं

आवस्ती • जेतवन ।

तब, कोई भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिषादन कर एक ओर बैठ गया ।
एक ओर बैठ, उस भिक्षु ने भगवान् को कहा, “भन्ते ! क्या कोई रूप है जो नित्य = ध्रुव = शाश्वत = परिवर्तनरहित है ? भन्ते ! क्या कोई वेदना है जो नित्य ? संज्ञा , संस्कार , विज्ञान . ?

भिक्षु ! कोई रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार या विज्ञान नहीं है जो नित्य = ध्रुव = शाश्वत = परिवर्तनरहित . है ।

मिथुओ ! रूप धर्मिय दुःख भार परिवर्तनशील है ऐसा पण्डित लोग कहते हैं और मैं भी ऐसा ही कहता हूँ । वेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान । मिथुओ ! संसार में इसी को पण्डित लोग 'दे' कहते हैं और मैं भी क्या ही कहता हूँ ।

मिथुओ ! संसार का जो पदार्थ धर्म है उस कुछ भण्डी तरह जानते और समझते हैं । जान और समझ कर वे उसको कहते हैं उपदेष्टा करते हैं जानते हैं सिद्ध करते हैं जोड़ देते हैं, और विस्मयेय करके साफ कर देते हैं ।

मिथुओ ! रूप संसार का पदार्थ धर्म है जिस कुछ भण्डी तरह जानते और समझते हैं । जान और समझ कर । मिथुओ ! कुछ के इस प्रकार साफ कर देने पर भी जो लोग नहीं जानते और देखते हैं उन बाण=अनुपपन्न=अभावा=विना बाँध के=अज्ञ समुत्पन्न का मैं क्या कर सकता हूँ । वेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

मिथुओ ! जैसे जलस या पुनःपरीक्षा या पत्र पानी में देना होता है और पानी में बहता है तो भी पानी से वह अल्प अनुपपन्न ही रहता है । मिथुओ ! इसी तरह कुछ संसार में रह कर भी संसार का जीवन संसार से अनुपपन्न रहते हैं ।

३३ फेण सुत्त (२१ २. ५. ३)

शरीर में कोई सार नहीं

एक समय भगवान् अयोध्या में गंगा नदी के तट पर बिहार करते थे ।

वहाँ भगवान् ने मिथुओं को आमन्त्रित किया ।

मिथुओ ! जैसे यह गंगा नदी बहुत फेन का बहा कर ले जाती है । इसे कोई और बाका समुत्पन्न देना भाग्य और टीका से परीक्षा कर देना साफ और टीका से परीक्षा कर देने पर उस बह रिक्त, तुच्छ और असार प्रतीत होता है । मिथुओ ! अन्त फेन के विष्ट में क्या सार रहेगा ?

मिथुओ ! कम ही जो कुछ रूप—अतीत अनागत —है उसे मिथु देखता है भावता है और टीका से परीक्षा करता है । कम भाग्य और टीका से परीक्षा कर लगे पर उस बह रिक्त, तुच्छ और असार प्रतीत होता है । मिथुओ ! अन्त रूप में क्या सार रहेगा ?

मिथुओ ! जग शब्द काज में कुछ कूड़ी पद प्राप्ति पर जल में बुलबुल उठते और लीन होत रहते हैं । उस कोई और बाण समुत्पन्न देते । मिथुओ ! अन्त जल के बुलबुले में क्या सार रहेगा ?

मिथुओ ! कम ही जो कुछ वेदना—अतीत अनागत —है उसे मिथु देखता है । मिथुओ ! अन्त वेदना में क्या सार रहेगा ?

मिथुओ ! जैसे घ्राण के विष्टे महीने में शोषण के मज्ज मरीचिका जाती है । उस कोई और बाण समुत्पन्न देना । मिथुओ ! अन्त मरीचिका में क्या सार रहेगा ?

मिथुओ ! कम ही जो कुछ संज्ञा ।

मिथुओ ! जैसे कोई समुत्पन्न और (असार) की गात्र में एक लीनता कुछ को लेकर जल में देना । वह बहो एक बह लीन मज्ज कोमल केना के वेद का देना । उसे बह बह से बाध कर गिरा है फिर भी बहना मज्ज और बाध कर टिक्का-टिक्का अन्त कर दे । इस तरह बह कभी लकड़ी भी नहीं थिके और की ल' बह ही बहा ।

जग कोई और बाण समुत्पन्न देना । भाग्य और टीका से परीक्षा कर देना । भाग्य और टीका से परीक्षा कर देने पर उस बह रिक्त, तुच्छ और असार प्रतीत होता है । मिथुओ ! अन्त देने के लगे में क्या सार रहेगा ?

मिथुओ ! जैसे ही जो कुछ संस्कार ।

अनित्य भन्ते ।

वेदना , सज्ञा , सस्कार , विज्ञान ?

अनित्य भन्ते ।

भिक्षु ! इसलिये , ऐसा जान और देखकर पुनर्जन्म में नहीं पड़ता ।

§ ६. सामुद्दक सुत्त (२१ २ ५ ६)

सभी संस्कार अनित्य हैं

श्रावस्ती जेतवन ।

एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, “भन्ते ! क्या कोई रूप है जो नित्य , वेदना , सज्ञा , सस्कार विज्ञान है जो नित्य = ध्रुव हो ? नहीं भिक्षु ! ऐसा नहीं है ।

§ ७. पठम गद्दुल सुत्त (२१ २. ५ ७)

अविद्या में पड़े प्राणियों के दुःख का अन्त नहीं

श्रावस्ती जेतवन ।

भिक्षुओ ! यह ससार अनन्त है । अविद्या के अन्धकार में पड़े, तृष्णा के बन्धन से बंधे तथा आवागमन में भटकते रहने वाले इस ससार के आदि का पता नहीं लगता है ।

भिक्षुओ ! एक समय आता है जब महासागर सूख साख कर नहीं रहता है । भिक्षुओ ! तब भी, अविद्या के अन्धकार में पड़े, तृष्णा के बन्धन से बंधे तथा आवागमन में भटकते रहने वाले प्राणियों के दुःख का अन्त नहीं होता ।

भिक्षुओ ! एक समय होता है जब पर्वतराज सुमेरु जल जाता है, नष्ट हो जाता है, नहीं रहता है । भिक्षुओ ! तब भी अविद्या के अन्धकार में पड़े ।

भिक्षुओ ! एक समय होता है जब यह महापृथ्वी जल जाती है, नष्ट हो जाती है, नहीं रहती है । भिक्षुओ ! तब भी अविद्या के अन्धकार में पड़े ।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई कुत्ता किसी गढ़े खूँटे में बँधा हो । वह उसी खूँटे के चारों ओर घूमता है । भिक्षुओ ! वैसे ही, अज्ञ = पृथक्जन रूप को आत्मा करके जानता है, वेदना , सज्ञा , सस्कार , विज्ञान को आत्मा करके जानता है ।

आत्मा को विज्ञानवान्, या विज्ञान में आत्मा, या आत्मा में विज्ञान ।

वह रूप ही के चारों ओर घूमता है, वेदना , संज्ञा , सस्कार , विज्ञान ही के चारों ओर घूमता है । इस तरह, वह रूप, वेदना, संज्ञा, सस्कार और विज्ञान से मुक्त नहीं होता है । जाति, जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, द्रोर्मनस्य और उपायास में मुक्त नहीं होता है । वह दुःख में मुक्त नहीं होता है, ऐसा मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! पण्डित आर्यश्रावक रूप को आत्मा करके नहीं जानता है । वह रूप, वेदना, संज्ञा, सस्कार और विज्ञान के चारों ओर नहीं घूमता है । इस तरह, वह रूप से मुक्त हो जाता है । जाति, जरा से मुक्त हो जाता है । वह दुःख से मुक्त हो जाता है—ऐसा मैं कहता हूँ ।

तब मगवान् हाथ में बहुत थोड़ा गाबर केकर उस मिथु से बोले “मिथु ! इतना भी आत्म-भाव का प्रतिष्ठान नहीं है जो मित्य = भुब हो । मिथु ! यदि इतना भी आत्म-भाव का प्रतिष्ठान मित्य = भुब होता तो महाचर्य-याचन हुआ-छाप के छिये नहीं जाना जाता । मिथु ! क्योंकि इतना भी आत्म-भाव का प्रतिष्ठान मित्य = भुब नहीं है इसीछिये महाचर्य-याचन हुआ-छाप के छिये सार्थक जाना जाता है ।

“मिथु ! पूर्वकाक में मैं सूबामिथिष्ठ क्षयिब राखा था । उस समय कुशाघती राजधानी प्रमुख मेरे चौरासी हजार नगर थे । उस समय धर्म प्रासाद प्रमुख चौरासी हजार प्रासाद थे । उस समय महाम्बुह दृष्टगार प्रमुख मेरे चौरासी हजार कृष्णगार (= watch tower) थे । उस समय मेरे चौरासी हजार पक्का ये—हाथी के हाँव के हीरे के सोना के चाँदी के, काकीन क्लो हुये उनके कम्बक क्लो हुये, फूफदार कम्बक क्लो हुये, कदकिपुग के कीमती धर्म क्लो हुये बैबुवा क्लो हुये दोनों ओर कास तकिये क्लो । उस समय उपयोग इस्तिराज प्रमुख मेरे चौरासी हजार हाथी थे—सोने के भकट्टार से भकट्टर सोने की रखा क्लो हुये सोने के पास से हैंके । उस समय बकाहक महराराज प्रमुख मेरे चौरासी हजार पीढ़े थे—सोने के भकट्टर से भकट्टर सोने की धवा क्लो हुये, सोने के बाण से हैंके । उस समय बजयन्त रथ प्रमुख मेरे चौरासी हजार रथ थे—सोने के ।.. मभिरल प्रमुख मेरे चौरासी हजार मणि थे । सुमद्रा देवी प्रमुख चौरासी हजार जिर्णो थी । परिनायकर ब प्रमुख चौरासी हजार भजीब राखा थे । चौरासी हजार रूप देने बाकी शीर्षे थी । चौरासी हजार कपड़े थे—रेशम के पद के ऊनी और सूती । चौरासी हजार धाकिर्णो थी जिन्हें छुपकर दोनों बेका परोस कर के जाता था ।

मिथु ! उस समय मैं उन चौरासी हजार नगरों में एक कुशाघती राजधानी ही में रहता था । धर्म प्रासाद ही में रहता था । [इसी तरह सभी के साथ समस्त केना]

मिथु ! वे सभी संस्कार भलीच हो गये बिरुद्ध हो गये बिपरिण्त हो गये । मिथु ! संस्कार पूरे कजुब = अकित्य बार आधास सं रहित हैं ।

मिथु ! तो सभी संस्कारों से बिरुद्ध हो जाना यका है राग-रहित हो जाना भका है बिमुक्त हो जाना मका है ।

३.५ नखसिख मुच (२१ २. ५. ५)

सभी संस्कार अनित्य हैं

धायस्ती जेतयन ।

एक ओर बैद कह मिथु मगवान् से बोला “भग्ते ! क्या कोई क्य है जो मित्य = भुब = तावत = परिचर्तन-रहित हो ? कोई बैदना ? कोई संज्ञा ? कोई संस्कार ? कोई बिज्ञान ?

नहीं मिथु ! क्या कोई क्य बैदना संज्ञा संस्कार या बिज्ञान नहीं है जो मित्य = भुब हो ।

तब मगवान् अपने बक के ऊपर एक रूप के कल को रखकर बोले “मिथु ! इतना भी क्य नहीं है जो मित्य = भुब हो । मिथु ! यदि इतना भी क्य मित्य = भुब होता तो महाचर्य हुआ-छाप का साबक नहीं जाना जाता । मिथु ! क्योंकि इतना भी क्य मित्य = भुब नहीं है इसी से महाचर्य हुआ-छाप के छिये सार्थक समझा जाता है ।

“मिथु ! इतनी भी बैदना । इतनी भी संज्ञा । इतना भी संस्कार । इतना भी बिज्ञान मित्य = भुब नहीं है । मिथु ! क्योंकि इतना भी बिज्ञान मित्य = भुब नहीं है इसी से महाचर्य हुआ-छाप के छिये सार्थक समझा जाता है ।”

मिथु ! तो क्या समझने हा क्य मित्य है वा अकित्य ?

अनित्य भन्ते ।

वेदना , सज्जा , सम्स्कार , विज्ञान ?

अनित्य भन्ते ।

भिक्षु ! इसलिये , ऐसा जान और देखकर पुनर्जन्म में नहीं पड़ता ।

§ ६. सामुद्दक सुत्त (२१ २. ५ ६)

सभी संस्कार अनित्य हैं

श्रावस्ती जेतवन ।

एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, “भन्ते ! क्या कोई रूप है जो नित्य , वेदना , सज्जा , संस्कार विज्ञान है जो नित्य = ध्रुव हो ?

नहीं भिक्षु ! ऐसा नहीं है ।

§ ७. पठम गद्दुल सुत्त (२१ २. ५ ७)

अविद्या में पड़े प्राणियों के दुःख का अन्त नहीं

श्रावस्ती जेतवन ।

भिक्षुओ ! यह ससार अनन्त है । अविद्या के अन्धकार में पड़े, तृष्णा के बन्धन से बंधे तथा आवागमन में भटकते रहने वाले इस ससार के आदि का पता नहीं लगता है ।

भिक्षुओ ! एक समय आता है जब महासागर सूख साख कर नहीं रहता है । भिक्षुओ ! तब भी, अविद्या के अन्धकार में पड़े, तृष्णा के बन्धन से बंधे तथा आवागमन में भटकते रहने वाले प्राणियों के दुःख का अन्त नहीं होता ।

भिक्षुओ ! एक समय होता है जब पर्वतराज सुमेरु जल जाता है, नष्ट हो जाता है, नहीं रहता है । भिक्षुओ ! तब भी अविद्या के अन्धकार में पड़े ।

भिक्षुओ ! एक समय होता है जब यह महापृथ्वी जल जाती है, नष्ट हो जाती है, नहीं रहती है । भिक्षुओ ! तब भी अविद्या के अन्धकार में पड़े ।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई कुत्ता किसी गढे खूँटे में बँधा हो । वह उसी खूँटे के चारों ओर घूमता है । भिक्षुओ ! वैसे ही, अज्ञ = पृथक्जन रूप को आत्मा करके जानता है, वेदना , सज्जा , संस्कार , विज्ञान को आत्मा करके जानता है ।

आत्मा को विज्ञानवान्, या विज्ञान में आत्मा, या आत्मा में विज्ञान ।

वह रूप ही के चारों ओर घूमता है, वेदना , सज्जा , संस्कार , विज्ञान ही के चारों ओर घूमता है । इस तरह, वह रूप, वेदना, सज्जा, संस्कार और विज्ञान से मुक्त नहीं होता है । जाति, जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास से मुक्त नहीं होता है । वह दुःख से मुक्त नहीं होता है, ऐसा मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! पण्डित आर्यश्रावक रूप को आत्मा करके नहीं जानता है । वह रूप, वेदना, सज्जा, संस्कार और विज्ञान के चारों ओर नहीं घूमता है । इस तरह, वह रूप से मुक्त हो जाता है । जाति, जरा से मुक्त हो जाता है । वह दुःख से मुक्त हो जाता है—ऐसा मैं कहता हूँ ।

§ ८ दुतिय गवदुल मुत्त (२१ ० ५ ८)

निरन्तर आत्मधित्तन करो

आवस्ती जेतवत्त ।

मिथुभो ! यह संसार जन्मत्त है । अविद्या के अण्णकार में पड़े मृणा के जन्मन से जैसे तथा आवागमन में मट्टकते रहनेवाले इस संसार के भावि का पता पड़ी लगता है ।

मिथुभो ! जैसे कोई कुत्ता पृष्ठ गये लूँटे में बीधा है । यदि वह चलता है तो उसी लूँटे के इर्द गिर्द । यदि वह खड़ा होता है तो उसी लूँटे के इर्दगिर्द । यदि वह बैठता है । यदि वह खेदता है तो उसी लूँटे के इर्दगिर्द ।

मिथुभो ! वैसे ही अज्ञ पुनर्जन्म रूप का समझता है कि वह मरा है यह में हूँ वह मेरा आत्मा है । वेदना को । संज्ञा को । संस्कार को । विज्ञान को । यदि वह ज्ञेयता है तो इन्हीं पाँच उपादान स्कन्धों के इर्दगिर्द । यदि वह खड़ा होता है । बैठता है । खेदता है तो इन्हीं पाँच उपादान स्कन्धों के इर्दगिर्द ।

मिथुभो ! इसकिये निरन्तर आत्म-धित्तन करते रहना चाहिये । यह चित्त बहुत कास से राग द्वेष और मोह से गम्वा बना है । मिथुभो ! चित्त की गम्हरी से प्राणी गम्मे होते हैं और चित्त की छद्दि से प्राणी विच्छन्न होते हैं ।

मिथुभो ! पटहरियों के पट का देखा है ?

हाँ मन्ते !

मिथुभो ! पटहरियों के से चित्त भी चित्त ही से चित्रित किये जात हैं । पटहरी अपने चित्त से ही विचार-विचार कर उन चित्रों को चित्रित करते हैं ।

मिथुभो ! इसकिये निरन्तर आत्म धित्तन करते रहना चाहिये । यह चित्त बहुत कास से ।

मिथुभो ! चित्त की तरह दूसरी कोई चीज नहीं है । तिरश्चीन प्राणी अपने चित्त के कारण ही ऐसे हुए हैं । तिरश्चीन प्राणियों का भी चित्त ही प्रधान है ।

मिथुभो ! इसकिये निरन्तर आत्म धित्तन करते रहना चाहिये । यह चित्त बहुत कास से ।

मिथुभो ! जैसे कोई रंगरेज का चित्रकार रंग से वा क्लिक्कर वा हकरी से वा भीस से वा मंचीड से अपनी तरह साफ किये गये तल्ले पर वा हीवाक पर खी वा पुरूप के सर्वाङ्गपूर्ण चित्र उतार है । मिथुभो ! वैसे ही अज्ञ पुनर्जन्म रूप में जगा रह रूप ही को प्राप्त होता है । वेदना में जगा रह । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

मिथुभो ! तो क्या समझते हो रूप निरा है वा अस्तित्व ?

अस्तित्व भन्ते !

इसकिये यह ज्ञान और ऐक पुनर्जन्म की नहीं प्राप्त होता ।

§ ९ नाव मुत्त (२१ ० ५ ९)

मावणा से आभर्यों का क्षय

आवस्ती जेतवत्त ।

मिथुभो ! ज्ञान और ऐक कर में आभर्यों के क्षय का उपदेश करता हूँ बिना जाने देख नहीं ।

* कर्त्तव्य नाम चित्त :— [एक व्यक्ति के लोग] जो कपड़े पर नाना प्रकार के सुगन्धि-सुर्याति के अनुसार चम्पिय विपणित के चित्र प्रियता, यह कम करने से वह पाया है वह कम करने से यह, ऐसा दिखाते हुए चित्र को किये प्रियते हैं ।

—अज्ञकथा ।

भिक्षुओं ! ज्ञान और द्रव्यर आश्रयों का क्षय होता है ?—यह रूप है, यह रूप की उत्पत्ति है, यह रूप का अस्त हो जाना है । यह वेदना , सज्ञा , सम्मर , विज्ञान ।

भिक्षुओं ! हमें ही जनि और द्रव्यर आश्रयों का क्षय होता है ।

भिक्षुओं ! भावना में लगे हुये भिक्षु को ऐसी इच्छा उत्पन्न होती है—अरे ! मेरा चित्त उपादान से रहित हो आश्रयों से मुक्त हो जाय, किन्तु ऐसा नहीं होता है ।

तो क्यों ? कहना चाहिये कि उसका अभ्यास नहीं जमा है । किसका अभ्यास ? चार स्मृति प्रस्थानों का अभ्यास, चार सम्यक् प्रधानों का अभ्यास, चार क्रन्धिपाटों का अभ्यास, पाँच इन्द्रियों का अभ्यास, पाँच बलों का, सात बोध्यज्ञों का, आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का ।

भिक्षुओं ! जैसे, मुर्गी को आठ, दस या बारह अण्डे हों । मुर्गी उन अण्डों को न तो ठीक से देख भाल करे और न ठीक से सेवे ।

उस मुर्गी के मन में ऐसी इच्छा हो, “मेरे बच्चे अपने चगुल में या चाँच में अण्डे को फोड़ कर कुशलता से बाहर चले आवें । तब, ऐसी बात नहीं हो ।

तो क्यों ? क्योंकि मुर्गी ने उन अण्डों को न तो ठीक से देखा भाला और न ठीक से सेवा ।

भिक्षुओं ! वैसे ही, भावना में लगे हुये भिक्षु को ऐसी इच्छा उत्पन्न हो - अरे ! मेरा चित्त उपादान से रहित हो आश्रयों से मुक्त हो जाय, किन्तु ऐसा नहीं हो ।

तो क्यों ? कहना चाहिये कि उसका अभ्यास नहीं जमा है । किसका अभ्यास ? चार स्मृति-प्रस्थानों का ।

भिक्षुओं ! भावना में लगे हुये भिक्षु को ऐसी इच्छा उत्पन्न हो , और यथार्थ में उसका चित्त उपादान से रहित हो आश्रयों से मुक्त हो जाय ।

तो क्यों ? कहना चाहिये कि उसका अभ्यास सिद्ध हो गया है । किसका अभ्यास ? चार स्मृति-प्रस्थानों का ।

भिक्षुओं ! जैसे, मुर्गी को आठ, दस, या बारह अण्डे हों । मुर्गी उन अण्डों को ठीक से देखे भाले और ठीक से सेवे ।

उस मुर्गी के मनमें ऐसी इच्छा हो, “मेरे बच्चे अपने चगुल से या चाँच से अण्डे को फोड़ कर कुशलता से बाहर चले आवें, और यथार्थ में ऐसी ही बात हो ।

भिक्षुओं ! जैसे, बड़ई या बड़ई के शार्गिर्द के बसुले के हथ्थड़ (=बैट) में देखने से अगुलियों और अँगूठे के दाग पड़े मालूम होते हैं । उसे ऐसा ज्ञान नहीं रहता है कि बसुले का हथ्थड़ आज इतना घिसा और कल इतना घिसेगा । किन्तु, उसके घिस जाने पर मालूम होता है कि घिस गया ।

भिक्षुओं ! वैसे ही, भावना में लगे हुये भिक्षु को ऐसा ज्ञान नहीं होता है कि आज तो मेरे आश्रव इतना क्षीण हुये और कल इतना क्षीण होंगे । किन्तु, जब क्षीण हो जाते हैं तभी मालूम होता है कि क्षीण हो गये ।

भिक्षुओं ! जैसे, समुद्र में चलने वाली बैट से बँधी हुई नाव छ महीने पानी में चलाने के बाद हेमन्त में जमीन पर चढ़ा दी जाय । उसके वन्धन धूप हवा में सूख और वर्षा में भीग सड़ गल कर नष्ट हो जाते हैं ।

भिक्षुओं ! वैसे ही, भावना में लगे हुये भिक्षु के सभी वन्धन (=१० संयोजन) नष्ट हो जाते हैं ।

§ १० सङ्ग सुच (२१ २ ५ १०)

अनित्य-संज्ञा की भावना

धावस्ती जेतवन ।

मिथुओ ! अनित्य संज्ञा की भावना करने से सभी कामराग रूपराग भवराग और भविष्य हट जाती है; सभी अहङ्कार और अभिमान समूह नष्ट हो जाते हैं ।

मिथुओ ! जैसे शरत्काल में कृष्ण भण्डे हों से ओतते हुये सभी नष्ट मूक को छिन्न-मिन्न करते हुये ओतता है वैसे ही मिथुओ ! अनित्य संज्ञा की भावना करने से सभी कामराग रूपराग भवराग भविष्य तथा अहङ्कार और अभिमान छिन्न-मिन्न हो जाते हैं ।

मिथुओ ! जैसे घमगाढ़ता घास को गड़ ऊपर पकड़ इधर उधर डोका कर फेंक देता है । मिथुओ ! वैसे ही अनित्य-संज्ञा की भावना करने से सभी कामराग छिन्न मिन्न हो जाते हैं ।

मिथुओ ! जैसे किसी नाम के गुच्छे की इन्हीं कड़ जाले से उसमें छोटे सभी नाम गिर पड़ते हैं । मिथुओ ! वैसे ही अनित्य-संज्ञा की भावना करने से सभी कामराग छिन्न मिन्न हो जाते हैं ।

मिथुओ ! जैसे कूट-गार के सभी धरण कूट की ओर ही जाते हैं कूट की ओर ही लुके होते हैं और कूट ही अन्तम प्रधान होता है । मिथुओ ! वैसे ही अनित्य-संज्ञा की भावना ।

मिथुओ ! वैसे सभी मूल गन्धों में काष्ठानुसारि उत्तम समझी जाती है । मिथुओ ! वैसे ही अनित्य-संज्ञा की भावना ।

मिथुओ ! वैसे सभी सार गन्धा में स्नातकान्वित उत्तम समझा जाता है । मिथुओ ! वैसे ही अनित्य-संज्ञा की भावना ।

मिथुओ ! वैसे सभी पुण्य-गन्धा में कूड़ी उत्तम समझी जाती है ! मिथुओ ! वैसे ही अनित्य-संज्ञा की भावना ।

मिथुओ ! वैसे छोटे मोटे राजा सभी अश्वत्थी राजा के अधीन रहते हैं और अश्वत्थी राजा उनका प्रधान समझा जाता है । मिथुओ ! वैसे ही अनित्य-संज्ञा की भावना ।

मिथुओ ! वैसे सभी ताराओं का प्रधान चन्द्रमा के प्रधान का सोकरावों हिस्सा भी नहीं होता है और चन्द्रमा ताराओं में प्रधान माना जाता है । मिथुओ ! वैसे ही अनित्य-संज्ञा की भावना -- ।

मिथुओ ! जैसे शरत्काल में वायुओं के हट जाने से आकाश के निर्मल हो जाने पर सूर्य उगकर आकाश के सभी अन्धकार को दबा चमकता है तपता है बार सौभित होता है । मिथुओ ! वैसे ही अनित्य संज्ञा की भावना करने से सभी कामराग रूपराग भवराग और भविष्य हट जाती है; सभी अहङ्कार और अभिमान समूह नष्ट हो जाते हैं ।

मिथुओ ! अनित्य संज्ञा की वैसे भावना और अभ्यास करने से सभी कामराग समूह नष्ट हो जाते हैं ?

“बह रूप ई बह रूप की उत्पत्ति है बह रूप का अन्त हो जाता है । बह वेदना । बह संज्ञा । बह संस्कार । बह विज्ञान ।”—मिथुओ ! इस तरह अनित्य-संज्ञा की भावना और अभ्यास करने से सभी कामराग समूह नष्ट हो जाते हैं ।

पुण्यधर्म समाप्त

अग्निप्रमाणानुसक्त समाप्त ।

तीसरा परिच्छेद

चूळ पण्णासक

पहला भाग

अन्त वर्ग

§ १. अन्त सुत्त (२१ ३ १ १)

चार अन्त

आवस्ती जेतवन*** ।

भिक्षुओ ! चार अन्त है । कौन से चार ? (१) सत्काय-अन्त, (२) सत्कायसमुदय-अन्त, (३) सत्कायनिरोध-अन्त, और (४) सत्कायनिरोधगामिनी-प्रतिपदा-अन्त ।

भिक्षुओ ! सत्काय-अन्त क्या है ? कहना चाहिये कि यही पाँच उपादान-स्कन्ध । कौन से पाँच ? यह जो रूप उपादान-स्कन्ध । भिक्षुओ ! इसे कहते हैं 'सत्काय-अन्त' ।

भिक्षुओ ! सत्कायसमुदय-अन्त क्या है ? जो यह तृष्णा, पुनर्जन्म करानेवाली, आनन्द और राग के साथवाली, वहाँ वहाँ स्वाद लेनेवाली । जो यह, काम-तृष्णा, भव-तृष्णा, विभव-तृष्णा । भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं 'सत्कायसमुदय-अन्त' ।

भिक्षुओ ! सत्काय-निरोध-अन्त क्या है ? जो उसी तृष्णा से वैराग्य-पूर्वक निरोध = त्याग = प्रति-नि सर्ग = मुक्ति = अनालय । भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं 'सत्काय निरोध-अन्त' ।

भिक्षुओ ! सत्काय-निरोधगामिनी प्रतिपदा-अन्त क्या- है ? यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग, सम्यक् दृष्टि सम्यक् समाधि । भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं सत्काय-निरोधगामिनी प्रतिपदा-अन्त ।

भिक्षुओ ! यही चार अन्त हैं ।

§ २. दुक्ख सुत्त (२१ ३. १ २)

चार आर्यसत्य

आवस्ती***जैतघन ** ।

भिक्षुओ ! मैं तुम्हें दु ख, दु खसमुदय, दु खनिरोध और दु खनिरोधगामिनी प्रतिपदा का उपदेश करूँगा । उसे सुनो ।

भिक्षुओ ! दु ख क्या है ? यही पाँच उपादान स्कन्ध ।

भिक्षुओ ! दु खसमुदय क्या है ? जो यह तृष्णा ।

भिक्षुओ ! दु खनिरोध क्या है ? जो उसी तृष्णा से वैराग्य-पूर्वक निरोध ।

भिक्षुओ ! दु खनिरोधगामिनी प्रतिपदा क्या है ? यही आर्य-अष्टाङ्गिक मार्ग ।

§ १० सञ्ज्ञा सुप्त (२१ २ ५ १०)

अभित्य-संज्ञा की भावना

यावस्ती जेतयम ।

मिथुभो ! अभित्य संज्ञा की भावना करने से सभी कामराग रूपराग, मभराग और अविद्या इद जाती है। सभी अहङ्कार और अभिमान समूक नष्ट हो जाते हैं ।

मिथुभो ! जैसे शरत्काल में कृष्ण अण्डे होल से जोतते हुये सभी बड़े मूढ को छिन्न-भिन्न करते हुए जोतता है वैसे ही मिथुभा ! अभित्य संज्ञा की भावना करने से सभी कामराग रूपराग मपराग अविद्या तथा अहङ्कार और अभिमान छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ।

मिथुभो ! जैसे प्रमगदवा घास को गड़ छपर पकड़ छपर उधर होकर कर कैंक देता है । मिथुभा ! वैसे ही अभित्य-संज्ञा की भावना करने से सभी कामराग छिन्न मिन्न हो जाते हैं ।

मिथुभो ! जैसे किसी नाम के गुच्छ की इहनी कर जाने से उसमें लगे सभी नाम गिर पड़ते हैं । मिथुभो ! वैसे ही अभित्य-संज्ञा की भावना करने से सभी कामराग छिन्न मिन्न हो जाते हैं ।

मिथुभो ! जैसे कूटगार के सभी धाग कूट की ओर ही जाते हैं कूट की ओर ही लुके होते हैं और कूट ही उनका प्रधान होता है । मिथुभो ! वैसे ही अभित्य-संज्ञा की भावना ।

मिथुभो ! जैसे सभी मूक-गणों में कासानुसारी उत्तम समझी जाती है । मिथुभो ! वैसे ही अभित्य-संज्ञा की भावना ।

मिथुभो ! जैसे सभी धार गणों में छालबन्धन उत्तम समझा जाता है । मिथुभो ! वैसे ही अभित्य संज्ञा की भावना ।

मिथुभो ! जैसे सभी पुण्य-गणों में लूही उत्तम समझी जाती है । मिथुभो ! वैसे ही अभित्य संज्ञा की भावना ।

मिथुभो ! जैसे छोटे मोटे राजा सभी खड्गवर्ती राजा के आधीन रहते हैं और खड्गवर्ती राजा उनका प्रधान समझा जाता है । मिथुभो ! वैसे ही अभित्य-संज्ञा की भावना ।

मिथुभो ! जैसे सभी ताराका का प्रकाश चन्द्रमा के प्रकाश का सोकरहो हिस्सा भी नहीं होता है और चन्द्रमा ताराओं में प्रधान माना जाता है । मिथुभो ! वैसे ही अभित्य-संज्ञा की भावना ।

मिथुभो ! जैसे शरत्काल में शत्रुओं के हट जाने से आकाश के निर्मल हो जाने पर सूर्य उगकर आकाश के सभी अन्धकार को हटा कमकता है तपता है और आभित होता है । मिथुभा ! वैसे ही अभित्य संज्ञा की भावना करने से सभी कामराग रूपराग मभराग और अविद्या इद जाती है। सभी अहङ्कार और अभिमान समूक नष्ट हो जाते हैं ।

मिथुभो ! अभित्य-संज्ञा की जैसे भावना और लम्बास करने से सभी कामराग समूक नष्ट हो जाते हैं ।

‘बह रूप है बह रूप की उत्पत्ति है बह रूप का अस्त हो अपा है । बह वेदना । बह संज्ञा । यह संस्कार । यह विज्ञान । —मिथुभो ! इस तरह अभित्य-संज्ञा की भावना और लम्बास करने से सभी कामराग समूक नष्ट हो जाते हैं ।

पुण्यवर्ग समस्त

मक्षिमगणनासक समाप्त ।

दोष और छुटकारा को यथार्थतः जानता है, इसी से वह स्रोतापन्न होता है, वह मार्ग से च्युत नहीं हो सकता, वह परमज्ञान को अवश्य प्राप्त करेगा ।

§ ८. अरहा सुत्त (२१. ३. १. ८)

अर्हत्

श्रावस्ती ' जेतवन ' ।

भिक्षुओ ! क्योंकि भिक्षु इन पाँच उपादान-स्कन्धों के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और छुटकारा को यथार्थतः जान उपादानरहित हो विमुक्त हो जाता है, इसी से वह अर्हत् = क्षीणाश्रव = ब्रह्मचर्यवास समाप्त कर लेनेवाला = कृतकृत्य = भारमुक्त = अनुप्राप्तसदर्थ = भवबन्धन जिसके क्षीण हो गये हैं = परमज्ञान से विमुक्त कहा जाता है ।

§ ९. पठम छन्दराग सुत्त (२१. ३. १. ९)

छन्दराग का त्याग

श्रावस्ती ' जेतवन ' ।

भिक्षुओ ! रूप के प्रति जो तुम्हारा छन्द=राग=नन्दि=तृष्णा है उसे छोड़ दो । इस तरह वह रूप ग्रहीण हो जायगा, उच्छिन्नमूल, शिर कटे ताड़ के ऐसा, मिटाया हुआ, भविष्य में जो उग नहीं सकता ।
वेदना , सज्ञा , सस्कार , विज्ञान के प्रति ।

§ १०. दुतिय छन्दराग सुत्त (२१. ३. १. १०)

छन्दराग का त्याग

श्रावस्ती ' जेतवन ' ।

भिक्षुओ ! रूप के प्रति जो तुम्हारे छन्द=राग=नन्दि=तृष्णा, उपाय, उपादान, चित्त का अधिष्ठान अभिनिवेश, अनुशय हैं उन्हें छोड़ दो । इस तरह वह रूप ग्रहीण ।
वेदना , सज्ञा , सस्कार , विज्ञान ।

अन्न वर्ग समाप्त

§ ३ सप्तकाय सुत्त (२१ अ. १ ३)

सप्तकाय

आपस्ती जेतथन ।

मिथुओ ! मैं तुम्हें सप्तकाय सत्त्वयमसुत्त सप्तकाय-निरोध और सत्त्वयमनिरोधगामिनी प्रतिपदा का उपदेश करूँगा ।

[एवम]

§ ४ परिज्जेय्य सुत्त (२१ अ. १ ४)

परिज्जेय घम

आपस्ती जेतथन ।

मिथुओ ! मैं तुम्हें परिज्जेय घमों का उपदेश करूँगा परिज्ञा का और परिज्ञाता का । सुओ ।

मिथुओ ! परिज्जेय घम कौन हैं ? रूप परिज्जेय घम है वेदना संज्ञा संस्कार विज्ञान परिज्जेय घम है । मिथुओ ! इन्हीं को परिज्जेय घम कहते हैं ।

मिथुओ ! परिज्ञा क्या है ? राग-क्षय द्वेष-क्षय मोह-क्षय । मिथुओ ! इमी का परिज्ञा कहते हैं ।

मिथुओ ! परिज्ञाता पुद्गल क्या है ? जर्हन्, वा आयुप्मान् इम नाम और गोन के हैं—

मिथुओ ! इसे कहते हैं परिज्ञाता पुद्गल ।

§ ५ पठम समण सुत्त (२१ अ. १ ५)

पौष उपादान स्कन्ध

आपस्ती जेतथन ।

मिथुओ ! पौष उपादान-स्कन्ध है । कौन से पौष ? जो वह रूप-उपादान-स्कन्ध ।

मिथुओ ! जो अमय वा मादम इत पौष उपादान-स्कन्धों के आत्मात् होय और सुदमरा को बधार्थता नहीं जानते हैं , जानते हैं वे स्वयं ज्ञान का साक्षात्कार कर ज्ञान को प्राप्त हो बिहार करते हैं ।

§ ६ दुत्थिय समण सुत्त (२१ अ. १ ६)

पौष उपादान स्कन्ध

आपस्ती जेतथन ।

मिथुओ ! जो अमय वा मादम इत पौष उपादान-स्कन्धों के समुत्पन्न, जस्त होने, आत्मात्, होय और सुदमरा की बधार्थता नहीं जानते हैं , जानते हैं, वे स्वयं ज्ञान का साक्षात्कार कर ।

§ ७ सोत्तापन्न सुत्त (२१ अ. १ ७)

सोत्तापन्न को परमज्ज्ञान की प्राप्ति

आपस्ती जेतथन ।

मिथुओ ! जबकि आर्षआपन्न इत पौष उपादान-स्कन्धों के समुत्पन्न जस्त होने, आत्मात्

द्रोप ओर नुटकारा को यथार्थतः जानता है, इसी से वह खोनापत्र होता है, वह मार्ग से च्युत नहीं हो सकता, वह परमज्ञान को अवश्य प्राप्त करेगा ।

§ ८. अरहा सुत्त (२१. ३. १. ८)

अर्हन्

श्रावस्ती* जेतवन* ।

भिक्षुओ ! क्योंकि भिक्षु इन पाँच उपादान-स्कन्धों के समुदय, अस्त होने, आम्वाद्, द्रोप और नुटकारा को यथार्थतः जान उपादानरहित हो विमुक्त हो जाता है, इसी से वह अर्हन् = क्षीणाश्रव = प्रत्यक्षचर्यवास समाप्त कर लेनेवाला = कृतकृत्य = भारमुक्त = अनुप्राप्तसदर्थ = भवबन्धन जिसके क्षीण हो गये हैं = परमज्ञान से विमुक्त कहा जाता है ।

§ ९. पठम छन्दराग सुत्त (२१. ३. १. ९)

छन्दराग का त्याग

श्रावस्ती* जेतवन* ।

भिक्षुओ ! रूप के प्रति जो तुम्हारा छन्द=राग=नन्दि=तृष्णा है उसे छोड़ दो । इस तरह वह रूप प्रहीण हो जायगा, उच्छिन्नमूल, शिर कटे ताड़ के ऐसा, मिटाया हुआ, भविष्य में जो उग नहीं सकता ।
वेदना , सज्ञा , स्फुरार* , विज्ञान के प्रति ।

§ १०. दुतिय छन्दराग सुत्त (२१. ३. १. १०)

छन्दराग का त्याग

श्रावस्ती* जेतवन* ।

भिक्षुओ ! रूप के प्रति जो तुम्हारे छन्द=राग=नन्दि=तृष्णा, उपाय, उपादान, चित्त का अधिष्ठान अभिनिवेश, अनुशय हैं उन्हें छोड़ दो । इस तरह वह रूप प्रहीण ।

वेदना , सज्ञा , स्फुरार , विज्ञान ।

अन्न वर्ग समाप्त

दूसरा भाग

धर्मकथिक वर्ग

§ १ पठम भिक्षु सुत्त (२१ ३ २ १)

अधिष्ठा क्या है ?

आपस्ती जेतवम ।

एक ओर बैठ उस भिक्षु ने भगवान् को वहीं आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ उस भिक्षु ने भगवान् से यह कहा “मस्ते ! लोग अधिष्ठा अधिष्ठा” कहा करते हैं । मस्ते ! अधिष्ठा क्या है ? अधिष्ठा कैसे होती है ?

भिक्षु ! कोई अशुभकृत्यक रूप को नहीं जानता है रूप के समुद्ब को नहीं जानता है रूप के निरोध को नहीं जानता है, रूप की निरोधगामिनी प्रतिपदा (२२ मार्ग) का नहीं जानता है ।

वेदना को ; संज्ञा को ; संस्कार को ; विज्ञान को ।

भिक्षु ! इसी को कहते हैं अधिष्ठा । इसी से अधिष्ठा होती है ।

§ २ दुतिय भिक्षु सुत्त (२१ ३ २ २)

बिष्ठा क्या है ?

आपस्ती जेतवम ।

एक ओर बैठ उस भिक्षु ने भगवान् को कहा “मस्ते ! लोग बिष्ठा बिष्ठा कहा करते हैं । भल्ल ! बिष्ठा क्या है ? बिष्ठा किमस होती है ?”

भिक्षु ! कोई पवित्र आर्यसाधक रूप को जानता है रूप के समुद्ब का । रूप के निरोध का रूप की निरोधगामिनी प्रतिपदा का जानता है ।

वेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

भिक्षु ! इसी को बिष्ठा कहते हैं इसी से बिष्ठा होती है ।

§ ३ पठम कथिक सुत्त (२१ ३ २ ३)

कोई धर्मकथिक कैसे होता ?

आपस्ती जेतवम ।

एक ओर बैठ उस भिक्षु ने भगवान् का कहा “भल्ल ! लोग ‘धर्मकथिक’ ‘धर्मकथिक’ कहा करते हैं । मस्ते ! कोई धर्मकथिक कैसे होता है ?

भिक्षु ! यदि कोई रूप से विषेद्वर्त्तराग्य धरन आर उससे निरोध का विषय में उपदेश करे तो धनन आर से वह धर्मकथिक कहा जा सकता है । भिक्षु ! यदि कोई रूप का विषेद्वर्त्तराग्य और निरोध के विषे धननोत्त है। तो धनन से वह धर्मावुधर्मप्रतिपदा कहा जा सकता है । भिक्षु ! यदि कोई रूप का

निर्वेद=वैराग्य और निरोध से उपादानरहित हो विमुक्त हो गया हो तो कहा जायगा कि उसने अपने देखते ही देखते निर्वाण पा लिया ।

वेदना • । संज्ञा • । संस्कार • । विज्ञान • ।

§ ४. दुतिय कथिक सुत्त (२१ ३ २ ४)

कोई धर्मकथिक कैसे होता ?

श्रावस्ती • • • जेतवन ।

भन्ते ! कोई धर्मकथिक कैसे होता है ? कोई धर्मानुधर्मप्रतिपन्न कैसे होता है ? कोई अपने देखते ही देखते निर्वाण कैसे प्राप्त कर लेता है ?

[ऊपर जैसा]

§ ५. बन्धन सुत्त (२१ ३. २. ५) -

बन्धन

श्रावस्ती जेतवन • ।

भिक्षुओ ! अज्ञ = पृथक्जन रूप को आत्मा समझता है, रूपवान् आत्मा है ऐसा समझता है, आत्मा रूप है, या रूप में आत्मा है ऐसा समझता है । भिक्षुओ ! कहा जाता है कि यह अज्ञ = पृथक्जन रूप के बन्धन से बँधा है, बाहर और भीतर गाँठ से जकड़ा है, तीर को नहीं देख पाता, पार को नहीं देख पाता, बद्ध ही उत्पन्न होता है, बद्ध ही मरता है और बद्ध ही इस लोक से परलोक को जाता है ।

वेदना • । संज्ञा • । संस्कार • । विज्ञान • ।

भिक्षुओ ! पण्डित आर्यश्रावक रूप को आत्मा नहीं समझता है, रूपवान् आत्मा है ऐसा नहीं समझता है, आत्मा में रूप है या रूप में आत्मा है ऐसा नहीं समझता है । भिक्षुओ ! कहा जाता है कि यह पण्डित आर्यश्रावक रूप के बन्धन से नहीं बँधा है, बाहर और भीतर गाँठ से नहीं जकड़ा है, तीर को देखनेवाला है, पार को देखनेवाला है । वह दुःख से मुक्त हो गया है ऐसा मैं कहता हूँ ।

वेदना • । संज्ञा • । संस्कार • । विज्ञान • ।

§ ६ पठम परिमुच्चित सुत्त (२१ ३ २. ६)

रूप के यथार्थ ज्ञान से पुनर्जन्म नहीं

• श्रावस्ती जेतवन • ।

भिक्षुओ ! क्या तुम रूप को 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है' ऐसा समझते हो ? नहीं भन्ते !

ठीक है, भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा ही यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक समझ लेना चाहिये ।

वेदना • , संज्ञा • , संस्कार • , विज्ञान • ।

इस प्रकार देख और जान पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है ।

§ ७. दुतिय परिमुच्चित सुत्त (२१ ३ २. ७)

रूप के यथार्थ ज्ञान से पुनर्जन्म नहीं

श्रावस्ती जेतवन • ।

[ठीक ऊपर जैसा]

§ ८ सम्प्रोजन सुच (२१ ३ २ ८)

संयोजन

भावस्ती 'जेतयन' ।

मिथुमो ! संयोजनीय धर्म और संयोजन के विषय में उपदेश करूँगा । उसे सुनो ।

मिथुमो ! संयोजनीय धर्म कीव से है और संयोजन क्या है ?

मिथुमो ! रूप संयोजनीय धर्म है, जो उसके प्रति उम्ह-राग है वह संयोजन है ।

बैदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

मिथुमो ! यही संयोजनीय धर्म और संयोजन कहलाते हैं ।

§ ९ उपादान सुच (२१ ३ २ ९)

उपादान

भावस्ती 'जेतयन' ।

मिथुमो ! उपादानीय धर्म और उपादान के विषय में उपदेश करूँगा । उसे सुनो ।

मिथुमो ! रूप उपादानीय धर्म है, और उसके प्रति भी उम्ह-राग है वह उपादान है ।

बैदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

§ १० सील सुच (२१ ३ २ १०)

शीलधाम् के मनन-योग्य धर्म

एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र और आयुष्मान् महाकोट्टिन पाराप्पसी के पास श्रुतिपुत्रन सुगदाय में विहार करते थे ।

तब आयुष्मान् महाकोट्टिन सीध्या समय प्यास से बड़ बड़ों आयुष्मान् सारिपुत्र से वहाँ गये ।

वह बोले "आयुस सारिपुत्र ! शीकवाप् मिथु को किन धर्मों का शीक संभल करना चाहिये ?"

आयुस कोट्टिन ! शीकवाप् मिथु को शीक से भलन करना चाहिये । कि—ये पाँच उपादान स्कन्ध अनित्य हुत्वा रोग दुर्गन्ध बाध पाप पीड़ा पराया झुल्ल, दुःख और भवारम हैं ।

कीव से पाँच । जो वह रूप उपादान स्कन्ध ।

आयुस ! ऐसा ही सरता है, कि शीकवाप् मिथु पाँच उपादान-स्कन्धों का ऐसा भलन कर कोतापसि के फल का साक्षात्कार कर के ।

आयुस सारिपुत्र ! कोतापस मिथु को किन धर्मों का शीक से भलन करना चाहिये ?

आयुस कोट्टिन ! कोतापस मिथु को भी वही शीक से भलन करना चाहिये कि ये पाँच उपादान-स्कन्ध अनित्य । आयुस ! हाँ सक्ता है कि कोतापस मिथु ऐसा भलन कर सङ्कसामसी—अवगामी अर्हत् के फल का साक्षात्कार कर के ।

आयुस सारिपुत्र ! अर्हत् को किन धर्मों का शीक से भलन करना चाहिये ?

आयुस कोट्टिन ! अर्हत् को भी वही भलन करना चाहिये कि—ये पाँच उपादान स्कन्ध अनित्य हुत्वा रोग दुर्गन्ध बाध पाप पीड़ा—अवारम है । आयुस ! अर्हत् को झुल्ल और करना का किने का नास करना नहीं रहता है इन धर्मों की भावना का अन्धास यहाँ सुखपूर्वक विहार करने तथा श्रुतिमात्र और संभव रहने के किने होता है ।

§ ११. सुत्तवा सुत्त (२१ ३. २ ११)

श्रुतवान् के मनन योग्य धर्म

पाराणसी * ।

['शीलवान्' के बदले 'श्रुतवान्' कर्मके ऊपर जैसा ज्यों का त्यों]

§ १२. पठम कप्प सुत्त (२१ ३ २ १२)

अहंकार का त्याग

श्रावस्ती***जेनवन * ।

तय, आयुष्मान् कप्प * एक ओर बैठ, भगवान् से बोले, "भन्ते ! क्या जान और देख इस विज्ञानवाले शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार, ममङ्कार, मान और अनुशय नहीं होते हैं ?

कप्प ! जो कुछ रूप—अतीत, अनागत —है सभी न मेरा है, न मैं हूँ और न मेरा आत्मा है। इसे जो यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक देखता है। वेदना । संज्ञा* । विज्ञान** ।

कप्प ! इसे ही जान ओर देखकर इस विज्ञानवाले शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार** नहीं होते हैं ।

§ १३. दुतिय कप्प सुत्त (२१. ३. २ १३)

अहंकार के त्याग से मुक्ति

* भन्ते ! क्या जान और देख इस विज्ञानवाले शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार, ममङ्कार, मान और अनुशय से रहित बन, द्वन्द्व से परे हो शान्त और सुविमुक्त होता है ।

कप्प ! जो रूप—अतीत, अनागत —है सभी न मेरा है, न मैं हूँ और न मेरा आत्मा है । इसी को यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक देख लेने से कोई उपादानरहित हो विमुक्त हो जाता है ।

वेदना* । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

कप्प ! इसे ही जान और देख इस विज्ञानवाले शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार ममङ्कार, मान और अनुशय से रहित बन, मन द्वन्द्व से परे हो, शान्त और सुविमुक्त होता है ।

धर्मकथिक वर्ग समाप्त

तीसरा भाग

अविद्या वर्ग

४ १ प्रथम समुदयधम्म सुत्त (२१ ३ ३ १)

अविद्या क्या है ?

आधस्ती अेतयत्त ।

तब कोई भिक्षु वहीं भगवान् से वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठ उस भिक्षु ने भगवान् को कहा “भन्ते ! लोग ‘अविद्या अविद्या’ कहा करते हैं । भन्ते ! अविद्या क्या है ? कोई अविद्या में कैसे पड़ता है ?”

भिक्षु ! अज्ञानरूप समुदयधर्मा (=उदरज हीना जिसका स्वभाव है) रूप को समुदयधर्मा के ऐसा तत्त्वतः नहीं जानता है । व्यवधर्मा रूप को व्यवधर्मा के ऐसा तत्त्वतः नहीं जानता है । समुदय-व्यवधर्मा रूप को समुदय-व्यवधर्मा रूप के ऐसा तत्त्वतः नहीं जानता है ।

समुदयधर्मा वेदना को , संज्ञा को , संस्कार को , विज्ञान को ।

भिक्षु ! इसी को ‘अविद्या’ कहते हैं । इसी से कोई अविद्या में पड़ता है ।

इस पर, उस भिक्षु ने भगवान् को कहा “भन्ते ! लोग ‘विद्या विद्या’ कहा करते हैं । भन्ते ! विद्या क्या है ? किसी को विद्या कैसे होती है ?”

भिक्षु ! पवित्र आर्षेयानक समुदयधर्मा रूप को समुदयधर्मा के ऐसा तत्त्वतः जानता है । व्यवधर्मा रूप को व्यवधर्मा के ऐसा तत्त्वतः जानता है । समुदय-व्यवधर्मा रूप को समुदय-व्यवधर्मा के ऐसा तत्त्वतः जानता है ।

वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

भिक्षु ! यही विद्या है । किसी को विद्या ऐसी ही होती है ।

४ २ दुतिय समुदयधम्म सुत्त (२१ ३ ३ २)

अविद्या क्या है ?

एक समय आयुप्मान् सारिपुत्त और आयुप्मान् महाकोट्टित धारणसी के पास कपिपत्तल भृगदाय में बिहार करते थे ।

तब वेत्था समय आयुप्मान् महाकोट्टित आयुप्मान् सारिपुत्त से बोले “अजुस सारिपुत्त ! लोग ‘अविद्या अविद्या’ कहा करते हैं । अजुस ! अविद्या क्या है ? कोई अविद्या में कैसे पड़ता है ?”

अजुस ! अज्ञानरूप समुदयधर्मा रूप को । [ऊपर वैया]

४ ३ ततिय समुदयधम्म सुत्त (२१ ३ ३ ३)

विद्या क्या है ?

कपिपत्तल भृगदाय “।

अजुस ! लोग ‘विद्या विद्या’ कहा करते हैं । अजुस ! विद्या क्या है ? कोई विद्या कैसे जान करता है ।

आबुस । पण्डित आर्यश्रावक समुदयधर्मा रूपको ।

[ऊपर जैसा]

§ ४. पठम अस्साद सुत्त (२१. ३. ३. ४)

अविद्या क्या है ?

ऋषिपतन मृगदाय ।

‘आबुस सारिपुत्र ! लोग ‘अविद्या, अविद्या’ कहा करते हैं । आबुस ! अविद्या क्या है ? कोई अविद्या में कैसे पड़ता है ?

आबुस ! अज्ञ=पृथक्जन रूप के आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानता है ।

वेदना के , संज्ञा के , संस्कार के , विज्ञान के ।

आबुस ! यही अविद्या है । ऐसे ही कोई अविद्या में पड़ता है ।

§ ५. दुतिय अस्साद सुत्त (२१. ३. ३. ५)

विद्या क्या है ?

ऋषिपतन मृगदाय ।

आबुस सारिपुत्र ! लोग ‘विद्या, विद्या’ कहा करते हैं । आबुस ! विद्या क्या है...?

आबुस ! पण्डित आर्यश्रावक रूप के आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जानता है ।

वेदना के , संज्ञा के , संस्कार के , विज्ञान के ।

आबुस ! यही विद्या है ।

§ ६ पठम समुदय सुत्त (२१ ३ ३ ६)

अविद्या

ऋषिपतन मृगदाय ।

आबुस ! अज्ञ = पृथक्जन रूप के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानता है ।

वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

आबुस ! यही अविद्या है ।

§ ७. दुतिय समुदय सुत्त (२१ ३. ३ ७)

विद्या

ऋषिपतन मृगदाय ।

आबुस ! पण्डित आर्यश्रावक रूप के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जानता है ।

वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

आबुस ! यही विद्या है ।

§ ८. पठम कोट्टित सुत्त (२१ ३. ३. ८)

अविद्या क्या है ?

ऋषिपतन मृगदाय ।

तव, सारिपुत्र संध्या समय ।

एक और वंश आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् महाकोटित से बोले 'आयुस महाकोटित ! लोग 'अविद्या अविद्या' कहा करते हैं । आयुस ! अविद्या क्या है ?'

आयुस ! अज्ञ = दृषद्भूत रूप के आस्वाद, शेष और मोक्ष को वयार्थता नहीं जानता है ।
वेदना विज्ञान ।

आयुस ! यही अविद्या है ।

इस पर आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् कोटित से बोले " आयुस ! विद्या क्या है ?"

आयुस ! आस्वाद रूप और मोक्ष को वयार्थता जानता है । यही विद्या है ।

५ ९ द्वितीय कोटित सृष्ट (२१ ३ ३ ९)

विद्या

क्षयिपत्तन मृगशाय ।

आयुस कोटित ! अविद्या क्या है ?

आयुस ! अज्ञ = दृषद्भूत रूप के समुद्रय अस्त होने आस्वाद, शेष और मोक्ष को वयार्थता नहीं जानता है ।

आयुस ! यही अविद्या है ।

इस पर, आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् महाकोटित से बोले आयुस कोटित !
विद्या क्या है ?

आयुस ! पण्डित आर्षब्राह्मण रूप के समुद्रय अस्त होने, आस्वाद रूप और मोक्ष को वयार्थता जानता है ।

आयुस ! यही विद्या है ।

५ १० तृतीय कोटित सृष्ट (२१ ३ ३ १०)

विद्या और अविद्या

क्षयिपत्तन मृगशाय ।

आयुस ! अज्ञ = दृषद्भूत रूप को नहीं जानता है रूप के समुद्रय को नहीं जानता है, रूप के विरोध को नहीं जानता है रूप के निरोधगामी मार्ग को नहीं जानता है ।

वेदना विज्ञान ।

आयुस ! यही अविद्या है ।

आयुस ! पण्डित आर्षब्राह्मण रूप को जानता है, रूप के समुद्रय को जानता है, रूप के विरोध को जानता है, रूप के निरोधगामी मार्ग को जानता है ।

वेदना विज्ञान ।

आयुस ! यही विद्या है ।

अविद्या अर्थ समाप्त

चौथा भाग

कुक्कुल वर्ग

§ १. कुक्कुल सुत्त (२१. ३. ४. १)

रूप धधक रहा है

श्रावस्ती " जेतवन "।

भिक्षुओ ! रूप धधक रहा है । वेदना "। सज्ञा" । सस्कार । विज्ञान धधक रहा है ।

भिक्षुओ ! पण्डित आर्यश्रावक रूप को ऐसा जान, रूप से निर्वेद करता है, वेदना से " , संज्ञा से " , सस्कार से " , विज्ञान से " ।

निर्वेद करने से राग-रहित हो जाता है पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता ।

§ २. पठम अनिच्च सुत्त (२१. ३. ४. २)

अनित्य से इच्छा हटाओ

श्रावस्ती जेतवन "।

भिक्षुओ ! जो अनित्य है उससे तुम्हें अपनी इच्छा हटा लेनी चाहिये । भिक्षुओ ! क्या अनित्य है ?

रूप अनित्य है, उससे तुम्हें अपनी इच्छा हटा लेनी चाहिये । वेदना "। सज्ञा" । सस्कार" । विज्ञान" ।

भिक्षुओ ! जो अनित्य है उससे तुम्हें अपनी इच्छा हटा लेनी चाहिये ।

§ ३-४. दुतिय-ततिय-अनिच्च सुत्त (२१. ३. ४. ३-४)

अनित्य से छन्दराग-हटाओ

श्रावस्ती " जेतवन "।

भिक्षुओ ! जो अनित्य है उससे तुम्हें अपना राग छन्दराग हटा लेना चाहिये ।

§ ५-७. पठम-दुतिय-ततिय दुक्ख सुत्त (२१. ३. ४. ५-७)

दुःख से राग हटाओ

श्रावस्ती " जेतवन "।

भिक्षुओ ! जो दुःख है उससे तुम्हें अपना छन्द (= इच्छा) , राग " , इच्छाराग हटा लेना चाहिये ।

एक ओर ये आमुष्मान् सारियुत्र आमुष्मान् महाकोटित से बोले "आमुस महाकोटित !
जोय 'अविद्या अविद्या' कहा करते हैं । आमुस ! अविद्या क्या है ।

आमुस ! अज्ञ = एषकञ्चन रूप के आस्वाद, शोष और मोक्ष को पर्याप्त नहीं जानता है ।
वेदना विज्ञान ।

आमुस ! पही अविद्या है ।

इस पर आमुष्मान् सारियुत्र आमुष्मान् कोटित से बोले " आमुस ! विद्या क्या है ? "

आमुस ! आस्वाद शोष और मोक्ष को पर्याप्तता जानता है । पही विद्या है ।

४ ९ दुतिय कोटित सुत्र (२१ ३ ३ ९)

विद्या

कपिपतन मृगदाय ।

आमुस कोटित ! अविद्या क्या है ?

आमुस ! अज्ञ = एषकञ्चन रूप के समुदय अस्त होने आस्वाद शोष और मोक्ष को पर्याप्त
नहीं जानता है ।

आमुस ! पही अविद्या है ।

इस पर, आमुष्मान् सारियुत्र आमुष्मान् महाकोटित से बोले " आमुस !
विद्या क्या है ?

आमुस ! परिष्ठ आर्यभाषक रूप के समुदय अस्त होने, आस्वाद, शोष और मोक्ष
जानता है ।

आमुस ! पही विद्या है ।

४ १० ततिय कोटित सुत्र (२१ ३ ३ १)

विद्या और अविद्या

कपिपतन मृगदाय ।

आमुस ! अज्ञ = एषकञ्चन रूप को नहीं जानता है रूप
के विरोध को नहीं जानता है रूप के विरोधवासी सत्ता को नहीं -

वेदना विज्ञान ।

आमुस ! पही अविद्या है ।

आमुस ! परिष्ठ आर्यभाषक रूप को जानता
विरोध को जानता है, रूप के विरोधवासी सत्ता को जान

वेदना विज्ञान ।

आमुस ! पही विद्या है ।

अविद्या ।

पाँचवाँ भाग

दृष्टि वर्ग

§ १. अज्ज्ञात्तिक सुत्त (२१. ३ ५ १)

अध्यात्मिक सुख-दुःख

श्रावस्ती • जेतवन ।

भिक्षुओ ! किसके होने से, किसके उपादान से आध्यात्मिक सुख-दुःख उत्पन्न होते हैं ?

भन्ते ! हमारे धर्म के मूल तो भगवान् ही हैं ।

भिक्षुओ ! रूप के होने से, रूप के उपादान से आध्यात्मिक सुख-दुःख उत्पन्न होते हैं । वेदना के होने से । संज्ञा । सस्कार • । विज्ञान ।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

भन्ते ! अनित्य है ।

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?

भन्ते ! दुःख है ।

जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है उसका उपादान नहीं करने में क्या आध्यात्मिक सुख-दुःख उत्पन्न होंगे ?

नहीं भन्ते !

वेदना • । संज्ञा । सस्कार । विज्ञान ।

इसे जान और देख, पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है ।

§ २. एतं मम सुत्त (२१. ३ ५. २)

‘यह मेरा है’ की समझ क्यों ?

श्रावस्ती • जेतवन • ।

भिक्षुओ ! किसके होने से, किसके उपादान से, किसके अभिनिवेश से कोई ऐसा समझने लगता है कि—यह मेरा है, यह मैं हूँ, और यह मेरा आत्मा है ?

धर्म के मूल भगवान् ही हैं ।

भिक्षुओ ! रूप के होने से, रूप के उपादान से, रूप के अभिनिवेश से कोई ऐसा समझने लगता है कि—यह मेरा है, यह मैं हूँ, और यह मेरा आत्मा है । वेदना के होने से । संज्ञा । सस्कार । विज्ञान ।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ।

इसे जान और देख, पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है ।

§ ८-१० पठम-वृत्तिम-सविम मनस सुच (२१ ३ ४ ८-१०)

अनारम से राग इटाओ

भावस्ती जेतवन ।

मिथुओ ! ओ कबाध है उससे तुम्हें अपना छन्द राग , छन्दराग इस सेवा प्यहिने ।

§ ११ पठम कुलपुच सुच (२१ ३ ४ ११)

वैराग्य-पूर्वक विहरना

भावस्ती जेतवन ।

मिथुओ ! अहा से प्रवर्जित कुकपुत्र का यह धर्म है कि सदा रूप के प्रति वैराग्य-पूर्वक विहार करे । वैराग्य के प्रति । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

इस प्रकार वैराग्य-पूर्वक विहार करते हुये वह रूप का ज्ञान होता है वैराग्य को ज्ञान होता है विज्ञान को ज्ञान होता है ।

वह रूप को ज्ञान कर वैराग्य को विज्ञान को ज्ञान कर, रूप से मुक्त हो जाता है विज्ञान से मुक्त हो जाता है । अति बरा मरम लोक परिदेव दुःख, हीनमनस और अपाचास से मुक्त हो जाता है । कबना दुःख से मुक्त हो जाता है—येसा में कहता हूँ ।

§ १२ दुविय कुलपुच सुच (२१ ३ ४ १२)

अमित्य-बुद्धि से विहरना

भावस्ती जेतवन ।

मिथुओ ! अहा से प्रवर्जित हुये कुकपुत्र का यह धर्म है कि रूप के प्रति अमित्य-बुद्धि से विहार करे । वैराग्य के प्रति । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान के प्रति ।

दुःख से मुक्त हो जाता है—येसा में कहता हूँ ।

§ १३ दुक्ख सुच (२१ ३ ४ १३)

अनात्म-बुद्धि से विहरना

भावस्ती जेतवन ।

“रूप के प्रति अनात्म-बुद्धि से विहार करे ।

दुःख से मुक्त हो जाता है—येसा में कहता हूँ ।

कूपकुछ बर्ग समाप्त

पाँचवाँ भाग

दृष्टि वर्ग

§ १. अज्ज्ञात्तिक सुत्त (२१. ३ ५. १)

आध्यात्मिक सुख दुःख

आवस्ती जेतवन ।

भिक्षुओ ! किसके होने से, किसके उपादान से आध्यात्मिक सुख-दुःख उत्पन्न होते हैं ?

भन्ते ! हमारे धर्म के मूल भी भगवान् ही हैं ॥

भिक्षुओ ! रूप के होने से, रूप के उपादान से आध्यात्मिक सुख-दुःख उत्पन्न होते हैं । वेदना के होने से ॥ सज्ञा ॥ संस्कार ॥ विज्ञान ॥

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

भन्ते ! अनित्य है ।

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?

भन्ते ! दुःख है ।

जो अनित्य, दुःख और परिपक्वमयील है उसका उपादान नहीं करने से क्या आध्यात्मिक सुख-दुःख उत्पन्न होंगे ?

नहीं भन्ते ।

वेदना ॥ सज्ञा ॥ संस्कार ॥ विज्ञान ॥

इसे जान और देख, पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है ।

§ २. एतं मम सुत्त (२१. ३ ५. २)

‘यह मेरा है’ की समझ क्यों ?

आवस्ती जेतवन ।

भिक्षुओ ! किसके होने से, किसके उपादान से, किसके अभिनिवेश से कोई ऐसा समझने लगता है कि—यह मेरा है, यह मैं हूँ, और यह मेरा आत्मा है ?

धर्म के मूल भगवान् ही हैं ।

भिक्षुओ ! रूप के होने से, रूप के उपादान से, रूप के अभिनिवेश से कोई ऐसा समझने लगता है कि—यह मेरा है, यह मैं हूँ, और यह मेरा आत्मा है । वेदना के होने से । सज्ञा । संस्कार । विज्ञान ॥

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ।

इसे जान और देख, पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है ।

३३ एसी अच्छा सुष (२१ अ. ५. ३)

‘भारमा लोक ह’ की मिथ्या-दृष्टि क्यों ?

आपस्ती जलपन ।

मिथुनी ! किसके होने से किसी उपादान से जिससे अनिमित्त से ऐसी मिथ्या-दृष्टि (मिथ्या धारणा) उत्पन्न होती है—जो भावना है वह झूठ है सो मैं मरकर गिर्य = धुप = साक्ष्य = अनिमित्त विचार-बर्मा हो जाऊँगा ।

धर्म के मूल भावना ही ।

मिथुनी ! रूप के होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है । वेदना के होने से । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान के होने से ।

मिथुनी ! तो क्या समझते हो रूप बिल्व है या अनिल ?

इसे जान भीर देख पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है ।

३४ नो न मे सिमा सुष (२१ अ. ५. ४)

न मैं होता’ की मिथ्या-दृष्टि क्यों ?

आपस्ती जलपन ।

मिथुनी ! किसके होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—न मैं होता न मेरा होने, न मैं हूँगा न मेरा होगा ।

धर्म के मूल भावना ही ।

मिथुनी ! रूप के होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है । वेदना के होने से । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान के होने से ।

मिथुनी ! रूप बिल्व है या अनिल ?

इसे जान भीर देख पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है ।

३५ मिथ्या सुष (२१ अ. ५. ५)

मिथ्या-दृष्टि क्यों उत्पन्न होती है ?

आपस्ती जलपन ।

मिथुनी ! किसके होने से मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है ?

धर्म ! धर्म के मूल भावना ही ।

मिथुनी ! रूप के होने से मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है । वेदना के । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

मिथुनी ! रूप बिल्व है या अनिल ?

इसे जान भीर देख पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है ।

३६ सखाय सुष (२१ अ. ५. ६)

सखाय-दृष्टि क्यों होती है ?

आपस्ती जलपन ।

मिथुनी ! किसके होने से मिथ्या-दृष्टि होती है ?

भिक्षुओ ! रूप के होने से सत्काय-दृष्टि होती है । वेदना के... सज्ञा... संस्कार... विज्ञान...

भिक्षुओ ! रूप नित्य है या अनित्य ?

जो अनित्य है क्या उसके उपादान नहीं करने से सत्काय-दृष्टि उत्पन्न होगी ? नहीं भन्ते !

वेदना... सज्ञा... संस्कार... विज्ञान ।

§ ७. अन्तानु सुक्त (२१. ३. ५. ७)

आत्म दृष्टि क्यों होती है ?

भिक्षुओ ! किसके होने से आत्म-दृष्टि होती है ?

• भिक्षुओ ! रूप के होने से आत्म-दृष्टि होती है । वेदना... सज्ञा... संस्कार... विज्ञान...

भिक्षुओ ! रूप नित्य है या अनित्य ?

जो अनित्य है क्या उसके उपादान नहीं करने से आत्म-दृष्टि उत्पन्न होगी ? नहीं भन्ते !

वेदना... सज्ञा... संस्कार... विज्ञान ।

§ ८. पठम अभिनिवेश सुक्त (२१ ३. ५. ८)

संयोजन क्यों होते हैं ?

श्रावस्ती जेतवन ।

भिक्षुओ ! किस के होने से संयोजन, अभिनिवेश, विनिबन्ध उत्पन्न होते हैं ?

रूप के होने से... वेदना के होने से... सज्ञा... संस्कार... विज्ञान के होने से ।

भिक्षुओ ! रूप नित्य है या अनित्य ?

जो अनित्य है क्या उसके उपादान नहीं करने से संयोजन उत्पन्न होंगे ? नहीं भन्ते ।

§ ९. दुतिय अभिनिवेश सुक्त (२१ ३ ५ ९)

संयोजन क्यों होते हैं ?

श्रावस्ती जेतवन ।

['विनिबन्ध' के बदले 'विनिबन्धाध्यवसान' करके सारा सूत्र ठीक ऊपर जैसा]

§ १०. आनन्द सुक्त (२१ ३ ५. १०)

सभी संस्कार अनित्य और दुःख हैं

श्रावस्ती... जेतवन... ।

तब, आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् से बोले, "भन्ते ! मुझे भगवान् सक्षेप से धर्म का उपदेश करें, जिसे सुन कर मैं अकेला एकान्त में अप्रमत्त समय-पूर्वक प्रवृत्तात्म हो विहार करूँ ।"

§ ३ एसो अथा सुच (२१ ३ ५ ३)

मात्मा लोक इ की मिथ्यावृत्ति क्यों ?

भाषस्ती ज्ञतयन ।

मिथुओ ! जिसके होने से जिसके उपादान से जिससे अभिविषया से ऐसी मिथ्या-वृत्ति (अभिध्या धारणा) उत्पन्न होती है—जो आत्मा है वह लोक है सो मैं मरकर मिल = धुब = साक्षय = अभिप रिणामयमा हो आईगा ?

धर्म के मूल भगवान् ही ।

मिथुओ ! रूप के होने से ऐसी मिथ्या-वृत्ति उत्पन्न होती है । वेदना के होने से । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान के होने से ।

मिथुओ ! तो क्या समझते हो रूप मिल है या अभिव ?

इसे जान और देख पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है ।

§ ४ नो च मे सिया सुच (२१ ३ ५ ४)

न मैं होता' की मिथ्यावृत्ति क्यों ?

भाषस्ती ज्ञतयन...

मिथुओ ! जिसके होने से ऐसी मिथ्या-वृत्ति उत्पन्न होती है—न मैं होता न मेरा हाथ, न मैं हूँगा न मेरा हागा ।

धर्म के मूल भगवान् ही ।

मिथुओ ! रूप के होने से ऐसी मिथ्या-वृत्ति उत्पन्न होती है । वेदना के होने से । संज्ञा । संस्कार... विज्ञान के होने से ।

मिथुओ ! रूप मिल है या अभिव ।

इसे जान और देख... पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है ।

§ ५ मिच्छा सुच (२१ ३ ५ ५)

मिथ्या-वृत्ति क्यों उत्पन्न होती है ?

भाषस्ती ज्ञतयन ।

मिथुओ ! जिसके होने से मिथ्या-वृत्ति उत्पन्न होती है ?

धर्म ! धर्म के मूल भगवान् ही ।

मिथुओ ! रूप के होने से मिथ्या-वृत्ति उत्पन्न होती है । वेदना के । संज्ञा । संस्कार... विज्ञान ।

मिथुओ ! रूप मिल है या अभिव ?

इसे जान और देख... पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है ।

§ ६ सकाय सुच (२१ ३ ५ ६)

स्वभाव वृत्ति क्यों होती है ?

भाषस्ती ज्ञतयन ।

मिथुओ ! जिसके होने से... मिथ्या-वृत्ति होती है ?

दूसरा परिच्छेद

२२. राध संयुक्त

पहला भाग

प्रथम वर्ग

§ १. मार सुत्त (२२. १. १)

मार क्या है ?

श्रावस्ती ' जेतवन ' ।

तब, आयुष्मान् राध जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् राध भगवान् से बोले, "भन्ते ! लोग 'मार, मार' कहा करते हैं । भन्ते ! मार क्या है ?

राध ! रूप के होने से मार होता है, या मारनेवाला, या वह जो मरता है । राध ! इसलिये, तुम रूप ही को मार समझो, मारनेवाला समझो, मरता है ऐसा समझो, रोग समझो, फोड़ा समझो, घाव समझो, पीड़ा समझो । जो रूप को ऐसा समझते हैं वे ठीक समझते हैं ।

वेदना । सज्जा । सस्कार । विज्ञान ।

भन्ते ! ठीक समझने से क्या होता है ?

राध ! ठीक समझने से वैराग्य होता है ।

भन्ते ! वैराग्य से क्या होता है ?

राध ! वैराग्य से राग-रहित होता है ।

भन्ते ! राग-रहित होने से क्या होता है ?

राध ! राग-रहित होने से विमुक्त होता है ।

भन्ते ! विमुक्ति से क्या होता है ?

राध ! विमुक्ति से निर्वाण लाभ होता है ।

भन्ते ! निर्वाण से क्या होता है ?

राध ! अब, तुम पूछ नहीं सकते । ब्रह्मचर्य का अन्तिम उद्देश्य निर्वाण ही है ।

§ २. सत्त सुत्त (२२. १. २)

आसक्त कैसे होता है ?

श्रावस्ती ' जेतवन ' ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् राध भगवान् से बोले, "भन्ते ! लोग 'सक्त, सक्त' कहा करते हैं । भन्ते ! कोई सक्त कैसे होता है ?

आनन्द ! तो क्या समझते हो रूप नित्य है या अनित्य ?

अनित्य मानते ।

तो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?

दुःख मानते ।

तो अनित्य दुःख का परिचयनहीन है उसे क्या ऐसा धनसबा चीज है कि—यह मेरा है यह मैं हूँ, यह मेरा व्यथा है ?

नहीं मानते !

वेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

महीं मानते !

आनन्द ! इसकिये जो कुछ रूप—वर्णित जगत्गाथ ।

इसे देख और जान पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है ।

इष्टि वरा क्षमाप्त
बृह पञ्चासक समाप्त
स्कन्ध संयुक्त समाप्त ।

दूसरा परिच्छेद

२२. राध संयुक्त

पहला भाग

प्रथम वर्ग

§ १. मार सुत्त (२२ १. १)

मार क्या है ?

आवस्ती जेतवन" ।

तत्र, आयुष्मान् राध जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् राध भगवान् से बोले, "भन्ते ! लोग 'मार, मार' कहा करते हैं । भन्ते ! मार क्या है ?

राध ! रूप के होने से मार होता है, या मारनेवाला, या वह जो मरता है । राध ! इसलिये, तुम रूप ही को मार समझो, मारनेवाला समझो, मरता है ऐसा समझो, रोग समझो, फोड़ा समझो, घाव समझो, पीड़ा समझो । जो रूप को ऐसा समझते हैं वे ठीक समझते हैं ।

वेदना । सज्ञा" । सस्कार । विज्ञान ।

भन्ते ! ठीक समझने से क्या होता है ?

राध ! ठीक समझने से वैराग्य होता है ।

भन्ते ! वैराग्य से क्या होता है ?

राध ! वैराग्य से राग-रहित होता है ।

भन्ते ! राग-रहित होने से क्या होता है ?

राध ! राग-रहित होने से विमुक्त होता है ।

भन्ते ! विमुक्ति से क्या होता है ?

राध ! विमुक्ति से निर्वाण लाभ होता है ।

भन्ते ! निर्वाण से क्या होता है ?

राध ! अब, तुम पूछ नहीं सकते । ब्रह्मचर्य का अन्तिम उद्देश्य निर्वाण ही है ।

§ २. सत्त सुत्त (२२. १. २)

आसक्त कैसे होता है ?

आवस्ती • जेतवन ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् राध भगवान् से बोले, "भन्ते ! लोग 'सक्त, सक्त' कहा करते हैं । भन्ते ! कोई सक्त कैसे होता है ?

राघव रूप में जो छन्दःरागःसन्निभःपुष्पा है और जा वहाँ छगा है, वेगद छगा है इसी से वह 'सक कहा जाता है। वैदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

राघ । जैसे बच्चे या ठकियों बाह के पर से छेकते हैं । "कय तक बाह के धरों में डकड़ा राघ = छन्द = मेस = पिपासा = परिराह = पुष्पा सभी रहती है राघ तक से उसमें बसे रहते हैं उनसे छेकते हैं उन पर क्याछ रहते हैं उनको जपना समझते हैं ।

राघ । अब बाह के धरों में उनका राग गहीं रहता है अब न हाथ-पर से अब धरों को पीक पीक कर गड़ कर देते हैं और बिछोर देते हैं ।

राघ । तुम इसी तरह रूप को तोड़-कोड़कर गड़ कर दो और बिछोर दो । पुष्पा को छप करने में क्या ज़रूरी ।

वैदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

राघ । पुष्पा का छप होना ही निर्वाण है ।

§ ३ भवनेति सुच (२२ १ ३)

संसार की खोरी

भाष्यस्ती ।

एक और बड़े आधुपमान् राघव भगवान् स बोले "भन्ते लोग 'भवनेति' और भवनेति निरीय कहा करते हैं । भन्ते ! यह "भवनेति और भवनेतिनिरीय" क्या है ?

राघ । रूप में जो छन्द = राग = सन्नि = पुष्पा = कपास = उपादान = चित का अविद्याम, अभिविद्या अमुष्य है उसे कहते हैं 'भवनेति' । इनके निरुद्ध हो जाने को कहते हैं 'भवनेतिनिरीय' । वैदना में जो । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

§ ४ परिच्छेद्य सुच (२२ १ ४)

परिच्छेद परिक्षा और परिक्षाता

भाष्यस्ती ।

एक और बड़े आधुपमान् राघव से भगवान् बोले "राघ । मैं तुम्हें परिच्छेद वर्म परिक्षा और परिक्षाता पुत्रक के विषय में उपदेश करूँगा । उसे सुनो ।

भगवान् बोले "राघ । परिच्छेद वर्म फीन स है ? राघ । रूप परिच्छेद वर्म है । वैदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान । राघ । इन्हें कहते हैं परिच्छेद वर्म ।

राघ । परिक्षा क्या है ? राघ । जो राग-रूप द्वेषरूप और मोहद्वेष है वही परिक्षा कही जाती है ।

राघ । परिक्षाता पुत्रक क्या है ? भईय जो आधुपमान् इस नाम और मोक्ष के हैं—वही परिक्षाता पुत्रक कहे जाते हैं ।

§ ५ पठम समण सुच (२२ १ ५)

उपादान दृक्स्थों के दाता ही अमण-आमण

भाष्यस्ती ।

एक और बड़े आधुपमान् राघव से भगवान् बोले "राघ । यह पौत्र उपादानदृक्स्थ है । और वे पौत्र ? जो यह रूप उपादानदृक्स्थ" । अज्ञान उपादानदृक्स्थ ।

१ भवनेति—'भवरज' अदृक्स्था । = संसार की खोरी ।

राध ! जो भ्रमण या ब्रह्मण इन पाँच उपादानस्कन्धों के आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानते हैं वे भ्रमण न तो भ्रमण कल्याण के योग्य हैं, और न वे ब्रह्मण कल्याण के । वे आयुष्मान् भ्रमण या ब्रह्मण के परमार्थ को अपने देखते ही देखते जान, देय और प्राप्त कर नहीं बिहार करते हैं ।

राध ! जो यथार्थतः जानते हैं वे आयुष्मान् भ्रमण या ब्रह्मण के परमार्थ को अपने देखते ही देखते जान, देय और प्राप्त कर बिहार करते हैं ।

§ ६. दुत्तिय सपण सुत्त (२२ १ ६)

उपादान-स्कन्धों के ज्ञान ही भ्रमण ब्रह्मण

श्रावस्ती ।

एक ओर बैठे आयुष्मान् राध से भगवान् बोले, 'राध ! यह पाँच उपादान स्कन्ध हैं ।'

राध ! जो भ्रमण या ब्रह्मण इन पाँच उपादानस्कन्धों के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष, और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानते हैं जानते हैं ।

§ ७. सोत्तापन्न सुत्त (२२ १ ७)

स्रोतापन्न निदचय ही ज्ञान प्राप्त करेगा

श्रावस्ती ।

एक ओर बैठे आयुष्मान् राध से भगवान् बोले, 'राध ! यह पाँच उपादान-स्कन्ध हैं । राध ! क्योंकि आर्यश्रावक इन पाँच उपादानस्कन्धों के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जानता है इसीसे वह स्रोतापन्न कहा जाता है । यह मार्ग में व्युत्त नहीं हो सकता, निर्वाण की ओर जा रहा है, निश्चयपूर्वक परम ज्ञान प्राप्त करेगा ।

§ ८. अरहा सुत्त (२२. १. ८)

उपादान-स्कन्धों के यथार्थ ज्ञान से अर्हत्व की प्राप्ति

श्रावस्ती ।

एक ओर बैठे आयुष्मान् राध से भगवान् बोले, ' राध ! क्योंकि भिक्षु इन पाँच उपादान स्कन्धों के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जान उपादान-रहित हो विमुक्त हो जाता है, इसी से वह अर्हत्त्व=क्षीणाश्रव=जिसने ब्रह्मचर्यवाच्य पूरा कर लिया है=कृतकुल्य=जिसने भार रखा दिया है=अनुप्राप्तसदर्थ=परिक्षीण-भवसंयोजन=परम ज्ञान से विमुक्त कहा जाता है ।

§ ९. पठम छन्दराग सुत्त (२२ १ ९)

रूप के छन्दराग का त्याग

श्रावस्ती ।

एक ओर बैठे आयुष्मान् राध से भगवान् बोले, 'राध ! रूप में जो छन्द = राग है उसे छोड़ दो । इस तरह, रूप प्रहीण हो जायगा = उच्छिन्नमूल = शिर कटे ताल के समान = मिया हुआ = फिर कभी उत्पन्न होने में असमर्थ ।

वेदना में जो । सजा । सस्कार । विज्ञान ।

§ १० द्वितीय छन्दराग छुत्त (२२. १. १०)

रूप के छन्दराग का त्याग

भावस्ती ।

एक ओर बड़े आयुष्मान् राज्य से मगबाह् बाड़े 'राज । रूप में जो छन्द ॥ राग ॥ कश्चि
 ॥ पूजा ॥ उपाय ॥ उपादान ॥ बिन्दु का अभिधान अभिविदेश अनुसन्ध है उसे छोड़ दो । इस तरह
 वह रूप प्रहीन हो जायगा ।

वेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

प्रथम बर्ग समाप्त

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

§ १. मार सुत्त (२२ २ १)

मार क्या है ?

श्रावस्ती ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् राध भगवान् से बोले, “भन्ते ! लोग “मार, मार” कहा करते हैं । भन्ते ! सो वह मार क्या है ?”

राध ! रूप मार है, वेदना मार है, मज्जा , सस्कार , विज्ञान मार है ।

राध ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक रूप में भी निर्वेद (=वैराग्य) करता है • पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता ।

§ २. मारधम्म सुत्त (२२ २ २)

मारधर्म क्या है ?

श्रावस्ती ।

भन्ते ! लोग “मार-धर्म, मार-धर्म” कहा करते हैं । भन्ते ! सो वह मार-धर्म क्या है ?

राध ! रूप मार-धर्म है । वेदना विज्ञान ।

राध ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक ।

§ ३. पठम अनिच्च सुत्त (२२. २ ३)

अनित्य क्या है ?

भन्ते ! लोग “अनित्य, अनित्य” कहा करते हैं । भन्ते ! सो वह अनित्य क्या है ?

राध ! रूप अनित्य है । वेदना अनित्य है । मज्जा । सस्कार • । विज्ञान अनित्य है ।

राध ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक ।

§ ४. दुतिय अनिच्च सुत्त (२२ २ ४)

अनित्य-धर्म क्या है ?

भन्ते ! सो वह अनित्य-धर्म क्या है ?

राध ! रूप अनित्य-धर्म है । वेदना । मज्जा । सस्कार । विज्ञान ।

राध ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक ।

§ ५-६. पठम-दुतिय दुक्ख सुत्त (२२ २, ५-६)

रूप दुक्ख है

राध ! रूप दुक्ख है । वेदना • विज्ञान ।

‘राघ ! रूप दुःखधर्म है । वेदना विज्ञान ।

राघ ! इसे ज्ञान पण्डित आर्य-आचार्य ।

§ ७-८ पठम दुःखिय अनत्त सुत्त (२२ २ ७-८)

रूप अनत्तम् है

राघ ! रूप अनत्तम् है । वेदना विज्ञान ।

राघ ! रूप अनत्तम् धर्म है । वेदना विज्ञान ।

राघ ! इसे ज्ञान पण्डित आर्य-आचार्य ।

§ ९ क्षयधम्म सुत्त (२२ २ ९)

क्षयधर्म क्या है ?

आवस्ती ।

एक ओर बैठ आयुष्मान् राघ मगवान् से बोले “मन्ते ! छोरा क्षयधर्म क्षयधर्म” कहा करते हैं । मन्ते ! सो वह क्षयधर्म क्या है ?

राघ ! रूप क्षयधर्म है । वेदना विज्ञान ।

राघ ! इसे ज्ञान पण्डित आर्य-आचार्य ।

§ १० व्ययधम्म सुत्त (२२ २ १०)

व्ययधर्म क्या है ?

आवस्ती ।

एक ओर बैठ आयुष्मान् राघ मगवान् से बोले “मन्ते ! छोरा व्ययधर्म व्ययधर्म” कहा करते हैं । मन्ते ! सो वह व्ययधर्म क्या है ?

राघ ! रूप व्ययधर्म है । वेदना विज्ञान ।

§ ११ समुदयधम्म सुत्त (२२ २ ११)

समुदयधर्म क्या है ?

आवस्ती ।

“मन्ते ! सो वह समुदयधर्म क्या है ?

राघ ! रूप समुदयधर्म है । वेदना विज्ञान ।

राघ ! इसे ज्ञान पण्डित आर्य-आचार्य ।

§ १२ निरोधधम्म सुत्त (२२ २ १२)

निरोधधर्म क्या है ?

आवस्ती ।

“मन्ते ! सो वह निरोधधर्म क्या है ?

राघ ! रूप निरोधधर्म है । वेदना विज्ञान ।

राघ ! इसे ज्ञान पण्डित आर्य-आचार्य ।

द्वितीय सर्ग समाप्त

तीसरा भाग

आयाचन वर्ग

§ १. मार सुत्त (२२. ३. १)

मार के प्रति इच्छा का त्याग

श्रावस्ती. .।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् राध भगवान् से बोले, “भन्ते ! भगवान् मुझे संक्षेप से धर्म का उपदेश दें, जिसे सुन मैं अकेला एकान्त में प्रहितात्म होकर विहार करूँ ।”

राध ! जो मार है उसके प्रति अपनी इच्छा का प्रहाण करो । राध ! मार क्या है ? राध ! रूप मार है, उसके प्रति अपनी इच्छा का प्रहाण करो । वेदना । सज्ञा । सस्कार । विज्ञान ।

§ २. मारधम्म सुत्त (२२. ३. २)

मार-धर्म के प्रति छन्दराग का त्याग

राध ! जो मार-धर्म हैं उसके प्रति छन्द, राग, छन्दराग का प्रहाण करो ।

§ ३-४. पठम-दुत्तिय अनिच्च सुत्त (२२. ३. ३-४)

अनित्य और अनित्य-धर्म

राध ! जो अनित्य है ।

राध ! जो अनित्य-धर्म है ।

§ ५-६. पठम-दुत्तिय दुक्ख सुत्त (२२. ३. ५-६)

दुःख और दुःख धर्म

राध ! जो दुःख है ।

राध ! जो दुःख-धर्म है ।

§ ७-८. पठम-दुत्तिय अनत्त सुत्त (२२. ३. ७-८)

अनात्म और अनात्म धर्म

राध ! जो अनात्म है ।

राध ! जो अनात्म-धर्म है ।

§ ९-१०. खयधम्म-वयधम्म सुत्त (२२. ३. ९-१०)

क्षय धर्म और व्यय धर्म

राध ! जो क्षय-धर्म है ।

राध ! जो व्यय-धर्म है ।

§ ११ समुदयधम्म सुत्त (३ ११)

समुदय धर्म के प्रति छन्दराग का त्याग

राघ ! जो समुदय धर्म है उसके प्रति छम्प राग छन्दराग का प्रहाण करो ।

§ १२ निरोधधम्म सुत्त (२० ३ १०)

निरोध धर्म के प्रति छन्दराग का त्याग

आवस्ती ।

एक ओर बंद आशुप्मान् राघ भगवान् से बोले मरने ! भगवान् मुझे संक्षेप से बर्णोपदेश करें जिस मुझ में प्रक्षितात्म हो कर बिहार करें ।

राघ ! जो निरोध धर्म है उसके प्रति छम्प, राग छन्दराग का प्रहाण करो । राघ ! निरोध-धर्म क्या है ? राघ ! रूप निरोध धर्म है उसके प्रति छम्प का प्रहाण करो । वेदना । संज्ञा । सम्भार । विजाग ।

आप्यायन धर्म समाप्त

चौथा भाग

उपनिसिन्न वर्ग

§ १. मार सुत्त (२२ ४ १)

मार से इच्छा हटाओ

श्रावस्ती • ।

एक ओर बैठे आशुष्मान् राध से भगवान् बोले, “राध ! जो मार है उसके प्रति इच्छा को हटाओ । राध ! मार क्या है ? राध ! रूप मार है, उसके प्रति इच्छा को हटाओ । वेदना । संज्ञा.... । संस्कार । विज्ञान ।

§ २. मारधम्म सुत्त (२२. ४ २)

मारधर्म से इच्छा हटाओ

• राध ! जो मार-धर्म है उसके प्रति इच्छा को हटाओ ।

§ ३-४ पठम-दुत्तिय अनिच्च सुत्त (२२. ४ ३-४)

अनित्य और अनित्य-धर्म

राध ! जो अनित्य है ।

• राध ! जो अनित्य-धर्म है ।

§ ५-६. पठम-दुत्तिय दुक्ख सुत्त (२२ ४ ५-६)

दुःख और दुःख-धर्म

राध ! जो दुःख है ।

राध ! जो दुःख-धर्म है !

§ ७-८. पठम-दुत्तिय अनत्त सुत्त (२२ ४ ७-८)

अनात्म और अनात्म-धर्म

राध ! जो अनात्म है ।

राध ! जो अनात्म-धर्म है ।

§ ९-११. खयवय-समुदय सुत्त (२२ ४. ९-११)

क्षय, व्यय और समुदय

राध ! जो क्षय-धर्म है ।

राघ ! जो व्यस्य धर्म है ।

राघ ! जो समुदय-धर्म है ।

§ १२ निरोधधम्म सूच (२२. ४. १२)

निरोध धर्म से इच्छा हटाओ

आवृत्ती ।

एक ओर बड़े आयुष्मान् राघ से मगवान् बाळ 'राघ ! जो निरोध-धर्म है उसके प्रति इच्छा को हटाओ । राघ ! निरोध-धर्म क्या है ? राघ ! रूप निरोध धर्म है उसके प्रति इच्छा को हटाओ । वेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

उपनिमित्त वर्ग समाप्त

राघ संयुक्त समाप्त

तीसरा परिच्छेद

२३. दृष्टि-संयुक्त

पहला भाग

स्रोतापत्ति वर्ग

§ १. वात सुक्त (२३ १. १)

मिथ्या-दृष्टि का मूल

श्रावस्ती***।

भिक्षुओ ! किमकं होने से, किसके उपादान से, किसके अभिनिवेश से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—हवा नहीं बहती है, नदियाँ प्रवाहित नहीं होती, गर्भाणियाँ बच्चा नहीं जनती, चाँद-सूरज उगते हैं और न ढूँढ़ते हैं, किन्तु त्रिलुल रुढ़ अचल हैं ।

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही ।

भिक्षुओ ! रूप के होने से, रूप के उपादान से, रूप के अभिनिवेश से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—हवा नहीं बहती है । वेदना के होने से * । सज्ञा । सस्कार । विज्ञान के होने से ।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !

* जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है उसके उपादान नहीं करने से क्या ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होगी—हवा नहीं बहती है ?

नहीं भन्ते !

वेदना । सज्ञा । सस्कार । विज्ञान ।

जो यह देखा, सुना, सूँघा, चखा, छूया, जाना गया, पाया गया, खोजा गया, या मन से विचारा गया है वह नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !

जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है उसके उपादान नहीं करने से क्या ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होगी—हवा नहीं बहती ?

नहीं भन्ते !

भिक्षुओ ! इन छ स्थानों में आर्यश्रावक की सभी शकाय मिटी होती है । दुःख में भी उसकी शका मिटी होती है । दुःख-समुदय में भी । दुःख-निरोध में भी । दुःख-निरोधगामिनी—प्रतिपदा में भी ।

भिक्षुओ ! यह आर्यश्रावक स्रोतापन्न कहा जाता है ।

§ २ एत मम सुत (२ १)

मित्र्या-दृष्टि का मूख

भाष्यस्ती ।

मित्रभो ! किसके होने से ऐसी मित्र्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—यह मेरा है यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है ।

मन्ते ! धर्म के मूख भगवान् ही ।

मित्रभो ! रूप के होने से ऐसी मित्र्या-दृष्टि उत्पन्न होती है । बदन के होने से । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

जो अल्प बुद्ध और परिवर्तनशील है उसका उपयोग नहीं करना से क्या ऐसी मित्र्या-दृष्टि उत्पन्न होगी—यह मेरा है यह मैं हूँ ?

नहीं मन्ते !

मित्रभो ! इन छः स्थावरा में आर्यभ्रातृ के सभी संकायें मिली होती हैं । मित्रभो ! यह आर्यभ्रातृ जोतापन्न ।

§ ३ सो अक्ष सुत (३ १ ३)

मित्र्या-दृष्टि का मूख

भाष्यस्ती ।

मित्रभो ! किसके होने से ऐसी मित्र्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—जो आत्मा है या सोन है सो मैं मर कर मित्र्य=भुव=साहचर्य=अविपरिणामयमी हूँगा ?

मन्ते ! धर्म के मूख भगवान् ही ।

मित्रभो ! रूप के होने से ऐसी मित्र्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—जो आत्मा । बदन के होने से । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

मित्रभो ! इन छः स्थावरा में आर्यभ्रातृ के सभी संकायें मिली होती हैं । मित्रभो ! यह आर्यभ्रातृ जोतापन्न ।

§ ४ नो च म सिधा सुत (२३ १ ४)

मित्र्या-दृष्टि का मूख

भाष्यस्ती ।

मित्रभो ! किसके होने से ऐसी मित्र्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—मैं होता न मेरा होना, न मैं हूँगा न मेरा होगा ।

मन्ते ! धर्म के मूख भगवान् ही ।

मित्रभो ! स्वयं होने से ऐसी मित्र्या-दृष्टि । बदन के होने से । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

मित्रभो ! इन छः स्थावरा में आर्यभ्रातृ के सभी संकायें मिली होती हैं । मित्रभो ! यह आर्यभ्रातृ जोतापन्न ।

§ ५ नरिध सुत (२३ १ ५)

उच्छिद्यपाद

भाष्यस्ती ।

मित्रभो ! किसके होने से ऐसी मित्र्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—'हाम वम हाम (पर कोई कम) नहीं है अर्थात् भार भुने कमों के अपने हुए कम नहीं होने यह जान नहीं है परमोक्त नहीं है

माता नहीं हैं, पिता नहीं हैं, आत्म्यात्मिक पञ्च (=गर्भ में उत्पन्न होने वाले नहीं, किंतु रचयिता), लोक में धर्मग या धर्मग नहीं हैं जो समस्त प्रविष्ट हो, लोक परलोक को स्वयं जान और साक्षात्कार का उपयोग करने हैं। चार महाभूतों में मिलकर पुरुष बना। मृत्यु के उपरान्त पृथ्वी-धातु पृथ्वी में मिलकर लीन हो जाती है, वायु धातु, तेज धातु, आतु धातु। दृष्टि-शक्ति आकाश में तीन हो जाती है। पांच मनुष्य मिल सुई को ले जाकर जला दते हैं। स्त्रोत्र जेमी उजाला हस्तियों केवल च जाती है। उपास दिया मन विस्तृत झट्टा दोग। आस्तिर पाद प्रतिपादन करने वाले मूर्ध आर पण्डित सभी उचित हो जाते हैं, लुप्त हो जाते हैं, मर्मे के पाद नहीं रहते ?

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही ।

वेदना । सज्ञा । सन्सार । विज्ञान ।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, रूप निय है या अनिय ?

“भिक्षुओ ! इन छ स्थानों में आर्यश्रावक की सभी शकयें मिटी होती हैं। भिक्षुओ ! यह आर्यश्रावक सोतापन्न” ।

§ ६ करोता सूक्त (२३. १ ६)

अक्रियवाद

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! किसके होने में ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—“करते हुये, कराते हुये, काटते हुये, कटवाते हुये, मारते हुये, मारवाते हुये, मोचते हुये, मोचवाते हुये, यकते हुये, यकवाते हुये, बझवाते हुये, बझाते हुये, हिम्मा करते हुये, चोरी करते, मेघ मारते, डाका मारते, एक घर को लूटते, राजधानी करते, परगना का सेवन करते, झूठ बोलते, बुरा कुछ पाप नहीं करता। यदि कोई ठूमे जैसे तेज चक्र से पृथ्वी पर गहने वाले सभी प्राणियों को मार कर मांस का एक बड़ा ढेर लगा दे तो भी उससे उसे कोई पाप नहीं लगता। यदि कोई गंगा के दक्षिण तीर पर मारते, मरवाते, काटते, कटवाते, पकाते, पकवाते । तो भी उससे उसे कोई पाप नहीं लगता। गंगा के उत्तर तीर पर भी । दान, दम, सयम और सत्यवादिता में कोई पुण्य नहीं होता ?

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही ।

भिक्षुओ ! रूप के होने में ऐसी मिथ्या-दृष्टि । वेदना के होने में । सज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

भिक्षुओ ! इन छ स्थानों में आर्यश्रावक की सभी शकयें मिटी होती हैं। भिक्षुओ ! यह आर्यश्रावक सोतापन्न ।

§ ७. हेतु सूक्त (२३ १ ७)

दैववाद

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! किसके होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—“सत्त्वों के सक्लेश के कोई हेतु = प्रत्यय नहीं हैं। विना हेतु = प्रत्यय के सत्त्व सक्लिष्ट होते हैं। सत्त्वों की विशुद्धि के कोई हेतु = प्रत्यय नहीं हैं। विना हेतु = प्रत्यय के सत्त्व विशुद्ध होते हैं। बल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम कुछ भी नहीं है। सभी सत्त्व = प्राणी = भूत = जीव अवश, अवल, अवीर्य, भाग्य के आधीन, सयोग के आधीन, स्वभाव के आधीन छ अभिजातियों में सुख-दुःख का अनुभव करते हैं” ?

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही ।

§ २ एत मम सुप्त (२ १ २)

मित्र्या-दृष्टि का मूल

भायस्ती ।

मित्रभो ! किसके होने से मेरी मित्र्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—यह मेरा है यह मैं हूँ, यह मेरा भावना है ।

मन्ते ! धर्म के मूल मगधात् ही ।

मित्रभो ! रूप के होने से मेरी मित्र्या-दृष्टि उत्पन्न होती है । बन्धन के होने से । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

जो अस्मिन् दुष्कृत धर्म परिवर्तनशील है उसके उपादान नहीं करने से क्या मेरी मित्र्या-दृष्टि उत्पन्न होगी—यह मेरा है यह मैं हूँ ?

नहीं मन्ते !

मित्रभो ! इन छः स्वभावों में कार्यभाषक की सभी शक्तियाँ मिली होती हैं । मित्रभो ! यह कार्यभाषक कातापन्न ।

§ ३ सो अथ सुप्त (३ १ ३)

मित्र्या-दृष्टि का मूल

भायस्ती ।

मित्रभो ! किसके होने से मेरी मित्र्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—जो भावना है सो छाक है सो मैं मर कर निरपेक्ष-सा-दृष्ट-अविपरिवर्तमान-ममो हूँगा ?

मन्ते ! धर्म के मूल मगधात् ही ।

मित्रभो ! रूप के होने से मेरी मित्र्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—जो भावना । बन्धन के होने से । संज्ञा संस्कार विज्ञान ।

मित्रभो ! इन छः स्वभावों में कार्यभाषक की सभी शक्तियाँ मिली होती हैं । मित्रभो ! यह कार्यभाषक कातापन्न ।

§ ४ नो च म सिया सुप्त (२३ १ ४)

मित्र्या-दृष्टि का मूल

भायस्ती ।

मित्रभो ! किसके होने से मेरी मित्र्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—मैं होता मैं मेरा होवे, मैं हूँगा मैं मेरा होगा ।

मन्ते ! धर्म के मूल मगधात् ही ।

मित्रभो ! रूप के होने से मेरी मित्र्या-दृष्टि । बन्धन के होने से । संज्ञा । संस्कार विज्ञान ।

मित्रभो ! इन छः स्वभावों में कार्यभाषक की सभी शक्तियाँ मिली होती हैं । मित्रभो ! यह कार्यभाषक कातापन्न ।

§ ५ नरिय सुप्त (२३ १ ५)

उच्छिद्यमान

भायस्ती*** ।

मित्रभो ! किसके होने से मेरी मित्र्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—“हाम बद्ध हाम (वा कोई अन्य) नहीं है अप्य और पुं कर्मों के करने हुए कुछ नहीं होता यह जान नहीं है परमोक्त नहीं है

माता नहीं हैं, पिता नहीं हैं, अंतर्धानिय सत्य (= गर्भ में उत्पन्न होने वाले नहीं, किंतु स्वयंजान), लोक में धर्म या प्रज्ञा नहीं है जो समस्त प्रतिपन्न हो, लोक परलोक सों स्वयं जान और साक्षात्कार कर उपदेश करत हों । चार माताभूतों में मिलकर पुरुष जाता है । मृत्यु के उपरान्त पृथ्वी-धातु पृथ्वी में मिलकर लौन हो जाती है, आपो धातु, तेजो धातु, वायु धातु । इन्द्रियों आकाश में तीन हो जाती हैं । पाँच मनुष्य मिल मुँह को ले जाकर जन्म दत्ते हैं । परस्पर जैसी उजली हठियाँ केवल दब जाती हैं । उनका दिया जल दिव्यल झटा होगा । आत्मिकवाद प्रतिपादन करने वाले सूर्य और पण्डित सभी उच्छिन्न हो जाते हैं, लुप्त हो जाते हैं, मरने के बाद नहीं रहते ?

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही ।

वेदना । मजा । सस्कार । विज्ञान ।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, रूप निव्य ? या अनिय ?

“भिक्षुओ ! इन छ स्थानों में आर्यश्रावक की सभी शक्याँ मिटी होती है । भिक्षुओ ! यह आर्यश्रावक स्तोतापन्न” ।

§ ६ करोतो सुत्त (२३. १ ६)

अक्रियवाद

थावस्ती ।

भिक्षुओ ! किसके होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—“करते हुये, कराते हुये, काटते हुये, कटवाते हुये, मारते हुये, मरवाते हुये, मोचते हुये, मोचाते हुये, थकते हुये, थकाते हुये, बझवाते हुये, बझाते हुये, हिमा करते हुये, चोरी करते, संध मारते, डाका मारते, एक घर को लूटते, राहजनी करते, पर-पत्नी का सेवन करते, छट पीलते, वह कुछ पाप नहीं करता । यदि कोई गृहे जैसे तेज चक्र से पृथ्वी पर रहने वाले सभी प्राणियों को मार कर मांस का एक बड़ा ढेर लगा दे तो भी उससे उम्मे कोई पाप नहीं लगता । यदि कोई गंगा के दक्षिण तीर पर मारते, मरवाते, काटते, कटवाते, पकाते, पकवाते । तो भी उम्मे उम्मे कोई पाप नहीं लगता । गंगा के उत्तर तीर पर भी । दान, दम, सयम और सत्यवादिता से कोई पुण्य नहीं होता ?

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही ।

भिक्षुओ ! रूप के होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि । वेदना के होने से । मजा । सस्कार । विज्ञान ।

भिक्षुओ ! इन छ स्थानों में आर्यश्रावक की सभी शक्याँ मिटी होती है । भिक्षुओ ! यह आर्यश्रावक स्तोतापन्न ।

§ ७. हेतु सुत्त (२३. १ ७)

दैववाद

थावस्ती ।

भिक्षुओ ! किसके होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—“सत्त्वों के सक्लेश के कोई हेतु = प्रत्यय नहीं है । बिना हेतु = प्रत्यय के सत्त्व सक्लिष्ट होते हैं । सत्त्वों की विशुद्धि के कोई हेतु = प्रत्यय नहीं हैं । बिना हेतु = प्रत्यय के सत्त्व विशुद्ध होते हैं । बल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम कुछ भी नहीं है । सभी सत्त्व = प्राणी = भूत = जीव अवश, अवल, अवीर्य, भाग्य के आधीन, सयोग के आधीन, स्वभाव के आधीन छ अभिजातियों में सुख-दुःख का अनुभव करते हैं” ?

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही ।

मित्रुभो ! रूप के होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है । वेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

मित्रुभा ! इन छः स्थायों में कार्यप्रायक की सभी शक्तियाँ मिली रहती हैं ।

§ ८ महादिदृष्ट सुच (२३ १ ८)

अमृततावाद्

आवस्ती ।

मित्रुभा ! किसके होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—“वे सात कथा अमृत हैं अकारित हैं अनिमित्त हैं अनिर्मापित हैं ब्रह्मा हैं कृतस्थ हैं अचल हैं । वे द्रिकते डोकते नहीं व विपरिणत होते हैं और न अयोग्य प्रमापित करते हैं । एक दूसरे का न सुप्त वे सकते हैं और न दुःख ।

“औस सात ? पूरणी कथा आप काया तेज काया बाहु कथा सुक्त दुःख बीच । पही सात कथा ।

“जो तेज इधियार से शिर काटता है सो कोई किसी की जान नहीं मारता । सात कर्माँ के बीच में इधियार केबल एक छेद कर देता है ।

“वीरद्व काण छाळत यातिपों है । पाँच सौ कर्म हैं भार पाँच कर्म हैं और तीन कर्म हैं कर्म में और अर्धकर्म में नामठ प्रतिपदायें हैं पासठ अन्तर कर्म हैं छः अविजातिपों आठ पुण्य भूमिपों उनचस सौ आजीवक उनचास सौ परिज जड़ उनचास सौ नागबास बीस सौ इन्द्रिपों तीस सौ नरक छत्तीस राजोपाय सात संज्ञी-गर्म सात अर्धज्ञी-गर्म सात निर्गन्धि-गर्म सात विष सात मानुष सात पैशाच सात सर सात मरूच सात प्रपात और सात सी प्रपात सात स्वप्न और सात गी स्वप्न भस्ती से कम महाकल्प सात हजार सूर्य और परिव्रत जन्म जन्मान्तर में पड़ते हुये दुःख का अन्त करेंगे ।

“जसी बात पही है कि हम सीस से या इस मत से या इस तप से या इस महाचर्य से अवरिपक कर्म का परिपक बना लूँगा या परिपक कर्म को उपभोग कर धीरे-धीरे समाप्त कर लूँगा संसार में न तो भये सुख सुप्त-दुःख हैं और न उनकी निश्चित अवधि है । कमना अधिक होना = परना बढ़ना भी नहीं है ।

“जैसे मूल की गोर्दी जैसी ज से पर लुप्त हो गई जाती है वैसे ही सूर्य और परिव्रत लुप्तते हुये सुप्त-दुःख का अन्त करेंगे ?

भस्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही ।

मित्रुभो ! रूप के होने से । वेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

मित्रुभो ! इन छः स्थायों में कार्यप्रायक की ।

§ ९ सस्सतो लोको सुच (२३ १ ९)

साद्वत्तवाद्

आवस्ती ।

मित्रुभा ! किनके होने से—जसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—“यद लोक साद्वत्त है” ?

भस्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही ।

मित्रुभा ! रूप के होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—“यद लोक साद्वत्त है” । वेदना के होने से । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

मित्रुभो ! रूप जिन छः स्थायों में

मित्रुभो ! इन छः स्थायों में कार्यप्रायक की ।

§ १० असरसतो सुत्त (२३ १. १०)

अशाश्वतवाद

आवस्ती....।

भिक्षुओ ! किसके होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—“लोक अशाश्वत है” ?

अन्ते ! मर्म के मत्त भगवान् की ।

भिक्षुओ ! रूप के होने से ।

भिक्षुओ ! इन छ. स्थानों में आर्यश्रावक ।

§ ११. अन्तवा सुत्त (२३ १ ११)

अन्तवान्-वाद

आवस्ती ।

भिक्षुओ ! किसके होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—“अन्तवाला लोक है” ?

भिक्षुओ ! रूप के होने से ।

§ १२. अनन्तवा सुत्त (२३ १. १२)

अनन्त-वाद

भिक्षुओ ! किसके होने से —“लोक अनन्त है” ?

§ १३. तं जीवं तं सरीरं सुत्त (२३ १ १३)

‘जो जीव है वही शरीर है’ की मिथ्या-दृष्टि

भिक्षुओ ! किसके होने से —जो जीव है वही शरीर है ?

§ १४. अज्जं जीवं अज्जं सरीरं सुत्त (२३ १ १४)

‘जीव अन्य है और शरीर अन्य है’ की मिथ्या-दृष्टि

भिक्षुओ ! किसके होने से —“जीव अन्य है और शरीर अन्य है” ?

§ १५. होति तथागतो परम्परणा सुत्त (२३ १ १५)

‘मरने के बाद तथागत फिर होता है’ की मिथ्या-दृष्टि

भिक्षुओ ! किसके होने से —“मरने के बाद तथागत होता है” ?

§ १६. न होति तथागतो परम्परणा सुत्त (२३. १ १६)

‘मरने के बाद फिर तथागत नहीं होता है’ की मिथ्या-दृष्टि

भिक्षुओ ! किसके होने से —“मरने के बाद तथागत नहीं होता है” ?

§ १७. होति च न च होति तथागतो परम्परणा सुत्त (२३ १ १७)

‘तथागत होता है और नहीं भी होता है’ की मिथ्या-दृष्टि

भिक्षुओ ! किसके होने से “तथागत होता है और नहीं भी होता है” ?

§ १८. नेव होति न न होति तथागतो परम्परणा सुत्त (२३ १ १८)

‘तथागत न होता है, न नहीं होता है’ की मिथ्या-दृष्टि

भिक्षुओ ! किसके होने से —“तथागत न होता है, और न नहीं होता है” ?

भिक्षुओ ! इन छ. स्थानों में आर्यश्रावक ।

पहला भाग समाप्त

दसरा भाग

(पुरिमगमन—भगवद् वेम्पावरण)

§ १ वात सुच (३ ० १)

मिथ्या दृष्टि का मूल

भावस्ती ।

मिथुआ ! किसके होने में पूर्ण मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है— 'त इषा कहती है मैं मर्निषों प्रपादित होती हूँ मैं मर्निषियों जलती हूँ मैं मूर्ख और दुर्गते डूबते हूँ । मिथुल जलक स्थिर हूँ ।

मन्ते ! बर्म के मूल मगवान् ही ।

मिथुआ रूपके होने से ' वेदना के होने से । संज्ञा । संस्कार । बिज्ञान मिथुआ ! रूप निरूप है या अभिन्न ?

अभिन्न मन्ते !

इसके उपादान नहीं करने में क्या पूर्ण मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होगी ?

नहीं मन्ते !

मिथुआ ! इस तरह दुःख के होने में दुःख के उपादान में दुःख के अभिनिवेश से ऐसी दृष्टि उत्पन्न होती है ।

§ २-१८ सत्ये सुचन्ता पुम्मे आगता येव (३३ २ ०—१८)

[ऊपर के भाषे १८ वैष्वाकरणा को विस्तार कर देना चाहिये]

द्वितीय गमन (द्वितीय बार)

§ १९ रूपी अथा होति सुच (०३ २ १९)

आत्मा रूपवान् होता है की मिथ्या दृष्टि

भावस्ती ।

मिथुआ ! किसके होने से — 'मरने के बाद आत्मा रूप बाका करोगे होता है' ?

मिथुआ ! रूपके होने से ।

मिथुआ ! इस तरह दुःख के होने में दुःख के उपादान से दुःख के अभिनिवेश से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है ।

§ २० अरूपी अथा होति सुच (०३ २ २)

'अरूपवान् आत्मा है' की मिथ्या दृष्टि

मिथुआ ! किसके होने से — 'मरने के बाद आत्मा रूपरहित अरोग होता है' ?

§ २१ रूपी च अरूपी च अथा होति सुच (०३ २ २१)

रूपवान् और अरूपवान् आत्मा होता है की मिथ्या-दृष्टि

'मरने के बाद आत्मा रूपबाका और रूपरहित करोगे होता है' ।

§ २२. नैवस्वी नारुपी अत्ता होति सुत्त (२३ २. २२)

‘न स्वप्नान्, न अक्षयवान् आत्मा होता है’ की मिथ्या दृष्टि
...“मरने के बाद आत्मा न स्वप्नान् और न अक्षयवान् अरोग होता है” ।

§ २३. एकान्तसुखी अत्ता होति सुत्त (२३ २. २३)

‘आत्मा एकान्त सुखी होता है’ की मिथ्या दृष्टि
मरने के बाद आत्मा एकान्त-सुख अरोग होता है ।

§ २४. एकान्तदुःखी अत्ता होति सुत्त (२३ २. २४)

‘आत्मा सुख दुःखी होता है’ की मिथ्या दृष्टि
मरने के बाद आत्मा एकान्त-दुःख अरोग होता है ।

§ २५. सुखदुःखी अत्ता होति सुत्त (२३ २. २५)

‘आत्मा सुखदुःखी होता है’ की मिथ्या-दृष्टि
मरने के बाद आत्मा सुखदुःखी अरोग होता है ।

§ २६. अदृक्प्रमसुखी अत्ता होति सुत्त (२३ २. २६)

‘आत्मा सुख दुःख से रहित होता है’ की मिथ्या दृष्टि
मरने के बाद आत्मा अदृक्प्रमसुखी अरोग होता है ।

दूसरा भाग

(पुरिमगमन—अगरह घेय्याकरण)

§ १ वात सुच (२३ २ १)

मिथ्या दृष्टि का मूक

भावस्ती ।

मिथुभो ! किसके होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—“म हवा बहती है न नदियाँ प्रवाहित होती हैं न गर्मिणियाँ जलती हैं न सूरज चँद उगते-डूबते हैं । विष्णुका अचक्षुस्त्व है ?”

मन्ते । धर्म के मूक भगवान् ही ।

मिथुभो रूपके होने से । वेदना के होने से । संज्ञा । संस्कार । बिज्ञान

मिथुभो ! रूप मिथ है या अनित्य ?

अनित्य मन्ते !

उसके उपादान नहीं करने से क्या जमी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होगी ?

नहीं मन्ते !

मिथुभो ! इस तरह बुद्ध के होने से बुद्ध के उपादान से बुद्ध के अभिनिवेश से ऐसी दृष्टि उत्पन्न होती है ।

§ २-१८ सम्भवे सुचन्ता पुब्बे आगता येव (२३ २ २—१८)

[ऊपर के भागे १८ वेदवाक्यों को विस्तार कर केना पाहिने]

द्वितीय गमन (द्वितीय बार)

§ १९ रूपी अचा होति सुच (२३ २ १९)

आत्मा रूपयान् होता है की मिथ्या-दृष्टि

भावस्ती ।

मिथुभो ! किसके होने से — “मरने के बाद आत्मा रूप बाका अरोग होता है ?”

मिथुभो ! रूपके होने से ।

मिथुभो ! इस तरह बुद्ध के होने से बुद्ध के उपादान से बुद्ध के अभिनिवेश से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है ।

§ २० अरूपी अचा होति सुच (२३ २ २०)

अरूपयान् आत्मा है की मिथ्या दृष्टि

मिथुभो ! किसके होने से — “मरने के बाद आत्मा रूपरहित अरोग होता है ?”

§ २१ रूपी च अरूपी च अचा होति सुच (२३ २ २१)

रूपयान् भीर अरूपयान् आत्मा होता है की मिथ्या-दृष्टि

मरने के बाद आत्मा रूपयान् भीर रूपरहित अरोग होता है ।

चौथा भाग

चतुर्थ गमन

§ १. वात सुत्त (२३ ४ १)

मिथ्या-दृष्टि का मूल

श्रावस्ती....।

भिक्षुओ ! किसके होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—“हवा नहीं बहती है ” ?

भिक्षुओ ! रूप के होने से । वेदना । सज्ञा । सस्कार । विज्ञान ।

भिक्षुओ ! रूप नित्य है या अनित्य ?

भिक्षुओ ! इसलिये, जो कुछ रूप—अतीत, अनागत हे सभी न मेरा है, न मैं हूँ ओर मेरा आत्मा है । इसे यथार्थतः ठीक से प्रज्ञापूर्वक जान लेना चाहिये ।

यह जान ।

§ २-२६. सव्वे सुत्तन्ता पुब्बे आगता येव (२३. ४ २-२६)

[इसके आगे ऐसा ही विस्तार करके समझ लेना चाहिये]

भिक्षुओ ! यह जान, पण्डित आर्यश्रावक रूप से वैराग्य करता है । वेदना से । सज्ञा । सस्कार । विज्ञान । वैराग्य करने से रागरहित हो विमुक्त हो जाता है । तब, उसे 'मैं विमुक्त हो गया' ऐसा ज्ञान होता है । जाति क्षीण हुई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, पुनर्जन्म नहीं होगा—ऐसा जान लेता है ।

दृष्टि-संयुक्त समाप्त ।

तीसरा भाग

तृतीय गमन

§ १ वात सुप्त (२३ ३ १)

मिथ्यादृष्टि का मूल

धावन्ती ।

मिथुनो ! किसके होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है— 'न हुआ बढ़ती है' ?

अन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही ।

मिथुनो ! रूप के होने से । वेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

मिथुनो ! रूप विषय है या अविषय ?

मिथुनो ! इस तरह जो अविषय है वह दुःख है । उसके होने से उसके उपादान से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—जब नहीं बढ़ती है ।

§ २-२५ सम्ये सुप्तन्ता पुम्मे आगता येव (२३ ३ २-२५)

[इसके जाने ऐसा ही विस्तार करके समझ लेना चाहिये]

§ २६ अरोगो होति परम्परभा सुप्त (२३ ३ २६)

आरामा अरोग होता है' की मिथ्या-दृष्टि

मिथुनो ! किसके होने से ऐसी मिथ्या दृष्टि उत्पन्न होती है—“मरने के बाद आत्मा अदुःखमय सुखी अरोग रहता है ?

मिथुनो ! इस तरह जो अविषय है वह दुःख है । उसके होने से उसके उपादान से उसके अविनिर्मुक्त से ऐसी दृष्टि उत्पन्न होती है ।

§ ५. वेदना सुत्त (२४. ५)

वेदना अनित्य है

भिक्षुओ ! चक्षु-स्पर्शजा वेदना अनित्य है ।

§ ६. सज्जा सुत्त (२४. ६)

रूप-संज्ञा अनित्य है

भिक्षुओ ! रूप-संज्ञा अनित्य है ।

§ ७. चेतना सुत्त (२४. ७)

चेतना अनित्य है

भिक्षुओ ! रूप-मयचेतना अनित्य है ।

§ ८. तृष्णा सुत्त (२४. ८)

तृष्णा अनित्य है

भिक्षुओ ! रूप-तृष्णा अनित्य है ।

§ ९. धातु सुत्त (२४. ९)

पृथ्वी-धातु अनित्य है

भिक्षुओ ! पृथ्वी-धातु अनित्य है ।

§ १०. खन्ध सुत्त (२४. १०)

पञ्चस्कन्ध अनित्य हैं

भिक्षुओ ! रूप अनित्य है, परिवर्तनशील है, बदल जानेवाला है । वेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

भिक्षुओ ! जो इन धर्मों को इस प्रकार विश्वास-पूर्वक जान लेता है

भिक्षुओ ! जिन्हें ये धर्म प्रज्ञा-पूर्वक ध्यान में आते हैं ।

भिक्षुओ ! जो इन धर्मों को इस प्रकार जानता देखता है, वह खोतापन्न कहा जाता है ।

ओक्कन्त-संयुत्त समाप्त

चौथा परिच्छेद

२४. ओक्कन्त-सयुत्त

§ १ चक्षु सुत्त (२४ १)

चक्षु अतिरथ है

आयस्ती ।

मिथुओ ! चक्षु अतिरथ है परिवर्तनशील है बदल जाने वाला है । द्योत अतिरथ है । प्राण विद्ध । काया । मन अतिरथ है परिवर्तनशील है बदल जाने वाला है ।

मिथुओ ! जो इन धर्मों को इस प्रकार विश्वासपूर्वक जान लेता है वह मुक्त हो जाता है । इसी को करते हैं—सद्यमानुसारी जिसका मार्ग समाप्त हो गया है सत्पुरुष-सूक्ति को जिनम पा लिया है पुरुषार्थ-सूक्ति से जो हट गया है । वह उस कर्म का नहीं कर सकता जिसके करने से नरक में तिर शीत बोधि में या प्रेता में जल्पा होना पड़े । जब तक कोलापत्ति-कर्म की प्राप्ति न हो के तब तक वह मर नहीं सकता ।

मिथुओ ! जिन्हें ये धर्म प्रज्ञा पूर्वक ज्ञान में जाते हैं वे धर्मानुसारी कह करते हैं जिसका मार्ग समाप्त हो गया है, । जब तक कोलापत्ति-कर्म की प्राप्ति न हो के तब तक वह मर नहीं सकता ।

मिथुओ ! जो इन धर्मों का इस प्रकार जानता देखता है वह कोलापत्ति कहा जाता है ।

§ २ रूप सुत्त (२४ २)

रूप अतिरथ है

आयस्ती ।

मिथुओ ! रूप अतिरथ है ॥ परिवर्तनशील है ॥ बदल जाने वाले हैं । शब्द । गन्ध । रस । स्पर्श । धर्म अतिरथ है परिवर्तनशील है बदल जाने वाले हैं ।

मिथुओ ! जो इन धर्मों को इस प्रकार विद्वत्-पूर्वक जान लेता है [शीघ्र पूर्ववत्]

§ ३ विष्णुसुत्त (२४ ३)

चक्षु-विज्ञान अतिरथ है

मिथुओ ! चक्षु-विज्ञान अतिरथ है परिवर्तनशील है बदल जाने वाला है । श्रोत-विज्ञान । प्राण-विज्ञान । विद्या-विज्ञान । अक्षय-विज्ञान । मनोविज्ञान ।

§ ४ फस्म सुत्त (२४ ४)

चक्षु-रूपदा अतिरथ है

मिथुओ ! चक्षु-रूपदा अतिरथ है परिवर्तनशील है बदल जाने वाला है । श्रोत-रूपदा । प्राण-रूपदा । विद्या-रूपदा । अक्षय-रूपदा । मनो-रूपदा ।

§ ६. संज्ञा सुत्त (२५. ६)

संज्ञा

भिक्षुओ ! जो रूप-संज्ञा की उत्पत्ति ।

भिक्षुओ ! जो रूप-संज्ञा का निरोध ।

§ ७. चेतना सुत्त (२५. ७)

चेतना

भिक्षुओ ! जो रूप-संचेतना की उत्पत्ति ।

भिक्षुओ ! जो रूप-संचेतना का निरोध ।

§ ८. तृष्णा सुत्त (२५. ८)

तृष्णा

भिक्षुओ ! जो रूप-तृष्णा की उत्पत्ति .. ।

भिक्षुओ ! जो रूप-तृष्णा का निरोध ।

§ ९. धातु सुत्त (२५. ९)

धातु

भिक्षुओ ! जो पृथ्वी-धातु की उत्पत्ति ।

भिक्षुओ ! जो पृथ्वी-धातु का निरोध ।

§ १०. खन्ध सुत्त (२५. १०)

स्कन्ध

भिक्षुओ ! जो रूप की उत्पत्ति । वेदनाकी । संज्ञाकी । संस्कारकी .. । विज्ञानकी ... ।

भिक्षुओ ! जो रूप का निरोध ।

उत्पाद-संयुक्त समाप्त

पाँचवाँ परिच्छेद

२४ उत्पाद-संयुक्त

§ १ चक्षु सुच (२५ १)

अक्षु निरोध से कुक्ष निरोध

भावस्ती ।

मिथुनो ! जो चक्षु की उत्पत्ति स्थिति और प्रादुर्भाव है वह कुक्ष की उत्पत्ति रोगों की स्थिति और वरामरण का प्रादुर्भाव है । जो श्रोत्र की । जो ग्राह्य की । जो विद्या की । जो कर्मा की । जो मन की ।

मिथुनो ! जो चक्षु के निरोध प्युपक्षम और अस्त हो जाता है वह कुक्ष का निरोध रोगों का प्युपक्षम और वरामरण का अस्त हो जाता है । जो श्रोत्र का निरोध । ग्राह्य । विद्या । कर्मा । मन ।

§ २ रूप सुच (२५ २)

रूप-निरोध से कुक्ष-निरोध

भावस्ती

मिथुनो ! जो रूपों की उत्पत्ति स्थिति और प्रादुर्भाव है वह कुक्ष की उत्पत्ति रोगों की स्थिति और वरामरण का प्रादुर्भाव है । जो शब्दों की । जो गन्धों की । जो रसों की । जो रसों की । जो स्पर्शों की । जो बसों की ।

मिथुनो ! जो रूपों के निरोध प्युपक्षम और अस्त हो जाता है वह कुक्षों का निरोध रोगों का प्युपक्षम और वरामरण का अस्त हो जाता है । जो शब्दों का । जो बसों का ।

§ ३ विम्व्याप सुच (२५ ३)

अक्षु विज्ञान

मिथुनो ! जो अक्षु-विज्ञान की उत्पत्ति । जो श्रोत्र विज्ञान की । जो मनो-विज्ञान की ।

मिथुनो ! जो अक्षु-विज्ञान का निरोध ।

§ ४ फस्त सुच (२५ ४)

स्पर्श

मिथुनो ! जो अक्षु-स्पर्श की उत्पत्ति ।

मिथुनो ! जो अक्षु-स्पर्श का निरोध

§ ५ वेदना सुच (२५ ५)

वेदना

मिथुनो ! जो अक्षु-स्पर्शज वेदना की उत्पत्ति ।

मिथुनो ! जो अक्षु-स्पर्शज वेदना का निरोध ।

§ ८. तण्हा सुत्त (२६. ८)

तृष्णा

भिक्षुओ ! जो रूप-तृष्णा में छन्दराग है ।

§ ९. धातु सुत्त (२६. ९)

धातु

भिक्षुओ ! जो पृथ्वी धातु में छन्दराग है ।

§ १०. खन्ध सुत्त (२६. १०)

स्कन्ध

भिक्षुओ ! जो रूप में छन्दराग है । जो वेदना में । जो सज्ञा में । जो संस्कार में ।
जो विज्ञान में ।

कुश संयुक्त समाप्त

छठाँ परिच्छेद

२६ क्लेश-समुत्त

§ १ वस्तु सुत्त (२६ १)

वस्तु का छन्दराग चित्त का उपह्वेश है

भावसूची ।

मिथुभो ! जो वस्तु में छन्दराग है वह चित्त का उपह्वेश है । जो बोध में जो मग में ।

मिथुभो ! जब हृदय छाः स्वार्थों में (=वस्तु धीरे धीरे ज्ञान, कल्पा भग्न) मिथु का चित्त उपह्वेश-रहित होता है तो उसका चित्त मैज्जम्य की ओर मुक्त होता है । मैज्जम्य में सम्मत्त चित्त प्रशान्तार्थक आश्वासन करने योग्य धर्मों में स्मरता है ।

§ २ रूप सुत्त (२६ २)

रूप

मिथुभो ! जो रूपों में छन्दराग है वह चित्त का उपह्वेश है । जो साधु में जो धर्मों में ।

मिथुभो ! जब हृदय छाः स्वार्थों में मिथु का चित्त उपह्वेश रहित होता है ।

३ विज्झाण सुत्त (२६ ३)

विज्ञान

मिथुभो ! जो वस्तु विज्ञान में छन्दराग है ।

§ ४ सम्पस्स सुत्त (२६ ४)

स्पर्श

मिथुभो ! जो वस्तुस्पर्श में छन्दराग है ।

§ ५ वेदना सुत्त (२६ ५)

वेदना

मिथुभो ! जो वस्तुस्पर्शज वेदना में छन्दराग है ।

§ ६ सम्मत्ता सुत्त (२६ ६)

संज्ञा

मिथुभो ! जो रूप संज्ञा में छन्दराग है ।

§ ७ समोत्तना सुत्त (२६ ७)

चेतना

मिथुभो ! जो रूप संज्ञा में छन्दराग है ।

§ ३. पीति सुत्त (२७ ३)

तृतीय ध्यान की अवस्था में

आवुस्ती...।

.. आवुस ! यह मैं प्रीति में और विराग में उपेक्षा रखते हुये विहार कर रहा था—जिसे पण्डित लोग कहते हैं कि उपेक्षा के साथ स्मृतिमान हो सुखपूर्वक विहार करता है उस तृतीय ध्यान को प्राप्त हो विहार कर रहा था.. ।

आयुष्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ।

§ ४. उपेक्षा सुत्त (२७ ४)

चतुर्थ ध्यान की अवस्था में

आवुस ! यह मैं सुख और दुःख के प्रहाण हो जाने से, पहले ही सौमनस्य-दोर्मनस्य के अस्त हो जाने से सुख-दुःख में रहित उपेक्षा स्मृतिपरिशुद्ध वाले चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहार कर रहा था .।

आयुष्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ।

§ ५. आकास सुत्त (२७ ५)

आकाशानन्त्यायतन की अवस्था में

भिक्षुओ ! यह मैं रूप-मज्ञा का वित्कुल समतिक्रमण कर, प्रतिघमज्ञा के अस्त हो जाने से, नानाधम-सज्ञा के मन में न आने से, 'आकाश अनन्त है' ऐसा आकाशानन्त्यायतन को प्राप्त हो विहार कर रहा था ।

आयुष्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ।

§ ६. विज्ञाण सुत्त (२७ ६)

विज्ञानानन्त्यायतन की अवस्था में

आवुस ! यह मैं आकाशानन्त्यायतन का वित्कुल समतिक्रमण कर, "विज्ञान अनन्त है" ऐसा विज्ञानानन्त्यायतन को प्राप्त हो विहार कर रहा था ।

आयुष्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ।

§ ७. आकिञ्चञ्ज सुत्त (२७ ७)

आकिञ्चन्यायतन की अवस्था में

आवुस ! यह मैं विज्ञानानन्त्यायतन का वित्कुल समतिक्रमण कर, "कुछ नहीं है" ऐसा आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त हो विहार कर रहा था ।

आयुष्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ।

§ ८. नेवसञ्ज सुत्त (२७ ८)

नैवसंज्ञानासंज्ञायतन की अवस्था में

आवुस ! यह मैं आकिञ्चन्यायतन का वित्कुल समतिक्रमण कर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त हो विहार कर रहा था ।

आयुष्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ।

सातवाँ परिच्छेद

२७ सारिपुत्र-संयुक्त

§ १ विवेक सुत्त (२७ १)

प्रथम ध्यान की अवस्था में

एक समय आसुप्मान् सारिपुत्र धावस्ती में अनापविष्टिक के आराम जेतवन में विहार करते थे ।

तब पूर्वाह्न में आसुप्मान् सारिपुत्र पहन भीर पात्रपीवर ले धावस्ती में सिंहासन के किनारे बैठे ।

सिंहासन से नीचे मोड़कर कंधे पर दिन के विहार के लिये वहाँ अम्बवण है वहाँ गये । अम्बवण में बैठ किसी वृक्ष के नीचे बैठ गये ।

तब संध्या समय आसुप्मान् सारिपुत्र ध्यान से उठ वहाँ अनापविष्टिक का आराम जेतवन है वहाँ आये ।

आसुप्मान् आनन्द ने आसुप्मान् सारिपुत्र को पूर ही संभाते देखा । देखकर आसुप्मान् सारिपुत्र से कहा “आसुत्त सारिपुत्त ! आपकी इन्द्रियो बहुत प्रसन्न हैं सुख की काम्नि बड़ी झुन्न हो रही है । आज आप कैसे विहार कर रहे थे ?

आसुत्त ! यह मैं कामा से विविक्त हो पाप धर्मों से विविक्त हो वितर्कबाधे विचारबाधे तथा विषेकज प्रीतिमुक्त बाधे प्रथम ध्यान का काम कर विहार करता था । आसुत्त ! तब मैं यह नहीं समझ रहा था कि मैं प्रथम ध्यान को प्राप्त कर रहा हूँ, या प्रथम ध्यान को प्राप्त कर लिया हूँ, या प्रथम ध्यान से उठ रहा हूँ ।

आसुप्मान् सारिपुत्र के कहकार समझार, मान भीर अनुसय बहुत पहले ही यह हो चुके थे । इसलिये उनको इसका भी पता नहीं था कि मैं प्रथम ध्यान को प्राप्त कर रहा हूँ, या प्रथम ध्यान को प्राप्त कर लिया हूँ, या प्रथम ध्यान से उठ रहा हूँ ।

§ २ अपितकक सुत्त (२७ २)

द्वितीय ध्यान की अवस्था में

धावस्ती ।

[पूर्वाह्न]

आसुत्त ! यह मैं वितर्क भीर विचार के शांत हो जाये सं, अपपात्य संसारा विल की नश्वरता धर्मिर्ज अविचार समाधिज प्रीतिमुक्त बाधे द्वितीय ध्यान प्राप्त हो विहार कर रहा था । आसुत्त ! तब मैं यह नहीं समझ रहा था कि मैं द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर रहा हूँ, या द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर लिया हूँ, या द्वितीय ध्यान से उठ रहा हूँ ।

आसुप्मान् सारिपुत्र के कहकार ...।

§ ३. पीति सुत्त (२७ ३)

तृतीय ध्यान की अवस्था में

श्रावस्ती ।

आवुस । यह मैं प्रीति से ओर विराग से उपेक्षा रखते हुये विहार कर रहा था—जिसे पण्डित लोग कहते हैं कि उपेक्षा के साथ स्मृतिमान् हो सुखपूर्वक विहार करता है उस तृतीय ध्यान को प्राप्त हो विहार कर रहा था ।

आयुष्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ।

§ ४. उपेक्षा सुत्त (२७ ४)

चतुर्थ ध्यान की अवस्था में

आवुस । यह मैं सुख और दुःख के प्रहाण हो जाने से, पहले ही सौमनस्य-दौर्मनस्य के अस्त हो जाने से सुख-दुःख से रहित उपेक्षा स्मृतिपरिशुद्ध वाले चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहार कर रहा था ।

आयुष्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ।

§ ५. आकास सुत्त (२७ ५)

आकाशानन्त्यायतन की अवस्था में

भिक्षुओ ! यह मैं रूप-संज्ञा का विल्कुल समतिक्रमण कर, प्रतिघसंज्ञा के अस्त हो जाने से, नानात्म-संज्ञा के मन में न आने से, 'आकाश अनन्त है' ऐसा आकाशानन्त्यायतन को प्राप्त हो विहार कर रहा था ।

आयुष्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ।

§ ६. विज्ञाण सुत्त (२७ ६)

विज्ञानानन्त्यायतन की अवस्था में

आवुस । यह मैं आकाशानन्त्यायतन का विल्कुल समतिक्रमण कर, "विज्ञान अनन्त है" ऐसा विज्ञानानन्त्यायतन को प्राप्त हो विहार कर रहा था ।

आयुष्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ।

§ ७. आकिञ्चञ्ज सुत्त (२७ ७)

आकिञ्चन्यायतन की अवस्था में

आवुस । यह मैं विज्ञानानन्त्यायतन का विल्कुल समतिक्रमण कर, "कुछ नहीं है" ऐसा आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त हो विहार कर रहा था ।

आयुष्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ।

§ ८. नेवसञ्ज सुत्त (२७ ८)

नैवसंज्ञानासंज्ञायतन की अवस्था में

आवुस । यह मैं आकिञ्चन्यायतन का विल्कुल समतिक्रमण कर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त हो विहार कर रहा था ।

आयुष्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ।

§ ९ निरोध मुच (२७ ९)

संज्ञावेद्यितनिरोध की समस्या में

भाषुस ! यह मैं नैवसंशयार्थशायतन का विष्णुक समतिक्रमण कर संज्ञावेद्यितनिरोध को प्राप्त हो बिहार कर रहा था ।

आयुष्मान् सारिपुत्र क भट्टार ।

§ १० सूचिमुखी मुच (२७ १०)

मिक्षु धमपुत्रक आहार ग्रहण करते हैं

एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र राजगृह में येलुधन कलम्बक मिक्षा में बिहार करते थे ।

तब आयुष्मान् सारिपुत्र पूर्वाह्न समय पहन और पात्र भीर के राजगृह में मिक्षादन के लिये पड़े । राजगृह में द्वार-द्वार पर मिक्षा के उस मिक्षाक को एक दीवास से लगे बैठकर ला रहे थे । तब सूचिमुखी परिम्राजिका वहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ आई और बोली "धमज ! नीचे मुँह किस क्यों ला रहा है !

बहन ! मैं नीचे मुँह किस नहीं ला रहा हूँ ।

धमज ! तो ऊपर मुँह करके ला रहे हो ?

बहन ! मैं ऊपर मुँह करके भी नहीं ला रहा हूँ ।

धमज ! तो चारों ओर मुँह घुमा घुमाकर ला रह हो ?

बहन ! मैं चारों ओर मुँह घुमा घुमाकर भी नहीं ला रहा हूँ ।

धमज ! जब तुम सभी में 'नहीं' कहत हो तो भला कैसे ला रह हो ?

बहन ! जो धमज या माझम वस्तुविद्या तिरस्कीर विद्या के मिष्याजीव स जीवन निर्वाह करत हैं वे नीचे मुँह करके लातेवाले कहे जाते हैं ।

बहन ! जो धमज या माझम वस्तुविद्या के मिष्याजीव स जीवन निर्वाह करत हैं वे ऊपर मुँह करके लातेवाले कहे जाते हैं ।

बहन ! जो धमज या माझम वस्तु के काम के मिष्याजीव स जीवन निर्वाह करते हैं वे दिसाओं में मुँह करके लातेवाले कहे जाते हैं ।

बहन ! जो धमज या माझम वस्तुविद्या के मिष्याजीव स जीवन निर्वाह करते हैं वे विद्विषाओं में मुँह करके लाते वाक कह जाते हैं ।

बहन ! इनमें मैं किसी तरह जीवन निर्वाह नहीं करता । मैं धर्म-धर्म मिक्षादन करके लाता हूँ

तब सूचिमुखी परिम्राजिका राजगृह में एक गली से दूसरी गली और एक बीराई से दूसरी बीराई पर जा जाकर कहने लगी—माधवपुत्र धमज धर्मधर्मक आहार ग्रहण करते हैं शावकपुत्र अनिरुध आहार ग्रहण करत हैं । शावकपुत्र धमजा को मिक्षा ला ।

सारिपुत्र-संयुक्त समाप्त

आठवाँ परिच्छेद

२८. नाग-संयुक्त

§ १. सुद्धिक सुत्त (२८. १)

चार नाग योनियों

श्रावस्ती....।

भिक्षुओ ! नाग-योनियों चार हैं । कान र्मा चार ? (१) अण्डज नाग, (२) पिण्डज नाग, (३) सस्वेदज नाग, (४) औपपातिक नाग । भिक्षुओ ! यही चार नाग-योनियों हैं ।

§ २. पणीततर सुत्त (२८. २)

चार नाग-योनियों

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! नाग-योनियों चार हैं ।

भिक्षुओ ! अण्डज नाग से ऊपर के तीन नाग ऊँचे हैं ।

भिक्षुओ ! अण्डज और पिण्डज नाग से ऊपर के दो नाग ऊँचे हैं ।

भिक्षुओ ! अण्डज पिण्डज और सस्वेदज नाग से औपपातिक नाग ऊँचा है ।

§ ३. पठम उपोसथ सुत्त (२८. ३)

कुछ नाग उपोसथ रखते हैं

श्रावस्ती ।

तब, कोई भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, “भन्ते ! क्या हेतु = प्रत्यय है कि कुछ अण्डज नाग उपोसथ रखते हैं और अच्छे शरीर वाले हो जाते हैं ?

भिक्षु ! कुछ अण्डज नागों के मन में ऐसा होता है, “हम पहले शरीर में, वचन में और मनसे पुण्य-पाप करने वाले थे, सो हम मरने के बाद अण्डज नाग-योनि में उत्पन्न हुये ।

तो, हम अब शरीर, वचन और मन से सदाचार करें, जिसमें मरने के बाद हम स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त करें ।

भिक्षुओ ! यही हेतु = प्रत्यय है कि कुछ अण्डज नाग उपोसथ रखते हैं और अच्छे शरीर वाले हो जाते हैं ।

§ ४-६. दुत्तिय-तत्तिय-चतुत्थ उपोसथ सुत्त (२८. ४-६)

कुछ नाग उपोसथ रखते हैं

भन्ते ! क्या हेतु = प्रत्यय है कि कुछ पिण्डज नाग , सस्वेदिक नाग ? औपपातिक नाग....?

§ ७ पठम तस्स सुत्त सुत्त (२८ ७)

नाग-यानि में उत्पन्न होने का कारण

भावस्ती ।

एक ओर बैठ वह मिथु भगवान् स बोला 'अन्ते ! क्या हेतु = प्रत्यय है कि कुछ लोग मरण के बाद अण्डज नाग-योनि में उत्पन्न होते हैं ?

मिथु ! कुछ लोग सरीर पचन और ममसे पुण्य-याप करने वाले होते हैं । वे मृगते हैं—अण्डज नाग बीज पु सुन्दर और सुखी होते हैं । अन्ते ! उनके मनमें होता है "अरे ! हम मरने के बाद अण्डज नागों में उत्पन्न होंगे ।

वे मरने के बाद अण्डज नागों में उत्पन्न होते हैं ।

मिथु ! यही हेतु = प्रत्यय है ।

§ ८ १० दुतिय-त्तविय चतुत्थ तस्स सुत्त सुत्त (२८ ८-१०)

नाग-योनि में उत्पन्न होने का कारण

अन्ते ! क्या हेतु = प्रत्यय है कि कुछ लोग मरने के बाद पिण्डज संस्वेदज बीजपातिक नाग-योनि में उत्पन्न होते हैं ?

§ ११ पठम दानुपकार सुत्त (२८ ११)

नाग-योनि में उत्पन्न होने का कारण

उसके मन में ऐसा होता है "अरे ! हम भी मरने के बाद अण्डज नाग-योनि में उत्पन्न हों ।"

वह अन्न पात्र बन्ध सचारी माछा गन्ध विक्षेपण सत्त्वा पर पक्षीय का दान करता है । वह मरने के बाद अण्डज नाग योनि में उत्पन्न होता है ।

मिथु ! यही हेतु = प्रत्यय है ।

§ १२-१४ दुतिय-त्तविय-चतुत्थ दानुपकार सुत्त (२८ १२-१४)

नाग-योनि में उत्पन्न होने का कारण

'वह मरण के बाद पिण्डज नाग योनि में संस्वेदज नाग-योनि में बीजपातिक नाग-योनि में उत्पन्न होता है ।

नाग संयुक्त समाप्त

नवाँ परिच्छेद

२९. सुपर्ण-संयुक्त

§ १. सुद्वक सुत्त (२९ १)

चार सुपर्ण-योनियाँ

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! चार सुपर्ण-योनियाँ हैं । कौन सी चार ? अण्डज, पिण्डज, सस्वेदज, और औप-
पातिक ।

§ २ हरन्ति सुत्त (२९ २)

हर ले जाते हैं

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! अण्डज सुपर्ण अण्डज नागों को हर ले जाते हैं, पिण्डज, सस्वेदज और औपपातिक
को नहीं ।

पिण्डज सुपर्ण अण्डज और पिण्डज नागों को हर ले जाते हैं, सस्वेदज और औपपातिक को नहीं ।
सस्वेदज सुपर्ण अण्डज, पिण्डज और सस्वेदज नागों को हर ले जाते हैं, औपपातिक को नहीं ।
औपपातिक सुपर्ण सभी लोगों को हर ले जाते हैं । भिक्षुओ ! यही चार सुपर्ण-योनियाँ हैं ।

§ ३. पठम द्वयकारी सुत्त (२९ ३)

सुपर्ण-योनि में उत्पन्न होने का कारण

श्रावस्ती ।

एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, “भन्ते ! क्या हेतु=प्रत्यय है कि कुछ लोग
मरने के बाद अण्डज सुपर्ण योगि में उत्पन्न होते हैं ?

भिक्षु ! कुछ लोग शरीर, वचन और मन से पुण्य-पाप करने वाले होते हैं । वे सुनते हैं—अण्डज
सुपर्ण दीर्घायु, सुन्दर और सुखी होते हैं । अतः, उनके मन में होता है, “अरे ! हम मरने के बाद
अण्डज सुपर्णों में उत्पन्न होवें ।

वे मरने के बाद अण्डज सुपर्णों में उत्पन्न होते हैं ।

भिक्षु ! यही हेतु=प्रत्यय ।

§ ४-६. दुतिय-ततिय-चतुत्थ द्वयकारी सुत्त (२९ ४-६)

सुपर्ण-योनि में उत्पन्न होने का कारण

श्रावस्ती ।

भन्ते ! क्या हेतु=प्रत्यय है कि कुछ लोग मरने के बाद पिण्डज , सस्वेदज , औपपातिक
सुपर्ण योनि में उत्पन्न होते हैं ?

§ ७ पठम दानुपकार सुत्त (२९ ७)

दान भादि देन से सुपणं योनि में

उसके मरण में पसा होता है 'मरे ! हम जी मरने के बाद जन्मद्वय सुपणं-योनि में उत्पन्न हों' ।

यह मरण पाम वत्थ सवारी माफा गम्भ विछेपन सग्ग्या वर पदीप का दान करता है । यह मरने के बाद अण्हय सुपणं योनि में उत्पन्न होता है ।

मिथु ! यही हेतु=कारण ।

§ ८-१० दुत्तिय-तत्तिय चतुत्थ दानुपकार सुत्त (२९ ८-१०)

दान भादि देने से सुपणं योनि में

यह मरण के बाद पिण्हय सुपणं-योनि में संम्बेदय सुपणं योनि में औपपातिक सुपणं-योनि में उत्पन्न होता है ।

सुपणं संयुक्त

दसवाँ परिच्छेद

३०. गन्धर्वकाय-संयुक्त

§ १. सुदृक सुत्त (३० १)

गन्धर्वकाय देव कौन है ?

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! गन्धर्वकाय देवों के विषय में कहूँगा । उसे सुनो ।

भिक्षुओ ! गन्धर्वकाय देव कौन से है ?

भिक्षुओ ! मूलगन्ध में वास करने वाले देव हैं । सारगन्ध में वास करने वाले देव हैं । कच्ची लकड़ी के गन्ध में वास करने वाले देव हैं । छाल के गन्ध में वास करने वाले देव हैं । पपड़ी के गन्ध में । पत्तों के गन्ध में । फल के गन्ध में । फल के गन्ध में । रस के गन्ध में । गन्ध के गन्ध में ।

भिक्षुओ ! यही गन्धर्वकायिक देव कहलाते हैं ।

§ २ मुचरित सुत्त (३० २)

गन्धर्व-योनि में उत्पन्न होने का कारण

श्रावस्ती ।

एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, “भन्ते ! क्या हेतु=प्रत्यय है कि कोई यहाँ मरकर गन्धर्वकायिक देवों के बीच उत्पन्न होता है ?

भिक्षु ! कोई शरीर, वचन और मन से सदाचार करता है । वह कहीं सुन पाता है—गन्धर्वकायिक देव दीर्घायु, सुन्दर और सुखी होते हैं ।

तब, उसके मन में ऐसा होता है, “अरे ! मरने के बाद मैं भी गन्धर्वकायिक देवों में उत्पन्न होऊँ । वह ठीक मैं मरने के बाद गन्धर्वकायिक देवों में उत्पन्न होता है ।

भिक्षु ! यही हेतु=प्रत्यय है कि कोई यहाँ मरकर गन्धर्वकायिक देवों के बीच उत्पन्न होता है ।

§ ३. पठम दाता सुत्त (३० ३)

दान से गन्धर्व-योनि में उत्पत्ति

श्रावस्ती ।

उसके मन में यह होता है—अरे ! मरने के बाद मैं मूलगन्ध में वास करने वाले देवों के बीच उत्पन्न होऊँ । वह मूलगन्धों का दान करता है । वह मरने के बाद मूलगन्धों में वास करने वाले देवों के बीच उत्पन्न होता है ।

§ ४-१२ दासा सुत्त (३० ४-१२)

दाम से गन्धर्व-योनि में उत्पत्ति

बह सारगन्धर्वों का दाम करता है । वह मरने के बाद सारगन्धर्वों में वास करने वाले देवों के बीच उत्पन्न होता है ।"

बह ककड़ी के गन्धर्वों का दाम करता है ।

बह छाछ के गन्धर्वों का दाम करता है ।

पपड़ीके ।

पत्तों के ।

फूफ के ।

जक के ।

रस के ।

गन्ध के ।

मिथुनो ! यही हेतु-व्यत्यय ।

§ १३ पठम दानुपकार सुत्त (३० १३)

दाम से गन्धर्व-योनि में उत्पत्ति

धावस्ती ।

सन्तो ! क्या हेतु-व्यत्यय है कि कोई यहाँ मर कर मूकगन्धर्व में दाम करने वाले देवों के बीच उत्पन्न होता है ?

उसके मन में ऐसा होता है—अरे ! मरने के बाद मैं मूकगन्धर्व में वास करने वाले देवों के बीच उत्पन्न होऊँ । वह जब पाम बका सचारी का दाम करता है । वह मरने के बाद मूकगन्धर्व में दाम करने वाले देवों के बीच उत्पन्न होता है ।

मिथु ! यही हेतु-व्यत्यय ।

§ १४-२३ दानुपकार सुत्त (३० १४-२३)

दाम से गन्धर्व-योनि में उत्पत्ति

[दोष दस गन्धर्वों के साथ भी कमाकर समग्र देना चाहिये]

गन्धर्व-काय-संयुक्त समाप्त

ग्यारहवाँ परिच्छेद

३१. वलाहक-संयुत

§ १. देसना सुत्त (३१. १)

वलाहक देव कौन हैं ?

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! वलाहककायिक देवा के विषय में कहूँगा । उसे सुनो ।

भिक्षुओ ! वलाहककायिक देव कौन से हैं ? भिक्षुओ ! शीत वलाहक देव हैं । ऊष्ण वलाहक देव हैं । अन्न वलाहक देव हैं । वात वलाहक देव हैं । वर्षा वलाहक देव हैं ।

भिक्षुओ ! इन्हीं को वलाहककायिक देव कहते हैं ।

§ २. सुचरित सुत्त (३१ २)

वलाहक योनि में उत्पन्न होने का कारण

भिक्षु ! कोई शरीर, वचन और मन से सदाचार करता है । वह कहीं सुन लेता है । उसके मन में ऐसा होता है ।

मरने के बाद वह वलाहककायिक देवों के बीच उत्पन्न होता है ।

भिक्षु ! यही हेतु = प्रत्यय ।

§ ३. पठम दानुपकार सुत्त (३१ ३)

दान से वलाहक-योनि में उत्पत्ति

वह अन्न, पान, वस्त्र का दान करता है । वह मरने के बाद शीत वलाहक देवों के बीच उत्पन्न होता है ।

§ ४-७. दानुपकार सुत्त (३१ ४-७)

दान से वलाहक-योनि में उत्पत्ति

ऊष्ण वलाहक देवों के बीच उत्पन्न होता है ।

अन्न वलाहक देवों के बीच उत्पन्न होता है ।

वात वलाहक देवों के बीच उत्पन्न होता है ।

वर्षा वलाहक देवों के बीच उत्पन्न होता है ।

§ ८. शीत सुत्त (३१ ८)

शीत होने का कारण

श्रावस्ती ।

एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, “भन्ते ! क्या हेतु = प्रत्यय है कि कभी शीत होता है ?”

मिथु ! दक्षि बछाहक नाम के देव हैं । उनके मन में जब बह होता है—इसकी ओर अपनी इति स
रमण करें । जब उनके मन में ऐसा होने में सीत होता है ।

§ ९ उण्ह सुत्त (३१ ९)

गर्मी होने का कारण

मिथु ! उण्ह बछाहक नाम के देव हैं ।

§ १० अरुम सुत्त (३१ १०)

वायु होने का कारण

मिथु ! अरुम बछाहक नाम के देव हैं । "

§ ११ धात सुत्त (३१ ११)

धायु होने का कारण

मिथु ! धात बछाहक नाम के देव हैं ।

§ १२ वस्स सुत्त (३१ १२)

पर्पा होने का कारण

मिथु ! वपां बछाहक नाम के देव हैं ।

बछाहक संयुक्त समाप्त

—

—

बारहवाँ परिच्छेद

३२. वत्सगोत्र-संयुक्त

§ १. अज्ज्ञाण सुत्त (३२ १)

अज्ञान से नाना प्रकार की मिथ्या दृष्टियों की उत्पत्ति

श्रावस्ती • ।

तत्र, वत्सगोत्र परिव्राजक जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और कुशल क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ, वत्सगोत्र परिव्राजक भगवान् से बोला, “गौतम ! क्या हेतु=प्रत्यय है कि ससार में इतनी अनेक प्रकार की मिथ्या-दृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं—“लोकं शाश्वत है, या लोक अशाश्वत है । लोक सान्त है, या लोक अनन्त है । जो जीव है वही शरीर है, या जीव दूसरा और शरीर दूसरा है । मरने के बाद तथागत होता है, या मरने के बाद तथागत नहीं होता है । मरने के बाद तथागत होता है भी और नहीं भी होता है । मरने के बाद तथागत न होता है और न नहीं होता है” ?

वत्स ! रूप के अज्ञान से, रूप-समुदय के अज्ञान से, रूपनिरोध के अज्ञान से, रूप-निरोधगामिनी प्रतिपदा के अज्ञान से, ससार में इतनी अनेक प्रकार की मिथ्या दृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं—“लोक शाश्वत है ।

§ २-५. अज्ज्ञाण सुत्त (३२ २-५)

अज्ञान से मिथ्या दृष्टियों की उत्पत्ति

वत्स ! वेदना के अज्ञान से ।

वत्स ! संज्ञा के अज्ञान से ।

वत्स ! संस्कार के अज्ञान से ।

वत्स ! विज्ञान के अज्ञान से, विज्ञान-समुदय के अज्ञान से, विज्ञान निरोध के अज्ञान से, विज्ञान-निरोधगामिनी प्रतिपदा के अज्ञान से, ससार में इतनी अनेक प्रकार की मिथ्या-दृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं—“लोक शाश्वत है ।”

§ ६-१०. अदर्शन सुत्त (३२ ६-१०)

अदर्शन से मिथ्या-दृष्टियों की उत्पत्ति

श्रावस्ती • ।

एक ओर बैठ, वत्सगोत्र परिव्राजक भगवान् से बोला, गौतम ! क्या हेतु=प्रत्यय है कि ससार में इतनी अनेक प्रकार की मिथ्या-दृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं—“लोक शाश्वत है ।” ?

वत्स ! रूप के अदर्शन से । वेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

§ ११-१५ अनभिसमय सुप्त (३२ ११-१५)

ज्ञान न होने से मिथ्या-दृष्टियों की उत्पत्ति

भावस्ती ।

वस्तु ! रूप में अभिसमय नहीं होने से ।

वस्तु ! वैदना में ।

वस्तु ! संज्ञा में ।

वस्तु ! संस्कार में ।

वस्तु ! विज्ञान में ।

§ १६-२० अननुबोध सुप्त (३२ १६-२०)

भली प्रकार न आने से मिथ्या-दृष्टियों की उत्पत्ति

भावस्ती ।

वस्तु ! रूप में अनुबोध नहीं होने से ।

वस्तु ! वैदना में ।

वस्तु ! संज्ञा में ।

वस्तु ! संस्कार में ।

वस्तु ! विज्ञान में ।

§ २१-२५ अप्रतिबोध सुप्त (३२ २१-२५)

अप्रतिबोध न होने से मिथ्या-दृष्टियाँ

वस्तु ! रूप के अप्रतिबोध से विज्ञान के अप्रतिबोध से ।

§ २६-३० असत्त्वक्षण सुप्त (३२ २६-३०)

भली प्रकार विचार न करने से मिथ्या-दृष्टियाँ

वस्तु ! रूप के असत्त्वक्षण से विज्ञान के असत्त्वक्षण से ।

§ ३१-३५ अनुपलक्षण सुप्त (३२ ३१-३५)

अनुपलक्षण से मिथ्या-दृष्टियाँ

वस्तु ! रूप के अनुपलक्षण से विज्ञान के अनुपलक्षण से ।

§ ३६-४० अपक्षुपलक्षण सुप्त (३२ ३६-४०)

अपक्षुपलक्षण से मिथ्या-दृष्टियाँ

वस्तु ! रूप के अपक्षुपलक्षण से विज्ञान के अपक्षुपलक्षण से ।

§ ४१-४५ असमपेक्षण सुप्त (३२ ४१-४५)

असमपेक्षण से मिथ्या-दृष्टियाँ

वस्तु ! रूप के असमपेक्षण से विज्ञान के ।

§ ४६-५० अपक्षुपेक्षण सुप्त (३२ ४६-५०)

अपक्षुपेक्षण से मिथ्या-दृष्टियाँ

वस्तु ! रूप के अपक्षुपेक्षण से विज्ञान के ।

§ ५१ अपच्युपेक्षण सूक्त (३२. ५१)

अप्रत्यक्ष कर्म से मिथ्या-दृष्टियाँ

ध्रावन्ती *।

तब, वत्सगोत्र परिब्राजक जहाँ भगवान् के वहाँ आया, और कुशल क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ, वायसगोत्र परिब्राजक भगवान् से बोला, “गीतम । क्या हेतु=प्रत्यय है कि संसार में इतनी अनेक प्रकार की मिथ्या-दृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं—“लोक शास्त्र है ।”

वायस ! रूप के अप्रत्यक्ष-कर्म से, रूप समुच्चय के अप्रत्यक्ष कर्म से, रूपनिरोध के अप्रत्यक्ष कर्म से, रूप निरोधगामिनी प्रतिषेधा से अप्रत्यक्ष कर्म से इतनी अनेक प्रकार की मिथ्या-दृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं ।

§ ५२-५५ अपच्युपेक्षण सूक्त (३२. ५२-५५)

अप्रत्यक्ष कर्म से मिथ्या-दृष्टियाँ

* वत्स ! वेदना के अप्रत्यक्ष कर्म से ।

* वत्स ! मजा के अप्रत्यक्ष कर्म से ।

वायस ! संस्कार के अप्रत्यक्ष कर्म से ।

** वत्स ! विज्ञान के अप्रत्यक्ष कर्म से ।

वत्सगोत्र सयुक्त समाप्त

तेरहवाँ परिच्छेद

३३ ध्यान संयुक्त

§ १ समाधि-समापत्ति सुप्त (३३ १)

ध्यायी चार हैं

भावस्ती ।

मिथुनो ! ध्यायी चार हैं । कीन मे चार ?

मिथुनो ! कोई ध्यायी समाधि में समाधि-बुझा होता है समाधि में समापति-कुसल नहीं ।

मिथुनो ! कोई ध्यायी समाधि में समापति-कुसल होता है समाधि में समाधि-बुझा नहीं ।

मिथुनो ! कोई ध्यायी न समाधि में समाधि-बुझा होता है न समाधि में समापति-कुसल ।

मिथुनो ! कोई ध्यायी समाधि में समाधि-बुझा भी होता है और समाधि में समापति-कुसल भी ।

मिथुनो ! जो ध्यायी समाधि में समाधि-बुझा भी होता है और समाधि में समापति-बुझा भी नहीं है न चार ध्यायियों में जग-भेद = सुप्त-वृत्तम-अवर है ।

मिथुनो ! जमे गाय न बृष बृष से नहीं बृषी स मघजल मघजल से भी और भी स भी मघ मघ मघ जाला है । मिथुनो ! ईम ही जो ध्यायी समाधि में समाधि-बुझा भी होता है और समाधि में समापति-बुझा भी नहीं है न चार ध्यायियों में जग-भेद = सुप्त-वृत्तम-अवर है ।

§ २ ठिति सुप्त (३३ २)

स्थिति कुशल ध्यायी येष्ट

भावस्ती ।

मिथुनो ! ध्यायी चार हैं । कान मे चार ?

मिथुनो ! कोई ध्यायी समाधि में समाधि-बुझा होता है समाधि में स्थिति-बुझा नहीं ।

मिथुनो ! कोई ध्यायी समाधि में स्थिति-बुझा होता है समाधि-बुझा नहीं ।

मिथुनो ! कोई ध्यायी न समाधि में समाधि-बुझा होता है न समाधि में स्थिति-बुझा ।

मिथुनो ! कोई ध्यायी समाधि में समाधि-बुझा भी और समाधि में स्थिति-बुझा भी होता है ।

मिथुनो ! जो ध्यायी समाधि में समाधि-बुझा भी और समाधि में स्थिति-बुझा भी होता है न चार ध्यायियों में जग-भेद = सुप्त-वृत्तम-अवर होता है ।

मिथुनो ! जमे गाय मे बृष ।

§ ३ पुद्गल सुप्त (३३ ३)

ध्यायी कुशल ध्यायी इजम

मिथुनो ! ध्यायी चार होते हैं । कान मे चार ?

मिथुनो ! कोई ध्यायी समाधि में समाधि-बुझा होता है समाधि में पुद्गल-बुझा नहीं ।

मिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में व्युत्थानकुशल होता है, समाधि में समाधिकुशल नहीं ।

मिक्षुओ ! कोई ध्यायी न समाधि में व्युत्थानकुशल होता है, न समाधि में समाधिकुशल ।

मिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समाधिकुशल भी होता है, और समाधि में व्युत्थानकुशल भी ।

मिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समाधिकुशल भी होता है, और समाधि में व्युत्थानकुशल भी,

वही इन चार ध्यायियों में अग्र=श्रेष्ठ=मुत्तम=उत्तम=प्रथम माना है ।

§ ४. कलित सुत्त (३३ ४)

कल्य कुशल ध्यायी श्रेष्ठ

आवस्ती ।

मिक्षुओ ! ध्यायी चार होते हैं । कान से चार ?

मिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समाधिकुशल होता है, समाधि में कल्य-कुशल नहीं ।

मिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में कल्यकुशल होता है, समाधि में समाधिकुशल नहीं ।

मिक्षुओ ! कोई ध्यायी न समाधि में समाधिकुशल होता है, और न समाधि में कल्यकुशल ।

मिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समाधिकुशल भी होता है और समाधि में कल्यकुशल भी ।

मिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समाधिकुशल भी होता है, और समाधि में कल्यकुशल भी,

वही इन चार ध्यायियों में अग्र = श्रेष्ठ होता है ।

मिक्षुओ ! जैसे, गाय से दूध ।

§ ५. आरम्भण सुत्त (३३ ५)

आलम्बन कुशल ध्यायी श्रेष्ठ

आवस्ती ।

मिक्षुओ ! चार ध्यायी ।

मिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समाधिकुशल होता है, समाधि में आलम्बनकुशल नहीं ।

मिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समाधिकुशल भी, और समाधि में आलम्बनकुशल भी हैं, वे

ही इन चार ध्यायियों में अग्र=श्रेष्ठ ।

§ ६. गोचर सुत्त (३३ ६)

गोचरकुशल ध्यायी

चार ध्यायी ।

मिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समाधिकुशल होता है, समाधि में गोचरकुशल नहीं ।

मिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समाधिकुशल भी, और समाधि में गोचरकुशल भी हैं, वे ही

अग्र ।

§ ७. अभिनीहार सुत्त (३३. ७)

अभिनीहार-कुशल ध्यायी

चार ध्यायी ।

मिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समाधिकुशल होता है, समाधि में अभिनीहार-कुशल नहीं ।

मित्रभो ! जो प्यापी समाधि में समाधिपुत्रक भी और समाधि में समिमीहृत-कुशल भी है
यही भय ।

§ ८ समकृच्च सुप्त (३३ ८)

गौरव करनेवाला प्यापी

‘चार प्यापी ।

मित्रभो ! कोई प्यापी समाधि में समाधिपुत्रक होता है समाधि में गौरव करनेवाला नहीं ।

मित्रभो ! जो प्यापी समाधि में समाधिपुत्रक भी, और समाधि में गौरव करनेवाला भी है
वे ही भय ।

§ ९ सातव सुप्त (३३ ९)

निरुद्धर लगा रहनेवाला प्यापी

‘चार प्यापी ।

मित्रभो ! कोई प्यापी समाधि में समाधिपुत्रक होता है समाधि में सातवकारी नहीं ।

मित्रभो ! जो प्यापी समाधि में समाधिपुत्रक भी होता है और समाधि में सातवकारी भी
वही भय-भेद ।

§ १० मप्याय सुप्त (३३ १०)

समापकारी प्यापी

मित्रभो ! जो प्यापी समाधि में समाधिपुत्रक भी होता है और समाधि में समापकारी भी
वही भय-भेद ।

§ ११ मिति सुप्त (३३ ११)

प्यापी चार है

‘आधमर्ती ।

‘चार प्यापी ।

मित्रभो ! कोई प्यापी समाधि में समाधिपुत्रक होता है समाधि में मितिपुत्रक नहीं ।

मित्रभो ! कोई प्यापी समाधि में मितिपुत्रक होता है समाधि में समाधिपुत्रक नहीं ।

मित्रभो ! कोई प्यापी समाधि में न समाधिपुत्रक होता है और न मितिपुत्रक ।

मित्रभो ! कोई प्यापी समाधि में समाधिपुत्रक भी होता है और मितिपुत्रक भी ।

मित्रभो ! जो प्यापी समाधि में समाधिपुत्रक भी होता है और मितिपुत्रक भी न
आधमर्ती ।

§ १२ गृहान सुप्त (३३ १२)

गति कुशल

‘मित्रभो ! जो प्यापी समाधि में समाधिपुत्रक भी होता है और गतिपुत्रक भी
वही भय ।

§ १३ कलित सुत्त (३३ १३)

कल्य-कुशल

“ भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समापत्तिकुशल भी होता है, और कल्यकुशल भी, वह अग्र ”।

§ १४. आरम्भण सुत्त (३३ १४)

आलम्बन कुशल

“ भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समापत्तिकुशल होता है, और समाधि में आलम्बनकुशल भी, वह अग्र ”।

§ १५ गोचर सुत्त (३३ १५)

गोचर-कुशल .

“ भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समापत्तिकुशल होता है, और समाधि में गोचरकुशल भी, वह अग्र ।

§ १६. अभिनीहार सुत्त (३३. १६)

अभिनीहार-कुशल

“ भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समापत्तिकुशल होता है, और समाधि में अभिनीहारकुशल भी, वह अग्र ।

§ १७ सक्कच्च सुत्त (३३ १७)

गौरव करने में कुशल

भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समापत्तिकुशल होता है, और समाधि में सक्कत्यकारी भी, वह अग्र ”।

§ १८ सातच्च सुत्त (३३ १८)

निरन्तर लगा रहने वाला

भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समापत्तिकुशल होता है, और समाधि में सातत्यकारी भी, वह अग्र ”।

§ १९. सप्पाय सुत्त (३३ १९)

सप्रायकारी

भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समापत्तिकुशल होता है, और समाधि में सप्रायकारी भी, वह अग्र ।

§ २० ठिति सुत्त (३३. २०)

स्थिति-कुशल

चार ध्यायी ।

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में स्थितिकुशल होता है, समाधि में व्युत्थानकुशल नहीं ।

भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में स्थिति कुशल होता है, और समाधि में व्युत्थानकुशल भी, वह अग्र ।

§ २१-२७ पुष्पे आगत सुसन्ता सुप्त (३३ ४ २१-२७)

[इसी तरह 'स्थिति के साथ कल्पकुशाक आत्ममनकुशल गोचरकुशल अभिनीहार सत्त्विकारी सात्विकारी समापकारी के साथ भी समझ लेना चाहिये]

§ २८-३४ पुद्गल सुप्त (३३ २/-३४)

मिथुनो ! कोई व्यापी समाधि में ध्युत्थानकुशल होता है समाधि में कल्पकुशल नहीं ।

[इसी तरह आत्ममनकुशल गोचरकुशल अभिनीहार कुशल सत्त्विकारी सात्विकारी समापकारी के साथ भी समझ लेना चाहिये]

§ ३५-४० फलित सुप्त (३३ ३ —४०)

मिथुनो ! कोई व्यापी समाधि में कल्पकुशल होता है समाधि में आत्ममनकुशल नहीं ।

[इसी तरह गोचरकुशल अभिनीहार कुशल सत्त्विकारी सात्विकारी समापकारी के साथ भी समझ लेना चाहिये]

§ ४१-४५ आरम्भण सुप्त (३३ ४१-४५)

[इसी तरह गोचरकुशल अभिनीहारकुशल सत्त्विकारी सात्विकारी समापकारी के साथ भी समझ लेना चाहिये]

§ ४६-४९ गोचर सुप्त (३३ ४६-४९)

[इसी तरह अभिनीहारकुशल सत्त्विकारी सात्विकारी समापकारी के साथ भी समझ लेना चाहिये ।]

§ ५०-५२ अभिनीहार सुप्त (३३ ५०-५२)

[इसी तरह सत्त्विकारी सात्विकारी समापकारी के साथ भी समझ लेना चाहिये]

§ ५३-५४ सकलञ्च सुप्त (३३ ५३-५४)

[इसी तरह सात्विकारी समापकारी के साथ भी समझ लेना चाहिये]

§ ५५ सात्विक-सप्पाय सुप्त (३३ ५५)

व्यापी चार हैं

आधस्ती ।

मिथुनो ! आधी चार है । कान से चार ?

मिथुनो ! कोई व्यापी समाधि में सात्विकारी होता है समाधि में समापकारी नहीं ।

मिथुनो ! कोई व्यापी समाधि में समापकारी होता है सात्विकारी नहीं ?

मिथुनो ! कोई व्यापी समाधि में न सात्विकारी होता है और न समापकारी ।

मिथुनो ! कोई व्यापी समाधि में सात्विकारी होता है चार समापकारी भी ।

मिथुनो ! जो व्यापी समाधि में सात्विकारी होता है और समापकारी भी वह इन चार व्यापियों में अम-श्रेष्ठ-मुक्क-इच्छम-प्रवर होता है ।

मिथुनो ! जैसे माय से दूध दूध से बही बही से मन्त्रन मन्त्रन से भी धीरे मन्त्र जपन होता है । वैसे ही मिथुनो ! जो व्यापी समाधि में सात्विकारी होता है और समापकारी भी वह इन चार व्यापियों में अम-श्रेष्ठ-मुक्क-इच्छम-प्रवर होता है ।

मगनात् वह बोधे । संतुष्ट होकर जब मिथुनो ने मगनात् के बोधे का अनुमोदन किया ।

व्याप्त संयुक्त समाप्त

अन्य वर्य समाप्त

परिशिष्ट

१. उपमा सूची

अनाथ ६२
अन्धकार में जानेवाला पुरुष ८३
अपराधी चोर २३५
अमनुष्यवाले स्थान का जल ८१
आकाश में चाँद १५५
आकाश २७७
आग की ढेर २२९
आग का गड्ढा २३५
आभाइवर देव ९९
आम के गुच्छे ३८८
उत्पल ३८२
उत्पल का गन्ध ३७८
ऊपर जानेवाला पुरुष ८४
ऊपर से नीचे आने वाला पुरुष ८४
एणिमृग १८
औषधि तारका ६४
अंकुषी फेंकनेवाला २८७
कलुषा का खोपड़ी में अंग छिपाना ८
कलुषों का परिवार २८८
कटी घास १०६
कमल की नाल से पर्वत मथना १०७
कान्तार पाथेय २३४
कान्तार-मार्ग का कुँआ २४२
कालानुसारी ३८८
कुत्ता ३८५
कुम्हार का घड़ा ८५
कुम्हार का भाँवा से निकला बर्तन २२९
फूटागार २३६, ३०६, ३८८
केला २९५
कोशल की घाली ९२
कौये को खींचना १६५
खच्चरी का गर्भ १०५, २९५

गङ्गा नदी २७१, ३८२
गढ़गड़ाता हुआ मेघ ८७
गढ़गड़ाते मेघ की बिजली ९२
गाड़ी की हाल ९४
गाय का दूहन ३०७
गाय ४४८
गुह २६१
घसगड़वा ३८८
घी २६१
चण्ड कुत्ता २९६
चक्रवर्ती का जेठा पुत्र १५२
चक्रवर्ती राजा १५३, ३८८
चट्टान से शिर टकराना १०७
चन्द्रमा ३८८
चाँद सूरज की तेजी ३०८
चाँद २७७, २८०
छाँछ लगी गाय २३४
छोटी नदियों का चढ़ा पानी ९४
जम्बू द्वीप के घास-लकड़ी २६९
जर शृगाल ३१०
जाल के बुलबुले ३८०
जादूगर ३८३
जाल में पक्षी का फँसना ४६
जूही ३८८
जेतवन के तृण-काष्ठ ३३७
जगली हाथी १०६
झपटने वाला कौआ १०५
तरुण वृक्ष २३१
तेऊ २६१
तेल प्रदीप २३०
दसारहों का आनक मृदग ३०८
दारू पिया हुआ १६९

तृप्त २६१	बछ १०५
दो बंधु मर प्रजावाली १ ९	भट्टीदार की चटई ९२
दो पुरुष ३६८	भाषा सुमना ५६
धनुर्वर ३ ७	भैंसा २८८
पाई का कपड़ा १६३	मछली का काख काटना ५४
पुरा दूध हुआ गोदीवान् ६	मनु २६१
नकली कुम्हड़ ७५	मरीचिका ३८२
मक २९५	महल पर चढ़ा ११५
मकड़काप २४	महामेघ १५३
पक्षी का भूख बचाना १५०	महादूत २३
पत्त ११५	महानदियों का संगम २५१
पर्वत पर चढ़ा पुरुष १११	महापूष्पी २५१ २६९
पर्वत १८९	महान् पर्वत २०
मरीच का सुसना १२८	माठा ३६१
पहाड़ को नम से छोड़ना १ ७	माठा द्वारा पुत्र की रक्षा ४०
पूष्पी पदमा ९८ १ २	मातुबा कता १६५
पाठाक का अन्त खोजना १ ७	मुर्गी के अण्डे ३८७
पीने का कदोरा २३९	मूत्र २६१
पीन २६१	मूय का चौकता १६
पुराना मार्ग २३०	मूयराज सिंह ३५८
पुराना कुँआ २७७	मेघ के समान पर्वत ८७
पुर्निमा की रात का जाँड़ १८४	मीका २६१
पूत की छोपड़ी १२० १२८	मीका कापेवाका पिछ्छ ९८८
फोंका मुर्दा ६२	मीका कपड़ा ३०८
फोकापी काक ७१	रत्न-कम ३ ६
बड़ेरी बीसा लुफ १ १	रघ ११३
पड़े बुझ की भाव ९२	राही १६९
बाई का बसुका ३८०	बाई का काहा १ ७
पराग की साखाये १६५	रंगरेख २३६
बर्डी ३ ७	सकपियों की राग २३४
बछवान् पुरुष ११४ १०९ २९४	ककड़ी २६१
बहुत क्षिपीवाक्य कुक ३ ६	कट्ट २६१
बाबर २३३	कान्धार सँकड़ा १ ५
बाख् का कप ९५	काडी २०२
बाख् का घर ३ ६	कककम्ब ३८८
बिया बटवार की भाव ८९	कुम्हरी २५९
बिहार ३ ९	कोड़े की दूँत से बचाना १ ७
बीजरोपना ११३	काहि का घर १३५
बीज १८ ३६१	कोड़े से बिरा नगर २०१
बूना मर्याक २८९	बिपिने तीर बुना २८९

विज्ञ का मूर्ख को मुँह लगाना १७५
 वेणु २९५
 वेरम्भ हवा २८९
 वैदूर्यमणि का भासना ६४
 शरत् काल का सूर्य ६४
 शारिका की बोली १५२
 श्मशान की लकड़ी ३६२
 समुद्र में चलने वाली नाव ३८७
 सरोवर ३०९
 सात गोलियाँ २५१
 सारथी १७३, २७
 सार-गवेषक ३८२
 सिखाया हुआ घोड़ा ८
 सिंह २७, ९५

सुमेरु २५२
 सूई धैचने वाला २८२
 सूत की गोली ४१८
 सूरज १६८
 सूर्य ३८८
 सोने का आभूषण ६४
 सौ वर्ष की आयु के ध्रावक २७१
 स्वच्छन्द मृग १५९
 स्थिरता से चढ़ने वाला नाग ११७
 हरे नरकट का कटना ५
 हाथी का पैर ७९
 हिमालय २५२
 हुँमा हुँमा कर रोनेवाला सियार ६५
 लोहार की भाथी ९२

૨ નામ-અનુક્રમણી

भगगाऊप १३९
 भगगाऊप वीप १४८
 भङ्गीरस (= कुङ्कु) ७९
 भगिन्नी मारहाण १३३
 भङ्गापण मिश्रोण ८९ ९ १ ४ ११४ ११५
 भङ्गातडाणु (= मगाधराज वैदेहीपुत्र) ७९ ७७
 २९६ ३ ८
 भङ्गित २१५
 भङ्गितकेलकम्पकी ६७
 भङ्गितलम मुरादाण ५९
 भङ्गाकोण्डम् १५४
 भङ्ग (नरक) १२४
 भङ्गापिण्डिक १ ६ १९ २ २३ २४ २५
 ३ ४८ ५८ ५९ ६७ ९८ ९५ ९७
 १ ८ ११६ ११८ १५ १५१ १५३
 १५५ १६६ १६७ १६८ १६९ १७१
 १८९ १९३ १९८ २०३ २०८ २३३
 २४२ २४७-२५५ ३ ४ ३६७
 भङ्गुवह १२ १२८ १५९ १६७ २३
 भङ्गुव घल १ ८
 भङ्गुव वल १ ९ ११ ११३
 भङ्गुवविन्द १२५
 भङ्गुव (नरक) १२४
 भङ्गिणिक २७९
 भङ्गिणु (भङ्गावण) १२६ १२७
 भङ्गिमाण भङ्गु (मादण) १२२ १२३
 भङ्गुवकाहक ७३९
 भङ्गुव्या ३८९
 भङ्गि (मारकम्पा) १ १ १ ६, १ ७
 भङ्गुवली (नगर) १२६ १२७
 भङ्गुवमान् (राग्य) १२६ १२७
 भङ्गुव-कोक ११
 भङ्गुव (नरक) १२३
 भङ्गुवली ३२४ ३२६
 भङ्गिह (भङ्गुकोक) ३५ ३९
 भङ्गुम ६४
 भङ्गुमेन्नक मारहाण १३१
 भङ्गुमेन्न राग्य ५२
 भङ्गुसि ३७५
 भङ्गु (नरक) १२४
 भङ्गुसिक मारहाण १३२
 भङ्गुसिमाधन्यावतण १२८
 भङ्गुसिमाधन्यावतण १२८
 भङ्गुकोक ३४ ३५
 भङ्गुमीय २८
 भङ्गु (मूर्धग) ३ ८
 भङ्गुम ५८ ६३ ७९ १२८ १३६ १५ १५९,
 २१२ २१ २३२ २३८ २४ २४२
 २४३ २६ २७९ २८२ २९४, ३३८
 ३६७ ३७९ ४ ३ ४३
 भङ्गावण वैम ९२
 भङ्गाव (विहार) १ ६ १९, २ २५, ४८
 ६७ ९३ ९५ ९७ १ ८ ११६ ११८
 भङ्गावण १७
 भङ्गाव हणिक २९२
 भङ्गाविक (मिश्रुपी) १ ८
 भङ्गावी १४८ १४९ १७ १७१
 हणिक ७९, १८१
 हणिक १६४
 हणिक १६४
 हणिक १७२
 उकण्य (रोग) ३१
 उकण्य (उलीसा) ३५३
 उतर वैमपुत्र ५७
 उतरा १६८
 उतर (नरक) १२४
 उतरकवर्मा मिश्रुपी ११ २२३
 उतर मादण १३९

उभयानसंज्ञी देवता २४

उपक ३५

उपचाला १११ (- भिक्षुणी)

उपवत्तन १२८

उपवान १४०, २१२

उपालि २६०

उरुवेला ८९, ९०, ९१, १०४, ११४, ११५

ऋषिगिरि १०३, १५५

ऋषिगिरि शिला ३७४

ऋषिपतन मृगदाय ९०, ९१, २३९, २७६, २८५,
३५१, ३७९, ३९४

एकनाला १३८

एकशाला (- ब्राह्मण-ग्राम) ९६

एणिमृग १८

एलगला ३२३

औपधि तारका (= शुक्र तारा) ६४

ककुध देवपुत्र ५६

ककुसन्ध (- बुद्ध) १९७, २७४

कतमोरक तिरुसक भिक्षु १२२

कदलिमृग ३८४

कपिलवरसु २६, ३६१

कप्प ११९, ३९५

कप्पिन (- महा) १२०

कम्मासदम्म २३२, २३८

कलन्दक निवाप (- वेलुवन) ५४, ६४, ९३,
१०३, १२९, १३०, १३१, १३३, १५४,
१६९, १७०, १८२

कलार क्षत्रिय २१६, २१७, २१८

कलिंग राजा ३०४

कात्यायन गोत्र २००, २०१

कात्यायन २५९

कामद-देवपुत्र ५०

कालशिला (राजगृह में) १०३, १५५

कालानुसारी ३८८

काशी ७४, ७६, ७७, २७०

काश्यप (- बुद्ध) ३६, (- देवपुत्र) ४८,
(- महा) १२०, (- गोत्र) १५८, (बुद्ध)
१९७, २०२, २७५, २७६, २८१, २८२, ३०४

काश्यपकाराम ३७५

कुमुद (नरक) १२४

कुररघर ३२४, ३२६

कुरु जनपद २३२, २३८

कुशावती ३८४

कुशीनारा १२८

कूटागरशाला २८, २९, ९८, १८२, ३०८, ३१४,
३५२, ३७२

कृशागौतमी (भिक्षुणी) १०९

कृपिभारद्वाज १३८

केला ३८३

कोकनदा २८, २९, (- छोटी) २९

कोकनद ७५

कोकालिक १२२, १२३, १२४

कोणागमन (- बुद्ध) १९७, २७५

कोण्डञ्ज १५४

कोशल ६२, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१-८७, ९६,
१००, १२४, १३४-१४४, १५७ १६२

क्रोधभक्ष यक्ष १८७, १८८

कौशाम्बी २४०, ३६३, ३७७, ३७९

क्षेमदेवपुत्र ५९

क्षेमा ३९३

खण्डदेव ३५

खुजुत्तरा २९२

खेमक ३७७

खोटामुँह (- भारद्वाज ब्राह्मण) १३०, १३१

खोमदुस्त १४६, १४७

गंगरा १५५

गङ्गा ११९, १६५, १७०, २७१, ३८२

गन्धर्वकायदेव ४३७

गया १६४

गरुड १२१

गिञ्जकावसथ २२५, २५९

गृद्धकूट पर्वत ९५, १२५, १८३, २६०, २७२,
२७४, २९५, ३०१, ३०२, ३०४, ३७४

गोधिक १०३, १०४

गौतम २७, ३४, ४४, ४८, ४९, ५४, ६०, ६७,
९५-९९, १०५, १०७, ११८, २२९-१३५,
१३८-१४७, १५० (- कुल), १५५, १५८,
१५९, १८७, २०२, ३८३, ४४३

घटीकार देवपुत्र ६१,

घोषिताराम २४०, ३६३, ३७७

चक्रवर्ती राजा ३८८

चम्पू (-काली का) ७४

चम्पू देवपुत्र ५५

चम्पू-गणिक उपामक ७५ ७६

चन्द्रमा देवपुत्र ५२

चन्द्रिमस देवपुत्र ५४

चन्द्रा १५५

चारी महाराज १८४

चाका मिहृणी ११ १११

चित्र गृहपति ७९२

चीरा मिहृणी १७

चैत्य १४८

छत्र ३७

जय भारद्वाज १३२ १३३

जेतवन १ ६ १९ २ ४३ ९५ ३ ३३, ४८

४९ ५८ ५ ६७ ९३ ९५ ९७ १ ८

११६ ११८ १३२ १५ १५५ १६६ १६७

१७२ १७४ १८१ १८९, १९३ १९८ २१५

२२८ २३३ २४२ २४७ ५५ ५६ ३ ६

३३७ ३६७ ३८ ३८१ ३८४ ३८९ ४३

जयपद २६ ८५ १ १ १ ० १३६ १४६

जम्बू देवपुत्र ६९

जम्बूद्वीप २६९

जातुघोषि २६६

जातिनी १५९ १६

जह्नी ३८८

जगोत्री (एक वर्ष) १६१

जागदाह (जाह्नव) १४३

जातिक २६५, २५९

जटिमत १६४

जगन्निनी ८१

जगन्नाथ २५ १ ११४ ३५१ ४१२

जगन्नाथ ९ १ (जगन्नाथ) ११

जायक देवपुत्र ५१ ५२

जिम्बूक ३ ४

जिम्बू ३ ४

जिम्बू ३६

जिम्बू २७५ ३१५

जुम्बू जम्बूक १२४

जुम्बू १११

जुम्बा (भार-कम्पा) १ ५ १ ६ १ ७

जुम्बा (जम्बू लोक) ६ १११, १५९, १७३

१७४ १७५ १८१ १८२ १८३ १८४

१८८ १८९

जिम्बू लोक (जम्बू-लोक) ६

जुम्बूकम्पा २८३

जुम्बूकम्पा २८३ २८३

जुम्बूकम्पा १३८

जुम्बूकम्पा २ ७

जुम्बूकम्पा ३७८

जुम्बूकम्पा ४९ ५

जुम्बूकम्पा ५५

जुम्बूकम्पा १२५ २९५ २९६ ३६ ३९१

जुम्बूकम्पा १८८

जुम्बूकम्पा १४

जुम्बूकम्पा १९

जुम्बूकम्पा २२१

जुम्बूकम्पा २ ६२ १५९

जुम्बूकम्पा ५५

जुम्बूकम्पा ६३ ३१५

जुम्बूकम्पा ६३

जुम्बूकम्पा १४३ १४४

जाग २७ २८

जागदाह १६

जागदाह २४ २४१ २४२

जागदाह २८४

जागदाह ६४ ६५

जागदाह ६५ ६७

जागदाह ६९ ९ १ २ ११४ ११५

जागदाह १४८ १४९

जागदाह ३६१

जागदाह १११

जागदाह ६९, ९ १ ४ ११४ ११५

जागदाह १२४

जागदाह ६५ ६७

जागदाह ३५

जागदाह (— जिम्बू) ३५१

जागदाह ५५ ५१

जागदाह (जागदाह-जाग) ८

जागदाह ३८६

पद्म (- नरक) १२३, १२४

परिनायक रत्न ३८४

पलगण्ड ३५

पार्चीनवश २७४

पारिलेयक ३६३

पावा २७४

पिङ्गिय ३५

पुण्डरीक १६२

पुण्णमन्तानि-पुत्र २६०

पुनर्वसु १६८, १६७

पुराणकाश्यप ३५२

पुरिन्दद १८१

पूर्वाम ७४, १५२, ३६५

प्रजापति १७३

प्रद्युम्न की बेटी २८, २९

प्रत्येक बुद्ध ६१

प्रसेनजित् ६७, ६८, ६९, ७०-८७

प्रियङ्कर-माता १६७

चक ११८

वदरिकाराम ३७७

वन्वज ३८१

वीरण ३८१

वलाहक देव ४३९

बहुपुत्रक चैत्य २८४

बहेलिया १५८

बाधिन १२१

बाहुरिगि ३५

विलिंगिक भारद्वाज १३१, १३२

बुद्ध २२, २५, २७, २९, ३३, ३४, ४४, ४८,

५२, ५३, ५४, ५८, ६४, ६६, ६७,

(-प्रत्येक) ८१, ८८, ९२, ९३, ९५, ९६,

९८, १०६, १०७, १११, ११२, ११९, १२०,

१२३, १२५, १२७, १२८, १२९, १३५,

१३९, १४०, १४८, १५१, १५३-१५६,

१६२, १६४, १६७, १६८, १७१, १८२,

१८३-१७५, २०५, २०७, २९०, ३०८,

३१४, ३८२

उद्धयोप (-आचार्य) १४

उद्ध-चक्षु ११५

उद्धनेत्र ११५

वोधिस्त्व १९५, १९६, ३३४

ब्रह्मदेव (-भिक्षु) ११६, ११७

ब्रह्ममार्ग ११७

ब्रह्म-सभा १२७

ब्रह्मलोक ११६, ११७, ११८, ११९, १२०, १२१, १२६

ब्रह्मा ११५, ११७, ११८, १२० (-महा), १२२, १२५

भञ्ज ३५३

मण २७९

महिय ३५

भर्ग ३२१

भारद्वाज १२९, १३०, १३१, १३४, १३६, १३७, १४४, २७५

भिक्षुक ब्राह्मण १४५

भिययो २७५

भूमिज २११, २१२

भेसकलावन ३२१

भोजपुत्र (ऋषि) ६२

मन्खलि गोसाल ६५, ६७

मगध ७६, ७७, ९८, ११४, १२५, १३८, १५९, १६५

मघवा १८१, १८५, १८८

मणिभद्र १६५

मणिमालक १६५

महकुक्षि २७, ९५

मन्तानिपुत्र पूर्ण ३६७

मल्ल १२८

मल्लिकादेवी ७१, ७८

मरीचि ३८३

महावन (कपिलवस्तुमें) २६, २८, (वैशालीमें) ९८, १८२, ३१४, ३५२, ३६१, ३७२

महामौल्लयायन ११९, १२०, १२२, १२३, १५५, २६०, २७५, २९२, ३०१, ३०२, ३११, ३१२

महा-काश्यप १२०, २६०, २७८, २८३, २८५

महा-कप्पिन १२०, ३१६, ३१७

महा-ग्रह्मा १२०

महा-कात्यायन ३२४, ३२६

महा-कोटित २३९, ३०४

महालि १८०

वेरोचन १७८
 वैशाली २८, २९, ९८, १६१, १८२, ३०८, ३१४,
 ३५२, ३७३
 शक (इन्द्र) १२८, १६४, १७२-१८९
 शाक्य २६, ७९, १०१, १०२, १४६, ३२२, ३६१
 शाक्य-कुल ११२
 शाक्य जनपद ७९
 शाल (=साखू) ११०, १२८, १४४
 शालवन उपवत्तन (कुशीनारा में) १२८
 शिखी (बुद्ध) १२६, १२७
 शिव ५८
 शीतवन १६८, १६९
 शीलवती (प्रदेश) १०१, १०२
 शीवक १६८
 शीर्षोपचाला ११२ (-भिक्षुणी)
 शुक्रा भिक्षुणी १६९, १७०
 शुद्धावास २६, १२१, १२२
 शुद्धिक भारद्वाज १३३
 शुचिसुखी परिव्राजिका ४३२
 शैला भिक्षुणी ११२, ११३
 श्वेत (= कैलाश) ६६
 श्रावस्ती (जेतवन) १, ६, १९, २०, २१-२५,
 ३०, ४८, ४९, ५२, ५४, ५९, ६२, ६७, ६८,
 ६९, ७०-८७, ९३-९९, १०८-११३, ११६-
 १२६, १३२, १३३, १३९-१४६, १५०-१५५,
 १६६, १६७, १७२-१८९, १९३, १९५, १९८,
 २००-२१८, २३६, २४२, २४७, २५०-२५८,
 ३०६, ३११, ३१३, ३२७, ३६५, ३६७,
 ३८०, ३८१, ४३०
 सगारव १४६
 सजय वेलट्टिपुत्र ६७
 सजीव २७४
 सगुल्लपकायिक देवता १९, २०, २१, २२, २३, २६, २७
 सनकुमार (ग्रह्या) १२५
 समुद्धि १०, ११, १०२
 सम्भर १७९, १८०
 सम्भरी माया (जादू) १८८
 सम्बुद्ध २, ४९, १०२ ११४, ११६, १२१, १२६,
 १२८, १२९, १५३, १५६, १७३, १७४, १८५,
 १९५, २३७, २८४, ३०४, ३५१,
 ५६+२

सर्पिणी नदी १२५
 सविट्ठ २४०, २४१, २४२
 सहम्पति ग्रह्या ११४, ११५, ११६, ११७, १२३,
 १२४, १२५, १२६, १२८, १८४, ३६१
 सहली ६४, ६५
 सहस्र नेत्र (इन्द्र) १७९
 सहस्राक्ष (इन्द्र) १८१
 साकेत ५६
 सानु १६६
 सारिपुत्र ३३, ५८, ६३, ६४, १२२, १२३, १५१,
 १५२, २१०, २११, २१२, २१५, २१६,
 २१७, २१८, २३९, २६०, २७५, २७६,
 २९२, ३११, ३१२, ३२१, ३२३, ३४९,
 ४३०, ४३१, ४३२
 सिखी (बुद्ध) १९६
 सिंह २७, २८
 सुगत २९ (= बुद्ध), ६४, २८४
 सुदत्त ५६, १६९
 सुधर्मा सभा १७४, १८९
 सुजम्पति १८२, १८५, १८६, १८८
 सुजा १७८, १८२
 सुजात ३१३
 सुत्तर २७५
 सुदर्शन माणवक ७६
 सुन्दरिका नदी १३४
 सुन्दरिक् भारद्वाज १३४, १३५
 सुपर्ण ४३५
 सुपस्स २७१
 सुप्पिय २७५
 सुभद्रा देवी ३८४
 सुमेरु ३८५
 सुराध ३५६
 सुवीर १७२
 सुवा १३५
 सुसिम देवपुत्र ६३, १७३, २४३, २४४, २४५
 सुवह ५६
 सुवह्या १२१, १२२
 सुंसुमार गिरि ३२१
 सुचिलीम १६४, १६५
 सूर्यदेव पुत्र ५२, ५३

मंजारी ग्राम ९१

मेरी वृत्तपुत्र ६ , ६१

मोय ३७७

सोमा मिहृप्ती १ ८ १ ९

सौपन्यिक (नरक) १२७

इंस १२१

हिमबन्ध ६२

हिमाकृत्य ६६ १

हारिक ३ ७

हाकिदिकामि ३२६

—

३. शब्द-अनुक्रमणी

असाक्षिक १३४ (=बिना देरीके मकल होने वाला)	अनुप्रासमयर्थ (=निर्वाण-प्राप्त) ३९०
मकालिनी १०१ (=जीव हा मकल होने वाला)	अनुबोध ४४०
अकृत ४१८ (=अनिमित्त)	अनुमोदन ४४८
अकृतज्ञता १७८	अनुरोध ०६
अग्नियाचार्दी ३०३	अनुशामन ४८, ७८, ०६
अक्षर ३९	अनुश्रव २४१
अगौरव (=उद्ध) ३६	अनुष्ठान १००, १७२
अग्नि ४३	अनोत्तापी २०६
अग्नि-वचन १३३, १३४	अनोम (= बुद्ध) ३२, १८५
अनर-पट-गामी (=निर्वाण गामी) १०५	अन्तक (= मार) ८९, ००, ९७, १६०
राज्य १३१, १५४	अन्तर कल्प ४१८
अट्टकया (=अर्थकथा=भाष्य) १, २, ४, ५	अन्तर्धान ४८, ५१, ५६, ५८
अण्डज ४३३	अन्तर्वाला ४१०
अतीत (=भूत=प्रीता हुआ) २६०	अन्नपान ४४
अर्हेत २००	अन्यथात्व ३३८
अधर्म ६०	अपन्नपा (= संकोच) २८०
अधिगमन पथ ३०३	अपराजेय १५०
अधुन १५८	अपरान्त २०६
अध्यवसाय २४९	अप्रमत्त ५४, ८०, १०१, १०२, १०३, ११६
अनन्त ४१९	१३०, १५४, १७१, १८५
अनन्तदर्शी ११८	अप्रमाद ६२, ७८, ८०, १२८, २४९
अनागत (=अविगत) ११६, २६०	अपेक्षा ७३
अनागामी १००, १७४, १८३	अप्रतिवानीय १६९
अनाताप २७६	अप्रतिवेध ४४२
अनात्म १५०	अप्रत्युपलक्षण ४४२
अनार्य ५०	अप्सरा ३२
अनासक्त २३, ३२, ४८, ५५, ६४	अवुद (= गर्भ में सत्व की कलल अवस्था के बाद की दूसरी अवस्था) १६४
अनित्य १२८, १४९, १५०, १५८, १५९	अभय १७४
अनित्यता ६२	अभिजातियाँ ४१८
अनुताप ५१	अभिनिवेश ४००
अनुत्तर १०६, ११६, १४४, १४५, १७३, १७४, २७६	अभिनिर्वृति २६७
अनुपलक्षण २४२	अभिनीहार ४४५

आरक्त ७३	उपादान स्कन्ध (पाँच) ९७, १९३
आराम (विहार) १, १५०, १५१, १५३, १५५, १६६, १६७, १७२, १८३, १८०	उपायास २३५ (=परेशानी), २५९
आर्त-स्वर ३०१	उपासक १३९, १४०, १४१, १४२, १४३, १४४, १४५, १४६, १४७, १५५, १७०, १८५, २०४
आर्य १२३	उपोसथ ६२, १६६, ३६५
आर्यमार्ग ८, ३०	ऊर्ण १०६
आर्यधर्म २९	ऊर्जुप्रतिपन्न १७४
आर्य अष्टांगिक मार्ग ७०	ऊर्जुभूत १८३
आर्यमत्य (चार) २, १६८	ऊर्द्धि १०३, ११०, १२०, १२१
आलम्बन ४४५	ऊर्द्धिपाठ १०० (=चार)
आलम्बी ४७	ऊर्द्धिवल १२७
आलस्य ८६	ऊर्द्धिमान् ६२, १२१ १५६
आवागमन ३८, १३४, १६०, ३८५	ऊर्षि ३१, ५८, ६२, ६४, १०९, १५३, १७९, १८६
आवुस १७०	एकत्व २०७
आश्रय ३१ (= गृह), ३०	एकश्राटिक ७४ (= एक वस्त्रधारी)
आश्रव (=चित्त मल) १२०, (चार) १३३, २०८, ३८६	एकान्त ४८, ९२ (-वास), ९६, १००, १०२, १०८, ११६, १२६, १४५, १६१
आसक्त १४५	एहिपरिसिको (= 'आओ देख लो' कहा जाने योग्य) १०१
आसक्ति १३, १६९	ऐश्वर्य ४५, ४६, ८७, १७५
आहुति ११७	ओक्खा (= तौला) ३०७
इच्छा ४१	ओघ (= याद, चार) १
इन्द्रिय-सवर ५६	ओज १६९
इरियापथ (चार) १७ (= शारीरिक अवस्थायें)	ओपनेयिको (= परमपद तक ले जानेवाला) १०
इपुलोम ३०२	ओलारिक ३१२
ईश्वर ११८	औद्धत्य-कौकृत्य (= उद्धतपन-पश्चात्ताप, नीघरण) ४, ८६
उक्कण-ऊण ११५	औपपातिक (= अ-योनिज सत्व) ४३३
उक्कणक (- रोग) २८९	औपाधिक १८३, १८४
उच्छेद-वाद २०३	औरम्भागीय ३४७ (= निचले बन्धन, पाँच)
उत्थान-सज्ञा (= उठने का विचार) ९२	कंकाल ३०१
उत्पाद २६७	कवन्ध ३०५
उदक-शुद्धिक १४६	कर्म ३३, ५८
उदग्र-चित्त १५२	कर्मवादी २०९
उदान २८ (= प्रीति वाक्य)	कर्त्ता ११८
उद्धत १६२	कलल १६४
उद्योगी ४७	कलेवर (= शरीर) ६३
उपदिष्ट १८२	कटप २७१
उपधि ९२, ९३	कल्याणमित्र ७९
उपाधि १०५, १०६, ११२, ११४, ११७, १५५, १६९, २३८	कवि ३९
उपसम्पदा १३०	

कहापण (= कार्पाण) ७१

काम १ १ ७ (-विचार) १११ (-पुष्पा) ११
(-भोग) १

कामच्छन्द ४ ८१

कापराता-नमृति १५०

कायबन्धन १०५

काया १ ७

कार्पाण ७१ (= कहापण)

कण्ड (= मृत्यु अंक) १

कुम्भक ३ ३ (= पक्ष)

कुम्भपुर १ ४ १३

कूटगार १८४ (= Watch tower)

केवली १३४ १३९

कोकवत् (= कमल) ७५

कोकट्टि १९३ (= वीर का बीम)

कोसकराज ६० ६८ ६९ ७०-८०

कृत् ४ १ ३

कृत्रिज ४० ६० ८१, ८० ८८ १२१ १३३

कृत्वि १०१ १०१ १०८ २४१

क्रीणाग्र (= मर्हत्) १९ १४, १५ १० १

५५ ६९ १३४ १३९ २९४

क्षेम १५१

क्षारी १२४

गन्ध ९० ९८ ९९ ११

गन्धधोर १६२

गात्रा (= इकोक) १ २ ३ ४ ५ ६ ७

गीत ३९ (= गायत्र)

गुप्तचर ७४

गृहपति ७१ १६८

गोचर ४४५

गोत्र ३३ ४५ ५८ १२९

गीतम १४

ग्रन्थि १७

गङ्गा-मत्स्य (= गङ्गा की मत्स्य) ९ ८

गङ्गामत ९९ ९९

गङ्गाक ८२ ८८ १३३

गान्धर्व-मृत्तिक (= गन्धर्वी पक्ष बाहु जगि से

मिर्मित) २३३

गार-मार्ग ५

गारिका (= गमत्) १५८

पीवर (= मिथु पक्ष) १ ८ १३४ १३८ ९ ८
२७६

पीत्य १६५, १८३

पुन्य ३९

पुन्यराज १५८

पुन्य (= गन्धर्व) १४

पुन्य ७४

पुन्य ८५

पुन्य ४२ ८०, ११८ १६० १९३

पुन्यरूप (= गन्धर्व) २९१

पुन्य ११८ १२२

पुन्य-पुन्य-पुन्य ८३ ८४

पुन्य-पुन्य-पुन्य ८३ ८४

पुन्य १ ९

पुन्य १२६ १४९ १६८ १६९

पुन्य ३ ८

पुन्य ८ ४५

पुन्य ३९

पुन्य १४

पुन्य-पुन्य-पुन्य ८३ ८४

पुन्य-पुन्य-पुन्य ८३ ८४

पुन्य ७९ १ ३ १६०

पुन्य-पुन्य (= गन्धर्व) १२६ (-गोत्र) २२३ ३८६
४३२

पुन्य-पुन्य (= गन्धर्व-पुन्य) ५१ ६०

पुन्य १ १२ १० २३ २६ ३८ ४ ४१
४२ ९३ १ ४ १ ७ ११ १९३

पुन्य-पुन्य १ ३

पुन्य-पुन्य २६६

पुन्य-पुन्य २४३

पुन्य-पुन्य १३४ १५२ १५३ १५४ १५६ १८४
१८५

पुन्य ९९

पुन्य (= गन्धर्व-पुन्य) ७२

पुन्य १०१ (= गन्धर्व-पुन्य)

पुन्य २८ ६४ ११० १३

पुन्य ४०

पुन्य ९१ १५६

पुन्य-पुन्य ११९

पुन्य-पुन्य १९

दुःख ४२, १५०

दुर्गति २७

दुर्भाषित १७६

दृष्टिनिध्यान २४१

देव-कन्या १५९

देवत्व ११०

देवपुत्र ४८, ४९, १७२, १७३

देवलोक २७, २९, १६०, १८०

देवासुर-संग्राम १०३, १७४, १७६, १७७, १७९

देवेन्द्र १०८, १७०, १७३, १७१-१८०, १८४,

१८६-१८९

दो-अन्त २०३

द्वेप १०, १७, ३५, ३६, ६८, ८५, १४७, १६५,

१८५

धर्म (= बुद्ध धर्म) १०, १९, ३२, ३३, ३४,

३५, ३६, ४०, ४३, ४४, ४५, ४९, ५१,

५८-६०, ६८, ७८, ८५, ८८, ९९, १०१,

१०७, १११, ११२, ११४, ११६, १२९,

१३४, १३५, १३९, १४८, १५४, १५६,

१६०, १६८, १७१, १७४, १७५, १७७,

१८५, १८७, ३७४

धर्मकथिक (= धर्मोपदेशक) २०१, ३९२

धर्म-देशना ९१ (= धर्मोपदेश)

धर्मानुधर्म प्रतिपन्न २०१

धर्म-धातु २५६

धर्मासन २८०

धर्म-दर्शन १८३

धर्मपद १६१

धर्मानुसारी ४०४

धर्मराज (= बुद्ध) ३३, ५८

धर्म-विनय १०, १८२, १२७, १७३, १७५, १८०,

२४३

धातु ११३, १५६

धारा १६, १७

धुताग २६०

धुष ११८

धूम ४३

धृति (= धैर्य) १७१

ध्यान १०७, १२८

ध्यानरत ५५

ध्यानी ४८, ५०, ५५

ध्यानी ४४८

ध्वजा ४३

ध्वजाग्र १७३

नरक २१, २९, ५१, ८२, ८४, १२३, १६१,

१६७, १८८

नलकलाप (= नरक का बोझा) २४०

नाग २७, ११७

नागवास ४१८

नाम ४०, ४५

नामरूप १०, १४, १६, २७, २३, २६, ३५,

१९३, २३१

नालि ७६

नास्तिकवादी ३५३

नास्तित्व २०१

निगण्ठ ७४

निद्रा ८, ४५

निद्रिवाद २०८

नियाम १५६

निरर्गल (यज्ञ) ७२

निरहङ्कार ५१

निरुक्ति-पथ ३५३

निरुद्ध १२८, १६०, २२७ (= शान्त)

निरोध ६३, ७९, ११ (= निर्वाण), ११२, ११३,

११४, १९२, २३७

निर्ग्रन्थि-गार्म ४१८

निर्वाण १, २३, ३२, ३९, ४०, ५१, ५८, ९९,

१०३, ११८, १३०, १३८, १४८, १४९,

१५१, १५३, १५८, १५९, १७१, १७३,

१७४, २४१, २७६, २८५, २९०

निर्मोक्ष २ (= निर्वाण)

निर्माता ११८

निर्वेद २०१, ४०९

निर्वेधिकप्रज्ञ २१९

निपाद ८३

निवाप ५४, ६४, ९२, ९३, १०३, १२९, १३०,

१३१, १३३, १६९, १७०, १८२

निष्क २९१

निष्ठा ३६४

निष्पाप १६९

- निम्नराज २६५
 नीबरम (पॉच) ४
 नैबर्सकामासहायन २५४
 निष्कम्प २५९
 पञ्चस्कम्प २ ४
 पञ्चांगवेष्ट २८
 पञ्चांगिक साज ११
 परमपद (= निर्वाण) १ ३३, ५८
 परमार्थ ४६ ९६ १ ६ ११६ १०१ १०५,
 १८८
 परकोक ४४ ६ ६१ ७८ ९४ ११५ १०१
 परिचर्या १३४
 परिशा ३९ ४ ६
 परिज्ञाता ३९ ४ ६
 परिशेष ४ ६
 परितस्तना ३२८
 परिविर्वाण १ ४ १२८ २०४
 परिज्ञातक ७४ २४३
 परिष्ठाद २५९
 पॉच-ज्वर-आगीय बन्धन ९
 पॉच-हृन्मिय ४
 पॉच-कृष्ण-आगीय बन्धन २
 पॉच-कामगुण १८ ७४ ७५
 पॉच-नीबरम ४
 पॉच-स्कम्प ११
 पॉसुसुख २७८ २८४
 पॉसुसुखिक २७३, ३१५
 पाताक ३१ १ ४
 पात्र १ ८ १३८
 पारसीकिक ८ १०१
 पिण्डक ३३३
 पिण्डपात (= भात) ७२ ९ ८
 पिण्डपातिक २७३, २७८ ३१५
 पिशाच ३२ (= योनि) १६०
 पुण्ड्रक ८३, ८८ १३३
 पुण्य ३० ६ ६१ ९४ (= क्षेत्र) १०४
 पुण्यपात्र १ २
 पुण्य ३९
 पुर (= शहर) १८१
 पुरन्द्रीय (= ब्रह्म) ७०
 पुष्करिणी १५५ १६२, १८३ २५
 पूर्वकोटि (= पश्चात्तिरा भाग) २६९
 र्वाण्ड २ ६
 रूयक-जल १९२ १५९ २३३
 रेखी १६४ (= गर्म में सरब की मजु व के पश्चात्तिरा
 तीसरी अवस्था)
 रैसाच ४१८
 रणकम १६
 रणसि ३५३
 रणा (= इन्द्रिय) ४ ९३ ३७ ४७ ५८ ८९
 १ २ ११६ १३२ १०१ १८२ १८३
 रणबाण्ड ५४ ५५ ७४ १०
 रणविमुक्त १५२ २४४
 रणस्कम्प ८६
 रणसिधि २५९
 रणापी १५४
 रणसि १४
 रणसिद्धा २८५
 रणसिद्ध १५
 रणिकोम २५६
 रणोत्त (= पार) १६ ७६ ७७ ७९
 रणोत्तसमुत्पाद १९३ २ ५ २३२
 रणपात्र २२३
 रणुद्ध १६६
 रणगुर ११
 रणम २१०
 रणम १ ८
 रणाद ४५ १५९
 रणवित ५ १ २ १ ७ १५६ १५८ १०३,
 १०५
 रणव्या १३
 रणान ४१ ४२ ४९ १५
 रणवित्ता (= रणमी) १ १ १ २ १ ३ ११६
 १३ १५८ २९४
 रणवित्ति (= सावित्ति) २
 रणवित्ति १६६
 रणमी १ (= विर्वाण)
 रणाद १८४
 रणवित्तिपत्र ३६३ (= आगी के वाय के समान)
 रणव्य ४ ४२

वात्तर (-व्रता) ११८
 वस्तुश्रुत २६१
 वुद्धत्व ६७, ८०, ९०, ११४, ११५, १४५, १५६,
 १९६, २३६, २३४
 वोधिमत २३६
 वोध्यग ५६
 वल्लचर्य ३०, ८५, ५१, ५२, ६३, ६०, ९१, ९४,
 ११६, १२६, १३५, १४५, १८१
 वल्लचर्य वास ४७, ११७, १३०
 वल्लचारी १३५
 वल्लत्व १४४
 व्राह्मण ८८, १३३, १३५, १४५, १७१
 व्राह्मण-ग्राम १३८
 मदनन्त ६, ९०, ९३, १२६
 भव १, १९२, २४१
 भवनेत्ति (= तृष्णा) ४०६
 भवसागर २५, ३५, ५७, ९५, ११८
 भारवाहक २८, ३६
 भावितात्म ५५, ११७
 भिक्षु-संघ ३६, ४४, ६८
 भूत ४१७
 भोग १० (पाँच कामगुण), ११, २४, ४६
 भ्रुभग १०१
 मण्ड (= जमा हुआ धी) ४४८
 मध्यम-मार्ग १, १३६
 मन १४, ४४
 मनुष्य-योनि ३४, ३५
 ममकार ३००
 मरण १९३
 मल ३९
 महल्लरु (= वृद्ध) ३२१
 महर्षि ३०, १३४, १३९
 महाकल्प ४१८
 महाज्ञानी ४४
 महाप्रज्ञ ६४, १०३
 महायज्ञ ७२
 महाविष ४३
 महावीर १७, ५२, ९५, १०३, १५३
 महासमुद्र २४२
 माणवक (= ब्राह्मण तरुण) ७६, १८१
 ७६+३

मानानुशय ३००
 माया १८८
 मारिय १२०, १२१, १७४, १७८, १८२, १८७
 मिथ्या १, (-दृष्टि) १, (-मार्ग) १९५
 मुनि ९२, (-महा) ९२, १४०, १४९, १५५, १५६
 मुनिभात्र २८
 मूर्धाभिषिक्त ३८४
 मूल ४३, ४९, १०८, १२९, १४५
 मृगदाव ५६
 मृत्यु ४१, ४२
 मृत्युञ्जय १०३, १५५
 मृदग ३०८
 मेवावी १५२
 मेत्री-भावना १६६
 मोक्ष २ (निर्वाण)
 मोह १२, ३५, ३६, ६८, ८५, १४७
 यक्ष ५७, १४१, १६२, १६४, १६५, १६६, १६८
 यक्षिणी १६७
 यथाभूत (= यथार्थ) २६५
 योगक्षेम २७६
 योनि १२६, २७२
 रत्न ३७
 रथ ४३
 रथकार (-जाति) ८३
 रथयुद्ध ८७
 रस ९७, ९८, ९९, १००
 राग १२, १७, ३५, ३६, १०६, १२७, १६५, १८५
 रागद्वेष १४
 राष्ट्र ४३
 रूप ९७, ९८, ११०, १११, १६४
 रूपसंज्ञा १४
 लघु-चित्त १६०
 लोक १०, ३०, ३५, ४०, -४७, ६१-६३, ७८,
 ९१, १११, ११४, ११५, १२०, १२९, १५५,
 १६५, १७१, १८९, ४१९
 लोक-विद् १७३
 लोभ ४५, ६८, ८५
 लौकिक २२६
 वचन ४४
 वाजपेय (यज्ञ) ७२

बाद-योग १४	सपनासन २ ८
बिपात २५९	संस्थ १५३
बिषय १०१	शास्त्र ३८१
बिषयिकता (नीबल) ४ २१० ३६९	शास्त्र बाद ११८ १२ २ ३
बिषयसंग्राम १८४	सासन १ ३ ११२ १२० १५६
बिज्ञ १ १	सास्ता (बुद्ध) २
बिज्ञान ९० (-भाषण) ९९ १ ४ १९७	शास्त्र ४५
बिज्ञानानुयायन २५८	सिद्धयमाणा ३०५
बिज्ञान ४ ० ७९, ८९, १ १ २ १ ३	सिद्ध १४ ३३ ३० ५ ५८ ७४ ८९ ११५
११५ १५० १६२, १६५ १००	१३२ १३५ १६२ १८३
बिज्ञ ४३	सिद्धयमाणा १०९ १८५
बिज्ञाना १४	सिद्धयमाणा ५५ १ २
बिज्ञा ३३, ४४ १८ १९५	सिद्धयमाणा ८९
बिज्ञापण २६१	सिद्धयमाणा-द्वार १९८
बिज्ञापण ४ ३	सुप्त २५८
बिज्ञा १३ (फल)	सुप्त १०१
बिज्ञान १६२	सुप्त ८९ ८८, १३३
बिज्ञान २८ ३५, ४८ ५२ १ ० ११२ १५५	सिद्ध ५ १ ३ १२६ १८५ १८९
१६४ १६९	सिद्ध ८८ ११५, २१९
बिज्ञान १ ३ ११६ १५५	सिद्ध ११८
बिज्ञान-संग्राम ८९ ९१ १ ३	सिद्धा (इतिहास) २ ४ २२ २६ ३० ३९, ४४
बिज्ञान ९०	४५, ५८ ८९ १ २ १२३, १३८ १५९
बिज्ञान ९८	१५८ १६२ १६० १० १८२ १८३
बिज्ञान २ (निर्माण) ७९ १५०	असम (-भाष) ८ ५१, ४० ९१ ९५-९९,
बिज्ञान-संग्राम १४	१ ३ ११५ ११६ १२९ १३ १३६
बिज्ञाना १६१	१४२ १४३ १४४ १६४ १६५ १० १०१
बिज्ञान १०४	आवक ६४ ६४ ९८ १ ३ १३ १३५, १५
बिज्ञान १०४	१५२ १५५, १५८ १५९, १०४
बिज्ञान १ ३ १५० १०४	सुप्त ३९३
बिज्ञान (इतिहास) ४	सुप्त १५४
बिज्ञान ०	सुप्त १५४
बिज्ञान ० ०	सुप्त १५४
बिज्ञान ८९ ८८ १३३	सुप्त १५४
बिज्ञान ३९ ९१	सुप्त १५४
बिज्ञान ४ (नीबल) १६१	सुप्त १५४
बिज्ञान ६३	सुप्त १५४
बिज्ञान-संग्राम ३९४	सुप्त १५४
बिज्ञान-संग्राम ४४४	सुप्त १५४
बिज्ञान ११	सुप्त १५४
बिज्ञान ९ ९८ ९९ ११	सुप्त १५४

मजावेद्विनाशितोष ४२०	मार्ग, २९, ३०, १०३
सप्रज १०, २७, २९, ९०, ९६, २४९	मर्चधि ३१८
संप्रसाद २३०	मर्चोक्त-प्रतीक ५५
सप्त १०६	मर्चाभिम् ३१६
सयम १५१, १८८	मार्धार्मिक २११
संसार ४३, ४४, ४५, ४६, ५५, ५६, ६०, १४०, १४९, १६१, १६३, १६८	मातात्मकारी २२६
सन्तान ९३, ११३, ११४, १२८, १५०, १५९, १९३	मातृगी ३०
सन्तर्ग ९०	मार्गवा ११५
संख्येष्टिक ३३	मिष्टाख्या २७, ९०
साष्टिर (= योर्वो के सामने फल देनेवाला) १०, १०१, १०८	मुगति १३, १४, १६०, १८०
सक्रुदागामी १५४, १८३	मुप्रतिपत्त १०५
सक्त ४०५	सुभाषित १५१, १७६, १७७
सन्निधौ ३००	सुमेध ११५
सन्काय ३३८, ३४०	सुरत ६४, (-भाव) ८६
सन्काय-रुष्टि १३	सुचिलोम ३०३
सन्कायकारी ४८६	सूपकार ३८८
सन्पुरूप ०४	स्रोतापत्ति १०४, १८०
सन्त १०१	स्रोतापन्न १०६, २१०, ४०४
सन्तमार्ग १९५	सौजन्य १७५
सन्त ५०	सौमनन्य ३४०
सत्त्वग ८८	सौरत्य १३८
सद्धर्म १०७, ११६	स्कन्ध ११ (पाँच), ११३, १५६
सद्धर्मांशुकारी ४०४	स्त्यानसुद्ध ४ (नीवरण)
सन्त १४७, १७८	स्थविर ३०९
सन्प्रायकारी ४८६	स्पर्श ९७ (-आयतन), ९८, ११०, १६५, १९३
सन्भागृह १४६	स्मृति (इन्द्रिय) ४, (= होश) १०, ३०, ४७, ५१, १००, १०६
सम्प्र १५१	स्मृतिप्रस्थान १५४
समाधि (इन्द्रिय) ४, १४, ८९, १००, १०३, १८३, (-स्कन्ध) ८६, ११६	स्मृतिमान् १२, १३, २५, २७, २९, ५४-५६, ७६, ८९, ९०, ९६, ९८, १०७, १०६, १४४, १७७, १६४, १६५, १६६, १७५
समाधिस्य १५०	स्वर्ग १०, २४, २६, ३०, ३३, ३४, ६१, ८०, ८५, १००, १४४, १४५, १६१
समापत्ति २४६	स्वाख्यात १७३, १७४
समाहित ५१, ५५, १०९, १३५	स्वाध्याय १६१
समुदय १९६, २३७	स्थिति २६७
समुद्र ३१	स्थिरात्म ५०
सम्प्रदाय ११२	हस्ति-युद्ध ८७
सन्धोधि २८५	हव्यावशेष १३४, १३५
सम्यक् १०, १०२, १०३, १७४, १८५, (पादा-) ७२, ही (= लज्जा) ३२, हेतु ११३	

बाठ-रोग १४	दायनासन २ ८
बिषात २५९	सक्य १५३
बिषद्वय १०१	साइवत ३८१
बिषिक्रिप्ता (बीवरण) ४ २१० ३६९	साक्यत बाण ११८ १२ १ ३
बिषित्संभाम १८४	सासन १ ३ ११२ १२० १५३
विज्ज १ १	सास्ता (बुद्ध) २
विनाम ९० (—आपतन) ९९ १ ४ १९२	शास्त्र ४५
विश्राधान्त्यावतन २५८	सिक्कपमाणा ३ ५
वितर्क ४ ० ७९, ८९, १ १ २ १ ३	शील १४ ३३ ३० ५ ५८ ७४ ८९ ११५,
११५ १५० १६२ १६५ १००	१३२, १३५ १६२ १८३
विष्ट ४३	शीकवन्त १०९ १८५
विहर्षणा १४	शीकवाण् ५५ १ २
विद्या ३३, ४४ ५८ १२५	शीकस्कन्ध ८६
वितपवर २६१	शीकविक-द्वार १६८
विबिम्ब ४ ३	शुभ २५८
विपाक १३ (४४)	श्रुभ्य १०१
विप्राप्त १६२	श्रु ८९ ८८, १३३
विमुक्त २८ ३५, ४८ ५२ १ ० ११२ १५५	शैव्य ५ १ ३, १२६ १८५ २८९
१६४ १६९	शैक ८८ ११५, २३९
विमुक्ति १ ६ ११६ १ ५	शोक ११८
विमुक्ति-स्कन्ध ८९ ९१ १ ३	अञ्जा (इम्भिय) २ ४ २२ २६ ३० ३९, ४४
विरण्ड ९०	४५, ५८ ८६ १ २ १२३ १३८ १५६
विरोध ९८	१५८ १६२ १६० १० १८९ १८३
विशेक २ (निर्वाण) ७९, १५०	अमल (—माष) ८ ५१ ४० ९१ ९५-९९,
विरिकशील १४	१ ६ ११५, ११६ १२९ १३ १३६
विहिंसा १६१	१४२ १४३ १४४ १६४ १६५ १० १०१
वीतज्ये १०४	आवक ६२ ६४ ९८ १ ३ १९ १३५, १५
वीतमाह १०४	१५२-१५५ १५८ १५९ १०४
वीतराग १ ६ १५० १०४	भुतवान् ३९३
वीर्य (इम्भिय) ४	गृह्मिज १५९
वदना २	पठायतन (४४ : आपतन) १९३
वगारघ २ ०	वर्कजता १८१
वीर्य ८९ ८८ १३३	वीग २ (वित्तमल वीर्य)
वर्णन ३९ ९१	संयामत्रि ११५
व्यापाद् ४ (बीवरण) १९१	संयामक १०४ १०० १८४ १८५
व्याम ६३	संय ३४ ६० ८८ १९९ १२९ १३९, १६२
व्यावर्तक ३६४	१०४ १८३, १८४
व्युत्थान-मुगल ४४४	संकाटी २ ९८४
व्युत्थान ११	संकेतना २३५
दाण्ड ९० ९८ ९ ११	संज्ञा ९० १ ०

